महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ

सम्पादक
डॉ० देवीलाल पालीवाल
निदेशक, साहित्य संस्थान
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

प्रकाशक
साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

चेटक पर सवार प्रणवीर प्रताप

गोगून्दा स्थित महाराणा प्रताप का राजतिलक स्थान – छतरी

गोगून्दा व हल्दीघाटी के मध्य स्थित मायरा की गुफा जो प्रताप के शस्त्रागार व छापामार युध्द का आश्रय स्थल रही (निकट के महल बाद के निर्मित है)

महाराणा प्रताप के अस्त्र-शस्त्र जो उदयपुर
के राजमहल मे सुरक्षित है

हल्दीघाटी युद्ध मे प्रयाण से पूर्व प्रताप तथा उनके साथी
राजपूत सरदार एव भील

समर्पण

मानव इतिहास
की उन पुनीत
व प्रेरणादायी
आत्माओ को
जिन्होने मानव
के विचार, एव
विश्वास की
स्वतन्त्रता और
आत्म-गौरव की
रक्षा में स्वय का
सर्वस्व अर्पित
कर दिया ।

कृतज्ञता

राजस्थान विद्यापीठ के उपकुलपति श्री जनार्दनराय नागर की सतत् प्रेरणा से यह ग्रन्थ इस रूप में तैयार हुआ है। साहित्य संस्थान माननीय उपकुलपतिजी के प्रति अपना आभार प्रकट करता है।

ग्रन्थ की सामग्री, विषय, स्वरूप आदि की दृष्टि से श्रद्धेय डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव एवं डॉ० मथुरालाल शर्मा का अमूल्य मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है। माननीय श्री अगरचन्द नाहटा ने निरन्तर रुचि लेकर ग्रंथ की सामग्री के संकलन कार्य में अपना मूल्यवान सहयोग दिया, है, साथ ही माननीय डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० मोतीलाल मेनारिया, श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल व श्री राजेन्द्र शकर भट्ट ने भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन में रुचि लेकर समय-समय पर मूल्यवान सुझाव दिये हैं। साहित्य संस्थान इन सभी विद्वानों का कृतज्ञ है।

साहित्य संस्थान उन सभी विद्वानों का भी कृतज्ञ है, जिन्होंने ग्रंथ के लिये अपने शोधपूर्ण निबन्ध तैयार किये और जिनके सहयोग के कारण ही ग्रंथ इस रूप में तैयार हो सका है।

सस्थान के इतिहास-पुरातत्त्व, हिन्दी-राजस्थानी एव संस्कृत साहित्य विभागों में कार्यरत सहयोगी शोधकर्मियो के वर्षों के संयुक्त प्रयत्नों एवं अटूट परिश्रम के परिणामस्वरूप इस ग्रंथ की बहु-मूल्य-शोध सामग्री का संकलन एवं सम्पादन कार्य सम्पन्न हुआ है। सभी कार्यकर्त्तागण धन्यवाद के पात्र हैं।

—सम्पादक

सन्देश

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप, महाराज छत्रपति शिवाजी और गुरुगोविन्दसिंह जैसी महान् विभूतियों के जीवन चरित्र से ही हम स्वाभिमान, वास्तविक स्वतन्त्रता व देश सेवा की प्रेरणा को जागृत रख सकते हैं।

क्षात्र धर्म के पुजारियों और रक्षकों की निष्ठा व लक्षण का एक दोहा रावत प्रतापसिंहजी, विजयपुर का बनाया हुआ, मैं नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं.—

हरि भजणा, हक् बोलणा, मन राखणा मजबूत।
बांट खाणा, चढ वाग्हणा, जे कीजे रजपूत॥

इस पुस्तक के लेखकों, सम्पादक एवं प्रकाशक को इस प्रयास के लिए सहर्ष बधाई देते हुए विश्वास करता हूं कि यह पुस्तक भारतीय नागरिकों के हृदय में सदैव स्वतन्त्रता को जागृत रखेगी।

भगवतसिंह
महाराणा मेवाड़

Prime Minister's Secretariate
New Delhi-11

Dear Sir,

The Prime Minister thanks you for your letter and wishes success to the Maharana Pratap commemoration volume which is being published next month

—Deputy information Adviser
to the Prime Minister

राजस्थान साहित्य-संस्थान द्वारा महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन सम्बन्धी निर्णय का मैं स्वागत करता हूँ। मध्ययुगीन इतिहास की दृष्टि से तो महाराणा स्मरणीय हैं ही, हमे आज उनके स्वदेश-प्रेम और उनकी बलिदान-भावना का विशेष आदर करना चाहिये। आजाद हिन्दुस्थान के लिए महाराणा प्रताप केवल एक स्वाभिमानी नरेश या एक अनोखे रणबांकुरे ही नही, बल्कि देश पर मर मिटने की भावना के प्रतीक हैं।

मैं इस अवसर पर महाराणा के प्रति अपनी श्रद्धाजलि सादर अर्पित करता हूँ।

—यशवन्तराव चव्हाण

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि उदयपुर मे महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के अवसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। महाराणा प्रताप का नाम लेते ही हमारे देश के इतिहास के वे पृष्ठ उभर आते है जिनमे राजस्थान की आन, बान और महिमा की रक्षा के लिए युद्ध के मैदान मे प्राणो की बाजी लगाकर परतन्त्रता से लोहा लेने वाले हजारों शूर-वीरो की लोमहर्षक गाथा अङ्कित है।

मैं आशा करता हूँ कि महाराणा प्रताप के कृतित्व और संघर्षमय-जीवन पर इस स्मृति-ग्रन्थ मे अध्ययनपूर्ण प्रकाश डाला जायेगा और इतिहास के ज्ञाता-विद्वानो के विवेचनात्मक लेखों से इसके कलेवर को सजाया जायगा। महाराणा प्रताप द्वारा किये गये संघर्ष के विषय मे इतिहासज्ञों में मतैक्य हो, यह आवश्यक नही है लेकिन मैं समझता हूं, महाराणा प्रताप की भूमिका को उस काल की राजनीतिक स्थिति के संदर्भ मे रखकर ही देखना चाहिये। जिस समय विभिन्न रियासतों वाले इस प्रदेश और देश भर के राजा महाराजा शनैः शनैः दिल्ली की परतन्त्रता स्वीकार कर चुके थे, उस समय दिल्ली के कूटनीति-प्रवीण मुगल सम्राट अकबर के राज्य मे मेवाड़ ही एक ऐसा राज्य बचा था जिसने दिल्ली की आधीनता को मानने से इन्कार कर दिया था। यही नही जब तक महाराणा प्रताप जीवित रहे, उन्होने अपनी मान्यता को अक्षुण्ण रखा और उनके संघर्ष में हल्दीघाटी का घमासान युद्ध हुआ जो हमारे इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों मे अंकित है। जय-पराजय से इस युद्ध का मूल्यांकन नही हो सकता। इस युद्ध के पीछे स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन एवं देश प्रेम की जो ओजस्वी भावना थी उसी के कारण देश के इतिहास में महाराणा प्रताप का नाम इतनी प्रतिष्ठा और गौरव के साथ लिया जाता है।

साहित्य संस्थान द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले स्मृति-ग्रन्थ की सफलता की कामना करता हूँ।

—मोहनलाल सुखाड़िया

Thank you for your letter of the 5th inst.

I am glad to know that you are bringing out Maharana Pratap Commemoration Volume.

I wish the publication all success.

—*V. V. Giri.*

The saga of Rajasthan has been a perennial source of inspiration to freedom fighters. Maharana Pratap, Durga Das aud Meera Bai, to name only a few, have featured in our best known historical and devotional plays. They have always been among the finest illustrations of patriotism, valour, pride and glory in the name of the country, and of suffering, sacrifice and self-effacement in the devotion to God.

So much has been said about Maharana Pratap in fables and facts; in prose and verse, in history and literature; and yet, there is still so much to be revealed through further research and study of the annals of Rajasthan Every attempt to rediscover and reinterpret his times and exploits ever so more reinforces our reverence and admiration of this legendary figure

As in the past, so also in the future this period of history will continue to educate and inspire the people, and give them strength and confidence to face life in its various aspects; emotional and cultural integration, domestic progress and prosperity, social and moral integrity and national honour and freedom.

I join my countrymen in paying homage to the memory of this among our greatest national heroes.

—*Ajoy Kumar Mukherji*

I am happy to learn that you are bringing out ' Maharana Pratap Commemoration Volume" on the auspicious occasion of the ceremony of unveiling of the statue of Maharana Pratap to be performed by the President of India in the month of Oct· next.

Maharana Pratap Singh was one of the greatest of Rajput heroes and belonged to the gallant tribe of the Rajputs of Mewar. He symbolised the indomitable courage and spirit of resistence of the Rajputs who refused to surrender to Moguls and barter away their freedom for securing some sort of a 'Subedari' in the Mogul Darbar. What the great Shivaji did in Maharashtra, Rana Pratap Singh attempted to do in Rajasthan. Though unfortunately he did not succeed in establishing an indedendent kingdom of Rajputs, he fought to the last treating wit scorn all the manoeuvres to win him over made at the behest of King Akbar.

Maharana Pratap would always remain a shining example of selfless and patriotic spirit that never surrenders to aggression and would thus remain a source of inspiration to generations to come.

I wish the function all success,

—*R. K. Khadilkar.*

I am glad to know that you are bringing our "Maharana Pratap Commemoration Volume" on the auspicious occasion of the ceremony of unveiling of the statue of Maharana Pratap. Since my childhood, I have heard the name and fame of Rana Pratap and as I grew old I came to appreciate the chivalry and spirit of independence which characterised him through out his life, The sacrifice and heroism which he displayed in his fight against the Mughals for maintaining the freedom of his country will ever remain a rich legacy and his memory will be cherished by generations of Indians yet unborn He has secured a place in history along with Shivaji and will ever be looked up to as the greatest patriot that India has produced, I wish your function all success.

—*R C. Majumdar.*

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि साहित्य-संस्थान राजस्थान-विद्यापीठ, उदयपुर में महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के शुभावसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ में उस युगपुरुष एवं स्वतन्त्रता-संग्राम के अमर सेनानी के सिद्धांतों एवं उपलब्धियों पर इस प्रकार से प्रकाश डाला जायगा कि आने वाली पीढियों के लिए वे आदर्श एवं अनुकरणीय होंगे। महाराणा प्रताप ने भारतीय इतिहास के उस युग मे स्वतन्त्रता-संग्राम की वेदी मे अपनी आहुति दी जिस समय विदेशियों ने भारत पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करली थी और उनकी प्रभुसत्ता दावानल के समान फैलती जा रही थी। महाराणा प्रताप ने उस बढती हुई ज्वाला को रोका ही नही वरन् उसको समाप्त करने का भी प्रयास किया और उसमें काफी सफलता भी प्राप्त की। मैं उस युग-पुरुष को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

मैं महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ की सफलता की शुभ कामना करता हूँ।

—रामसुभग सिंह

'महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ के विचार का स्वागत। योजना की सफलता के लिये शुभ कामनाएं।

जीतकर अपने स्वाभिमान की रक्षा करना सरल है परन्तु हार कर भी अपने स्वाभिमान को बनाए रखना बड़ा कठिन है। महाराणा ने यह कठिन कार्य कर दिखाया। उनके सामने जो झुकता है उसका माथा ऊंचा उठ जाता है।

—डा० हरिवंश राय बच्चन

प्रातः स्मरणीय स्व० महाराणा प्रतापसिंह की मूर्ति के उद्घाटन सम्बन्धी समाचार को पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। उसकी पूर्ण सफलता के लिये मेरी हार्दिक विनम्र शुभकामनायें।

—वृन्दावनलाल वर्मा

यह जान कर बड़ी खुशी हुई है कि आप महाराणा स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। यह बहुत आनन्द की बात है। मैं ग्रन्थ की सब प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

—डा० ए० चन्द्रहासन

महाराणा प्रताप भारत के एक महान सपूत थे जिन्होंने स्वतन्त्रता की पताका को झुकने न देने के लिए अकथनीय कष्टों एवं कठिनाईयों का सामना किया। इस शहीद-शिरोमणि के अदम्य साहस, कृतसंकल्पता तथा मातृभूमिके हित दिए गए बलिदानों के वृतांत हमारे देश के इतिहास में सदा सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे। महाराणा प्रताप ने जिस निस्वार्थ-भावना से मुगलों का मुकाबिला किया और अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जो संघर्ष किया वह हम भारतीयों को युग-युगान्तरों तक अजय प्रेरणा देता रहेगा।

यह जानकर हर्ष हुआ है कि साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह स्मृति-ग्रन्थ उस महापुरुष की स्मृति को शाश्वत बनाए रखने के प्रयत्नों में एक महत्वपूर्ण योग सिद्ध होगा।

स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएं आपके साथ हैं।

—राव वीरेन्द्रसिंह

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है। स्वतन्त्रता के पुजारी सिसोदिया वंश के उस वीर के के समान सम्भवतः कोई भी राजा भारत के इतिहास में नहीं हुआ। जीवन-पर्यन्त वह मुगलों से लड़ते रहे और मातृ-भूमि के लिए अनेक कष्ट सहे। वह त्याग और बलिदान की भावना एवं देशप्रेम अगर सभी राजाओं में होता तो भारत पराधीन नहीं हुआ होता। अतः यह सर्वथा उचित ही है कि आप एसे वीर-पुरुष की स्मृति में एक विशेषांक का प्रकाशन कर रहे हैं। मुझे आशा है, इसमें उपलब्ध सामग्री पाठकों को प्रोत्साहित करेगी। ग्रन्थ की सफलता के लिये मेरी शुभ कामनायें हैं।

—सत्यनारायण सिंह

महाराणा प्रताप के संबंध में आप जो ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं वह तो सुन्दर होगा ही पर मेरा विचार है कि 'महाराणा प्रताप' के सम्मान में एक खोजपूर्ण ग्रंथ ऐसा प्रकाशित हो जो हमारे 'स्वाधीनता संग्राम' के एक अमर सेनानी के रूप में सही सही अध्ययन प्रस्तुत करे। उनकी देश भक्ति का वास्तविक स्वरूप अभी प्रगट ही नहीं हुआ। उनका बलिदान अद्वितीय है।

मेरी शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

—विष्णु प्रभाकर

I am happy to note that you are bringing out a "Maharana Pratap Commemoration Volume". The bravery, patriotism and nobility of character of Maharana Pratap in the cause of the country are too well-known to need repitition. I congratulate the organisers in bringing out the Commemoration Volume and wish it every success. It should be a source of inspiration to the present generation of India.

—Dr. M. L. Roonwal.

The life of Maharana Pratap has a message for all of us at this time in the history of India What happened in the 16th century is happening once over again. Indian unity is in great danger. States and sub-States, languages and sub-languages and regional interests are fighting with one another for their narrow and selfish ends. Exactly the same thing happened when Maharana Pratap tried to fight the Moghul Imperialism. That time it was against a foreign domination; now it is against internal conflicts. But the only way we can make India strong is to give up our very narrow selfish acts. To me this is the only lesson that is remembered once again. I hope only that this occasion will enable all the workers in Rajasthan and other parts of India to work for Indian unity.

I wish the volume all success.

—H. D. Sankalia.

Maharana Pratap symbolises the sacrifice and determination of freedom fighters in the history of this country. I am glad to know that a statue is being erected at Udaipur to commemorate this idol of heroism. May his memory continue to inspire all of us for years to come.

—K. K. Shah.

मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप की स्मृति मे एक विशद ग्रंथ का प्रकाशन कर रहा है। महाराणा प्रताप के बारे मे बहुत कुछ लिखा गया है, विशेष कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारे स्वाधीनता-सग्राम के सेनानियो के लिये महाराणा प्रताप का नाम सदा ही प्रेरणाश्रोत रहा। बंगाल से लेकर सिन्धु तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक क्रान्तिकारी सैनिको ने देश भक्ति और स्वाधीनता के लिये जो अनवरत-संघर्ष किया, उसकी याद अभी ताजा ही है।

प्राय: प्रताप का नाम आते ही हमारा मस्तक गौरव से ऊंचा उठ जाता है और हमे अपने राष्ट्रीय आत्मसम्मान और स्वाभिमान के लिये मर मिटने और सर्वस्व त्याग करने की प्रेरणा मिलती है।

कुछ इतिहासकार और राजनीतिज्ञ वास्तविकता से मुंह मोडकर प्रताप–अकबर के सघर्ष को अपने अपने नजरिये से देखने की चेष्टा करते रहे है। कुछ लोगो का विचार हैं कि अकबर और प्रताप मिल गये होते तो हिन्दू–मुस्लिम समस्या का समाधान हो गया होता। अकबर की उदारता और हिन्दुओ के प्रति सद्भावना की चर्चा करते हुए प्रताप के पक्ष को दुराग्रह एव हिन्दुत्व का परिचायक बताया गया। जबकि वास्तविकता यह है कि अकबर विदेशी होते हुए भी अपनी जड़े भारतवर्ष में मजबूती से जमाने के लिये साम,दाम,दण्ड, भेद की नीतियां अपना कर भारत को अपने विस्तृत-साम्राज्य का आधार बनाना चाहता था। इस प्रायद्वीप पर पहले छोटे मोटे सभी राजाओं को अपने आधीन कर चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकाक्षी कल्पना प्रताप का प्रश्न आते ही टूट जाती थी।

महापुरुषो के चरित्र का मुल्यांकन एव चित्रण करते समय हमें उन्हें उनकी समकालीन परिस्थितियो को दृष्टिगत रखकर ही निर्णय लेना होगा। वर्तमान आवश्यकताओ और आदर्शों के नाम पर इतिहास की तोड़ मरोड़ और तथ्यो का एकपक्षीय अवलोकन सही नही माना जा सकता। इसलिये महाराणा प्रताप के जीवन पर चर्चा करते समय हमें पुरानी तत्कालीन भावनाओं का ध्यान रखना ही होगा। स्वतन्त्रता की भावना और उसकी रक्षा के लिये बलिदान और त्याग को सकीर्ण सीमाओं में नहीं देखा जा सकता। ये वे मानवीय मूल्य हैं जिनका चिरस्थायी महत्व है। अतीत से लेकर आजतक जहां जहां भी इन मानवीय मूल्यों के लिये संघर्ष चलता आ रहा है और जिन्होंने इन मूल्यों के लिये अपनी आहुतिया दी है वे युग युग तक प्रेरणा-स्रोत बनी रहेंगी। महाराणा प्रताप का नाम भी ऐसे ही महामानवो में से एक है, जो देश काल और परिस्थितियों से ऊपर उठकर भी बुनियादी मानवीय मूल्यो के लिये अपने जीवन का सर्वस्व उत्सर्ग कर देते हैं।

मैं साहित्य-संस्थान के पावन-प्रयास की सफलता चाहता हूँ।

—ओंकारलाल बोहरा

आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के शुभअवसर पर एक स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की भी व्यवस्था की जा रही है। बधाइया और शुभ कामनाएं स्वीकार कीजिये।

राणा प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास मे सदैव अमर रहेगा । देश-प्रेम, शौर्य और बलिदान का जो ज्वलंत उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया था, वह आज भी इस देश के निवासियो को प्रेरणा देता है और आगे भी देता रहेगा। उनके जीवन व कार्यों से नई स्फूर्ति लेकर हम सब दृढता के साथ अपने कर्तव्य का पालन करें— यही मेरी कामना है।

—भक्त दर्शन

आप लोग महाराणा प्रताप-स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है, यह जानकारी हुई। आप लोगो का इस ओर का यह प्रयास सराहनीय है।

मेरी शुभ कामनायें आप लोगो के साथ हैं।

—प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं। महाराणा प्रताप की प्रतिमूर्ति न सिर्फ उदयपुर के लिये अपितु सम्पूर्ण भारत के लिये प्रेरणादायक सिद्ध होगी।

भारत के इतिहास मे महाराणा प्रताप का स्थान अनुपमेय है। इस प्राचीन देश के लम्बे इतिहास में वह अपने ढग की अकेली मिसाल है। उन्होंने अपने जीवन के सम्पूर्ण सुख एक उच्च आदर्श के लिये बलिदान कर दिये। जब इस विशाल देश के शासक मुगल सम्राट की शक्ति, वाक्–चातुर्य और नीतिमता के सम्मुख एक–एक करके सिर झुकाते चले गये, महाराणा प्रताप ने सभी तरह के कष्ट उठाकर अपनी और मेवाड की स्वाधीनता अक्षुण्ण रखी। अपनी पूरी शक्ति और चातुर्य लगाकर भी अकबर उन्हे अपने आदर्श से च्युत नही कर सका। निसदेह उस युग में भारत में दो महापुरुष हुए। एक सम्राट अकबर, जिन्होने भारतीय सस्कृति को अपना कर उसे अपने रग में रंगने का प्रयास किया। दूसरे महान् पुरुष महाराणा प्रताप थे, जिन्होंने देश की स्वाधीनता का झडा नीचे नहीं झुकने दिया, जिन्होंने आजीवन उंचे आदर्शों की रक्षा की। इस तरह महाराणा प्रताप का स्थान अकबर से भी ऊंचा है। महाराणा प्रताप हमारे देश के अग्रगण्य महान्-पुरुषो में हैं।

—चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

महाराणा प्रताप की स्मृति में स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कराने की योजना श्लाघनीय है। राजस्थान विद्यापीठ ने जहा कितने ही महत्वपूर्ण कार्य किये हैं उनमे यह स्मृति-ग्रन्थ अपना एक अनोखा स्थान रखेगा। महाराणा प्रताप केवल मेवाड़ की ही नही अखिल भारतीय क्षेत्र की अभिनन्दनीय विभूति हैं, विश्व के गिने-चुने वीरो मे गिने जाते हैं।

प्रताप का शौर्य और उनकी दृढता एव उत्साह अन्धकार मे विपत्तियों के घटाटोप मे अक्रान्त लडखडाते किसी भी मानव के लिये एक प्रकाशस्तम्भ की तरह रहे हैं और रहेंगे। महाराणा प्रताप का यश अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र और मुक्त रखने के लिए रक्त की अन्तिम बून्द तक अर्पित करने के कारण ही नही, वरन् उनमे उर्जस्वित उस मानवीय दिव्यता के कारण है जिसमें गर्हित दासत्व से जीवन को मुक्त रखने के लिये अनवरत सघर्ष किया और आपत्तियो के पर्वतो से भी भयभीत नही हुआ। इन्हीं मानवीय दिव्यताओ के कारण ही कवि और साहित्यकार ने महाराणा प्रताप को अपना आलम्बन चुना। मुझे विश्वास है कि इस स्मृति-ग्रन्थ के द्वारा महाराणा प्रताप के सभी मानवीय पक्षो का उद्घाटन होगा और उनके आदर्श अधिकाधिक निखार पा सकेगे।

साहित्य सस्थान के इस प्रयत्न की मैं हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

—डा० सत्येन्द्र

यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन द्वारा महाराणा प्रताप की मूर्ति के अनावरण के अवसर पर साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ "महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ" का प्रकाशन कर रहा है। आपके इस आयोजन का मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि ग्रन्थ प्रेरणादायक सामग्री से परिपूर्ण होगा। उसकी सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ। भारतीय लोक जीवन को समृद्ध करने के लिए महाराणा प्रताप ने जो कुछ किया, उससे प्रत्येक भारतवासी परिचित है। वस्तुतः उनका समूचा जीवन त्याग और तपस्या का ज्वलन्त उदाहरण है। उन्होंने कठोर से कठोर यातनाएं सहन की, लेकिन अपने स्वाभिमान को आंच न आने दी।

यद्यपि आज समय बदल गया है, हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है, तथापि उसके नव-निर्माण के लिए आज भी महाराणा प्रताप की जैसी साधना तथा वीरता की आवश्यकता है।

— यशपाल जैन

यह जान कर महान हर्ष है कि साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है।

आज वास्तव मे देश को ऐसे ही सच्चे देश-सेवी सैनानियो की जरुरत है। हमारी रगों का रक्त वही शक्ति शौर्य तथा देश–प्रेम की उत्कट मनोवृति चाहता है।

महाराणा प्रताप का एक मात्र ध्येय था– देश की आजादी और उसकी सुरक्षा प्राणप्रण से करना जो हमारे लिये महान् आदर्श है। उस महान् मातृभूमि के सेवक के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि तो तभी पूर्ण होगी कि हम भारतवासी एकता, प्रेम, व भाई-चारे की भावना से ओतप्रोत होकर अपने राष्ट्र को बहुमुखी विकसित करते हुये उसे उन्नत पथ का पाथेय बनायें।

आजादी के उस बलिदानी का जीवन, उसका अमर त्याग, सहिष्णुता तथा उसका औदार्य जिसका स्वय इतिहास साक्षी है, सदैव भारतीयो के दिलो में अजस ज्योतित रहेगा। हल्दीघाटी, चित्तौड, उदयपुर जिसकी रज मे आज भी उस सिह-सपूत की यशोगाथा सजीव है, जो क्लीब मे भी शक्ति का सचार करती है, उस महान विभूति प्रताप के सम्मुख, जिसने देश के लिये जीना तथा देश के लिये मरना सीखा था, हम नमित है तथा उसे बार २ नमन करते हैं।

मै हृदय से आपके प्रकाशन की सफलता चाहता हूँ।

—नन्दकुमार सोमानी

यह जानकर हर्ष हुआ कि साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ' प्रकाशित किया जा रहा है। प्रातः-स्मरणीय महाराणा की स्मृति अपने आप ही प्रदीप्यमान है, उसमे हम किसी प्रकार का संभरण करने के लिए सक्षम नही हैं। यह ग्रंथ उनके जीवन से प्रेरणा लेने के निमित एक लघु प्रयास मात्र ही हो सकता है।

विश्व के इतिहास में उच्च कोटि के वीर, त्यागी व बलिदानी कई हुए हैं। लेकिन इस तरह का महापुरुष जिसमे यह सारे गुण चरम सीमा पर मिलते हो, जिसका जीवन धर्म, आध्यात्म और नैतिकता से परिपूर्ण रहा हो, तथा जो वीरो मे महावीर व देवताओं को भी लजाने वाला हो, अन्य क्वचित ही है। उनका जीवन कठिन से कठिन परिस्थितियो में भी सिद्धान्तो के प्रति और लोक कल्याण के हितार्थ सर्वथा समर्पित रहा। यही उनके जीवन की परिपूर्णता व भव्यता है। उनका जीवन निष्कलंक, सरल और सादा, परन्तु आदर्शों को निभाने में प्रमुख और तेजस्वी, यद्यपि अपने प्रति कठोर पर दूसरो के प्रति अति दयालु रहा है। ऐसे महापुरुष के स्मरण मे हम धन्य होते है और उनसे प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

भारत में आज नेतृत्व की कमी खलती है। देश के सामने जो विकट मसले हैं वे इतने भयकर नही है लेकिन उनका मुकाबला करने वाली शक्ति का अभाव खटकता है। विकट से विकट परिस्थिति और कठिन से कठिन मुसीबतों का मुकाबला जिस दृढता, प्रखरता और तेजस्विता के साथ महाराणा ने अपने जीवन में किया, यदि उससे हम अपने आपको किंचित मात्र भी प्रभावित कर सकें तो आज की सम्पूर्ण समस्याओं का मुकाबला करने में हम हर तरह से समर्थ हो सकेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

महापुरुषों से प्रेरणा मिले, और उनका प्रभाव कायम रहे तथा इसके लिए जो भी प्रयास किया जाय वह थोडा है, और उसका परिणाम अच्छा है ही।

—कमलनयन बजाज

feel proud to be associated with the inauguration of the statue of Maharana Pratap at Udaipur. Maharana Pratap's footsteps in the sands of time can never be erased and his life of courage and dedication will continue to inspire countless generations of Indians

I am glad that this occasion is being accompanied by the issue of a commemmoration volume. I trust that it will be widely read and help to spread Maharana Pratap's message of courage, conviction, and persistence even in the face of overwhelming difficulties

—V. K. R. V. Rao

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरित्र हैं। महाराणा प्रताप सम्बन्धी मनन और अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता की आराधना एवं वन्दना है। साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ ने भारत के इस तपोपूत नेता के सम्बध में अनुसंधानपूर्ण इस विशद साहित्यिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ का निर्माण करके निस्सन्देह देश की उल्लेखनीय सेवा की है।

लगभग ६०० पृष्ठ क इस मौलिक एव खोजपूर्ण ग्रन्थ में न केवल महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में इतिहासज्ञों के अभिमतों तथा प्रताप सम्बन्धी राष्ट्रीय काव्यों का सकलन ही प्रस्तुत किया गया है, अपितु योग्य विद्वानों के नव लेखों द्वारा महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं आदर्शों पर भी प्रकाश डाला गया है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य पर महाराणा प्रताप के तेजस्वी व्यक्तित्व के प्रभाव का भी मूल्यांकन किया गया है। ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत प्रताप सम्बन्धी प्राचीन मौलिक स्रोत संस्कृत काव्य, प्राचीन राजस्थानी काव्य, ख्यात, वात, वंशावली, ताम्र-पत्र, पट्ट एव शिलालेखों का विवरणात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। अतः इस उपयोगी कृति के प्रकाशन के लिए साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ बधाई का पात्र है।

—निरञ्जननाथ आचार्य

जानकर प्रसन्नता हुई कि साहित्य संस्थान, उदयपुर महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ का प्रकाशन कर रहा है। महाराणा प्रताप का जीवन आज प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय है। जिस त्याग व तपस्या से वे देश पर अपना सर्वस्व निछावर कर स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अन्तिम-क्षण तक लड़ते रहे, वह देशवासियों के लिए सदैव प्रेरणा-स्रोत रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि स्मृति-ग्रंथ से महाराणा प्रताप के जीवन की प्रत्येक घटना सबके सामने आयेगी तथा उनका अधिक प्रचार व प्रसार होगा और उससे राष्ट्रीयता को बल मिलेगा। ऐसी मेरी मान्यता है।

मैं सफलता की कामना करता हूँ।

—हीरालाल देवपुरा

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान विद्यापीठ द्वारा महाराणा प्रताप के जीवन एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए एक ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप की वीरता एव आदर्शों की जो छाप विद्यमान है वह सर्व विदित है। ऐसे महान् व्यक्ति की स्मृतियों का संग्रह न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है अपितु नागरिकों के चरित्र-निर्माण में भी सहायक सिद्ध होगा।

मैं ग्रंथ के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

—शिवचरण माथुर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि साहित्य संस्थान की ओर से आगामी प्रताप जयन्ती के अवसर पर "महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ" का प्रकाशन किया जा रहा है।

महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता और बलिदान के अमर सेनानी थे। उनके त्यागमय जीवन सम्बन्धी जितना साहित्य प्रकाशित किया जाय, कम ही है। मैं आशा करता हूँ कि यह प्रकाशन जन-साधारण तथा इतिहास-प्रेमियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

—हरिदेव जोशी

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आगामी प्रताप जयन्ती के अवसर पर साहित्य संस्थान की ओर से "महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ" प्रकाशित किया जा रहा है।

आज हमारे देश में महाराणा प्रताप जैसे महान् सेनानियों की आवश्यकता है, जिन्होंने देश-सेवा के लिए कठिन तपस्या, अदम्य संकल्प, आदर्श त्याग और महान् बलिदान का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। ऐसे ग्रन्थों से पाठकों के हृदय में त्याग, तपस्या एवं बलिदान की भावनाएं जागृत होंगी जो कि स्वतंत्र देश के प्रत्येक नागरिक में प्रचुर मात्रा में होनी चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि ग्रंथ सभी के लिये उपयुक्त सिद्ध होगा।

इस ग्रन्थ के लिये अपनी शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूँ।

—जगन्नाथ सिंह मेहता

विषयानुक्रम

विविध लेख

भारतीय भाषाओं के साहित्य में महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं आदर्श

द्वितीय-खण्ड

प्राचीन मौलिक स्रोत

[क] संस्कृत काव्य

[ख] प्राचीन राजस्थानी काव्य

[ग] ख्यात, वात, वंशावली

[घ] ताम्रपत्र, पट्टे, शिलालेख

Foreword

Sahitya Sansthan, Rajasthan Vidyapeeth is presenting a comprehensive volume on the great hero and patriot of Indian history, Maharana Pratap My colleagues of Sahitya Sansthan have been engaged in collecting, compiling and editing the old non-Persian record and literature concerning Pratap for the last few years and it is highly creditable that their strenuous labour has produced immensely satisfactory results. Much remains to be done, I feel, before a real, if not a final, word can be said about the history of Rajasthan. The present veuture is an effort in that direction.

Since Sahitya Sansthan took its present shape in 1942, about 26 years ago, Rajasthan Vidyapeeth has desired it to develop as an agency surveying, collecting and preserving rich Rajasthani literature, including folk literature, rapidly vanishing under the onslaught of times. Nobody is unaware of the richness of the literature created and preserved in Rajasthan, considering the variety of theme and composition, elegance of style, abundance of sentiment and rhetorics and proficiency of craft that it contains. During last several hundred years Rajasthan has also produced many a brilliant literateur not only in Rajasthani language but also in Sanskrit, Prakrit, Apabhransh and Hindi languages Composition in Sanskrit has continued as late as recent times. It is an acknowledged fact that the initial Hindi literature took its roots in this part of the country and the first sapling came into being here. This consideration enhanced, still more, ths significance of our efforts in this direction. Pioneering efforts of Sahitya Sansthan followed by other agencies have, as is well known, produced highly valuable results in discovering several writers and writings, hitherto unknown, thereby serving immensely the cause of Hindi, Sanakrit and Rajasthani literature. But for the indifference, lack of perspective and sufficient cooperation on the part of the government and other similar agencies, the magnitude of the work done would have been far greater. The same state of affairs continues today and none can say what and where several more treasures are lying hidden and unknown. Only a sustained and pervasive effort engaging all necessary

and possible means and resources can still discover and save many a jewel, several of which have been moth-eaten and the rest are also going to meet the same fate with the passing of time. Would the Rajasthan Government and other agencies rise to the occasion.

Sahitya Sansthan has attained its initial objectives and the services rendered by it are known to all. It is now going to take the shape of a higher Indological research institute, catering to the needs and requirements of developing and expanding research work in various disciplines in Rajasthan and I wish godspeed to my zealous colleagues working in the Institute

I congratulate the Sahitya Sansthan workers for the stupendous task thay have performed in preparing the present volume and I hope it would be received with appreciation and goodwill by scholars and people everywhere in the country.

Janardan Rai Nagar
Upkulpati,
Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur

Preface

Actual efforts are now being made to sketch the history of Rajasthan by some of our eminent historians. Indeed these efforts are the first attempts to prepare the real history of Rajasthan, as no such work covering all its aspects has so far been prepared, The laudable efforts of Col. James Tod, Shyamaldas, G. H. Ojha and others prepared no doubt a basic frame work providing useful material for its scientific treatment. Previous histories have been more or less dynastic and hence their scope and dimention were limited Efforts being made to prepare a comprehensive regional history of Rajasthan phasing it in proper stages and periods and sifting and testing all the available data are therefore to be welcomed and the scholars engaging their talents in performing this stupendous task, and the Government and other agencies assisting and cooperating with such a noble endeavour deserve warm congratulations.

A welcome and encouraging development in the educational field in Rajasthan, in recent years, has been the growth of vivid realisation, keen inclination and spirited endeavour for learning and research in the scholars of various disciplines. Universities and voluntary institutions devoted to research work are playing their just part in attaining this object. Several doctors have been produced in various disciplines under the able guidance of learned supervisors during last few years and that process continues with speed and scope. It is a very healthy and beneficial feature in view of development and expansion of learning and knowledge in this state of the country.

Attention may be drawn to some primary difficulties which come in the way of each and every entrant to this field in Rajasthan which invariably dampens the spirit of an enthusiast at the very beginning. These difficulties are the lack of comprehensive survey of the research data by competent agencies, want of resourceful efforts to collect and preserve research material at suitable centres and absence of coordinated, systamatic and persistant efforts for compilation and publication of valuable data for the use of research scholars. If these deficiencies are not immediately overcome, the noble cause of research

in Rajasthan is going to suffer terribly. The scope of research shall remain limited with lesser avenues being opened. In absence of the accumulation of data and provision of proper facilities for research, the scholars have to waste a great part of their energy and time. In such circumstances, the work being done would be lacking in richness of content and wide treatment of subject as a result of which the scholar would find difficulty in proper comprehension of the subject and arriving at the correct judgement.

The idea of preparing this volume h s been to collect, compile and publish entire old Rajasthani, Sanskrit and Hindi literature concerning Maharána Pratap, most of which has hitherto been either unknown or unused. As is known the primary attempts of our historians have been to prepare history of our country as a whole, as a consequence of which the scope of the treatment of regional history therein remained limited and hence generally partial and superficial. Another result of that emphasis has been the use of only such literature in the main, as was easily available at various centres and which had direct concern with their scheme. Most of such literature concerning medieval history is in Arabic and Persian. During last few years the historians devoted to preparing regional histories have opened new horizons of knowledge in historical research, as they, in course of their studies, have laid greater emphasis on the critical study of such historical evidences as are available, though mostly scattered and fragmentary, in the concerned region itself. Most of such material is found written either in Sanskrit or regional languages, though in that process certain new Persian and Arabic works also come to light. Rajasthan in this respect is lagging behind almost all other States of India. In spite of the fact that various Research Institutes have been working in this State for last several years, not much has been achieved in this field. It is the responsibility of the Government of Rajathan to realise and see that the government institutions in general and voluntary agencies in particular are assisted adequately and directed to reorient and devote their activities towards the critical study of Rajasthani literature.

Maharana Pratap is one of those historical figures of this country who has influenced the course of historical deve-

lopment and who has been an ideal hero of the posterity. He has been remembered as a man of great ideals representing elemental spirit of India. His heroism, asceticism and sacrifice have been regarded as unique in the entire world history. His tenacity of purpose and undaunted dedication to his pledge to safeguard the liberty of his country at all costs find few parallels in history It appears, though, amazing yet the history records that Pratap a possessor of a tiny island in the vast ocean of the Mughal empire, not only sustained and survived the ceaseless onslaughts of fierce waves of Mughal invasions but continued to stand erect with crimson banner flying aloft unlowered and unlevelled, and succeeded in reconquring most of his land in the end. Akbar's victorious forces swept the entire country up to south subjugating various kingdoms and even wiping off some of the traditional Indian states with centuries old lineage and history. However, an affliction always troubled the great emperor that all his personal, diplomatic and military resources and the might of the great, the greatest in the contemporary world, empire failed to subdue Mewar.

Such a magnificent feat of Rana Pratap, his adherents and his people has not been justly and properly assessed by the historians, and most them, while lauding his heroism and sacrifice, have rejected him as an obstinate, narrow-minded and reckless fellow lacking sagacity and statemanship Some even go to the extent of suggesting that he harmed the cause of national unity and integrity thereby indirectly insinuating him for unpatriotic and unnationalistic attitude It is a great irony that the scholars who, on the one hand,perceive elemental spirit of India in Maharana Pratap, at the some time make light of his objectives, purposes and performance when comparing him with Akbar. Such an attitude generates great confusion. The real error lies in the fact that while assessing the personalities, the contemporary conditions, social tendencies and trends of thought are over-sighted on account of subjective approach and modern trends of thought and beliefs are mechanically applied The objective approach of a historian requires of him not only to collect, sift and study the data but test them methodically and critically The critical and methodical study of the data would reqnire primarily the clear understanding of the times, he is working on Preconceived notions or political and utilitarian motives of a historian lead to distortion,

misinterpretation and misrepresentation doing great injustice to historical truth.

It has been widely felt that the historical role of Maharana Pratap has not been justly and properly projected on account of obvious factors. It is high time that such an attempt is made. The publication of this volume is an humble effort in that direction.

The contents of the volume have been arranged in two parts. First part contains views and articles of present-day scholars and historians on Maharana Pratap's life and accompalishments, his impact on Indian national movement as a whole and his role as a freedom-fighter in Indian history. It also contains a collection of poems in Hindi and Rajasthani by some of the prominent poets. The second part contains the collection of old Rajasthani, Sanskrit and Hindi literature and a few copper-plates, parwanas and inscriptions concerning Pratap. They are important from research point of view and bring into light several aspects of Pratap's work and outlook.

The contents of the volume would help the scholars and thinkers to view the role of Maharana Pratap in true perspective and would perhaps persuade some of those historians to revise their judgement who have viewed Pratap as only a zamindar, narrow-minded clan-leader, an obstinate fighter, a short-sighted ruler and a man harming the interests of the Indian nation as a whole.

× × ×

National legacy of Maharana Pratap

It is in the habit of a nation to bring out, during the times of its adversity, those jewels from its treasury of the past which would guide, rouse and inspire its people to stand united, work together and struggle valiantly to attain its objectives The contents of this volume present Pratap as one of the jewels of Indian history whose memory has been cherished by Indian masses through generations A great calamity befell Indian nation in the middle of the eighteenth century when it was enslaved by the British. As the anti-British national movement grew in momentum, Maharana Pratap became an inspiring

name for the Indian people. He was remembered and portrayed as an ideal freedom-fighter of Indian history in almost all nationalities of India. From Punjab to Bengal and from U. P. to Karnatak, Pratap has figured in all regional literature as a great national hero bequeathing precious heritage of selfless struggle for freedom against foreign domination. It is charactristic that we don't find Indian people remembering Akbar, the Pratap's great adversary, in the same spirit. How the history sometimes refutes and repudiates the historians who, on account of subjective factors, try to misinfer the past events, is amply proved in the case of the assessment of two great adversaries of the sixteenth century India, Pratap and Akbar. Dazzled by Akbar's successes in territorial conquests and subjugation of the great part of India and his liberal policies, the historians, in general, have tended to portray Akbar as a great national monarch and unifier of the country, in consequence of which Pratap was considered, on account of his resistance to Akbar, to have acted as an obstacle in the way of Akbar's efforts for national welfare Such historians view Pratap as a fighter for narrow, petty ideals This approach of the English and Indian historians was influenced mostly by the subtelities of the British Imperial thinkers Throughout the nineteenth century and in the beginning of the present century the British were craftily trying to present themselves as the great saviours, unifiers and builders of modern India But the Indian people saw in Pratap, despite his being a ruler of a small territory of Mewar vis a vis Akbar's gigantic empire, a worthy representative and perpetuator of great traditions of Indian culture and a great national hero and freedom-fighter Pratap was again remembered recently, alongwith other national heroes, when India had to wage war on its borders against the aggressive operations of Pakistan and China,

Defender of Kshatriya Values

The study of entire Rajasthani, Sanskrit and Hindi literatures produced in Rajasthan during 16th, 17th and 18th centuries show that Rajput heroes like Pratap and Durgadas remained ideal personalities for the people and the literateurs. No literary work is found written in Rajasthan since the time of Pratap which has denounced or challanged, him on the ground of principles and objectives, though there are a few contemporary

or later works glorifying Man Singh Kachhawaha's valour and victory against Pratap The contemporary and later works depict Maharana Pratap as a man, having all qualities of a real Kshatriya, their ideal character, i e., a valiant and courageous fighter, a person of high principles and moral standards, an irrepressible freedom-lover, a staunch believer in Rajput glory and an indomitable defender of their faith and beliefs, but at the same time liberal and tolerant towards other beliefs. In brief, Maharana Pratap struggled not only for autonomy and independence of Rajasthan but for the defence and survival of traditional cultural values (क्षात्र-धर्म), characteristically found in the Rajputs India has always been a land of diversities. Its unity has survived in due recognition of its diversities, a stream formed out of various streamlets joining together, i. e., nationalities of India. Pratap faced valiantly the onslaughts of an autocratic and wily power on the cultural identity of this region. His struggle was therefore for the defence of Rajput individuality as well as the basic values of Indian culture.

A major distinction between the histories of Europe and India is seen in the fact that while the former emerged as a continent of several nations despite several efforts for unity from time to time in its history, the latter stood, in spite of periodic interruptions of dismemberment, as one cultural entity, a united nation of various nationalities. It has been possible, primarily, on account of the spirit of tolerance and catholicity in the Indian thought In India, as also elsewhere, unity apparantly brought about by force and autocracy always proved unstable and soon disappeared Akbar was no exception to it Despite his liberal policies and toleration, he could not rise above his basic desire of founding a dynastic empire of the Mughals in India Much has been said by Dr. R. P Tripathi and others about the so-called imperial confederation of Akbar and his national monarchy, but the truth remains that his was an autocratic personal rule and had nothing in common with the institution of Rajput fraternity or confederation. Those who accepted Mughal supremacy had to surrender everything including self respect to the Emprcor. They, indeed, turned into faithful servants of Akbar engaging their personal talent and military strength for consolidation and expansion of the empire of the Mughals, the foreign invaders.

Pratap was neither fanatic nor faddish as some thinkers have tried to portray him and thereby damage his historical role and disqualify him of the noble spirit he possessed. In respect of catholicity of thought, nobility of character and purity of principles he far surpassed Akbar. He represented, as Dr. A. L. Srivastava opines, the elemental spirit of India. Though Pratap visibly fought a defensive war in a small territory of Mewar, yet his struggle contained those elements which have been traditionally the source of real national unity and integrity of this country

Struggle against oreign domination

Fundamentally Pratap's struggle was a struggle against foreign domination The Mughals,like the Turks and Pathans,were foreigners who came to India as invaders from central Asia and subjugated India in order to establish their tribal hegemony and dynastic empire. The Turks and Pathans had failed to crush the power of Rajputs, who being united in a fraternity under the leadership of the Sisodia rulers of Mewar waged interminable war against the foreign aggressors and contributed a great deal to the unstability of the foreign rule at Delhi. Akbar, the sagacious leader of the Mughals gave a new direction to the policies followed by the Delhi sultans He, having risen above the tendencies of religious tyranny, social oppression and political predominance, befriended with Indian martial races like Rajputs offering them high posts, mansabs and jagirs and turning them into useful instruments for stabilisation and expansion of the Mughal rule in India. It may be said that the succeeding foreign power, the British also followed almost the same policies in course of subjugating India in 18th and 19th centuries Akbar emerged as a great wily statesman in sowing seeds of disruption in Rajput fraternity, fanning up clan-rivalries among them interfering in the succession disputes in Rajput states, tempting the disputants for Mughal support and Mughal mansabs, devoiding Rajputs of their honour, self-respect, national instincts, and sense of Rajputs fraternity and engaging their martial talent and military strength in conquering India including their homeland, Rajasthan, for the Mughals.

The Rajputs did not yield all atonce to Akbar's craftiness. It was Amber-Mughal alliance in 1562 that shook the entire

Rajput fraternity. However other Rajputs still resisted. Rathors fought valiantly and Akbar had to use force in conquering Ajmer, Jetaran, Nagor and Jodhpur with Kachhawaha assistance. Chitor was as yet regarded as the central seat of Rajput confederation and, therefore, the Mughal blow, assisted by his Rajput allies, fell on Chitor in 1567--68. The conquest of Chitor was eventually followed by almost non-voilent subjugation of the major part of Rajputana leaving the hilly parts of Mewar and adjoining states in the south, Bundi, Idar, Dungarpur and Banswara Here Akbar s clever diplomacy did not work and he despatched Mughal armies to conquer Mewar but with little success. He was never able to establish stable peace and control in this area on account of undeterred and undeviating resistance of Maharana Pratap and his allies

Maharana Pratap and other Rajput rulers

It would be wrong historically to assume that the Rajput rulers, who accepted Mughal domination, were guided by the sincere spirit of national unity and social fusion. The fact is that the Rajput confederation had weakened since the battle of Khanua (1527 A D.), clan-rivalries had erupted in Rajputs throughout this region and almost every Rajput state was engulfed in civil-strife. Akbar, craftily, fanned their rivalries and feuds and interfered in the internal affairs of Rajput states with stratagem and force, eventually bringing into the Mughal fold one Rajput state after another. The helpless and desperate Rajputs having fallen prey to the factious and revengeful feelings and fear of losing their possessions and being tempted by the luxuries of the Mughal court, vied with each other in their flight to Agra in order to gain the favour of the Emperor. They were motivated by this desire in all their actions and attitudes. They surrendered their honour, principles and power to Akbar. It is not true to ay, as Dr. R. P. Tripathi, Dr G N Sharma and others do, that Pratap, in his strenuous struggle against Akbar, was actuated by his clan-interests or feelings of self preservation. The truth remains that it was the Rajput allies of Akbar who were carried by such narrow and petty interests. The contemporary public opinion in Rajputana and elsewhere in the country viewed their actions n this spirit In the words of contempor ry poets

सुख हित स्याल समाज हीदू अकबर बस हुआ ।
रोसीलो मृगराज पज न राण प्रतापसी ॥
—दुरसा आढा

[Hindu jackals submitted to Akbar for pleasure and comfort but Pratap, the lion would not do it]

हाथी बंध घणाँ घणाँ हैमर बंध कसू' हजारी गरब करी ।
पातल राण हसै त्या पुरसा, भाडै महला पेट भरी ॥
—जाडा मेहडू

[Those who have become mansabdars of Akbar, enjoy all means of pleasure and comfort but Rana Pratap disdains such a life, which is acquired by joining Akbar's service]

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियो खत्री धर्म राणी, सारा ले बरतै संसार ॥
—पृथ्वीराज राठौड़

[Akbar, his power and craftiness all would perish, but Pratap's name would live for ever who kept his pledge and protected Kshatriya Dharma]

Mughal Confederation or autocracy

Dr R P. Tripathi's view of the Mughal empire under Akbar being the imperial confederation is misleading and can not be justified by sober facts of history. As a matter of fact in spite of his liberal and benevolent measures, Akbar's was a dynastic and autocratic rule He enjoyed unlimited powers All his grandees were in fact his servile servants and the Rajput rulers, who joined Mughal service had, in theory, surrendered their patrimonies as the jagirs of the Mughal empire. The Mughal Emperor issued sanads of succession on the death of the rulers, interfered in the succession, sometimes overruling the strict line He several times resumed the parts of their states at his will and handed them over to other ones The rulers, falling into disfavour of the Emperor on account of their independent attitude or any other reason always feared the loss of their possessions The Rajput rulers undoubtedly led a very luxurious and easy life at the Mughal court but at the cost of their self-res-

pect, independence and traditional status. Several instances to this effect may be cited from the Persian and other sources. A Rajasthani contemporary chronicle, **Dalpat Vilas** provides interesting information as to how the self-respect and dignity of the Rajputs, the so-called pillars of the Mughal empire, were abused by the whims and fads of the Emperor. He himself whipped a Rajput noble on a slight and got another respected noble whipped in presence of other courtiers who, later, out of such unbearable humiliation and indignity, committed suicide by stabbing himself. It may, therefore, be concluded that neither in theory nor in practice the Rajput rulers at the court of Akbar were something like the confederates of the Mughal empire.

Much has been said about Pratap's error, nay fault for not accepting Mughal alliance (Mughal service !) How could Maharana Pratap be expected to brook the ignominious and servile conditions of the Mughal court in the name of alliance and how could he be expected to use his strength and means in subjugating his own homeland for a foreign power. He had the courage and daring of his forefathers. He was fully conscious of his ancestral glory. His ancestors like Kumbha and Sanga had led the Rajput fraternity in defence of their homeland and Kshatriya Dharma and had always held aloft the crimson banner of freedom, never submitting to a foreign rule Pratap's predecessors, like other brave Rajputs, had performed unequalled sacrifices in course of their struggle A proud and courageous Pratap, inheriting such a glorious legacy, could not follow other Rajput rulers Abul Fazl himself says "The Rana's arrogance was swollen by the fact of the glory of his line of ancestors who were in ancient times rulers of India The strength of his position, the extent of his territory and the large number of Rajputs who would sacrifice life for honour, cast a veil over his vision. He paid no heed to the fortune which was conjured with eternity and regarded Man Singh, leader of the victorious [Mughal] army as a landholder subordinate to himself". The contemporary Indian view regarded Maharana Pratap, the ruler of Mewar, as राय हिंदवाँ, रायाँ तिलक हिंदवां or हिंदूनाथ. The ruler of Mewar, in medieval times, was always respected as the symbol of liberty and security of the people

Constructive genius

Dr. Raghubir Singh's view about Pratap is not justified

when he says that Maharana Pratap's role, considered from a dispassionate point of view, was negative and was entirely devoid of constructive approach. This is a surfacial analysis of Pratap's role and policies. It is true that the interminable struggle against Akbar did not permit Pratap to engage himself a good deal in the social welfare activities for his country. But this fact can not devoid him of his other achievements and contributions. He mastered the art of guerrilla war-fare, which, in spite of his meagre means and resources, was responsible for his ultimate success against Akbar and which was successfully followed by Shivaji in his struggle against Aurangzeb. He reorganised the administration of Mewar on war-footing so well that it withstood all strains and stresses of Mughal invasions and diplomatic efforts. His diplomatic genius, despite his weak position, kept Rajputana constantly in ferment and in greater part of this region Akbar could never win stable allies and faithful followers. He managed the war--economy of Mewar so successfully, that never a noble or a soldier revolted against him or deserted him. No instance of betrayal is found and, on the other hand, the masses at large, who are generally found, in those times, playing a disinterested and indifferent part in politics, followed and assisted Pratap as active partners in his long-drawn struggle. It was by no means a small achievement of Maharana Pratap's genius as a great organiser and ruler. No last word can be said about his patronage of art and literature as, of late, Chavand School of painting has been brought to light and a few Sanskrit works as विश्ववल्लभः, राज्याभिषेक पद्धतिः and मुहूर्तमालाः by Chak [illegible]ani Misra have been discovered, prepared under the partronage of Pratap. The greatest success of his genius lies in the fact that at the end of his long struggle against mighty Akbar, Pratap succeeded and reconquered most of his territory

Responsibility for war

Dr G. N Sharma and some other scholars hold Maharana Pratap responsible for the war between Mewar and Mughal empire which could be avoided if Pratap had the sagacity to accept the terms of Akbar. Had Pratap done so, Mewar would have enjoyed peace and the devastation and resultant backwardness of Mewar could have been avoided. This is *sheer subjectivism* which prevents one to study real trends of thought, in

vogue, in a particular period. It is an incorrect historical approach to read the ideas and institutions of modern age in the times of the 16th century India. It was the age of monarchy and feudal institutions. The entire period witnesses interminable big and small wars between empires and kingdoms for land and power. Even if we leave apart Mewar, Akbar, throughout his reign, fought wars against big and small Indian powers to establish his dynastic empire in India. Let us see what was Akbar's own view of the institution of war. Abul Fazl writes, " A monarch should ever be intent on conquest, otherwise his neighbours rise in arms against him. The army should be exercised in warfare, lest from want of training they become self- indulgent." This was a typical view of the times. True peace, in the history of nations, has always been maintained by military preparedness, the least indulgence in that regard resulted in the subjugation of one country by another. The purchase of peace with Akbar on the part of Pratap would have meant submission and loss of independence of his land. If Mewar suffered ruin and devastation on account of war, Akbar carried them with his conquest every where in India. As regards backwardness of Mewar the conditions in Mewar, subsequent to Pratap's period, do not support the view.

The most valuable legacy Pratap bequeathed to his posterities is that nothing is more precious in human life than the liberty and that one should stake and sacrifice everything to preserve it.

India has produced many a great man and woman in its centuries long history. Maharana Pratap occupies an honourable place among them, He may be considered as the greatest of great personalities of medieval India on account of his noble character, high ideals, unequalled heroism and chivalry and unique sacrifice. As a ruler, organiser and general he was, objectively viewed, no less capable than Akbar or Shivaji. History placed Shivaji in more favourable and advantageous conditions in comparison to Pratap. In the decadent period of the Mughal empire, when the pitcher of Aurangzeb's fanaticism and oppression was filled to the brim, the genius of Shivaji carved out a nation of the Marathas Maharana Pratap's task was even harder The sun of the Mughal empire was then rising high in the

Indian skies with all its lustre and power and the entire Rajput fraternity was in a great disarray. Most of the Rajput rulers had already bowed before the rising sun and Mewar had lost a great part of its territory, men and means. It was Pratap's great achievement that he kept the Rajput fraternity constantly in ferment and not only kept Mewar independent, but unabled Akbar to bring entire Rajputana under his total and stable control. If Rana Sanga led the forces of Rajput confederation against Baber's invasion, his descendant, Pratap led it in its struggle for survival, and he succeeded.

In respect of moral conduct, nobility of character and scrupulousness of principles Maharana Pratap stands higher than any other personality of the age A Gujarati writer, D. R. Mehta gives an excellent expression when he says, "Pratap had an important quality in himself that his heroism did not suffer from baseness 'प्रतापसिंह मां एक महत्व नो गुण एहतो के तेमनां वीरत्व मा नीचता नु चिन्ह जणातु नथी'.

D. L. Paliwal
Director,
Sahitya Sansthan,
Rajasthan Vidyapeeth, Udaipur.

Riches I hold in light esteem
And love I laugh to scorn,
And best of fame was but a dream
That vanished with a morn,
And if I pray, thy only prayer,
That moves my lips for me,
Is, 'leave the heart that now I bear
And give me liberty'

—Emile Bronte

महाराणा प्रताप के परिजन

पिता–महाराणा उदयसिंह

माता–जेवन्तीबाई सोनगरी

विमाताएं–संध्याबाई सोलंकनी, जेवंताबाई मोदडेची, लालबाई परमार, धारबाई भट्याणी (जगमाल की मा) गणेशदे चहुवान, वीरबाई झाली, लखांबाई राठोड [?], कनकबाई महेचो, ...खीचण।

भ्राता–शक्तिसिंह, कान्ह, जेतसिंह (जयसिंह), वीरमदेव, रायसिंह (रायमल), जगमाल, सगर, अगर, पंचायण, सीया, सुजाण, लूणकरण, महेशदास, सादूंल, रुद्रसिंह, [इन्द्रसिंह?] नेतसिंह, नगराज, सुरताण, भोजराज, गोपालदास, साहवखान ।1

बहिनें–हरकुंवरबाई तथा १६ अन्य ।

पत्नियाँ–अजवादे परमार [महाराणा अमरसिंह की मां] पुरबाई सोलंकनी, चंपाबाई झाली, जसोदाबाई चहुवान, फूलबाई राठोड़, सेमताबाई हाड़ी, आसबाई खीचण, आलमदे चहुवान, अमरबाई राठोड़, लखाँबाई राठोड़, रतनावती परमार।

पुत्र–महाराणा अमरसिंह, सीहो, कचरो, कल्याणदास, सहसो [सहसमल], पुरो [पूरणमल], गोपाल, कल्याणदास, भगवानदास, सावलदास, दुरजणसिंह, चान्दो [चन्द्रसिंह], सुखो [सेखो] हाथी, रायसिंह, मानसिंह, नाथसिंह, रायभाण, जसवन्तसिंह ।2

---

1 श्री गो. ही. ओझा के अनुसार महाराणा उदयसिंह के २० रानियां, २५ कुंवर और २० कन्याएं थी। श्री ओझा ने रानियों के नाम नहीं दिये हैं। पुत्रियों में एक के अतिरिक्त अन्य का उल्लेख नहीं मिलता। विभिन्न वंशावलियों में दिये गये नामों में फर्क मिलता है।

2 श्री ओझा के अनुसार महाराणा प्रताप के ११ रानियां और १७ कुंवर थे। प्रताप की कन्याओं के सम्बन्ध में उल्लेख नही मिलता।

महाराणा प्रताप के जीवन का प्रमुख घटना-क्रम

१	महाराणा प्रताप का जन्म	९ मई, १५४०
२	अकबर द्वारा मेवात; अजमेर, नागोर एवं जेतारण विजय	१५५६; १५५७
३	कुंवर अमरसिंह का जन्म	१६ मार्च, १५५९
४	महाराणा उदयसिंह द्वारा उदयपुर बसाना	१५५९
५	सिरोही के देवड़ा राव मानसिंह का मेवाड़ में शरण लेना	१५६२
६	मालवा के बाजबहादुर का मेवाड़ में शरण लेना	१५६२
७	अकबर की आमेर से सन्धि	१५६२
८	अकबर द्वारा मेड़ता विजय और जयमल का चित्तौड़ आगमन	१५६२
९	उदयसिंह की मोमट के राठोड़ों पर विजय	१५६३
१०	अकबर का जोधपुर पर आक्रमण एव विजय	१५६३
११	महाराणा उदयसिंह द्वारा चित्तौड़ त्याग	१५६७
१२	अकबर द्वारा चित्तौड़ विजय	२५ फरवरी, १५६८
१३	अकबर द्वारा रणथम्भोर विजय	२४ मार्च, १५६९
१४	अकबर का नागोर दरबार तथा जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर का मुगल आधीनता स्वीकार करना	५ नवम्बर से २५ दिसम्बर, १५७०
१५	उदयसिंह की मृत्यु और प्रताप का गोगूंदा मे राजतिलक	२८ फरवरी, १५७२
१६	मुगलदूत जलालखा कोरची का मेवाड़ आना	अगस्त-सितम्बर १५७२
१७	कुंवर मानसिंह कछवाहा का अकबर के दूत की तरह मेवाड़ आकर प्रताप से मिलना	अप्रेल, १५७३
१८	अकबर के तीसरे दूत भगवन्तदास का प्रताप से मिलना	सितम्बर-अक्टूबर, १५७३
१९	टोडरमल का प्रताप से मिलना	दिसम्बर, १५७३
२०	हल्दीघाटी का युद्ध	१८ जून, १५७६
२१	ईडर के नारायणदास, सिरोही के सुरताण, जालोर के ताजखां, जोधपुर के चन्द्रसेन, बूंदी के दूदा द्वारा मुगल विरोधी कार्यवाहियां	जून-अक्टूबर, १५७६
२२	प्रताप द्वारा गोगूंदा वापस लेना और शाही थानों पर आक्रमण	अगस्त-सितम्बर, १५७६
२३	मुगल सेनाओं द्वारा जालोर, सिरोही एवं ईडर विजय करना	अक्टूबर, १५७६

२४	अकबर की मेवाड पर चढ़ाई	अक्टूबर १५७६
२५	ईडर के नारायणदास, सिरोही के राव सुरताण की पुनः मुगल विरोधी कार्यवाहिया	जनवरी-फरवरी, १५७७
२६	मुगल सेना द्वारा पुन. ईडर विजय करना	१६ फरवरी, १५७७
२७	मुगल सेना द्वारा बूंदी विजय करना	मार्च, १५७७
२८	प्रताप द्वारा मोही तथा अन्य मुगल थानो पर आक्रमण तथा विजय	अक्टूबर, १५७७
२९	शाहबाजखा की मेवाड पर चढ़ाई	१५ अक्टूबर, १५७७
३०	शाहबाजखां द्वारा कुम्भलगढ़ विजय	३ अप्रेल, १५७८
३१	प्रताप का छप्पन के राठोडों के विद्रोह को दबाना और चावड राजधानी बनाना	१५७८
३२	भामाशाह का मालवा पर आक्रमण और प्रताप को लूट का धन भेंट	१५७८
३३	प्रताप की सेना का डूंगरपुर-बासवाडा पर आक्रमण	१५७८
३४	शाहबाजखा का द्वितीय आक्रमण	१५ दिसम्बर १५७८
३५	शाहबाजखा का तृतीय आक्रमण	९ नवम्बर, १५७९
३६	प्रताप का मेवाड के मैदानी भाग से मुगल थाने उठाना और मांडलगढ, चित्तौडगढ़ तक आक्रमण करना	१५८०-१५८४
३७	प्रताप के मुगल सेवक भाई जगमाल का सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध युद्ध में मारा जाना	१५ अक्टूबर, १५८३
३८	मुगल सेनापति जगन्नाथ कछवाहा की मेवाड़ पर चढाई	दिसम्बर, १५८४
३९	जगन्नाथ कछवाहा का प्रताप के निवास स्थान (चावड?) पर आक्रमण	सितम्बर, १५८५
४०	खानखाना के परिवार के स्त्री-बच्चो को सादर लौटाना	१५८५
४१	प्रताप द्वारा मांडलगढ, चित्तौडगढ छोड़ कर समस्त मेवाड पर पुनर्विजय	१५८६
४२	महाराणा प्रताप की चावड में मृत्यु	१९ जनवरी, १५९७

सम्राट अकबर के जीवन-कार्य के विषय मे भिन्न मत हो सकते हैं पर राणा प्रताप के जीवन की भव्यता के विषय में हृदय में एक ही वृत्ति जग सकती है-आदर और भक्ति। अकबर का साम्राज्य नष्ट हो गया। आज हम लोग अकबर और प्रताप दोनो महान विरोधियो से अविरोधी प्रेरणा पा सकते हैं। तो भी हृदय कहता है कि राणा प्रताप की विभूति उज्ज्वलतर है। दोष दोनो में थे। लोकोतर गुण दोनो ने दिखाये हैं लेकिन प्रताप की विभूति दिव्य है।

—काका कालेलकर

- **इतिहासज्ञों के अभिमत**
- **राष्ट्रीय कवि-वाणी**
- **विविध लेख**

  भारतीय भाषाओं के साहित्य मे महाराणा प्रताप

  महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व कृतित्व एवं आदर्श

प्रथम-खण्ड

So, when a good man dies,
For years beyond his ken
The light he leaves behind him
Lies upon the paths of men.

- Longfellow

अभिमत

विविध इतिहासज्ञ
एवं विद्वान

पुष्पांजलियां

If we would remember Pratap, we must copy Pratap's sacrifice and heroism.

—*Mahatma Gandhi*

●

May the memory of splendid deeds of Rana Pratap inspire India's Youth to gallant effort and high endeavour.

—*Jawaharlal Nehru*

●

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनाये रखना है और उसके प्रतिफल को जनता के लिए पूर्ण करना है। इस कठिन कार्य को पूरा करने में राणा प्रताप के जीवन से मिलने वाली जो प्रेरणा है वह हमारे लिए सहायक होगी।

—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

●

राणा प्रताप ने जिन्दगी भर कोशिश की राजपूताने को एक बनाने के लिए। संयुक्त-राजपूताने का एकीकरण करने के लिये जितना कार्य और कोशिश राणा प्रताप ने की, उतनी किसी ने नहीं की।

उनका संकल्प आज परिपूर्ण करने का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त हुआ है। जो संकल्प उन्होंने किया था और वह संकल्प जिस मतलब से किया था उसी मतलब से हम उसको परिपूर्ण करें।

—वल्लभभाई पटेल

Noble Spirit

—Col James Tod

Pratap succeeded to the titles and renown of an illustrious house, but without a capital, without resources, his kindred and clans dispirited by reverses; yet possesed of the noble spirit of his race. He meditated the recovery of cheetore, the vindication of the honour of his house, and the restoration of its power. Elevated with this design, he hurried into conflict with his poweful antagonist, nor stopped to calculate the means which were opposed to him, Accustomed to read in his country's annals the splendid deeds of his forefathers, and that Cheetore had more than once been the prison of their foes, he trusted that the revolutions of fortune might co-operate with his own efforts to overturn the unstable throne of Delhi. The reasoning was as just as it was noble, but whilst he gave loose to those lofty aspirations which meditated liberty to Mewar, his crafty opponent was counteracting his views by a scheme of policy which, when disclosed, filled his heart with anguish. The wily Mogul arrayed against Pratap his kindred in faith as well as blood. The Princes of Marwar, Amber, Bikaner, and even Boondi, late his firm ally, took part with Akbar and upheld despotism Nay, even his brother, Sagarji, deserted him, and received, as the price of his treachery the ancient capital of his race, and the title which that possession conferred.

But the magnitude of the peril confirmed the fortitude of Pratap, who vowed, in the words of the bard, 'to make his mother's milk resplendent', and he amply redeemed his pledge. Single-handed, for a quarter of a century did he withstand the combined effort of the empire, at one time carrying destruction into the plains, at another flying from rock to rock, feeding his family from the fruits of his native hills, and rearing the nursling hero Umra amidst savage beasts and scarce less savage men, a fit heir to his prowess and revenge. The bare idea that son of Bappa Rawal should bow the head to mortal man was insupportable, and he spurned every overture which had submission for its basis, or the degradation of uniting his family by marriage with the Tatar, though lord of countless multitudes.

The brilliant acts he achieved during that period live in every true Rajpoot, and many are recorded in the annals of the conquerors To recount them all or relate the hardships he sustained would be to pen what they would pronounce a romance who had not traversed the country where tradition is yet eloquent with his exploits, or conversed with the descendants of his chiefs, who cherish a recollection of the deeds of their forefathers and melt, as they recite them, into manly tears.

Had Mewar possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the peleponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse than the deeds of this brilliant reign amid the vicissitudes of Mewar Undaunted heroism, inflexible fortitude; that which "keeps honour b ight,' perseverance, with fidelity such as no nation can boast, were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal, all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind. There is n t a pass in the alpine Aravulli that is not sanctified by some deed of Pratap some brilliant victory or oftener, more glorious defeat. Huldighati is the Thermopylae of Mewar; the field of Deweir her Marathon.

His life a Saga of Rajput history

Dr. B.P. Saksena

Much has been written on and about Maharana Pratap , the hero of Mewar , the saviour of the independence of his kingdom and the ideal of succeeding generations of patriot and warriors . He stands forth as a beacon-star of singleminded determination and selfless sacrifice. His life of unending trials and tribulations which he suffered for a noble cause ; has become a saga of Rajput history . His indefatigeable activities bring into bold relief not only the nobility of his character , but also what a single individual fired with higher purpose can achieve even if pitted against the heaviest odds . That he was a born leader of men admits of no doubt . He carried with him the unstinted cooperation and voluntary support of the masses and classes alike.

Haldi Ghati remains an enduring memorial of his unshakable faith and unflinching resistance . True he lost the battle but he won the war, Every drop of Rajput blood which fell on the field during the frightful struggle and the subsequent carnage blossomed forth into living hatred and rancour against the aggressor . The entire Rajput land was stirred emotionally and though the existing conditions did not warrant general upheaval the tragedy created an indelible impression on the mind of the people at large · And as for Pratap , he did not know to bow even before the storm . He suffered defeat but resisted humiliation up to the last breath of his life .

A Great general

Sri Ram Sharma

Maharana Pratap occupies a very high place in the galaxy of the Hindu leaders who inougurated a reaction against Muslim domination in India ....Pratap belonged to—we should rather say he was the precursor of— the series that produced Shivaji in the Deccan and Ranjit Singh in the Punjab . He not only opposed Akbar's design in Mewar , he organised opposition thereto Unlike the usual run of Rajput princes , he was always most happy , not in evading the Mughal invadus , but in building coalitions to stem the tide of Mughal conquest in Rajputana....... But more than anything else , he must be honoured for beginning that system of warfare for which credit has hitherto gone to Shivaji and the Maharattas alone , the system of guerrilla warfare, i e ,'fighting and running away , so that he could fight another day . ' Pratap did not only inaugurate this system of warfare but carried it through as well successfully .The Mughal troops could overrun the country (Mewar) but could not conquer it .

Sanga was great but Pratap must be considered greater still who taught the Rajputs that it was as heroic to fight and run away , if one could succeed ultimately thereby ,as to fight and die on the battlefield, who organised coalition after coalition thus teaching the Rajputs the lesson of unity in which they so much lacked .

Pratap was no fanatic . The personal honour of his enemies was as safe in his hands as in their own . A great general , a brave warrior , a successful organizer a prince among men,a gererous foe , Pratap's name is sure to the honoured wherever these virtues are respected.
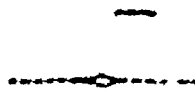
योगी एवं तपस्वी

—पं० श्रीपाद दा० सातवलेकर

राजपूताने का प्रदेश अपनी आन पर मर मिटने के लिए सदा से इतिहास मे प्रसिद्ध रहा है। भारतीय इतिहास मे राजपूतो की वीरता स्वय में एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसको लिखे बिना इतिहास अधूरा ही रहेगा।

स्वयं की भी आहुति देकर स्वातंत्र्य दीप को सतत प्रज्ज्वलित रखने वाले उन स्वातंत्र्य दीप के शाही परवानो में वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। महाराणा की वीरता, ओजस्विता, त्याग, तपस्या एवं हृदय में स्वातंत्र्य प्राप्ति की लालसा कायरों के भी रग रग में वीरता प्रवाहित कर देती है। जंगलो की खाक छानते हुए, घासों की रोटियां खाते हुए, जमीन पर सोते हुए भी उस नर व्याघ्र ने स्वयं को शहंशाह, जहांपनाह आदि उपाधियो से विभूषित करने वाले आत्मप्रशंसी, मीना बाजार की आड में अपने विलासी कामनाओ की पूर्ति करने वाले अकबर को जो पाठ पढाया और अपनी तलवार की जो धार दिखाई, वह क्या कभी भुलाई जा सकती है? मैं तो यह कहूँगा, कि महाराणा का जीवन एक योगी का, एक तपस्वी का, एक स्वातंत्र्य वीर का और सबसे बढकर स्वातंत्र्य समर के सेनानी का जीवन था।

Evergreen memory

—K. M. Panikkar

The descendant of Mokal, Kumbha and Sanga who had for centuries fought against Muslim domination, was unlikely to accept the Mughal supremacy and in Rana Pratap this unbending resistance to the foreigner found a champion and a leader whose memory is still green in the minds of all Hindus. The alliance with Amber broke Rajput unity. The rulers of marwar, Bikaner and Bundi hastened to the Moghul court and were received with honour and given appointments. The Rana was isolated and in successive campaigns made to feel the power of the empire. Akbar himself took the field against him and conquered Chitor, but though deserted by the great body of the Rajputs and reduced to extremities, Pratap held out to the last and the honour of Mewar was upheld.

मर्यादा पुरुषोत्तम

—मुन्शी देवीप्रसाद

हमारी समझ मे महाराणा प्रतापसिंह बडे बहादुर और मजबूत राजपूत थे। जो जो बातें राजपूतो में होनी चाहिए वे सब उनमें थी। लियाकत और बहादुरी के अखाडे में वे अकबर के जोड के थे।

देखो वे कैसे धीर, वीर और गम्भीर थे कि लगातार विपदाओ के और लगातार लडाई जारी रहने पर भी बात के धनी बने रहे और हजारो फौज खप गई तो भी घबराये नही। उनका बर्ताव कैसा अच्छा था कि जब उनके पास कुछ नही होता तो सिर्फ मिलनसारी से अपना काम निकाल लेते थे वे लोगो को ऐसे प्यारे थे कि जब चाहते हजारों आदमियों को जान देने के लिए तैयार कर लेते थे उनकी खेरख्वाही में बहुत से आदमी मर खप गये थे तो भी उनकी रैय्यत उनको वैसा ही चाहती थी।

मर्यादा पुरुषोत्तम ऐसे थे जो अपने मुल्क के कानूनों दरबार के कायदों और बाप दादो के तरीको को कि जिनका बरताव अमन चेन के दिनो मे भी बहुत कम लोगो से हो सकता है वे विपत्तियो मे भी बहुत अच्छी तरह से बरतते थे।

वतन की दोस्ती और आजादी की चाह उनके ऊपर खतम हो चुकी थी और ऐसे ही महनत उठाने का हाल था फाके करते थे। तखत की जगह पत्थर के ऊपर बैठते थे। छत्र के बदले रूंखों की छांव और आराम के नाम से पूरी ठंडी हवा भी नही मिलती थी, तो भी अपनी बापोती के जंगल और पहाड दुश्मन को नही देना चाहते थे।

आखिर इन सारी महनतो का यह फल मिला कि उन्होंने अपना गया हुआ मुल्क शेर की दाढ मे से निकाल लिया और बाकी उमर आराम से काटी।

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ

—राहुल सांकृत्यायन

उदयसिंह को राणा प्रताप जैसा सुयोग्य पुत्र मिला, जो १५७२ ई० में सिसोदियों की गद्दी पर बैठा। पूर्वजों की वीरता के पंवाडे और सम्मान को छोड कर उसे और क्या मिला? . . . . . . प्रताप की वीरता और त्याग इतिहास के पन्नों मे सोने से लिखा गया है। . . . . . . प्राय: चौथाई शताब्दी (१५७०-९७ ई०) तक प्रताप ने जबर्दस्त शक्ति का मुकाबिला किया। . . . . . आडावल की घाटियों में मारे-मारे फिरते प्रताप और उसके बच्चे जंगल के कंद-मूल पर गुजारा करते थे। प्रताप अडिग रहा . . . . . प्रताप ने १५९७ ई० में एक परम यशस्वी वीर के तौर पर अपने शरीर को छोडा। अपने उत्तराधिकारी पुत्र अमरसिंह को उसने यही नसीहत दी कि सिसोदियों के झंडे को नीचे न गिरने देना। मुगल इतिहासकार प्रताप की वीरता को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे, पर विंसेन्ट स्मिथ के शब्दों में—"वे नरनारी भी स्मरण करने योग्य हैं, बल्कि पराजित विजेता से भी महान् हैं।"

Worthy of Remembrance

—*Vincent A. Smith*

It is not necessary to adduce any particular incident as supplying a motive for the attack on the Rana, who is represented by Abul Fazl as deserving of chastisement by reason of his alleged arrogance, presumption, disobedience, deceit, and dissimulation. His patriotism was his offence. Akbar had won over most of the Rajput chieftains by his astute policy and could not endure the independent attitude assumed by the Rana who must be broken if he would not bend like his fellows ....
The failure of the effort caused deep disappointment to Akbar...
... ... The Emperor desired the death of the Rana and the absorption of his territory in the imperial dominions, The Rana, while fully prepared to sacrifice his life, if necessary, was resolved that his country should remain a land of freemen. After much tribulation he succeeded, and Akbar failed.

The historians of Akbar, dazzled by the commanding talents and unlimited means which enabled him to gratify his soaring ambition, seldom have a word of sympathy to spare for the gallant foes whose misery made his triumph possible. Yet they too, men and women, are worthy of remembrance. The vanquished, it may be, were greater than the Victor.

— —

Luminous spirit of freedom

– J M. Shelat

... · For a little more than quarter of a century, Rana Pratap had dared to defy the wrath and might of the grand Mughal. During this long period, the Rana had to witness with a sad heart the tragedy of his beloved lands being trampled under the feet of his foes and devastated during a series of expeditions. Yet, unlike his other contemporaries, he chose a life of adversity, so that he would not have to acknowledge a master and tarnish the name of the family founded by his great ancestor, Bappa Raval. Unlike the other Rajputs, he never evaded fighting the Mughals. He not only fought them but built up around him coalition after coalition to stem the tide of the Mughal power in Rajputana, At one time he formed a grand alliance with Sirohi, Idar, Dungarpur, Bundi and Chandrasen Rathor [of Jodhpur] and his nephew Kalla, thus teaching the lesson of strength in unity which the Rajputs failed to learn.

If Akbar broke one alliance, Pratap soon sprang another on him Inspite of Idar, Sirohi, Dungarpur and Banswara being run over time and again by the Mughal hordes, he contiuued by his own precept to inspire their chiefs to remain uncowed. It is to his credit that he perfected the strategy of guerilla warfare, exploiting in full the geographical advantage of the hills and ravines. It was from him that later on Shivaji learnt that strategy which foiled all attempts of Aurangzeb to subdue the Deccan. Time after time the Mughals overran Mewar but they never succeeded in conquering it.

The conflict in Mewar was a contest between two minds, one establishing an empire pervading the length and breadth of India and the other on preservation of the freedom of a patrimony, which though small, had so far remained unsullied by even a semblance of subjugation. The conflict was inevitable. The issue was fought with the greatest of intensity and vehemence because the two sides were represented by two of the grandest personalities of the 16th century. Yet, even though Akbar brought to its resolution all the vast resources and the best military talent he had at his command, the issue remained unresolved till the end of his life.

·· ·· ···Pratap was heroic glowing with the luminous spirit of freedom which refused to permit his talents to be exploited in the service af any man. Endowed with only a small and impoverished Inheritence, he proved himself, in face of insurmountable difficulties, a great leader of men, a generous enemy and, above all, a prince among men. His name will ever have a permanent and prominent niche in the valhalla of valour, patriotism and heroism.

A noble and patriotic leader

—Dr. Kalikinkar Datta

Mewar found a true patriot and leader in his son Pratap, who being in every respect faithful to the traditions of his country, offered uncompromising resistance to the invaders. The magnitude of his task can be well understood when we note that without a capital, and with only slender resources, he had to oppose the organised strength of the Mughal Emperor, who was then "immeasurably the richest monarch on the face of the earth". Further, his fellow chiefs and neighbours and even his own brother, devoid of the high Rajput ideals of chivalry and independence, had allied themselves with the Mughuls. But no obstacle was too alarming for this national hero of Rajputana, who was made of nobler stuff than his relatives.

Pratap's is indeed an inspiring personality in Indian history. The Rajputs have produced abler generals and more astute statesmen than Pratap, but not more brave and noble patriotic leaders than he.

EMBODIMENT OF ELEMENTAL SPIRIT OF INDIA

—*Dr. A. L. Srivastava*

For 25 years Akbar and Pratap had looked each other in the face. In this great contest the Emperor's object, though noble, was offensive, whereas that of the Rana defensive. Akbar failed, Pratap succeeded. He refused to be enslaved in spite of the fact that all the might of a great empire and of a great ruler, the mightiest of his age, was arrayed againat him. In this total war the great Rana was sustained by his all-absorbing passion of the maintenance of the liberty of his state and the honour of his house He neither stooped nor faltered in the face of persuasion and force alike The story, that having been tormented by the misery and want in the inhospitable ravines for once at least did he swerve from his indealism and wrote out a letter of submission to Akbar, and that he revoked it immediately on having been reminded of the noble mission of his life by Prithvi Raj Rathor, the poet-warrior of Bikaner, is a myth and finds no confirmation in sober history. There has, of late, been a controversy whether Pratap did not really err in refusing to join Akbar in the great task of forging the unity of India. The answer to this cannot be given in a simple yes, or no. The idea seems to be the result of a hurried acquaintance with the contemporary literature on the subject and of a desire to read in the past the ideas and institutions of the modern age The fact is that for the so-called non-co-operation, Pratap is less to blame than Akbar. Akbar insisted throughout on the Rana's personal attendance at his court. Mewar's stand at the siege of Chitor in 1567-68 and during the four missions to Rana Pratap was that her ruler should be exempted from attending the court Abul Fazl admits that Pratap received all the envoys courteously, entertained them, put on the royal khillat aud once even sent his eldest son to Agra An interminable war followed because of Akbar's intransigence, and it ended in the time of Amar Singh only after Jahangir hnd accepted this important demand of Mewar The posterity would certainly have dubbed the Rana a reactionary and a stumbling block to India's unity, if Akbar's policy of securlarism with equal status and opportunities for all communities in this land had come to stay throughout the Mughal period Unfortunately that was not to be Jahangir followed it half-hea-

rtedly, Shahjahan showed the tendency to revert to pre-Akbar days, and Aurangzeb subverted its very foundations and re-established an Islamic state based ou the principles of supremacy of Islam and persecution of Hinduism In short, Akbar's secularism lasted hardly for 80 years and the sources of inspiration of the Hindus and the Musalmans continued to be different even in the time of Akbar. Most of the Hindu states that had joined Akbar had to revert to Pratap's policy of opposition in the time of Aurangzeb. In view of the uncertainty of the future of Akbar's policy contemporary Hindu opinion throughout the country, barring that at the Mughal court, supported Rana Pratap's stand in his life- time, as is clear from the copious literature in Sanskrit, Hindi and possibly In Gujarati also. And the posterity has always looked upon Pratap not only as a great hero, but also as a successful upholder of Hindu prestige and honour. The contention that after all Mewar lost her independence in the time of Pratap Singh's son Amar Singh and that it would have saved immense sacrifices, if Pratap had done the same in 1572, seems to be based on a misunderstanding The honourable terms secured by Amar Singh in 1615 at the hands of Jahangir were due to the long and stubborn resistance put up by Pratap and for eighteen years by Amar Singh himself. Without these sacrifices Mewar could hardly have hoped for a preferential treatment, treatment different from the one meted out by the Emperor to Amber, Jodhpur, Bikaner, Jaisalmer and Dungarpur. It is because of his successful defiance of Akbar the Great without reckoning the sacrifices that Pratap has been rightly called the embodiment of "the elemental spirit of India" that upholds her traditional glory and defies everything that tarnishes that glory.

A Valiant Freedom-fighter

—V. K R. V. Rao

Maharana Pratap occupies a unique place in the history of India because of the indomitable way in which he fought foreign rule. He was thus a Maharana not merely by designation but also in the true sense of the word.

Stories of his brave deeds and of his many human qualities have gone into folk lore and are narrated even today with the some zeal and listened to with the same enthusiasm as when they originated. Maharana Pratap amply illustrated to the country the duties that a Rajput must fulfil in his capacity as protector and left the rare example of a hardy warrior who went on fighting against heavy odds rather than comfortably own a foreign master He was the father of the unequalled strategy in warfare which the later Maratha rulers like Chatrapathi Shivaji picked up to undermine the might of the mighty Mughal empire. Instead of of getting lost in internal feuds and local machinations, he marshalled all his power and built coalitions to stem the tide of Mughal conquest in Rajputana,

Pratap was, however, no fanatic. His generosity came to be regarded as an essential prerequisite of a Rajput warrior. While he hated his enemies cordially, the personal honour of his enemy was as safe in his hands as in their own. One hears of no cruelties practised by his orders on any one who happened to have the misfortune of being his opponent So far was he from depending on an appeal to religion alone in his determination to keep safe the liberty of his motherland that he was able to lead Muslim commanders and Muslim soldiers even against Akbar's might.

In his acts of hospitality he was unequalled whoever flocked to his court, deprived and forlorn, found a welcome home Many an exhausted warrior or prince found a welcome refuge with him.

A great general, a brave warrior, a successful organizer a prince among men, a generous foe, Pratap's name will continue to shine in the history of India for his qualities of head and heart. He stands for all that is usually associated with that romantic word, Rajput. If courage was the distinguishing badge of the

Rajputs, Pratap had more than his share of it, if unflinching resolution and indomitable will ever made a hero of a man, Pratap was one, if ever a man fought against fearful odds and pulled through them, it was he. Men have shrunk back from the very thought of adversity but Rana Pratap invited it. He scorned comfort and luxury when they hed to be exchanged for his independence. Generations of Rajputs have sworn by his name and even today, Pratap's is the name to rouse the disheartened In the collective memory of the Hindus he has got a place along with Shivaji and Ranjit Singh, and along with them he proved that not even centuries of Mohammedan domination could kill the spirit out of a proud race.

The worst of his enemies, Emperor Akbar had to bow down to his memory together with his own bard when at Pratap's death the bard could contain himself no more and burst saying "Oh Pratap, you kept your horses unbranded, your head unbowed, your fame untarnished. You were strong enough to carry on your work against heavy odds ·· ··· You attained a very high place in this world............"

The relevance of Maharana Pratap's life to our day and age lies in the fact that no adversary is too strong and no tribulation too heavy for the preservation of one's conviction and independence. The country will always remain grateful for the unique example that Maharana Pratap left for the future generations to obtain their inspiration from and to emulate.

स्वतन्त्रता का पुजारी

—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

प्रातः स्मरणीय वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उसी को है। वह स्वदेशाभिमानी, स्वतन्त्रता का पुजारी, रणकुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि था। उसका आदर्श था कि बापा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूल मन्त्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठा जबकि उसकी राजधानी चित्तौड़ और प्रायः सारी मैदानी भूमि पर मुसलमानों का अधिकार होगया था। मेवाड़ के बड़े बड़े सरदार भी पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके थे। ऐसी स्थिति में उसके विरुद्ध बादशाह अकबर ने उसको विध्वंस करने के लिये अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बुद्धिबल, बाहुबल और धनबल लगा दिया था। बहुत से राजपूत राजा भी अकबर के ही सहायक बने हुए थे। यदि महाराणा चाहता तो वह भी उनकी तरह अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता तथा अपने वंश की पुत्री उसको देकर साम्राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर आराम से रह सकता था, परन्तु वह स्वतन्त्रता का पुजारी केवल थोड़े से स्वदेशभक्त और कर्तव्यपरायण राजपूतों और भीलों की सहायता से अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गया। उसकी वीरता, रणकुशलता, कष्टसहिष्णुता और नीतिमत्ता अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय थी। इन्हीं गुणों के कारण वह अकबर को, जो उस समय संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट था, अपने छोटे से राज्य के बल पर वर्षों तक हैरान करता रहा और फिर भी अधीन न हुआ।.......... वह केवल वीर और रणकुशल ही नहीं किन्तु धर्म को समझने वाला सच्चा क्षत्रिय था। .. ..प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनाने वाली अकबर की कूटनीति का यदि कोई उत्तर देने वाला था तो महाराणा प्रताप ही।

वीरश्रेष्ठ महाराणा प्रताप के कार्य आज भी मेवाड़ की एक एक उपत्यका में वर्तमान समय के से जान पड़ते हैं। महाराणा का नाम न केवल राजपूताने में किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। जब तक संसार में वीरों की पूजा होती रहेगी, तब तक महाराणा प्रताप का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों को स्वतन्त्रता और देशाभिमान का पाठ पढ़ाता रहेगा।

राष्ट्रीय काव्य

आधुनिक हिन्दी-राजस्थानी कवि

हल्दीघाटी से

पं. जनार्दनराय नागर

वीर मेरुवाला की बिखरी, मांग अरी हल्दीघाटी,
मेदपाट के वक्ष-स्थल की, रोमावलि हल्दीघाटी।

अड़ावड़ा की जंघाओ पर, बैठी जरगा की बेटी,
याद कर रही वरवीरों को, हर-हर क्या हल्दीघाटी ?

वृक्ष-घटाओं की अलकों में, तेरा चन्द्रानन हसता,
पीत उरोजों से है झरता, रस-निर्झर, हल्दीघाटी।

निर्झर जिसने थे धोये, अमिट चिन्ह के घनी चरण,
साधे प्यास बुझा वीरों के, जिसने अन्तिम अमर मरण।

निर्झर सीचे थे जिससे, पूत सलोनों के खेवे,
जिसमें धोये थे असियों ने पराधीनता के खेये।

निर्झर, जिसके तीर बैठ, रो कितनी ही रातें काटी,
हल्दीघाटी, बता मुझे तू कितने मर्दों की माटी।

पीकर वीरवरों का शोणित पीली तू पड़ गई, बता ?
चेतक के लोहू की बिन्दी दे, हल्दीघाटी बनी बता ?

हे पीली माटी की घाटी, हर-हर के कितनी प्रतिध्वनियाँ,
टापों की ठोकर टकरा कर, है बतला कितने गीत बनी ?

रवि-शशि के तेरे नयनों से विपदा के कितने घन बरसे ?
बलिदानों के कितने प्रसग, बिजली बनकर तुझमे चमके ?

कितने कलंक हल्दीघाटी ! धोये छाती का खून बहा ?
जीवन के कितने क्षण पाले, पीले आंचल का दूध पिला ?

तेरे आंगन में एक दिवस, मर-मिटने का था फाग जगा,
तेरे ललाट पर एक दिवस, कुछ मर्दों ने इतिहास लिखा।

आह्वान

सोहनलाल द्विवेदी

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक, बन गये आज ही वैरागी ।
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में, यह कैसी तरुण-अरुण आगी ?
क्या कहा, कि 'तब तक तुम न कभी वैभव-सिंचित शृंगार करो ।'
क्या कहा, कि 'जब तक तुम न विगत-गौरव, स्वदेश-उद्धार करो ।'

माणिक मणिमय सिंहासन को, कंकड़-पत्थर के कोनो पर ।
सोने-चांदी के पात्रों को, पत्तों के पीले दोनो पर ।
वैभव से विव्हल महलों को, कांटो की कटु झोपड़ियों पर ।
मधु से मतवाली बेलायें, भूखी बिलखाती घड़ियों पर ।
'रानी' 'कुमार'-सी निधियो को, मां' के आंसू की लड़ियों पर ।
तुमने 'अपने, को लुटा दिया, 'आजादी' की फुलझड़ियो पर ।

निर्वासन के निष्ठुर प्रण मे, घुघुवाती रक्त-चिता रण में ।
बाणों के भीषण वर्षण में, फौआर से बहते व्रण में ।
'बेटा' की प्यासी-दाहो मे, 'बेटी' की भूखी-आहों में ।
तुमने पाया 'आजादी' का, मरने की कड़वी चाहो मे ।

किस अमर शक्ति-आराधन में, किस मुक्ति-युक्ति के साधन में ।
मेरे वैरागी वीर ! व्यग, किस तप-बल के उत्पादन में ।
हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र, हैं व्याकुल रण मे जाने को।
मेरे सेनापति ! कहा छिपे ? तुम, आओ शख बजाने को ।

जागो प्रताप ! मेवाड भूमि के लक्ष्य भेद हैं जगा रहे ।
जागो प्रताप ! मा-बहनो के अपमान छेद हैं जगा रहे ।
जागो प्रताप ! मदवालो के मतवाले सेना सजा रहे ।
जागो प्रताप ! हल्दीघाटी पर वैरी भेरी बजा रहे ।

मेरे प्रताप ! तुम पड़ो, मेरे आंसू की धारों से ।
मेरे प्रताप ! तुम गूंज उठो, मेरी सन्तप्त पुकारो से ।
मेरे प्रताप ! तुम बिखर पड़ो, मेरी उत्पीड़न-मारो से ।
मेरे प्रताप ! तुम निखर पड़ो, मेरे बलि के उपहारो से ।

श्री प्रताप-स्तव

लोचनप्रसाद पाण्डेय

स्वातन्त्र्य के प्रिय उपासक, कर्म्मवीर ।
हिन्दुत्व-गौरव-प्रभाकर, धर्म्मवीर ॥
देशाभिमान परिपूरित धैर्य्य धाम ।
राणा प्रताप, तव श्रीपद में प्रणाम ॥ १ ॥

देशानुराग वर-बान्धव-प्रेम-मूर्ति ।
आत्मावलम्ब-अवतार, स्वधर्म-स्फूर्ति ॥
राणा प्रताप जिनके यश है ललाम ।
है भक्ति-युक्त उनके पद में प्रणाम ॥ २ ॥

आपत्ति में पड़ तथा दुख पा अनेक ।
अन्यान्य सम्मुख सिवा जगदीश एक ॥
आजन्म शीश जिनने न कभी झुकाया ।
दें वे प्रताप हमको निज बाहु-छाया ॥ ३ ॥

साम्राज्य, धाम, धन को अति तुच्छ जान ।
त्यागे सभी सुख अहा ! तृण के समान ॥
स्वातन्त्र्य-हेतु सहते वनवास-क्लेश ।
वे श्री प्रताप हमको बल दें विशेष ॥ ४ ॥

रक्षा-निमित्त कुल-गौरव के विशुद्ध ।
आजन्म स्वीय रिपु से कर घोर युद्ध ॥
रक्खी सगर्व जिनने निज टेक, अन्त ।
दे वह प्रताप हमको दृढ़ता अनन्त ॥ ५ ॥

वीरत्व देख मन में रिपु भी लजाते ।
हैं हर्ष युक्त जिनके गुण-गान गाते ॥
है गूढ़-नीति जिनकी छल-छिद्र हीन ।
वह श्री प्रताप हमको बल दें नवीन ॥ ६ ॥

औदार्य में न जिनका मद-गर्व लेश ।
जो पा प्रभुत्व तजते न क्षमा विशेष ॥

जो धर्म देश हित है निज प्राण धारे ।
वह श्री प्रताप दुख दैन्य हरें हमारे ॥७॥

"चाहे भले रह कुटी वन में बनाके ।
चाहे भले रह सदा फल मूल-खाके ॥
स्वाधीनता तज न तू, बनदास, मूढ ।"
धारे प्रताप ! यह भूत व तत्व गूढ़ ॥८॥

आपत्ति देख जिनका मुख हो न म्लान ।
जो सौख्य में न तजते प्रभु-पाद ध्यान ॥
है मुक्ति-मार्ग जिनका, बस, मातृ भक्ति ।
दें वह प्रताप हमको निज दिव्य शक्ति ॥९॥

"चाहें हो रिपु लक्ष-लक्ष अपने, हों एक चाहे हम ।
धारेंगे तब भी न धर्म तज के, कापट्य-क्रीड़ा-क्रम ॥
पाती नैतिक-वीरता जय सदा, पौलस्त्यहन्ता सम ।"
वाणी वीर प्रताप की यह हरे, सारे हमारे भ्रम ॥१०॥

प्रतिज्ञा

—पं० नारायणजी पुरुषोत्तम 'क्लान्त'

बैठ के सिंहासन पै प्रखर प्रतिज्ञा लीन्हीं,
रघुकुल आन-शान-शौकत गमाऊं ना।
गया हुआ चित्रकोट चोट कर यवनों से,
छीनने में कायरी कृपान की दिखाऊं ना॥
भूखे मरजाना कटजाना रन खेत पर।
बनि परतन्त्र दास म्लेच्छ को कहाऊं ना।
वैर को बिसार पर मोह में फंसूं न 'क्लान्त',
प्राण जावे तो भी सिर 'शाह' को नवाऊं ना, ॥१॥

जावे धन-धाम राज वैभव विशाल तो भी,
बनूं बन-वासी दैन्य-दासता उठाऊं ना।
अन्य राजपूतों सम बनके कपूत 'क्लान्त,'
'शाह' का ससुर-साला कबहूं कहाऊं ना॥
हिंदू-धर्म-रक्षा हेत कर में ले कृपान धारि,
धाज से पलंग पर पीठ भी लगाऊं ना।
मोछ पर ताव नहीं देऊं तृण पर सोऊं,
पंच धातु-पात्रन में भोजन हू पाऊं ना ॥२॥

सिर न झुकाऊं एकलिंगनाथ बिना कहूं,
देह गिर जाय तो भी मिष्ट अन्न खाऊं ना।
जाति नवरोजे क्षात्र कन्या का बचाऊं न तो,
हमी-कुल छत्र हिन्दू-सूर्य्य में गिनाऊं ना॥
योगी व्रत-धारी सिर केश न उतारूं तो लौं,
जो लौं राजपूती रंग तुर्क को दिखाऊं ना।
सत्ता सब शाह की चित्तौड़ से उठाऊं न तो,
उदय-तनुज परताप मैं कहाऊं ना ॥३॥*

---

* [illegible], [illegible], वीर काव्य, 'प्रताप पचासा' सन् १९३३ संस्करण, पृष्ठ २-३ से उद्धृत

हल्दीघाटी

— श्याम नारायण पाण्डेय

निर्बल बकरों से बाघ लड़े,
भिड़ गये सिंह मृग-छौनों से ।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी,
पैदल बिछ गये बिछौनों से ।।

हाथी से हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गये सवार सवारों से ।
घोड़ो पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लड़ी तलवारों से ।।

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे,
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे ।
लड़ते-लड़ते अरि झुण्ड गिरे,
भू पर हय विकल बितुण्ड गिरे ।।

क्षण महाप्रलय की बिजली सी,
तलवार हाथ की तड़प-तड़प ।
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा,
लेती थी बैरी वीर हड़प ।।

क्षण पेट फट गया घोड़े का,
हो गया पतन कर कोड़े का ।
भू पर सातंक सवार गिरा,
क्षण पता न था हय-जोड़े का ।।

चिग्घाड़ भगा भय से हाथी,
लेकर अंकुश पिलपान गिरा ।
झटका लग गया फटी झालर,
हौदा गिर गया, निशान गिरा ।।

× × ×

होती थी भीषण मार-काट,
अतिशय रण से छाया था भय।
था हार-जीत का पता नहीं,
क्षण इधर विजय, क्षण उधर विजय ॥

कोई व्याकुल भर आह रहा,
कोई था विकल कराह रहा।
लोहू से लथपथ लोथों पर,
कोई चिल्ला अल्लाह रहा ॥

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा,
कुछ भी उनकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा वेग बढ़ा,
मुरदे बह गये निशान नहीं ॥

मेवाड़-केसरी देख रहा,
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण,
वह मान-रक्त का प्यासा था ॥

चढ़कर चेतक पर घूम-घूम,
करता सेना-रखवाली था।
ले महा मृत्यु को साथ-साथ,
मानो प्रत्यक्ष कपाली था ॥

रण-बीच चौकड़ी भर-भर कर,
चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से,
पड़ गया हवा को पाला था ॥

× × ×

जो तनिक हवा से बाग हिली,
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं,
तब तक चेटक मुड जाता था ॥

× × ×

है यहीं रहा, अब यहां नहीं,
वह नहीं रहा है वहां नहीं ।
थी जगह न कोई जहां नहीं,
किस अरि मस्तक पर कहां नहीं ॥

× × ×

चढ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल-पानी को ।
राणा प्रताप सिर काट-काट,
करता था सफल जवानी को ॥

कलकल बहती थी रण-गंगा,
अरि-दल को डूब नहाने को ।
तलवार वीर की नाव बनी,
चटपट उस पार लगाने को ॥

वैरी-दल को ललकार गिरी,
वह नागिन सी फुफकार गिरी ।
था शोर मौत से बचो, बचो,
तलवार गिरी, तलवार गिरी ॥

पैदल से हय-दल गज-दल में,
छिप-छप करती वह निकल गई।
क्षण कहां गई कुछ पता न फिर,
देखो चमचम वह निकल गई ॥

क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई ।
था प्रलय चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई ।।

क्या अजब विषैली नागिन थी,
जिसके डसने में लहर नहीं ।
उतरी तन से मिट गये वीर,
फैला शरीर में जहर नहीं ।।

थी छुरी कहीं, तलवार कहीं,
वह बरछी-असि खरधार कहीं ।
वह आग कहीं अंगार कहीं,
बिजली थी कहीं कटार कहीं ।।

लहराती थी सिर काट-काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट ।
बिखराती अवयव बाट-बाट,
तनती थी लोहू चाट-चाट ।।

× × ×

ऐसा रण राणा करता था,
पर उसको था संतोष नहीं ।
क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह,
पर कम होता था रोष नहीं ।।

कहता था लड़ता मान कहां ?
मैं कर लूं रक्त-स्नान कहां ?
जिस-पर तय विजय हमारी है,
वह मुगलों का अभिमान कहां ?

भाला कहता था मान कहाँ ?
घोड़ा कहता था मान कहाँ ?
राणा की लोहित आंखों से
रव निकल रहा था मान कहाँ ?

लड़ता अकबर सुल्तान कहाँ ?
वह कुल-कलंक है मान कहाँ ?
राणा कहता था बार-बार,
मैं करूँ शत्रु बलिदान कहाँ ?

तब तक प्रताप ने देख लिया,
लड़ रहा मान था हाथी पर ।
अकबर का चंचल साभिमान,
उड़ता निशान था हाथी पर ।।

× × ×

फिर रक्त देह का उबल उठा,
जल उठा क्रोध की ज्वाला से ।
घोड़ा से कहा बढ़ो आगे,
बढ़ चलो कहा निज भाला से ।।

हय-नस-नस में बिजली दौड़ी,
राणा का घोड़ा लहर उठा ।
शत-शत बिजली की आग लिये
वह प्रलय-मेघ-सा घहर उठा ।।

× × ×

तनकर भाला भी बोल उठा,
राणा मुझको विश्राम न दे ।
बैरी का मुझसे हृदय गोभ,
तू मुझे तनिक आराम न दे ।।

× × ×

मुरदों का ढेर लगा दूँ मैं,
अरि-सिंहासन थहरा दूँ मैं।
राणा मुझको आज्ञा दे दे,
शोणित सागर लहरा दूँ मैं॥

× × ×

यह महा प्रतापी घोड़ा उड़,
जंगी हाथी को हबक उठा।
भीषण विप्लव का दृश्य देख,
भय से अकबर-दल दबक उठा॥

क्षण भर छल बल कर लड़ा अड़ा,
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
फिर अगले दोनों पैरों को,
हाथी मस्तक पर दिया गड़ा॥

यह देख मान ने भाले से,
करने को की क्षण चाह समर।
इस तरह थाम कर झटक दिया,
हाथी की भी झुक गई कमर॥

राणा के भीषण झटके से,
हाथी का मस्तक फूट गया।
अम्बर कलंक उस कायर का,
भाला भी दबक कर टूट गया॥

राणा वैरी से बोल उठा—
"देखा न समर भाले से कर।
लड़ना तुझको है अगर अभी,
तो फिर लड़ले भाला लेकर॥"

"हाँ, हाँ लड़ना है" कह कर जब,
वैरी ने उठा लिया भाला ।
क्षण भौंह चढ़ा कर देख दिया,
कांपे जो हाथ गिरा भाला ॥

राणा ने हँस कर कहा "मान,
अब बस करदे हो गया युद्ध ।
वैरी पर वार न करने से,
मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध ॥

अपने शरीर की रक्षा कर,
भग जा भग जा अब जान बचा" ।
यह कह कर भाला उठा लिया,
भीषण तुम हाहाकार मचा ॥

क्षण देर न की तन कर मारा,
अरि कहने लगा न भाला है ।
यह गेहुवन करइत काला है,'
या महाकाल मतवाला है ॥

× × ×

छिप गया मान हौदे-तल में,
टकरा कर हौदा टूट गया ।
भाले को हलकी हवा लगी,
पिलवान गिरा, तन छूट गया ॥

अब बिना महावत के हाथी,
चिग्घाड भगा राणा भय से ।
संयोग रहा, बच गया मान,
खूनी भाला, राणा हय से ॥

× × ×

राणा के चारों ओर मुगल,
होकर करने आघात लगे।
खा खाकर अरि तलवार चोट,
क्षण-क्षण होने भू पात लगे ॥

× × ×

राणा कर ने सिर काट-काट
दे दिये कपाल कपाली को।
शोणित की मदिरा पिला पिला,
कर दिया तुष्ट रण काली को ॥

पर दिन भर लड़ने से तन से,
चल रहा पसीना था तर तर ॥
अविरल शोणित की धारा थी,
राणा क्षत से बहती झर-झर ॥

घोड़ा भी उसका शिथिल बना,
था उसको चैन न घावों से।
वह अधिक अधिक लड़ता यद्यपि,
दुर्लभ था चलना पावो से ॥

तब तक झाला ने देख लिया,
राणा प्रताप है संकट में।
बोला न बाल बांका होगा,
जब तक प्राण बचे हैं घट में ॥

अपनी तलवार दुधारी ले,
भूखे नाहर-सा टूट पडा।
कलकल मचगया, अचानक दल,
आश्विन के घन सा फूट पड़ा ॥

रख लिया छत्र अपने सिर पर,
राणा—प्रताप—मस्तक से ले।

ले स्वर्ण—पताका जूझ पड़ा,
रण-भीम-कला अन्तक से ले ।।

झाला को राणा जान मुगल,
फिर टूट पड़े वे झाला पर ।
मिट गया वीर जैसे मिटता,
परवाना दीपक —ज्वाला पर ।।

झाला ने राणा—रक्षा की,
रख दिया देश के पानी को ।
छोड़ा राणा के साथ साथ,
अपनी भी अमर कहानी को ।।

अरि विजय—गर्व से फूल उठे,
इस तरह हो गया समर-अन्त ।
पर किसकी विजय रही बतला,
ऐ सत्य—सत्य अम्बर अनन्त ।।

हल्दीघाटी (खण्ड काव्य) —श्याम नारायण पाण्डेय इण्डियन प्रेस, प्रयाग (सं० २००६ संस्करण)
(पृष्ठ १३३ से १४४)

चेटक

—कविराजा पं० श्री हरनाथजी

चंचल चमंक चहूँ ओर घरि कुण्डन पै,
छांटत कुदोटी कूद सेलें फरी पट्टा सो।
भाषै 'हरनाथ' महाराणा श्री प्रताप बाज,
बाज बाज बार देत बाज ही झपट्टा सो॥
एड़ के छुआवत छनक्क परिवार्तों छूट,
हौदा पील पेठ तें ढहावे दीह अट्टासो।
चौंक चौंक चपल चमून चट पट्टा मार,
चेटक उचट्ट चट्ट जात नयपट्टा सो॥३७॥

सज्जत समर साज थान छोड़ते ही शीघ्र,
थमत न थामें थनयारन फसाले देत।
भाषै 'हरनाथ' माथ ऊंचो करि हेर हेर,
फूद फूव कुदक कुदोटिन उछाले देत॥
पीठ पै सवार महाराणा श्री प्रताप पेख,
हींस हींस मानो विजै घोषना के नाले देत।
बाग के बतावत ही चेटक उचट्ट चट्ट,
वैरी गज कुम्भन पै सुम्म खुरताले देत॥३८॥

रोस रंग राचे वीर नाचे रण रग देख,
चाल चातुरी से चले दौड़ता दपटता,
भाषै 'हरनाथ' माथ हाथियो के खूंद खूंद,
हौदे के सवारन के शीश ह्वै सपटता।
वीर श्री महाराणा प्रताप का इशारा पाय,
वायु के समान जाता वायु से लपटता।
पच्छी रूप विपुल विपक्षियो के झुण्डन पै,
चेटक चटाक बाज बाज सा झपटता॥३९॥

चौंक चौंक चंचल चमङ्क चातुरी से चारू,
चहूं ओर दम्भ दम्भियों के दौर दरता।
मान्य महाराणा श्री प्रताप का प्रतापी बाज,
वृन्द वैरियो के हेर हौंसता हहरता॥
भावै 'हरनाथ' हक साथ खुरतालन सौं,
खोपड़ी खलों को खूब खूंदता खुचरता।
चीरता चमू को तेज तीर सा निकलता वीर,
चेटक उचट्ट चट्ट चेटक सा करता॥४०॥

'प्रताप पताका' रचयिता कविराजा पं० श्री हरनाथजी, ब्रज नगर, झालावाड़, विक्रम सं० १९९७
पृष्ठ १६–१७ से उद्धृत

अर्थः— १. छणिवालों — बिजली
२. अट्टासों — अट्टा
३. नट्टवट्टा — नट का गोला
४. थनवारन — साईस
५. नाले — नारे
६. कुम्भन — मस्तक

प्रताप-विसर्जन

—राधाकृष्णदास

उन्नत-सिर गिरि-अवलि गगन सों उत बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत॥
मंद पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत एक मानों कोउ अवतार॥
हरन भुव भार को॥१॥

मुख-मंडल अति शांत, कांतिमय चितवन सोहै।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहुँ दिसि जो है॥
वीर-मडली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पांडव रहे सोहि॥
हृदय उमड़यो परै॥२॥

लखि निज प्रभु को अंत समय की वेदन भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान।
हाथ जोरि विनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान॥
वचन आरत सने॥३॥

अहो नाथ, अहो वीर-सिरोमनि भारत-स्वामी!
हिंदू-कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी!!
कहां वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहं ध्यान?
देखि कष्ट हिय फटत है, केहि संकट में है प्राण॥
कृपा करिकै कहो॥४॥

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिशि फेर्‌यो।
भरि कै दीरघ सांस सबन तन व्याकुल हेर्‌यो॥
पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति संतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले वचन गंभीर॥
परम आतंक सो॥५॥

हे! हे! वीर-सिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे! विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान-पियारे॥

तुव भुव-बल लहि मै भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृ-भूमि-स्वाधीनता को प्रबल सत्रु करि व्यर्थ॥
अनेकन कष्ट सहि॥६॥

या प्रताप नै उचित कहौ कै अनुचित भाखौ।
वा स्वतंत्रता हेतु जगत-सुख तृन-सम नाखौ॥
ढाइ महल खंडहर किये सुख सामान विहाय।
छानि बनन की धूरि को गिरि गिरि मे टकराय॥
क्लेश को लेश नहिं॥७॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य निधि मम पाछे रहि है दिन कितने॥
तुच्छ वासना मे पग्यो दुःख सहन असमर्थ।
चंचल अमरहिं देखि कै होत आस सब व्यर्थ॥
सोच भावी दसा॥८॥

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सो देख्यो।
मूंदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेख्यो॥
सन्नाटा चहुं दिशि छयो सब के मुख गंभीर।
पृथ्वी दिशि हेरें सबै भरे महा हिय पीर॥
बैन नहिं कछु कढ़ै॥९॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो॥
पृथ्वीनाथ! यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु-हिय आज।
कुंवर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज॥
निरासा जो भई॥१०॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि।
अति गभीर सतेज मनहुं गुंजत केहरि धुनि॥
"सुनो वीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की वेदना जो किमो आस सब छार॥
अमर के कर्म ने॥११॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो।
इतनेहि में मृग एक आनि के वहां जु पैठ्यो॥
हरबराइ संधानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटिया के या बांस में फंस्यो पाग को छोर॥
अमर तोहू न रुक्यो॥१२॥

बढ़न चहत आगे यह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय में धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लगि झोंपड़िहिं अतिहिं क्रोध के साथ॥
बैन मुख ते कढ़े॥१३॥

रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे सांस बिना तोहि आज उजारे॥
राज भवन निर्मान करि तेरो चिह्न मिटाइ।
जो दुख पाये तोहि में सो दैहौं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥१४॥

तबहीं ते ये बैन शूल-सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख-वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम।
बेचि सिसोदिय कीर्ति को यह करि है अवसि निकाम॥
रुके हम सोचि एहि॥१५॥

हिंदूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत-रुधीर नस नस दौर्‌यो तब॥
लै लै असि दृढ पन कियो छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय॥
संक करिये न कछु"॥१६॥

दृढ़प्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख विकस्यो।
आश-लता लहलही भई मुखते यह निकस्यो॥

"धन्य बीर तुम जोग हीं यह पन तुमहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हारे सदा सहाय ॥
यही आसीस मम" ॥१७॥

देखत—देखत शांति—सदन परताप सिधाए।
पराधीनता—मेघ बहुरि भारत सिर छाए ॥
सबही सुख परताप संग कियो विसर्जन हाय।
दीन-हीन भारत रहयो सुख संपदा गंवाय ॥
ताहि प्रभु रच्छिए ॥१८॥

प्रताप का राम राज्य

—कवि रावमोहनसिंह

इत प्रताप निज भटन युत, लेय विजय को नाह।
रम्य धरा राजत रहे, गाजत रहे प्रवाह ॥३२६॥

सवैया

पातलपाय विजे पतसाहसों, राजन को तुरराव्है रज्योकरें।
जाहिके राज कलंकिन कोउ, कलंकित एक मयंक बज्योकरे॥
तावत ग्रीषम मे तरनी इक भीरत भुर्जन छाड़ि भज्योकरें।
श्रो उमड़े उदधी घुमड़े घन, व्है मदमत्त मतंग गज्योकरे ॥३२७॥

श्रंग कसें तनत्रांन उदे दिन, छाहुरी ऊपर छन्न छयो करें।
वाहुवंधे भुजवंध वही इक, पच्चुरिही सिरपें चढ़ियो करें॥
श्रंकलहे महारानियकें इक वाहिनी श्रंक कृपानि व्हियो करें।
लेय मुगल्ल चुगल्ल न ठल्ल ही, पातल की इक पीठ लियो करें ॥३२८॥

पातल भो भुवसो श्रनमी, भवसो श्रनमीन सदा नमियो करें।
लोभ करें नहें लच्छियको, जय लच्छियको इक लोभ कियो करें॥
पातनतेंन प्रसन्न हुवें कविपातन पिखि प्रसन्न व्हियो करें।
साहन को दंडनीक सुही, इक साहनको नहदण्ड दियो करें ॥३२६॥

पातल वीर श्रचल्ल चलेंसजि, व्है श्रनटल्ल टले श्रघतें मुख।
निठुर तोपिडरें श्रदवादतें, व्है मुख कंठ दे ट्रुठुन को दुख॥
मांनके मित्र श्रमित्रहु मांनके, संयमीव्है रखें पंगुरी की रुख।
व्है सुपती कूपतीजु कहाश्रत, पोषकव्हैं करें भावहू की भुक ॥३३०॥

जापरताप के शाशनवींच, सछिद्र सुनें मुकताजु सहस्त्रन।
तोपन धूम्र श्रंधेर यही, विनही श्रपराध कटे वहुवस्त्रन॥
व्हैंमुंहजोर रहै कोऊ घोटक, पीरतपेखे किनेइक नस्त्रन।
छद्म धरेंवक वढ़िढ तुरे नख, देय संताप घतेघन शस्त्रन ॥३३१॥

———

महाराणा का महत्व

—जयशंकर प्रसाद

सज्ज सभागृह में सब अपने स्थान पर
वन्दी, चारण, प्रतिहारीगण थे खडे,
ढले हुए सुन्दर सांचे में शिल्प के
पुतले-जैसे सजे गये हों भवन में।
पुष्पाधार, सजाए कुसुमिति क्यारियां,
मौन खडे थे सुन्दर मालाकार से,
कृत्रिम भंवर न गूंज रहा त्रास से।
सुन्दर मणिमय मंच मनोरम था लगा,
बैठे थे उपधान सहारे हिन्द के—
अकबर शाहशाह चिबुक कर पर धरे।
अभिवादन कर, खडे रहे निर्दिष्ट निज-
स्थानों पर सब चतुर शिरोमणि मंत्रिगण
उस प्रभावशाली सतेज दर्बार मे
क्षत्रिय नरपतिगण भी सविनय थे झुके।

तब रहीमखां के प्रति रुख करके, चतुर–
अकबर ने कुछ हंस कर पूछा व्यंग से–
"कहिये यहां आगरे की जलवायु से
स्वास्थ्य हुआ सब ठीक आपका वा नहीं?"

कहा खानखाना ने सिर नीचे किये–
"शहंशाह अब भी कुछ वैसा हैं नहीं,
जैसा अच्छा होना हूं मै चाहता,
इसीलिये अब मेरी हैं यह प्रार्थना
मुझे हुक्म हो तो जाऊ काश्मीर ही,
क्योंकि वही जलवायु मुझे हैं स्वास्थ्यकर;
यही बताया है हकीम ने भी मुझे।"
अकबर ने फिर कहा–भला यह तो कहो,
क्योंकर ऐसा स्वास्थ्य तुम्हारा हो गया?"

कहा खानखाना ने फिर कुछ नम्र हो—
"बस हुजूर, मुझसे न वही कहलाइये
जिसे आपसे कहा नहीं मैं चाहता।
क्षमा कीजिये! यदि आज्ञा होगी कि हां,
कहो! मुझे फिर सच कहना ही पड़ेगा।"

अकबर ने तब कहा- "सत्य निर्भय कहो।"
कहा खानखाना ने झुक कर-"जिस दिवस
मुझे बनाकर सैनप भेजा आपने
वीर भूमि-मेवाड़—विजय के हेतु, हां—
उस दिन सचमुच मुझे असीम प्रसन्नता
हुई, कि मैं भी देखूंगा उस वीर को,
जो अब तक हो कर अबाध्य सम्राट का
करता है सामना बड़े उत्साह से!
सचमुच शाहंशाह एक ही शत्रु वह
मिला आपको है कुछ ऊंचे भाग्य से;
पर्वत की कन्दरा महल हैं, बाग हैं—
जंगल ही, आहार—घास फल फूल हैं;
सच्चा हृदय सहायक, उसके साथ हैं;
मुगल-वाहिनी से होता जब सामना
भिड़ जाना सन्मुख उसका कर्त्तव्य था,
सुकुमारी कन्या त्यों बालक का कभी
छिन जाता जो आहार बना जो घास से।
वे भी जब हैं अश्रु बहाते तो नहीं
होता है पाषाण-हृदय द्रवमय कभी।
तिस पर भी उसके उस हृदय-महत्व का
कैसे मै वर्णन कर सकता हूं प्रभो!
राजकुंवर ने बेगम को वन्दी किया
फिर भी सादर उसे भेज कर पास में
मेरे, मुझको कैसा हैं लज्जित किया
मनोवेदना से मैं व्याकुल हो उठा;

इसीलिये यह रोग हुआ है असल में ।
इससे छुटकारे का एक उपाय है—
आज्ञा हो तो मैं भी कुछ विनती करूं ।"

हंस और बोले अकबर—'हां-हां कहो,
सब मुझको है विदित हुआ जो जो वहां ।"
कहा खानखाना ने—'राणा ने कभी—
किया नहीं आक्रमण आपके राज्य पर ।
अपने छोटे राज्य मात्र से वे तुष्ट हैं,
और किसी से भडक रही हो शत्रुता
तो वह अपने भुजबल से जो कर सके
करे, शिथिल होगा ! तो भी बल आपका
बढा रहेगा ! ऐसे सज्जन व्यक्ति से
आप क्यों न अपना महत्व दिखलाइये ।
सच कहिये, क्या ऐसे उन्नत हृदय को
दुख देना है अच्छा ईश्वर-नीति मे ?
केवल चुप हो जाना ही है आपका—
सन्धि शांन्ति के मंगलघोष समान ही,
दो महत्वमय हृदय एक जब हो गये
फैलेगा फिर वह महान सौरभ यहां
जिसके सुखमय गंध-प्रेम मे मत्त हो
भारत के नर गावेंगे यश आपका ।"

अकबर ने फिर कहा—"बात यह ठीक है,
अब न लड़ाई राणा से उपयुक्त है ।
भेजो आज्ञा पत्र शीघ्र उस सैन्य को,
सब जल्दी ही चले आयं अजमेर में ।"
कहा खानखाना ने-'हे उन्नत हृदय—
भारत के सम्राट ! दयामय आपकी
सुयश-लता की बीज उर्वरा-भूमि मे
शान्ति-वारि से सिंचित हो फलवती हो ।
अब न काम है जाने का काश्मीर को
इन चरणों की सेवा ही भू-स्वर्ग है !"

कवित्त

—शोभालाल कौशिक, जयपुर

जो उर जरी है कुल-कानि-नेह-डोरी जोति, मान हित मौत जो भरी है थर गोरी सी,
रौरत प्रताप त्यों निगोरी सी फकीर भांति, चोरी हू प्रकासैगी न डूमकि ठगोरी सी।
"कौशिक" प्रताप तें प्रभाकर-प्रभा सी साहु, श्रीयक चमासैगी नु भागे ग्रात भोरी सी,
निपट निगोरी सी परी है जो कृपान कर, तो फिरि सुतन्त्रता परी है कर जोरी सी ।।१।।

रौरत प्रताप ये सुतंत्रता हमारी घिरी रन-बदरी को बरजोर बिजरी सी है ,
नैन-पुतरी सी है प्रवीन प्रान-नागर की, साहु मान-सागर की सुघर तरी सी है ।।
जीवन-जरी सी है हरी सरीर नगम की, जंगम सरीर की सजीवन जरी सी है।
"कौशिक" सलोक की त्रिलोक निकरी सी खरी उर सुर-लोक की मनोहर परी सी है ।।२।।

भव-भय सीलम की भारी भयवारी श्रौर, ताप-त्रय ग्रीसम की सिसिर बयारी है,
प्यारी पखवारी है 'कौशिक" हमारी मन, माले वैरि लावन मे मार रखवारी है।
भनत प्रताप या सुचरित सुतन्त्रता पै साहु भाज मारन की चोट चाय मारी है,
नारी छिनगारी है न यार दिलदारवारी, ये तो दिल-दारवारी यार चिनगारी है ।।३।।

तू तो उतपाती उतपातन को आदी न हों क्यो भयो अकारन हमारी प्रतिवादी है,
"कौशिक" तिहारी कौन हजार आबादो करी कौन धौं हरी हम तिहारी शाहजादी है।
भनत प्रताप साहु सादी सी हमारी तो ये कुल मरजाद की मुराद बुनियादी है ।
होवै जो आजादी बरबादी हू सवाई स्वाद जो नहीं आजादी निसवादी राजगादी है ।।४।।

जोरि जोरि टोरी घोर सुभट करोरनि की दौरि दौरि हम पै करत बरजोरी सी,
ठिठोरी सी 'कौशिक" तिहारी साहु थोरी पर रौरत प्रताप यह हमारे हिय होरी सी।
अब झखझोरी सी त्रसैगी रन - चंग सोर भोरी सी धरा-चहू लहू के रग बोरी सी,
रोरी सी लसैगो अग जंग-रंग-भू की धूरि धार खग हू की त्यो ग्रसैगी अग गोरी सी ।।५।।

तेरे धन-धाम की तृसना पर धूरि डारि हमने रसना को हरि - नाम - रस बोरी है,
भनत प्रताप कुल-कानि की उपासना में "कौशिक" सहास प्रान हूं की श्रास छोरी है।
काम की हमारे नाहि तिहारी सैनसाही साहु राह लेहु अपनी क्यो करत सरफोरी है,
दाम दिसि दौरी धरा-धाम नेह जोरी सु तो नाम-कीच बौरी कोरी चाम की चटोरी है ।।६।

वसन-फटे की छटा - वलित पटोरी और दसन-जटे की सुधा-कलित कटोरी है,
कौन धौं तिहारी सी न "कौशिक" टटोरी पर भनत प्रताप यह मेरी प्रान डोरी है।
साहु ये सुतंत्रता है अंतर कठोर खरी जाने ढरि काहू सो न करी गंठजोरी है,
चोरी है न काहू की कृपा के कीच बोरी है न ये तो नीच कोरी चन्द्रहास की चकोरी है ।।७।।

पुन्य - पटुता तें कटु कपट कटीलौ काटि निपट सपाट बढी बाढ हिन्दुता की है,
"कौशिक" इहा न चटकीले ठाठ - बाट बैठो साहु लचकीली ढरी खाट हिन्दुता की है।
रौरत प्रताप प्रेम-कद-रस-बूंदी चखो निरखो विराट लगी लाट हिन्दुता की है,
चाट बन्धुता की हैं कुमार बिनु मोल तुली लूटि लेहु लूटि खुली हाट हिन्दुता की है ।।८।।

तुम्हीं ?

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

छली प्रलोभन ने जब छल से,
छले सरलता के सब प्राण ।
तुमने ही चरणों से ठुकरा,
चूर्ण किया उसका अभिमान ।।

भारत के सारे बल को जब,
फसा बेड़ियो ने जब अनजान ।
तब केवल तुमही फिरते थे,
वन-वन पागल सिह समान ।।

वहा विलासो की लहरो मे,
अन्धा बन सारा ससार ।
तुम ही अपने सारे जीवन,
करते रहे कष्ट से प्यार ।।

सारा भारत मौन हुआ जब,
सोता था सुख से नादान ।
तब बन्धन के विकट जाल से,
लड़ा रहे थे तुम ही जान ।।
सूर्य झुका, झुक गये कलाधर, झुके गगन के तारे ।
अखिल विश्व के शीश झुके, पर झुके न तुम प्रताप प्यारे ।।

त्याग भूमि पृष्ठ २८१ से

प्रताप के वंशजों से

—रामनरेश त्रिपाठी

दिग्विजयी वीरों के वंशज !
चक्रवर्तियों के हे प्रतिनिधि !
विश्व-विदित पुरुषों के स्मारक !
स्वयं समस्त विधानों के विधि !

हे क्षत्रिय ! है एक बूंद भी,
रक्त तुम्हारे तन में जब तक !
पराधीन बनकर तुम कैसे ?
अवनत कर लेते हो मस्तक !!

त्याग भूमि पृष्ठ २६३ से

स्मृति-गान

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

अरे वीर ! क्या तुझे कमी थी—जो छोड़ा तूने घर द्वार ?
सुख सम्पति से बड़ा और क्या-जिसके लिये हुआ बलिहार !
जह मुगल-दरबारो मे थीं होती नूपुर की झनकार,
वहां भली क्यो लगी तुझे तलवारो की खन-खन खनकार !
वह विराग था कैसा तेरा-जिसके लिये हुआ मोहताज ?
ओ जंगल के राजा ! प्रताप ! क्यों छोड़ा महलो का राज ?

त्याग भूमि पृष्ठ ३५० से

मेवाड़ से

—द्विजेन्द्रलाल राय

हे मेवाड़ पहाड़ ये जूझा जहां सिंह परताप।
अटल रहा पर्वत-सा यद्यपि सहे घोर सन्ताप।।
धधकी रूपागिनी पदमिनि की जहां प्रवल चहुँओर।
कूद पड़ी थीं जिसमें सेना यवनो की घनघोर।।
हे मेवाड़ पहाड ये जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनो का, बतलाती है।।

हे मेवाड पहाड यही जहँ लाल हुआ है नीर।
रक्त वहा मर मिटे जहां है लाखो छत्री वीर।।
म्लेच्छराज को गढ़ चितौर से मार भगाया दूर।
हर लाया उसकी कन्या को वापारावल सूर।।
हे मेवाड़ पहाड ये जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनो का बतलाती है।।

है मेवाड़ पहाड ये गलता वन करके नित छीर।
मधुर सुखद हैं सबसे जिसके अन्न फुल फल नीर।।
कुंजो मे करते हैं कलरव जहाँ सारिका कीर।
कानन मे जहँ बहै सुगन्धित शीतल मन्द समीर।।
हे मेवाड पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनों का, बतलाती है।।

नभ को इस मेवाड-शैल का शिखर रहा है चूम।
भरी हुई है स्वर्ग ज्योति से यह सारी वन-भूम।।
वन फूलो से ललनाएं सब करती है सिंगार।
दयावती, पतिव्रता, साहसिनी नहिं ऐसी संसार।।
ये मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनो का, बतलाती है।।

(अनुवादक-रामचन्द्र वर्मा)

मेवाड़-पतन-द्विजेन्द्रलाल राय (नाटक, अनुवादक-रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर-प्रकाशन पृष्ठ १०-११

चेतावणी रो चूंगट्यो

—केसरी सिंह बारहट, कोटा

पग-पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
(ईंसूं) महाराणा र मेवाड़, हिरदे बसिया हिन्द रे ॥१॥

घण घलिया घमसाण, (तोई) राण सदा रहिया निडर।
(अब) पेखंतां फुरमाण, हल चल किम फतमल हुवै ॥२॥

गिरद गजां घमसाण, नहचैं धर माई नहीं।
(ऊ) मावै किम महाराण, गज दोसै रा गिरद मे ॥३॥

ओरां ने आंसाण, हाकां हरवल हालणो।
(पण) किम हाले कुल राण, (जिण) हरवल साहां हक्किया ॥४॥

नरियंद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिकां।
(पण) पसरे लो किम पाण, पाण छतां थारो फता ॥५॥

सिर-झुकिया सह-साह, सीहासण जिम साम्हने।
(अब) रलणो पगत राह, फावे किम तोने फता ॥६॥

सुकल चढ़ावे सीस, दाण धरम जिणरो दियो।
सो खिताब बखशीस, लेवण किम ललचावसी ॥७॥

देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सूं।
पण तारा परमाण, निरख निसासा नाकसी ॥८॥

देखे अंजस दीह, मुलके लो मन ही मना।
दंभी गढ़ दिल्लीह, सीस नमतां सीसवद ॥९॥

अन्तवेर आखीह, पातल जो बातां पहल।
(वे) राणा सह राखीह, जिण री साखी सिर जटा ॥१०॥

कठिन जमानो कोल, बांधे नर हिमत बिना।
(यो) बीरां हंदो बोल, पातल साँगे पेखियो ॥११॥

अब लग सारां आस, राण रीत कुल राखसी।
रहो साहि सुखराम, एकलिंग प्रभु आपरै ॥१२।

मान मोद सीसोद, राजनीत बल राखणो।
(ई) गवर्रमिट री गोद, फल मीठो दीठो फता ॥१३॥

महाराणा प्रताप ने अपनी आन-बान और भूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा की दृष्टि से जो उत्कट त्याग और बलिदान किया, वह सिसोदिया वंश की धरोहर बना। जब कभी कोई मेवाड़ाधिपति अपनी वंश परम्पराओं से विमुख होता तो उसको प्रताप का स्मरण कराया जाता। राजस्थान के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री केसरी सिंह बारहठ ने इसी आशय की यह कविता महाराणा श्री फतहसिंह को लिखी, जब उन्होंने सन् १९०३ ई० में दिल्ली-दरबार में शरीक होने के लिये प्रस्थान किया।

प्रताप-यश

—महाराज श्री विजयसिंहजी

अकबर गज अप्रमाण,
　　　　लंगर तज टाणा लगो ।
रोक्यो निज बल राण,
　　　　तोमर पाण प्रतापसी ॥१॥

अकबर पाँन अथाह,
　　　　धर्म-नाव बोरन धस्यो ।
महिपत होय मल्लाह,
　　　　ते राखी राणे पता ॥२॥

कमधज अरु कछवाह,
　　　　दुहिता दे राती धरा ।
रामचन्द्र कुल राह,
　　　　राण पते भुज बल रखी ॥३॥

त्याग भूमि पृष्ठ २६६ से ।

मेवाड़ा मेवाड़ वणाई रजवट री पटशाला

—महाराज चतुरसिंहजी

राणा धीर धरम रखवाला, थूं रघुकुल रा वटवाला ।
थूं रजवट रा वटवाला ॥
वीर प्रताप राम रा पोता, जशरा जगत उजाला ।
भलां पालणो खला खपाणो, चौसट घड़ी आपरा चाला ॥१॥
दो दरियाव तर्‌या इक साथे चेटक चढवावाला ।
सम्या क्रोड दुख, छोड सभी सुख, खम्या न खोट खवाला ॥२॥
मेवाडा मेवाड वणाई रजवट री पटशाला ।
एडी ठोड् न दियो अगोठो, वढतो गयो वढाला ॥३॥
थारो नाम कोन सुण होवे मुकना मद दताला ।
मनखां पणो सिखायो सागे मनख मात्र रा वाला ॥४॥
खोटां री छाती मे खटके हात हाथ रा भाला ।
एकलिंग रे रिया आशरे दिया दुरामणां टाला ॥५॥

ए मेदपाट रा तू जाया चित्तौड़ा !

—श्री सुमनेश जोशी

जीत्योड़ां रा गीत ग्यान नित गाया,
पण जूंझणेरां ने जग जाण्या अवतारी
ए मेदपाट रा तू जाया चित्तौड़ा,
जूंझारां में थारी ऊंची सिरदारी ।

(२)

तू राज तिलक सूं महाराणा पद पायो,
पण भिनखपणा रो तिलक कियो खुद हाथां,
तूं राणां सूं छिन में बणग्यो वैरागी
तूं अलख जगाई, जाग्यो अणगिण राता ।

(३)

तू राजमुकट सिंहासण, सुखरो सपनो —
सब मेदपाट रे सुख रे खातर वार्यो,
तू धरती सोयो पातल-दूना जीम्यो,
तू मरण पंथ रो भेष अनूठो धार्यो ।

(४)

तूं खुदरे हाथां खुदरी चिता जलाई,
तू जल बल ने सोने सो चमक्यो, चाल्यो,
तू लोहारे रा लोहा ज्यूं जल जल ने,
जीवण रो साचो नुवो-नुवेलो ढाल्यो ।

(५)

तू राजदण्ड सूं विरत, राज्य सूं विलग्यो,
तू रच्यो मरण-त्यौहार, मरण व्रत पाल्यो,
तू भूख्यो, तिरस्यो वन वन अटक्यो, भटक्यो,
(पण) सत्तांधीशां रो गरब पलक मे गाल्यो ।

(६)

तू छप्पन री चोटी चढ़ने चिंघाड़्यो,
(के) रुक जा दिल्ली रा तुरक बादशा रुकजा?
आ अमर शहीदां–सतियां री धरती है,
झुक सके अगर तो इणरे आगे झुकजा ।

(६)

आ धरती गीदड़ नहीं, सिंघ जाया है,
जिणरी छाती में भर्यो वज्र फौलादी ,
जो बरबादी ने क़दम क़दम पर न्यौते ,
बदले में मांगे धरती री आजादी ।

(८)

आ धरती जाया आत्मबली, अभिमानी ,
ज्यांरी छायां सूं काल् कांपतो आयो ,
जो जीत्या सो जीत्या जुग रा जोधां सा ,
मरग्या तो मरने मरण-पंथ बतलायो ।

(९)

तू छप्पन री चोटी चढ़ने ललकार्यो ,
(के) आवो सिर रा सौदा करण्या सरदारां ,
धरती माता रो नाक बचावण खातर ,
म्यांनां सूं बाहर काढो अब तरवारां ।

(१०)

केसरिया कर कर उमड़्या दल गोगूंदे ,
गर्ज्या के झुकणो निज सत्ता में सोहवे,
परदेशी सत्ता आगे नहीं झुकांला ,
चाहे सूरज रो उगणो पिच्छम होवे ,

(११)

अकबर रे कांनां पोंहच्या ए संदेशा ,
भेजी मेवाडां वो फौजी चतरंगी ,
हलदी घाटी में जंग मच्यो जोधांरो ,
तू कूद्यो रण मे ले गिणती रा संगी ।

(१२)

रणचण्डी चेती, कुण हार्या कुण जीत्या—
इणरी तो केवल ख्याता रह गई साखी ,
पण तू मिट मिट ने अमिट लेख लिख मिटग्यो,
के अमर हुवा जो लाज धरण री राखी ।

प्रताप प्रतिज्ञा

—श्री केसरीसिंह बारहठ

(दोहा)

सुधर रान सबही सुन्यो, और नृपन आचार ।
पराधीन भूपन दिए, बार बार धिक्कार ॥

अरि गन तें डरि हों नहीं, करिहों नहीं कुकर्म ।
पग अकबर परिहों नहीं, धरिहों नहीं विधर्म ॥१०७॥

(मनहर)

सारीरिक सक्ति घटे प्रान के पयान समें,
तदपि घटाय हों न मैं तो मनुसाई को ।
कदाचित स्वास बढ़ि जाय अंतकाल बेर,
तदपि बढ़ाय हों न तुरक बड़ाई को ।
वृद्धता लिये तें झुकि जाय है शरीर तोहू,
तनिक झुकाय हों न सीस आततार्इ को ।
प्रानप्रिय परिजन को भूलि यदि जे है तोहूं,
भूलि हैं न पत्ता कबी भारत भलाई को ।

केसरीसिहजी बारहठ निवासी गांव सोन्याणा जिला उदयपुर द्वारा रचित 'प्रताप-चरित्र' से उद्धृत-काव्यांश ।

प्रताप-मान सम्वाद

—केसरीसिंह बारहठ

मान— रावरे हितू हैं सदा वाक्य मन कर्मना तें,
तातें मन मेरो कहिवे को अभिलाख्यो है।
कहत विचारे कोऊ मानत न ताकी एक,
सारे मित्र मण्डल को आप ठेल राख्यो है।
लाभ और हानि को विचार में न लावत हो,
ऐसो हट नाहक ही कैसे झेल राख्यो है।
महारान ज्ञानी व्है अज्ञानी की-सी बात करो,
केवल स्वतंत्रता मे कहू मेल राख्यो है॥

प्रताप— प्यारी हे स्वतंत्रता सबै ही जीव धारिन कौं,
छोरि कर याको मैं तो मन बहलाऊँ ना।
व्है के परतन्त्र तीनलोक को न राज चाहौं,
काहू के डराए हू तें दिल दहलाऊँ ना।
देवन के देव एकलिंग है हमारे नाथ,
ताके अतिरिक्त सीस काहू पै नमाऊँ ना।
हार जाऊँ समर, उजार जाऊँ देस, देह–
डारि जाऊँ तोऊ जमींदार कहलाऊँ ना॥

मान— सम्मति हमारी है सलाम करिवे की रान,
जिनकी सलाम बीच सम्पति को धाम है।
जिनकी सलाम ही ते भूपन के भूप होत,
जिनकी सलाम तें जहान बीच नाम है।
जिनकी सलाम तें असाध्य सोउ साध्य होत,
जिनकी सलाम तें सधै न कौन काम है।
नाहक ही ऐसो हट आप गहि लीजै नाहिं,
एक बेर कीजै पातशाह सौं सलाम है॥

प्रताप— कैसे तुर्क चर्नन मे तेगन धरत भूप,
वदन झुकाय कैसें सीस को नमावें है?

करत सलाम प्रात कैसे है विलोम गति ?
पीछी चोवदार कैसें लूम पकरावें है ?
कैसे कर बद्ध होय आमखास रहैं खरे,
कैसे महिपाल अधोदृष्टि सौं रहावें है ?
कहा करे मान ! हम सदातें असिक्षत है,
ऐसी सभ्यता सो वन्दे करनो न आवे है ।।

मान— कीनी है सलाम जिन भूपन ने मान कहे,
ताके निज भौनन में रहत आनन्द है ।
जाकी राज-रानियां उदग्र महलों के मध्य,
नूपुर वजात चली जात मन्द मन्द है ।
दम्पति की सुखद विलासता विलोकि वे कों,
नभ मे घरीक रुकिजात गति चन्द है ।
साह की कृपा के कैते सुघर विलासी वृंद,
सुख के हिन्डोरे चढे झूलत नरिन्द है ।।

प्रताप— कोउ नर सर्व भांति ऊचोहूं चढचो तो कहा?
जाको जस एकवार तांत पै चढचो नहीं ।
कंवर अपार धन धाम में बढचो तो कहा,
जाको मन जाति अभिमान में वढचो नहीं ।
पढि के पुरान, वेद पण्डित भयो तो कहा ?
जो पै कुल-धर्म-पाठ रंच हू पढचो नहीं ।
हायन हजार स्वास मुख तै कढचो तो कहा?
देस हित एक हू उसास जो कढचो नहीं ।।

मान— अकवर पातसाह भारत के भूपन को,
दासता की जकर जंजीर जरि दीने है ।
जापै भयो कोप को कटाच्छ जवनेश जूको,
ताके घर संजमनी बीच भर दीने है ।
कैते नृप सीस आसमान सों अराय रहे,
धाय धाय चर्नन में सस्त्र धर दीने है ।

आप को बिगारबे की बात हैं कितीक रान?
बडे बडे साहन को मात कर दीने है ॥

प्रताप— भीलन की पल्लिन मे फिरत रहोंगो सदा,
कुटी में रहोगो महलात में रहोंगो ना ।
खावत रहोंगो बैल पात गिरि कन्दरन,
पारतन्त्र व्यंजन को पावत रहोंगो ना ।
कूरम ! विधर्मिन को दास हों कहोगो कहा?
मै तो तुर्क हाय व्है के दच्छन रहोंगो ना ।
जाति व्है रहोगो मैं विजाति व्हे रहोगो कहा?
मात व्है रहोंगो मातहत व्है रहोंगो ना ॥

मान— भारत के भूप सब साह के अधीन भए,
छत्रिन की जाति मग आपको गहेगी ना ।
धकत दिलीस्वर की क्रोध की अगनि बीच,
बनि के पतग देह आपनीं दहेगी ना ।
कैवल स्वतंत्रता के कारन विलासता कों,
छोरि कर कष्ट नेक कबहू सहेगी ना ।
रान श्री प्रताप यह डावरे सी बात करो,
रावरे रखेते ही स्वतँत्रता रहेगी ना ॥

प्रताप— भारत के भूपति स्वतन्त्रता चहै न चहै,
नवरोजा जार कर्म कबहू सहैगे ना ।
सीसवद वन्स होय जनानी अवारी अग्र,
हूरम हजूर मह पैदल बहैंगे ना ।
दास के समान आमखास मे खरे ही खरे,
रेसम की लूम रास हमको गहेगे ना ।
फलचर कहेंगे त्रनचर कहेंगे लोग,
बनचर कहेंगे अनुचर कहेंगे ना ॥

चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी

—सौभाग्यसिंह शेखावत

चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पेंड पेंड पर लड़्यो सूरमों भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥
पान फूल वन पत्तियां पाई,
पाखर सेज सजाई ।
अकबर री अणपार फौज में,
वध वध खाग बजाई ॥
चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
बीजलसार सावलां रमियो भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥
हल्दीघाटी री आंगणियो,
बीरां रगत रंगाई ।
चेटकड़ो हाथीड़ा माथे,
खुड़ताला खूड़काई ॥
चेटक री टापा सू गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पान पान नै रंग कसूमल भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥
वट रजपूती दूभर वांकी,
आजादी अलसाई ।
पीथल री परवानों पाकर,
मरवांणो मुलकाई ॥
चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पेंड पेंड पर लड़्यो सूरमों भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥
कास खजाना रीता खाली,
भूख त्रखा भरमाई ।
स्याम ध्रमी भामासा आसा,
आडी आय वंधाई ॥
चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पेंढ पेंड पर लड़्यो सूरमों भमियो बीहड पहाड़ी ॥

खड्ग कूदालां खिणां कूप नै,
सद रगत नीर सींचाई ।
फूलो फली फसर कर फैली,
इसड़ी वेलि उगाई ॥
चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पैंड पैंड पर लड़्यो सूरमो भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥
हार जीत भगवत रै हाथ,
पुरसारथ सकलाई ।
आजादी री पौव लगाकर ॥
सूरो सुरग सिधाई ॥
चेटक री टापां सूं गूंजी आ धरती मेवाड़ी ।
पैंड पैंड पर लड़्यो सूरमो भमियो बीहड़ पहाड़ी ॥

—※—
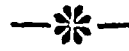
पातल और पीथल

—कन्हैयालाल सेठिया

अरे घास री रोटी ही,
जद वन विलावड़ो ले भाग्यो ।
नन्हो सो अमरचो चीख् पड़्यो,
राणा रो सोयो दुःख जाग्यो ।।१।।

हूं लड़्यो घणों, हूं सह्यो घणो,
मेवाडी मान वचावण ने ।
मैं पाछ नहीं राखी रण में,
वैरयां रो खून वहावण ने ।।२।।

जव याद करूं हलदी घाटी,
नैणां में रगत उतर आवै ।
सुख-दुख रो सायी चेतकड़ो,
सूती सी हूक जगा जावे ।।३।।

पण आज विलखतो देखूं हूं,
जद राजकँवर नै, रोटी नै ।
तो क्षात्र धर्म ने भूलूं हूं,
भूलूं हिन्दवाणी चोटी नै ।।४।।

आ सोच हुई दो टूक तडक,
राणा री भीम वजर छाती ।
आंख्यां में आंसू भर वोल्यो,
हूं लिखस्यूं अकवर ने पाती ।।५।।

राणा रो कागद वांच हुयो,
अकवर रो सपनो-सो सांचो ।
पण नैणं करचा विस्वास नहीं,
जद वांच-वांच ने फिर वांच्यो ।।६।।

बस दूत इसारो पा भाज्यो,
पीथल ने तुरत बुलावण नै ।
किरणां रो पीथल आ पूग्यो,
अकबर रो भरम मिटावण नै ॥७॥

"म्हें बांध लियो है पीथल ! सुण,
पिंजड़ा में जंगली सेर पकड़ ।
यो देख हाथ रो कागद है,
तूं देखां फिरसी कियां अकड़ ॥८॥

हूं आज पातस्या धरती रो,
मेवाड़ी पाग पगां में है ।
अब बता मनै किस रजवट के,
रजपूती खून रगां में है" ॥९॥

जद पीथल कागद ले देखी,
राणा री सागी सेनाणी ।
नीचे सूं धरती खसक गयी,
आंख्यों में भर आयो पाणी ॥१०॥

पण फेर कहीं तत्काल सँभल,
"आ बात सफा ही झूठी है ।
राणा री पाग सदा ऊँचीं,
राणा री आण अटूटी है ॥११॥

ज्यो हुकुम होय तो लिख पूछूं,
राणा रै कागद रै खातर ।"
"लै पूछ भलां ही पीथल ! तूं,
आ बात सहीं–" बोल्यो अकबर ॥१२॥

"म्हे आज सुणी है, नाहरियो,
स्याला रै सागै सोवै लो ।

म्हे आज सुणी है, सूरजड़ो,
वादल री ग्रोटाँ खोवैलो ॥१३॥

पीथल रा ग्राखर पढ़ता ही,
राणारी ग्राँख्यां लाल हुई।
"धिक्कार मनै, हूं कायर हूं,
नाहर री एक दकाल हुई ॥१४॥

"हू भूख मरूँ, हू प्यास मरूँ,
मेवाड़ धरा ग्राजाद रह्वै ।
हूं घोर उजाड़ां में भटकूँ,
पण मन में मां री याद रह्वै ॥१५॥

पीथल ! के खिमता बादल री,
जो रोकै सूर उगाली नै ।
सिंहा री हाथल सह लेवै,
वा कूख मिली कद स्याली नै" ॥१६॥

जद राणा रो सन्देश गयो,
पीथल री छाती दूणी ही ।
हिन्द वाणी सूरज चमके हो,
ग्रकवर की दुनियां सूनी ही ॥१७॥

राणा-प्रताप

—वृद्धिशंकर त्रिवेदी 'शिल्पी', उदयपुर

ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
ऐ ! भारतमाता रा सपूत !
ऐ ! स्वतन्त्रता रा अग्रदूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(१)

जाणूं हूं थारी रग-रग में, हो रगत बह्यो राजस्थानी ।
जाणूं थारी तलवारां में, हो बाप्पा रावल रो पाणी ।
कीरत कुम्भारी भालै में, थारे हरदम ही बसती ही ।
थें वे बगतर बांध्या जिणमें, साँगा री छाती कसती ही ।

बिण सोच कियां डाकणियां रो, घनघोर गुफा में घुस जाणो ।
कुल देवी रो कहणो सुणनें, नीडर व्है खड्ग उठा लाणो;
राणा हमीर री वा हिम्मत, थारी नस-नस में ही सागै ।
चूंडा ज्यूं देणो त्याग सकल जो त्याग करै कोई मांगै ।

वा उदयसिंग री सूझबूझ ।
हिवड़ै लें लडियो जूझ जूझ !
इतिहास बण्योडो हे सबूत !
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(२)

थें पडयो पगतले जद देख्यो, वो राजस्थानी राजमुगट
थें देख्या भाई-भाई जद, आपस में लड़ मरता कट-कट ।
भारत री छाती रौंद रौंद, वैर्‌यां रा बढ़ता दल आता ।
थें देख्या दुसमण रे कब्जे, पुरखां रा गाढ़ा गढ़ जाता ।

वो पदमण-करुणा रो साको, थारी आंख्यां में दौड़ गियो ।
उण धुआंधार धव धव करती, आंधी हिवड़ा ने कँपा दियो ।

अणवुझ्या अंगारा जौहर रा, राखोड़ी नीचे दबियोड़ा ।
वो जयमल-पत्ता रो मरणो, वे जकां जकां पड़िया फोड़ा ।
लोई रो घूंट तुरत पीदो ,
गांगेय-सरीखो प्रण कीदो ।
इतिहास बण्योड़ो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(३)

जो राजस्थानी राजपूत, एको कर लेवं आपस में ।
तो शार्दूलां सूं छेड़ करें, आ बात न वेर्‌या रे बस में ।
मुगलां सूं खारा हा पठान, खोई आजादी लेवण ने ।
खिलजी, सैयद, लोदी, सूरी, बैठा हा गुस्सा मे तण ने ।

अकबर आ बात जाणतो हो, इण में रत्ती भर झूठ नहीं ।
म्हारो तो बाल न बांको व्हे, जो रजपूतां मे फूट रहीं ।
पण, आ शतरंजी चाल नहीं, बांका राठौड़ समझ पाया ।
दुसमण सूं नाता जोड़ जोड़, उल्टा भायां पर गुर्राया ।
पातल ! थें कीदा सावचेत ,
भायां सूं तोड़ो नहीं हेत ।
इतिहास बण्योड़ो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(४)

पण, मानसिंग ने नहीं जंची, अकबर सूं कीकर घात करे ।
भोलो व्हेवं है राजपूत, कहदे सो पूरी बात करे ।
राजपूतां में एको न व्हियो, थारे मन में आ टीस रही ।
दिल्ली पर दुसमण राज करे, हिवड़े में कड़वी रीस रही ।

थें धार लियो हर कीमत दे, मायड़ रो मान बचाऊंला ।
चाहे दो चार बार हारूं, पण जीत अन्त में जाऊंला ।

म्हेलाँ रो मोह म्हनै कोनी, पाना पर खाऊँला रोटी ।
आजादी री रखवाली में, तन कर, दूँला बोटी-बोटी ।
सोनो, चांदी, सुख, सेज, छोड़,
थूँ गियो डूँगराँ दौड दौड़ ।
इतिहास वण्योडो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(५)

थें अलख जगायो घर घर जा, डेरा डाल्या झूँपडियाँ में ।
'सामन्ती' तज 'साथी' वणग्यो, अणथाहा दुखरी घड़ियाँ मे ।
'राणी जाया, मेणी जाया,' थें कह्यो बरोबर है सारा ।
रजपूत, भील, मेणा, सगला, हा थने सरीखा ही प्यारा ।

थें छापा-मार-युद्ध सिखला, आजादी रो दिवलो जोयो ।
भूखो-तिरस्यो ही लडचाँ कियो, पण सुख री नींद नहीं सोयो ।
वे 'सगर' 'शक्त' भी छोड गया, तो पण थें टेक नहीं छोड़ी ।
कर अपणी वजर-भीम-छाती, सब सहियो आण नहीं तोडी ।
जो एकबार थें लियो धार,
पाछो न कदै बदल्यो विचार ।
इतिहास वण्योडो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(६)

आयो मान ले मुगल-फौज, दिल्ली सूँ पढ़ उल्टी पाटी ।
डूँगर डूँगर री खाक छाण, पहुँच्यो सीधो 'हल्दीघाटी' ।
सँग लियाँ महाबत, शाहबाज, वे घणा घणा भट अभिमानी ।
अकबर रा छाँट्योड़ा जोद्धा, तातार और वे अफगानी ।

तो पातल ! थें चेटक चढ़नै, आडो फिर मारग रोक दियो ।
बाईस हजार बहादुर ले, मुगलाँ रो पाणी माप लियो ।

वो झालो-मान मरद बाँको, गोविन्दसिंग भील् राजा ।
सब जणाँ हूलस्या लड मरवा, बाजण लाग्या मारु बाजा ।

चेटक तुडवातो हो लगाम,
करवाने अपणो अमर नाम ।
इतिहास वण्योडो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(७)

'जय एकलिंग' कह टूट पड्यो, अणगिणती रो कर दियो ढेर ।
मूली-गाजर ज्यूँ मुगल फौज, कटग्रा में लागी नहीं देर ।
मेवाडी दस दस मुगलाँ सूँ, टक्कर लेता हा दौड़ दौड़ ।
चेटक चढ़ग्यो हाथी माथै, पण थें सलीम ने दियो छोड़ ।

गोला हमीद री तोपा रा, खलबली मचादी अरिदल मे ।
झाले दे दिया प्राण अपणा, लख थने मुसीबत रा पल में ।
सोलै हजार व्हे गिया खेत, रँग अपणै लोहू से माटी ।
यूँ स्वतन्त्रता रो मोल चुका, इतिहास रच्चो हल्दीघाटी ।

चेटक रो देख्यो त्याग अमर,
तो गियो सत्क रो नशो उतर ।
इतिहास वण्योडो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(८)

व्ही हार लडाई में तो पण थें मन में हार नहीं जाणी ।
आजादी रे अर्पण करदी, बाकी वचियोड़ी जिन्दगाणी ।
गाडोल्या तक घर-बार छोड, कर गिया उजागर आ धरती ।
तलवार, तीर, भाला घडिया, क्यूँ के आ सबरी माँ धरती ।

पच्चीस बरस तक अन्तिम दम, थूँ डिग्यो नहीं अपने प्रण सूँ ।
'सामा-कोदाँ सूँ पेट पाल, थूँ कदै न विमुख व्हियो रण सूँ ।

पण, हद होवै है धीरज री, अब उण रो भी छेड़ो आग्यो ।
जद अमरसिंग रे हाथां सूँ, वनविलाव रोटी लै भाग्यो !!

आखिर फर अपणो पत्थर-मन ।
थें लिख्यो पत्र दिल्ली फोरन ।
इतिहास बण्योड़ो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(६)

दिल्ली में हरख अपार हुओ, अकबर रे मनरी बात हुई ।
जाणैं अन्धारो जीत गयो, उजियाला माथै घात हुई ।।
पण पीथल दिल्ली बैठो हो, तो फेर अँधारो रहे कठै ।
सूरज-वंशी री देख-रेख, खुद सूरज करतो रहे जठै ।।

पीथल अकबर ने कह्यो तुरत, फोनी ए राणारा अक्खर ।
कुण तो पण कीदो है मजाक, वो जीतेजी लेला टक्कर ।।
उण लिखिया दो ही बोल जकां, वा बात न विगड़ सकी थारी ।
उल्टी अकबर ने पीथल सूँ, प्यादै री मात मिली भारी ।

वो सुरसत रो सुत हो सागै,
उण रे कहतां कुण न्हीं जागे ।
इतिहास बण्योड़ो है सबूत .
ऐ ! राजस्थानी राजपूत !
राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(१०)

जद देख्यो सोना-चांदी बिन, बिन फौज टल्ला प्रण पाल्यो ।
कीदी अपणी करड़ी छाती, मेवाड़ छोड़ ने थूँ चाल्यो ।
पण, आ बड़ भागण सां जामण, बेर्यां री दासी बण रेवै ।
धन री ढेरी माथै बैठा, बेटा ओ कीकर सह लेवै ।

वो भामाशाह तुरत दौड़यो, थेल्यां मे भरी असरफ्यां लै ।
बोल्यो राणा मत व्है निराश, लड जितरै संकट नहीं टलै ।
थूं फेर एकठी कर फोजां; आड़ावल रो अभिमान वचा ।
व्हे देस न दुसमण रे अधीन थूं वैरयां सूं घमसाण मचा ।

जो भौम जणै इसड़ा जाया ।
दुसमण री पड़ न सकै छाया ।
इतिहास वण्योडो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

(११)

ऐ ! सागैड़ा गुहिलौत ! गुफा रा नाहर थूं वारै आयो ।
कीदीं दकाल, वण गियो काल ! थूं दुसमण रे माथै छायो ।।
गोविन्दसिंग, वो शक्तिसिंग, वो अमरसिंग भीलूराजा !
दुसमण रा पांव उखाड़ दिया, पाछा वाज्या मारू वाजा ।

मांडल, चित्तौड़, उंठाली नै, दो चार किला वाकी रहग्या ।
पण सूरजड़ो आथमग्यो तो, सपनाँ रा शीश-महल ढहग्या ।
भारत माँ रोई सिर धुन धुन, सहियो न गियो ओ वजरपात ।
थें कीदी गोद जकाँ खाली नहें, विधना री टल सकी घात ।

थूं मरयो नहीं ऐ ! मृत्युञ्जय !
ओ देश करै थारी जय-जय ।
इतिहास वण्योड़ो है सबूत ।
ऐ ! राजस्थानी राजपूत ।

राणा प्रताप ! राणा प्रताप !!

Pratap the mighty

H. S. Mordia, Udaipur.

Who knows not Pratap
Our Pratap the mighty,
The ideal hero
In world's history,
The lord of freedom
Power and piety',
Who stood unbent
Before Akber's might ?

Might that was strongest
In men, money and opportunities
Of any Emperor
Of the then world :
Of the then world—
World which produced
The finest specimen of kingship
Both in the East and the West ?

Who knows not pratap—
The Sun of the Sun-got clan—
The very example of
Living endurance,
Tenacious perseverance,
Indomitable courage,
Firm determination and of the
Most pure and spotless character—
A rare combination to be found
In the history of the world ?

The Last Dialogue

Shri J. S. Singhvi, I. A. S., Udaipur.

The faithful chiefs of many a glorious day,
Stood round the dying hero's bed of hay,
A streak of mental anguish made Salumbra inquire,
"What afflicts the valiant heart of the worthy sire ?"

"Chiefs thoughts of tomorrow torment my soul,
No longer in medpat freedom's drums may roll,
Amar may not lay aside mirth on Pichhola lake,
And you may not face the foe for freedom's sake"

"Dewan : we' ll always keep Medpat's honour at heart.
And face the foe steadfast bearing our part.
We know not fear once our swords are unsheathed,
We know that here a great trust in bequeathed."

'Sleep well' O master without peer in chivalry and fame,
We swear by Bapa's throne and Ekling's name
Despite foe's legions strong and their might,
We' ll stand together for the country and the Right."

विविध लेख

आधुनिक विचारक एवं शोध विद्वान

- राष्ट्रीय व्यक्तित्व
- कृतित्व
- सिद्धान्त एवं नीतियां

ज्वालाकाथकराल शोणित झरीमन्त्रे हृढे रचश्चले :
कालाकार कृपाण हस्तवलि तैर्नृत्यत्कबन्धैर्भुवं ॥
कृत्वालङ्कृतिमेषयच्च वसनं श्री चित्रकूटाभिधन्त्यक्त्वाब्दे
युग बाहुषट्क्षितिमिते प्रोक्ते पुरे प्राविशत् ॥ ८ ॥

सोयं कार्यवशादवाप्य नगरं झाडोल सञ्ज्ञे पुनः
स्मृत्वा तत्र पद स्वकीयमगमत्कैलाससञ्ज महत् ॥
वर्षोस्मिन् वसुहस्तषट्क्षितिमिते राज्याभिषिक्तोभवतस्यायं
तनय प्रतापउदितः सन्दर्शितेऽब्दे सुधी ॥ ९ ॥

यस्यायं यत्प्रतापेन युधि मुहुरथो दह्यभानस्तुरुष्काधीशः
सञ्ज्ञान्न लेभे न च जयमपि सद्भानुना भूप्रदेशे ॥
तेनायं श्री प्रतापाधिय इति गदितो वीरधीरोविवस्वांश्चावण्डाख्ये पुरे यः
खगशर रसभूसम्मिते स्वर्जगाम ॥ १० ॥

(गोकुलचन्द्रमा मन्दिर प्रशस्ति,)

मराठी साहित्य पर राजपूतों के इतिहास का प्रभाव

—डा. एम. एस. कान्डे

ईसा की आठवीं शताब्दि से लगभग १००० बरसो तक विदेशी अरब, तुर्क मुगल आदि आक्रमणकारियो के विरूद्ध राजस्थान तथा प्रमुखतः मेवाड के राजपूत वीरों ने जो संग्राम किया वह भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। बापा रावल के काल से राजस्थान के विभिन्न राजवंशो ने अपने धर्म, शांति और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये जो अलौकिक वीरता दिखाई वह राजस्थान के साथ समूचे भारतीय इतिहास को प्रदीप्त करती है। भारत के राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए राजपूत वीरो ने जो वीरता एवं बलिदानपूर्ण कार्य किये हैं, उनका यशोगान करना हर भारतीय का कर्तव्य है।

मध्यकालीन मराठी साहित्यः—

इस वीरकाल की चरमसीमा मध्यकाल मे हुई। मध्यकालीन भारतीय भाषाओं का साहित्य मूलतः आध्यात्मिक है। राम कृष्ण अथवा शिव गणेश आदि देवताओ तथा उनके भक्तो के आदर्श इस साहित्य मे चित्रित हैं। समकालीन वीरो की उपेक्षा अतीत के भक्त चरित्रो का गान करना इस काल के कवियो को अधिक भाता था। विशिष्ट काल के वीर पुरुषों की अपेक्षा, शाश्वत सुख को देने वाले भगवान की और उनके भक्तो की अर्चना करना इन सन्तो का उद्देश्य रहा। मध्यकालीन मराठी साहित्य मे यह प्रवृति विशेष रूप से दिखाई देती है। ईसा का १३ वीं शताब्दिसे १९ वीं शताब्दि तक महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, मुक्तेश्वर, वामन पंडित मोरोपंत आदि प्रतिभा–संपन्न कवियों की एक परम्परा प्राप्त होती है, किन्तु इन कवियों ने सामयिक वीरों का चरित्रगान नहीं किया है। महाराष्ट्र के इतिहास में स्वाधीन मराठा राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति सभी भारतीय श्रद्धाभाव रखते हैं। उनसे प्रेरणा लेने वाले महाराष्ट्रीय वीरो में नानाजी, संताजी, संभाजी, धन्नाजी, बाजीराव, ज्येष्ठ माधवराव आदि वीर पुरुष प्रसिद्ध हुए हैं। लेकिन उनके समकालीन साहित्यकार राम, कृष्ण की कथाओं में ही अधिक रंगे रहे। धर्म एवं संस्कृति पर होने वाले अत्याचारो के प्रति वे जागरूक थे, किन्तु भगवद् आराधना को ही वे एक मात्र मुक्ति का मार्ग मानते थे। इस कारण मध्यकालीन महाराष्ट्र में प्रायः राष्ट्रवादी वीरकाव्य की रचना प्राप्त नहीं होती है। इस दृष्टि से महाराष्ट्र धर्म का संदेश देने वाले समर्थ रामदास ही मात्र अपवाद रहे।

राजपूतों संबंधो ऐतिहासिक उपन्यासः—

१९ वीं शताब्दी के मध्यकाल में अंग्रेजी शासन स्थिर हुआ। इसी के आसपास स्वाधीनता के सपने देखने वाले देश भक्त विचारको की पीढी का उदय हुआ। उन्होने अंग्रेजो का विरोध करने के लिये कलम को तलवार की तरह प्रयुक्त करके

भारत के गौरवशाली अतीत को रेखांकित किया। महाराष्ट्र के साहित्य में भारत के अन्य प्रदेशों के वीर पुरुषों के चरित्र भी चित्रित किये गये। उसी काल मे मराठी साहित्य मे राजपूत वीरो और वीरांगनाओ का गुणगान होने लगा। राष्ट्रवीरों के चरित्र गान से जन सामान्य को प्रेरणा देने की विचारधारा को, लोकमान्य तिलक द्वारा प्रवर्तित गणेशोत्सव और शिवाजी-उत्सव जैसे राष्ट्रीय समारोहो से बल मिला। 'तिलक युग' के इस नवीन साहित्यिक जागृति-काल मे सामाजिक उपन्यासो के साथ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये। अनेक उपन्यासकारो ने राजपूत इतिहास से कथाए और चरित्रो को चुना है। मुख्यतः राणा प्रताप, राणा हमीर, पद्मिनी, दुर्गादास आदि चरित्रो को लिया गया है। मराठी के उपन्यास सम्राट श्री हरिनारायण आप्टे ने अपने उपन्यास में औरंगजेब की सेना का सामना करने वाले राजसिंह की कथा वर्णित की है। श्री हरिनारायण आप्टे ने दृढ प्रतिज्ञ चन्द्रसिंह तथा राणा हमीर आदि की कथाएं वर्णित की है। इसके अलावा बापा रावल, चित्तौड़ के युद्ध एवं जौहर आदि उनके प्रिय विषय रहे हैं। लगभग २५ उपन्यासो का विषय राजपूतो के इतिहास पर आधारित है। हरिनारायण आप्टे और नारायण हरि आप्टे दोनो के उपन्यास लोकप्रिय हुए हैं लेकिन हरि नारायण का 'रुपनगरचो राजकन्या' शीर्षक उपन्यास इन सभी मे कला की दृष्टि से प्रथम कोटि का है।

ऐतिहासिक नाटकः—

राजपूतों के शौर्य, साहस, बलिदान और स्वातन्त्र्य प्रेम को विषय बनाकर मराठी साहित्य में कई नाटकों की रचना की गई है। ई.सं. १८९२ मे श्री शिरवलकर और मोडक द्वारा लिखा हुआ 'राणा भीमदेव' नाटक लगभग ३० वर्षो तक रंगमंच पर प्रभाव डालता रहा। इन लेखकों में से श्री शिरवलकर ने अपने 'पन्नारत्न' अर्थात् 'दिव्य राजनिष्ठा' नामक नाटक में पन्नाधाय के कल्याणोदात चरित्र का अंकन किया है। राणा प्रताप के जीवन पर ३-४ नाटक लिखे गए हैं। लेकिन वीररस की अपेक्षा भक्तिरस की प्रियता के कारण मीराबाई की कथा मराठी मे अधिक लोकप्रिय हुई। श्री शुक्ल और श्री देसाई द्वारा मीरा के जीवन पर लिखित नाटक अत्यधिक सफल हुए। श्री अ. वा. वरवे कृत 'महाराणा प्रतापसिंह', श्री कृ. प्र. खाडिलकर कृत 'प्रेमध्वज', श्री शा. गो. गुप्ते कृत 'रक्तध्वज', श्री ह. कृ. कुलकर्णी कृत 'प्रतापी प्रतापसिंह', श्री ग. कृ. बोडस कृत 'राणा प्रताप' आदि नाटकों की रचना राणा प्रताप के जीवन को लेकर हुई।

ऐतिहासिक काव्यः—

नाटककारों की अपेक्षा कवियों ने राजपूत इतिहास का चित्रण अधिक सफलतापूर्वक किया है। मराठी के कवियों का युद्धवीर राजपूत और उनका साथ निभाने वाली स्त्रियों के प्रति सदैव आकर्षण रहा है। फुटकर कविताएं, प्रबन्ध काव्य और दीर्घ कथात्मक काव्य; तीनों विधाओं में मराठी के कवियों ने राजपूतो के इतिहास से

कथावस्तु ली है। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रबन्ध काव्य की विधा का प्रचलन हुआ और उसमें ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य विशेष लोकप्रिय हुए। श्री ब. रा. प्रधान द्वारा ई० सं० १८६७ में लिखित 'देवसेनी' नामक अनूदित काव्य को जयपुर के इतिहास की पृष्ठभूमि प्राप्त है। ई० सं० १८८८ में वासुदेव शास्त्री खरे द्वारा लिखित 'यशवंतराव' महाकाव्य में पेशवा--काल के व्यक्तियों का नाममात्र आधार ग्रहण कर मराठों और राजपूतों के दीर्घकालीन संघर्ष का चित्रण हुआ है। इस चित्रण में इन दोनों समाजों के देशभक्ति, वीरता आदि गुणों का सम्मान करके कवि ने राष्ट्रहित की दृष्टि से उनके एकता की आवश्यकता प्रतिपादित की है। हिन्दी के महान् लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस काव्य के बारे में लिखते हैं, "भारत में आदर्श नरेश, देशभक्त, वीर शिरोमणी और महात्मा हो गए हैं। हिन्दी के सुकवि उन पर काव्य करें तो बहुत लाभ हो। 'पलाशीर युद्ध', 'वृतसंहार', मेघनाद वध' और 'यशवन्तराव महाकाव्य' की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं है। वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिये।"

श्री दुर्गादास तिवारी नामक एक हिन्दी-भाषी कवि ने महाराष्ट्र मे रहकर मराठी में वीरकाव्यो की रचना की है। उनके 'महाराणा प्रतापसिंह' प्रबन्धकाव्य में प्रतापसिंह की पत्नि को भी उनके समान महत्वपूर्ण स्थान देकर उनके वीरकृत्यो का वर्णन किया गया है। तिवारी के 'नन्दिनि' काव्य में औरंगजेब कालीन पृष्ठभूमि है और उसमे राजपूतों के अपने आपसी भेदों के कारण मुगलों से हार खानी पड़ी यह ऐतिहासिक सत्य प्रस्तुत किया गया है।

अनेकों मराठी प्रबन्ध काव्यों में मेवाड़ के इतिहास की कृष्णाकुमारी की अन्तः आत्मा को छूने वाली करुणकथा वर्णित है। श्री जुवेकर, श्री पारखी, श्री गणेश शास्त्री लेले, श्री गो. वा. कानिटकर और श्री ताटके आदि कवियों ने इस विषय को लेकर काव्य रचना की है। इन कवियों में से श्री गणेश शास्त्री लेले (१८७४) और श्री कानिटकर (१८८२) के काव्य विशेष आकर्षक और रसिकप्रिय हुए हैं। विशेषतः इन काव्यों में कृष्णाकुमारी का विषपान और उसकी माता का शोक, ये दो प्रसंग करूणरसपूर्ण तथा प्रभावशाली बने हैं। श्री गो. क. कानिटकर के 'अकबर बादशाह' (१८७९) प्रबन्ध काव्य में राणा प्रतापसिंह के संदर्भ हैं, यद्यपि नायकत्व अकबर को दिया गया है। श्री ना कृ. गद्रे (१९०१) ने 'श्री महा प्रताप सिंह काव्य' प्रबन्ध काव्य लिखा है।

आधुनिक मराठी काव्य में कवि विनायक श्री वि. ज. करदीकर ने प्रथमतः राष्ट्रीय मुक्तक काव्य लिखे, जो राष्ट्र नायको के आदर्श और सामयिक भावो से ओतप्रोत हैं। अतीत के गौरव की प्रवृति सर्वत्र प्राप्त है। उनके 'वीरमती' काव्य में जोधपुर नरेश जसवतसिंह की वीर पत्नि वीरमती का चरित्रांकन हुआ है। "समरांगण में पीठ दिखाने की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कारी है" यह सन्देश इस काव्य से मिलता है। राजपूत वीरांगनाओं का चरित्र चित्रण विनायक के काव्य की

एक विशेषता है। इस चित्रण से परतन्त्र राष्ट्र को प्रेरणा प्राप्त होगी, ऐसा उन्हे विश्वास था। इस विश्वास के साथ उन्होंने संयोगिता, कृष्णाकुमारी, पन्ना, दुर्गावती, पद्मिनी आदि के चरित्र अंकित किए हैं। इन वीरांगनाओ के जीवन में व्यक्तिगत मानापमान या विलासिता की अपेक्षा राष्ट्रीय मानापमान और स्वातन्त्र्येच्छा को अधिक महत्व दिया गया है। स्वत्व रक्षा के लिए हर बलिदान के लिए वे हमेशा प्रस्तुत रहती हैं। राजपूत स्त्री जीवन की यह उदात्त और स्फूर्तिदायी जीवनकथा कवि विनायक ने अनेक काव्यो मे गायी है।

विनायक मात्र कवि थे फिर भी राजपूतों के जीवन से वे आकृष्ट हुए। स्वतन्त्र्य वीर सावरकर और उनके सहयोगी स्वातन्त्र्य शहीद गोविन्द तो खुद स्वातन्त्र्य संग्राम मे हिस्सा लेने वाले व्यक्ति थे। अतः अगर उनके काव्य में राजपूतों के आदर्शो का चित्रण मिलता है तो उसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कवि गोविन्द ने अपने 'भारत प्रशस्ति' काव्य में राणा प्रताप को भारत के श्रेष्ठ पुरुषो में गिना है।

"तो विक्रम तो प्रताप चद्रगुप्त तो ।।
छत्रपति छत्रसाल,पृथ्वीराज तो ।।
भारतीय वीरसिंह संघ होय तो ।।"

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपनी कविता 'हिन्द सुंदराती' मे लिखा है,

प्रताप शिव वंदा। श्री गुरु गोविंदा ।।
संभव दे, उद्भव दे। वेजी स्फूर्ति ।।"

सावरकर के सहयोगियो में मराठों के इतिहास के साथ राजपूतों के इतिहास की स्मृति भी देशभक्ति की प्रेरणा के रूप में रखी जाती रही। उन लोगो में 'गावा चित्तोरगढ़ वा शनवारवाड़ा' (चित्तौड या शनवारवाडे का स्तुति गान करना चाहिये) जैसे समारोह मनाएं जाते थे और उनके मण्डल की स्त्रियां स्वत्व रक्षा के लिये जौहर करने वाली राजपूत वीरांगनाओ के आदर्श सामने रखती थीं।

'वाजी प्रभु ठरू घदे युवसंघ सर्व'
'आम्ही चित्तौड़ युवती युवती सर्गव'
ऐसे उद्गार निकाले जाते थे।

मराठी मे ऐतिहासिक और वीररस प्रधान काव्य के लिए 'पोवाडा' दीर्घ कथात्मक और गेय काव्य--प्रकार प्रयुक्त होता है। तिलक युग के अनेक कवियों ने लोगो के मन की स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत करने के लिए पुराने और नए वीरों की कथाओ पर काव्य रचना की और अनेक शायरों ने जनसमूह के सम्मुख उनका गान किया। इनमें से अनेको शायरो ने प्रतापसिंह के उज्वल चरित्र का गान किया। श्री अडविलकर कृत 'रजपूत रमणी अर्थात् चितुरगढचा वेढा' या श्री खाडिलकर कृत 'क्षात्रकुलमणा पृथ्वीराज चव्हाण' जैसे पोवाड़ो को छोड़ें तो अन्य अनेको की रचना प्रतापसिंह के जीवन पर ही हुई है, जिसमें श्री मुचाटे कृत राणा प्रतापसिंहाचा पोवाड़ा, श्री साठे कृत स्वधर्मनिष्ठ वीर राणाप्रतापसिंह, श्री जावडेकर, सोपानदेव कृत प्रतापीप्रतापसिंह आदि प्रसिद्ध हैं।

बाल साहित्य:-

पाठशाला के छात्रों में वीरवृति निर्माण हो इसलिए उनके लिए वीरकाव्य लिखने की परम्परा मराठी साहित्य में निर्मित हुई है। इस परम्परा में श्री दसनूरकर, श्री चिपलूनकर, श्री औरी आदि लेखको ने राजपूतों के इतिहास की घटनाओं पर कथालेखन किया है। श्री कारखानीस ने 'कृष्णा कुमारी', 'साध्वी मीराबाई' और 'स्वामिभक्त पन्ना' तीन बाल नाटक लिखे हैं। श्री द०कृ० कुलकर्णी ने 'प्रतापी प्रतापसिंह' बाल नाटक की रचना की है।

आधुनिक काल के देशभक्त कीर्तनकारों ने आध्यात्मिक या भक्तिरसात्मक देवता चरित्रों और संतचरित्रों के साथ ऐतिहासिक वीर चरित्रो को भी अपने कीर्तनो में स्थान दिया है। इनमें राजपूत वीर कथाओं को भी स्थान मिला है। श्री वा. शि. कोल्हटकर ने 'सती पद्मिनी' और 'वीरांगना संयोगिता' की कथाओं को कीर्तन के लिए लिख कर प्रकाशित किया है।

इतिहास ग्रंथ:—

ललित साहित्य की अपेक्षा वैचारिक साहित्य की निर्मिति कम मात्रा में होती है। राजपूतों का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान होने की वजह से अनेक मराठी विचारकों ने जीवनी और इतिहास विधाओं में राजपूत इतिहास का अध्ययन किया है। जीवनी में राणा प्रताप को स्थान मिला है। उस काल में कर्नल टॉड के 'एनल्स ऑफ राजस्थान' ग्रंथ से लोग आकृष्ट हुए थे। ललित साहित्य में इस ग्रंथ के आधार पर अनेक उपन्यासों, नाटकों और काव्यों की रचना हुई। इसी ग्रंथ पर आधारित लोकहितवादी द्वारा लिखित 'उदेपुरचा इतिहास' (१८९२) ग्रंथ २ वर्षों में दो बार मुद्रित हुआ। इसके लगभग ४० वर्ष बाद अमरावती में रहने वाले श्री ह. वा. देशपाण्डे ने राजपूतों के इतिहास का सूक्ष्म परिशीलन करके दो ग्रंथ लिखे। 'राजपूत राज्याचा उदय व ह्रास' ग्रंथ में मेवाड़, जयपुर जोधपुर, बून्दी आदि के राजपूत घरानों का राजनैतिक इतिहास दिया है। 'राजपूत संस्कृति' ग्रंथ में राजपूतो के जीवन की विशेषताओ की तथा भारतीय इतिहास को उनकी देन का वर्णन करके उनके दोषो और परम्परा-ह्रास के कारणों की भी चर्चा की गई है। आज के प्रसिद्ध मराठी विचारक डा० पु ग. सहस्त्रबुद्धे ने अपने ग्रंथ 'हिन्दु समाज: संघटना आणि विघटना' में ८०० वर्षों तक इस्लाम के आक्रमणों का सामना करने वाली राजपूतो की वीर परम्परा का वर्णन करके उन कारणों की चर्चा भी की है जिनसे राजपूत भारत मे एक हिन्दू साम्राज्य प्रस्थापित नहीं कर सके।

भाव प्रधान ललित साहित्य और विचार प्रधान ललितेतर साहित्य दोनों विभागो ने मराठी में राजपूतो के इतिहास को प्रयुक्त किया है। उनके इस इतिहास को देखते हुए दो बातें स्पष्ट हो जाती है। एक यह कि भारत के भावी पीढ़ी को अपनी सुख-सम्पन्नता को अर्जित करने के लिए राजपूतो की सफलताओं को ध्यान मे लेना चाहिए। यह बात यहां के विद्वानो ने स्वीकार की है। दूसरी

बात यह है कि मराठी कवियों की दृष्टि सीमित नहीं है। मराठों के गौरवशाली अतीत के साथ राजपूतों की स्वतन्त्रता के हेतु बलिदान देने वाली गौरवशाली परम्परा को भी उन्होंने सामाजिक आदर्श के रूप में लगातार चित्रित किया है।

इस तरह का वीररसपूर्ण साहित्य ई० स० १९३० तक ही अधिक मात्रा में निर्मित हुआ। यही बात मराठों के इतिहास के बारे में भी है। १९३० के बाद ऐतिहासिक उपन्यासों, नाटकों, काव्यों या अन्य विधाओं की रचना कम मात्रा में हुई दिखाई देती है। इसका कारण उस युग की राजनैतिक परिस्थितियों मे ढूंढा जा सकता है। १९२० ई० मे लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद देश में गांधीजी का प्रभाव बढा। इस कारण महाराष्ट्र में तिलक से प्रेरित क्रान्तिकारी विचार-धारा का प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया। कुछ वर्षों तक एक प्रकार से ऐतिहासिक साहित्य की रचना बन्द रही। लेकिन आधुनिक काल में फिर एक बार इसकी ओर प्रवृति बढ़ रही है। राजस्थान के वीरों, मुख्यतः महाराणा प्रताप को महाराष्ट्र के जन-जीवन में बड़ा महत्व दिया जाता है। आज भी महाराष्ट्र के किसी भी राष्ट्रीय समारोह में शिवाजी के साथ प्रतापसिंह की तस्वीर भी पूजी जाती है। भारतीय परम्परा में राजपूत वीरों ने जिन आदर्शों की प्रस्थापना की है वे महाराष्ट्र को सदैव स्मरण रहेंगे और महाराष्ट्र के कलाकार राजपूत इतिहास से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे।

सदो दयोद्भवो भास्वान् प्रतापो वारूणीं जहौ।
भवत्सकवरध्वाते न संन्ध्याक्तो न चारस्तभाः ॥४०॥

कृत्वाकरे खड्ग लतां स्वबल्लभां प्रतापसिंहे समुपागते प्रजे।
साखंडितामानवतीद्विषन्चमूः सकोचयंती चरणं पराङ्मुखी ॥४१॥

[जगन्नाथराय मन्दिर प्रशस्ति, उदयपुर]

महाराणा प्रताप और कर्नाटक

—श्री नगेश हस्वार

कर्नाटक का भरतखंड के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास में बहुत महत्व का स्थान है। उसकी अपनी निजी ऐतिहासिक विशिष्टता है तथा उसकी भारतीय संस्कृति को अपनी विशिष्ट देन रही है।

भारतीय इतिहास में कर्नाटक :—

भारतीय इतिहास के शताब्दियों लम्बे काल में जब-जब भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, घटनाएं घटी तथा नवीन विचारधाराओं ने जन्म लिया, उनका कर्नाटक पर बराबर प्रभाव पड़ा है। भारत के सम्पूर्ण इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह कहा जा सकता है कि अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाएं एवं परिवर्तन प्रायः उत्तरी भारत में ही हुए हैं क्योंकि उत्तर भारत पर निरन्तर विदेशी आक्रमण होते रहे और स्वभावतः उन आक्रमणों तथा दासता के विरुद्ध आजादी की जो चेष्टाएं वहां की गई वैसी अन्य प्रान्तो में नहीं हुई।

आजादी का सच्चा मूल्य ऐसे लोग ही समझ सकते हैं जो उसकी रक्षा के लिये सर्वस्व अर्पण करते हैं। राष्ट्र के लिये रक्त तर्पण करने वाले स्वातन्त्र्य वीर पुरुषसिंह व्यक्ति हमारे इतिहास के हर एक पन्ने में मिलते हैं। ऐसे पुरुष सिंहों में चित्तौड़ के राणा प्रतापसिंह का स्थान केवल राजपूताना के इतिहास में ही नहीं बल्कि समस्त भारत के इतिहास में सर्वोच्च है। उसका आदर्श और राष्ट्र प्रेम भारत के ऐतिहासिक आकाश में ध्रुव तारे की भाँति अटल रूप से प्रदीप्तमान हैं।

ऐसे महापुरुषों के आदर्श और कार्य दूसरों के लिये प्रेरणास्रोत और स्फूर्तिदायक होते हैं। राणा प्रताप और शिवाजी के अनुपम जीवन से प्रेरणा पाकर भारत के असंख्य लोग राष्ट्र के लिये शहीद हुए हैं। राणा प्रतापसिंह के त्याग, बलिदान, राष्ट्र-प्रेम आदि गुणों का प्रभाव कर्नाटक की जनता पर उतना ही पड़ा है, जितना कि अन्य प्रदेशों पर।

भारत के इतिहास की विशेषता है विभिन्नता में एकता। यद्यपि भारत के विभिन्न भागों का इतिहास अलग अलग रहा है, किन्तु वे एक दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं और उनमें एकता का सूत्र सदैव जीवित रहा है। उत्तर भारत में कई बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित हुए, उनम बहुत कम दक्षिण में पहुंचे। जो साम्राज्य दक्षिण तक फैले वे बहुत कम समय तक टिक पाये। दक्षिण के कतिपय राज्यों ने भी उत्तर भारत के प्रदेशों को विजित किया किन्तु वे भी बहुत दिनो तक न रहे। इसका कारण यही है कि उत्तर और दक्षिण क बीच में दुर्गम पर्वत श्रेणियां एवं जंगल अवस्थित हैं। इसलिये उत्तर और दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध अखंड होने पर भी राजनैतिक दृष्टि से इन दो भागो का सम्बन्ध पुरातन इतिहास में अधिक नहीं रहा है।

विजयनगर साम्राज्यः—

राणा प्रताप के पहले दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य उत्कर्ष की स्थिति में था। इसके राजा लोग सदा बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुन्डा आदि मुसलमान राज्यों के साथ, अपनी स्वतन्त्रता वनाये रखने के लिए, लडते आए थे। राणा प्रताप ने अप्रत्यक्ष रूप से विजयनगर से स्फूर्ति पाई होगी। किन्तु विजयनगर साम्राज्य के अन्तिम समय में विजयनगर के राजाओ ने राणा प्रताप से प्रेरणा ग्रहण की है। वे अन्त तक मुसलमानों से हिन्दू साम्राज्य की रक्षा के लिए प्रताप की भांति लड़े। इतना ही नहीं यह कह सकते हैं कि सारे भारत के लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए राणा प्रताप से प्रेरणा प्राप्त की है।

राणा प्रताप की वीर कहानी कर्नाटक के घर घर में प्रचलित है। कर्नाटक में जो राजपूत लोग हैं वे आज तक राणा प्रताप को अपना आदर्श मानते हैं। मुस्लिम आधिपत्य एवं अत्याचार से पीडित होकर वहुत से राजपूत स्वतन्त्रता-उद्वेग से मुस्लिम राज से दूर होकर कर्नाटक में आ वसे थे। इन लोगो ने कर्नाटक के लोगो को मुस्लिम राज्य के विरुद्ध लडने में सहयोग दिया। कर्नाटक के लोगो में अपने यहां के राष्ट्र-वीरों की भाति प्रताप भी गौरव और आदर का पात्र वना है। राणा प्रताप की स्वातन्त्र भावना, स्वाभिमान, स्वदेश-प्रेम, अपूर्व त्याग आदि का कर्नाटक के सभी लोग प्रशसा करते आए हैं।

कन्नड़ साहित्य में प्रताप:—

प्रताप के वारे म कई पुस्तकें कन्नड़ भाषा में लिखी गई हैं। १९५४ में मैसूर के काव्यालय, प्रकटनालय द्वारा प्रकाशित वासुदेवय्या का 'आर्यकीर्ति' नामक ग्रन्थ अमूल्य है। इसमें राणा प्रताप के जीवन का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कर्नाटक के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री पंडित लि. वें. गलगनाथ ने बीसवीं सदी के प्रारम्भ में राणा प्रतापसिंह के समग्र जीवन को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया। 'राणा प्रताप सिंह' उपन्यास सारे कर्नाटक में जनप्रिय हुआ है। उसके वाद भी कई लोगों ने प्रताप के जीवन पर ग्रन्थ रचे हैं। श्री सा. शि. मरुलय्या रचित 'राणा', नाटक ने रंगमंच पर भारी ख्याति प्राप्त की है। साथ साथ श्री मिटीजी रचित नाटक 'राणा प्रतापसिंह' बहुत ही जनप्रिय हुआ है। कर्नाटक मे विद्यालय कक्षाओ की पाठ्य पुस्तको मे राणा प्रतापसिंह की आदर्श जीवनी का समावेश किया गया है। इसके अलावा कन्नड भाषा मे कई और पुस्तकें निकली हैं।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दि के ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम को महाराणा प्रताप के स्वातन्त्र्य प्रेम, अदम्य साहस, उत्कट त्याग एवं अनुपम वलिदान से भारी प्रेरणा मिली। स्वय कर्नाटक प्रदेश के स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने प्रताप एवं शिवाजी जैसे महापुरुषों के आदर्श से वड़ी शक्ति और विश्वास प्राप्त किया है।

स्वातत्र्य संघर्षः—

१८२४ ई० में कर्नाटक में सर्वप्रथम स्वतन्त्रता के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिये कित्तूर चेनम्मा साहस के साथ तलवार खींचकर खड़ी हुई। चित्तौड के युद्धों एवं शाको तथा प्रताप के बलिदान का आदर्श उसके सन्मुख था। उसके बाद कर्नाटक में आजादी का जो संघर्ष चला उसमें हम राणा प्रताप के आदर्श की झलक देख सकते हैं। उस समय में जिन देश-प्रेमी नेताओं की गाथा गाकर आंदोलन किये गये उनमें हमें आदर्श पुरुष प्रताप का नाम भी मिलता हैं। कर्नाटक के नेता कर्नाटक कुल पुरोहित आलूर वेंकटराव ने कर्नाटक के एकीकरण की लड़ाई में राणा प्रताप के आदर्श को अपनाया था। इस बात को उन्होने अपने वक्तव्यो और लेखों में प्रकट किया और लोगों में स्वतन्त्रता की भावना जागृत की थी। इस तरह कर्नाटक ने महापुरुष राणा प्रताप के आदर्श को अपना आदर्श मानकर और उससे प्रेरणा पाकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा उसके बाद कर्नाटक प्रदेश के एकीकरण करने का संघर्ष किया।

इस तरह राणा प्रताप केवल राजस्थान का ही नहीं वरन् समूचे भारत का एक महान् नेता था। उसका आदर्श सभी देश-प्रेमियो के हृदय में देश-प्रेम की भावनाओं को जीवित रखने का कार्य कर रहा है। उनका जीवन सदा स्मरणीय रहेगा। वह सारे विश्व के लोगों के लिये प्रेरणादायक रहेगा।

राणा प्रताप अमर रहे।

जब लौं तन मे प्राण न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाइ दासता-शृंखल तोड़ौं॥
जो निज कुल-मरजाद सहित तौ जीवन।
नहिं तातें शतगुणित मरन रन मैं जस पीवन॥
जो पै निज शत्रुहिं मारिकै यह परतिज्ञा राखिहौं॥
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखि हौं॥

—राधाकृष्णदास

महाराणा प्रताप तथा राष्ट्रीय कविता

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

राजस्थान वीर प्रसू वसुन्धरा है। उसके सपूतों में महाराणा प्रताप का नाम तथा स्थान शीर्षस्थ है। वे वीर-शिरोमणि थे। वे राष्ट्र पुरुष थे। उन्होंने मातृभूमि की रक्षा हेतु अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के भीष्म पितामह थे। वे हमारे राष्ट्रीय गौरव, प्रतिष्ठा तथा स्वाधीनता के आदि पुरुष हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता की ऐसी ज्योति प्रज्वलित की जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में विकसित हुई। उनका व्यक्तित्व जीवन चरित्र, कार्य तथा सिद्धान्त कवियो के लिए प्रेरणा-स्त्रोत रहे हैं। वे साहित्यकारों के प्रेरणा-पुंज हैं। उनका जीवन आलोक-स्तम्भ है। उन पर मध्यकालीन एवं आधुनिक राजस्थानी साहित्य में विपुल रचनाएं लिखी गई। हिन्दी का आधुनिक राष्ट्रीय काव्य भी उनके यशोगान से परिप्लावित है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'पत्रावली' में महामानव प्रताप को श्रेष्ठ श्रद्धांजलि अर्पित की है। हिन्दी में उन पर अनेक काव्यों की सृष्टि हुई है। उनसे न केवल हमारा काव्य ही अपितु गद्य-साहित्य तथा पत्रकारिता भी प्रभावित हुई है।

अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी महाराणा प्रताप के परम भक्त थे। उन्होंने अपने राष्ट्रीय पत्र 'प्रताप' का नामकरण भी वीर-पुंगव प्रताप की पुण्य स्मृति में ही किया था। साप्ताहिक 'प्रताप' को हिन्दी पत्रकारिता का उल्का-पिण्ड माना गया है यह पत्र ९ नवम्बर, १९१३ ई० को कानपुर से प्रकाशित हुआ। बाद में सन् १९२० में दैनिक भी हो गया। गणेशजी ने प्रवेशांक में अपने इष्ट-देव महाराणा प्रताप का न केवल स्मरण ही किया--अपितु उनको सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए, बलिदान की गाथा गाते हुए महाराणा प्रताप का निम्न स्तवन किया है:— ' महान् पुरुष-निःसन्देह महान् पुरुष ! भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनी चमक है? स्वतन्त्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी? जननी-जन्मभूमि के लिए किसने इतनी तपस्या की? देश-भक्त, लेकिन देश पर एहमान जमाने वाला नहीं, पूरा राजा, लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढ़ता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना।" संपादकीय के अन्त में गणेशजी लिखते हैं:—

"प्रताप ! हमारे देश का प्रताप ! हमारी जाति का प्रताप ! दृढ़ता और उदारता का प्रताप ! तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता स्वतन्त्रता और तपस्या का आदर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम

पर लोग अपने को न्यौछावर करते। अमेरिका में होता, तो वाशिंगटन और लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती। इंगलैंड में होता, तो वेलिंगटन और नेलसन को तेरे सामने सिर झुकाना पड़ता। स्काटलैंड में वालेस और राबर्ट ब्रूस तेरे साथी होते। फ्रांस मे जोन ऑफ आर्क तेरे टक्कर की गिनी जाती और इटली तुझे मेजिनी के मुकाबले में रखती।"

गणेशजी का 'प्रताप' आजीवन महाराणा प्रताप का अनुसरण करता रहा। विपत्तियों में अडिग बना रहा। राष्ट्रीयता तथा स्वाधीनता के गीत गाता रहा।

महाराणा प्रताप ने देश की रक्षा के लिए घास-फूस की रोटियां खायी, जंगल-जंगल भटके, पत्थरो और पत्तों पर सोए परन्तु मुगल सम्राट अकबर के दरबार में, अन्य राजपूत नरेशों के समान, मत्था नहीं टेका। इसीलिए, आधुनिक कवियों की बात तो छोड़िए, अकबर का दरबारी कवि पृथ्वी-राज भी उनका कीर्ति-गायन करता था और अब्दुल रहीम खानखाना उनकी प्रशंसा कर अपने को कृतकृत्य मानता था। अकबर उनका लोहा मानता था। प्रताप का नाम सुनते ही वह सिरहाने के सर्प के समान भयातुर हो जाता था। हर राजपूत माता प्रताप सदृश्य पुत्र प्राप्ति के लिए लालायित रहती थीं। प्रताप ने मस्तक को काट कर अपनी हथेली पर रख लिया था। अब डर कैसा? राजस्थान के नगर-नगर, गांव-गांव और वन-वन में उन्होंने ऐसा अलख जगाया और स्वाधीनता की धूनी रमायी कि आज प्रत्येक भारत वासी को उन पर गर्व है- अभिमान है।

महाराणा प्रताप के इतिहास से संबंधित प्रत्येक वस्तु कवियों के लिए संजीवनी बन गई। क्या चित्तौड, क्या चेतक, क्या हल्दीघाटी और क्या भामाशाह— सभी को कवियों ने अपनी भावांजलि अर्पित की है। श्यामनारायण पाण्डेय का 'हल्दीघाटी' नामक महाकाव्य महाराणा प्रताप की सर्वश्रेष्ठ काव्यमयी अभिव्यंजना एवं मूल्यांकन है।

महाराणा प्रताप के कृतित्व की वन्दना से कवियों की वाणी पुण्याभिषिक्त हुई है। शम्भूदयाल श्रीवास्तव ने 'महाराणा प्रताप और स्वतन्त्रता' नामक कविता का अन्त इस प्रकार किया है:—

"धन्य धन्य है पावन जननी धन्य धन्य
भारतमाता,
मरणासन्न समय भी जिसका पुत्र यही
जपता जाता॥
जब तक प्रिय स्वतंत्रते! तन में लगती है
तव सुखद समीर।
तब तक रण से तिल भर भी न हटेंगे, हम हैं
भारत वीर॥"

अप्रैल, १९२४ को राष्ट्रीय मासिक पत्रिका 'प्रभा' में प्रकाशित 'दीपक' नामक कविता में, राम-नरेश त्रियाठी ने भारत के महान् व्यक्तियों में महाराणा प्रताप का भी नामोल्लेख किया है—

"राम, भीष्म, हनुमान, भीम, अर्जुन, गौतम,
गिरिधर का,
चन्द्रगुप्त, चाणक्य, वीर विक्रम, अशोक,
शकर का,

गुरु गोविन्द, प्रतापसिंह, श्री दयानन्द, अकबर का,
बाल तिलक का पिता आज है मार्ग ढूंढता घर का।
सिर पर मृत्यु, ओंठ पर ईश्वर, साथी कौन किधर है।
हाय! अन्धेरे में दीपक से खाली इसका कर है।।"

महाराणा प्रताप और उनका युग बीत गया। प्राचीन का "वैभव" भी नहीं रहा। अतीत की स्मृति सुखद तथा मधुर होती है। अतीत की अनुभूति कवियों की प्राणशक्ति है। इसीलिए 'राष्ट्रीय पथिक' को विगत की बातों का अभाव दिखायी देता है और उनमें कवि को चित्तौड तो दिखायी देता है परन्तु महाराणा प्रताप कहां है?:-

"हे दिल्ली, चित्तौर, सिंहगढ, मरु, बुन्देल, पाचाल।
किन्तु कहां, दुर्गा, प्रताप, शिवा, पृथ्वीराज, छत्रसाल।।
हैं पानीपत, हल्दीघाटी कुरुक्षेत्र चौगान।
किन्तु कहां वह युद्ध-कला, वीरत्वत्याग-विज्ञान।।"

आचार्य गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' द्वारा सन् १९२१ में लिखित अपनी कविता मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बलिदानियो की अर्चना आवश्यक मानते हैं जिनमें महाराणा प्रताप अग्रणी हैं।

"वीर प्रताप शिवा के पद का निज हृदयो मे ध्यान करो,
हे भारत के लाल, पूर्वजो की कृति पर अभिमान करो।
स्वतंत्रता के लिए मरे जो उनका चिर सम्मान करो,
हे 'त्रिशूल' अनुकूल समय यह अब अपना बलिदान करो।।"

ठाकुरप्रसाद शर्मा के लिए चित्तौड़ का पत्थर भी अत्यन्त पवित्र और भव्य है—

"गौरव रक्षक वीर-भवन आधार ?
वीर कर स्पर्शित सहस्त्रशः बार।
उत्पादक जन-हृदय भाव अभिराम,
पावन महान्! सादर तुम्हे प्रणाम।।"

जैसा कि उपरि लिखित है श्यामनारायण पाण्डेय महाराणा प्रताप के सर्व प्रथम प्रबन्धकार हैं। 'हल्दीघाटी' नामक प्रबन्ध काव्य सन् १९३९ में लिखा गया। इसमें मेवाड़ केसरी राणा प्रताप के युद्ध-वृतान्तो को सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह वीररस प्रधान कृति है। इसके नायक प्रताप हैं। भूमिका में ही कवि ने प्रताप का गुण गान इन शब्दो में किया है:—

"महान्! इन्हीं कतिपय घटनाओं को मैंने कविता का रूप दिया है। यह खण्ड काव्य है अथवा महाकाव्य, इसमें सन्देह है, लेकिन तू तो निःसन्देह महाकाव्य है। तेरे जीवन की एक-एक घटना ससार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के लिए गर्व की वस्तु।"

पाण्डेयजी को महाराणा प्रताप के समाधि-स्थल को देखकर ही यह कृति लिखने की प्रेरणा मिली थी। यद्यपि इस रचना में महाकाव्योचित

गरिमा का अभाव है फिर भी महाराणा प्रताप का यह खड़ी बोली में सशक्त तथा ओजस्वी चित्रण है। भाषा में बड़ा आकर्षण है। शब्दों का चुनाव, शैली की क्षिप्रता, शिल्प का सघन रूप–सभी कुछ महाराणा प्रताप के वीरत्व, शौर्य, स्वाभिमान तथा श्रेष्ठत्व के सर्वथा अनुकूल है। प्रकृति चित्रण का एक कवित्वमय दृश्यांकन–'अवलोकनीय है' :—

" सावन का हरित प्रभाव रहा, अम्बर पर
थी घनघोर घटा।
फहरा कर पख थिरकते थे, मन हरती थी
वन–मोर–छटा ॥
पड़ रही फुही झीसी झिन–झिन, पर्वत की
हरीवनाली पर।
'पी कहा!' पपीहा बोल रहा, तरु–तरु की
डाली–डाली पर ॥
वारिद के उर में दमक-दमक, तड़-तड़ बिजली
की तड़क रही।
रह–रहकर जल था बरस रहा, रणधीर
भुजा थी फड़क रही ॥"

सन् १९४५ मे पाण्डेयजी ने 'जौहर' नामक प्रबन्ध काव्य भी लिखा जो कि महारानी पद्मिनी की कथा का वर्णन है।

महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, महारानी लक्ष्मीबाई, परम वीर तांत्या टोपे आदि स्वतंत्रता–संग्राम के अजेय तथा महान् सेनानियो का जीवन किसी भी राष्ट्र के लिए वरदान तुल्य हो सकता है। महाराणा–प्रताप आज हमारे इष्टदेव हैं। उनका सर्व होमकारी और त्यागी जीवन हमारे लिए जीवन की चेतना बन गया है। काव्य ने महाराणा प्रताप सदृश्य नायक तथा चरित्र प्राप्त कर अपने आपको गौरवान्वित किया है।

प्रताप! हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप! दृढता और उदारता का प्रताप। तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढता, उदारता, स्वतन्त्रता और तपस्या का आदर है तब तक हम ही नहीं सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश मे तू होता तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते।

—(स्व०) गणेश शंकर विद्यार्थी

व्यक्तित्व सम्बन्धी एक तुलनात्मक अध्ययन

महाराणा प्रताप और सम्राट अकबर

—डॉ० सत्य प्रकाश

महाराणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराणा प्रताप ने ९ मई सन् १५४० ई० को जन्म लिया था। सम्राट अकबर ने महाराणा प्रताप से केवल १॥ वर्ष पूर्व सन १५३८ में जन्म लिया था। दोनो को अपने २ जीवन के प्रारम्भिक काल में परिस्थितियो से लडना पड़ा था। दोनों असाधारण व्यक्तित्व के अपने २ ढंग के प्रतिभाशाली शासक थे। दोनों के आदर्श यद्यपि भिन्न थे पर दोनो में एक ही प्रकार की लगन और साध उन आदर्शों के पालन करने हेतु थी। दोनों बड़ा से बड़ा त्याग अपने उद्देश्यों की पूर्ति में करने को सदा तत्पर रहते थे। दोनों क्रियावान व्यक्ति होने के साथ २ बड़ी उच्च-कोटि के देश भक्त थे। दोनों एक ही आयु के होने के कारण साहस, पुरुषत्व, चारित्रिक दृढता, देशभक्ति, सैनिक प्रतिभा तथा नेतृत्व के उच्चतम प्रतीक होने में एक दूसरे से होड़ लगाये हुए थे। एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी वे दोनो एक दूसरे के गुणों की परख करने वाले भी थे। दोनों में केवल इतनी समता थी कि दोनों अपनी धाक अपने छोटे व बड़े क्षेत्र मे व्यक्तियों पर रखना चाहते थे। सम्राट अकबर जहाँ सारे देश पर एक छत्र साम्राज्य स्थापित कर अपना प्रभुत्व सारे देश पर स्थापित करना चाहता था वहां महाराणा प्रताप अपनी जन्मभूमि मेवाड़ को स्वतन्त्र तथा विदेशी शासन से सदा मुक्त देखना चाहता-था और इसके लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाने में भी चूक न करने वाला था। महाराणा प्रताप में अपने स्वर्ग के गौरव एवं अपने वंश की मर्यादा की रक्षा का व्रत था। वह किसी भी दशा में अपने पूर्वजों की आन बान व शान को सम्राट अकबर की अध्यक्षता स्वीकार करके धूल-धूसरित 'नहीं' करना चाहता था। स्वतन्त्रता का प्रेमी होने के अतिरिक्त महाराणा प्रताप राजपूत-घराने की मर्यादा की रक्षा करने वाला था। अकबर को भलीभाँति ज्ञात था कि प्रताप का राजपूतो मे कितना आदर था। वह जानता था कि विना उसके उसकी आधीनता स्वीकार किये हुये दूसरे राजपूत सरदारों का उसकी आधीनता स्वीकार करना असम्भव सा था।

उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते महाराणा प्रताप की ३२ वर्ष की आयु में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गोगून्दा मे गद्दी प्राप्त हुई थी कि-तु राजतिलक कुछ दिन पश्चात् कुम्भलगढ मे हुआ था। महाराणा प्रताप उस समय प्रौढावस्था में होने के कारण अपने कन्धो पर पड़े शासन सम्बन्धी बोझ के भार के उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता था किन्तु जैसा कर्नल टाड ने एक स्थान पर कहा है- प्रताप उस समय साधन-रहित, राजधानी रहित एवं हताश साथियों एवं बन्धुओं से घिरा हुआ था। पर इतना होते हुए

भी वह साहस का अँचल न त्याग कर अपने कुल की मर्यादा का सहारा लेकर चित्तौड़ को मुगलो के चुंगुल से बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध था। वह न केवल अपनी खोई हुई जाति मर्यादा को पुनः प्राप्त करने की चिन्ता में था वरन् अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए पागल सा था। उसके पिता ने सन् १५६७ में चित्तौड़ की रक्षा का भार जयमल के हाथो में सौंपा था और उसने स्वयं गिरवा की पहाड़ियो की शरण ले ली थी और प्रताप ने अपने जीवन के साढ़े चार वर्ष पश्चिमी मेवाड के ऊबड़-खाबड़ प्रदेश मे विचरण करने की ठान ली थी। महाराणा प्रताप के दादा राणा सांगा ने विदेशी आक्रमणकारी बाबर से लोहा लिया था किन्तु कनवाहा के मैदान में उन्हें करारी हार खानी पड़ी थी। राणा सांगा तथा उसके वंशजों के हृदय में बाबर तथा उसके वशजों के प्रति विरोध और द्वेष की भावना होना स्वाभाविक सी थी। बाबर के थोड़े वर्षों के शासन के पश्चात् उसके पुत्र हुमायूं का शासन हुआ। किन्तु उसे थोड़े दिन पश्चात ही भारत छोड़ना पडा। दिल्ली पर पठान शेरखां का अधिकार हो गया। मुगल इस प्रकार से विदेशी आक्रमणकारी के अतिरिक्त कुछ और न रहा। हुमायूं ने अवसर पाकर अपने जीवन की संध्या में फिर भारत पर आक्रमण किया तथा दिल्ली का शासक हुआ, पर उसकी मृत्यु शीघ्र हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् अकबर जो उस समय बालक था शासक हुआ। मुगल सम्राटों की तीसरी पीढ़ी मे जन्म लेने वाला वह घटनाओ के क्रम के परिणामस्वरूप यदि राणा प्रताप की दृष्टि में विदेशी और आक्रमणकारी के रूप में समझा गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती। राणा प्रताप के परम्परागत धरोहर के रूप में स्वदेश एवं स्वधर्म के प्रति शक्ति प्राप्त थी क्योंकि उसका परिचय उसका दादा दे चुका था। सम्राट अकबर भी अपने दादा की भांति भारत में शासन जमाने के लिए जहां तक मेवाड़ का प्रश्न था बडा से बडा त्याग करने को उद्यत था। यदि राणा प्रताप अपना सर्वस्व अपने देश की रक्षा के हित में न्यौछावर करने को उद्यत था तो सम्राट अकबर भी अपना प्रभुत्व उस क्षेत्र म जमाने के लिए भी बड़ा से बड़ा बलिदान करने को कटिबद्ध था। अकबर ने राणा प्रताप के पिता के जीवनकाल में चित्तौड पर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। चित्तौड़ का महान साका हो चुका था। उसमें चित्तौड़ की वीर और वीरांगनायें सहस्त्रो की संख्या में अपने प्राणो की आहुति दे चुकी थी। इस पराजय के पूर्व ही महाराणा उदयसिह चित्तौड छोडकर उदयपुर जा बसे थे। इस रोमांचकारी घटना के परिणाम स्वरूप ही राणा प्रताप के हृदय में अपने पिता के प्रति क्रोध, आक्रमणकारी अकबर के प्रति विद्वेष तथा क्षोभ रखना अस्वाभाविक न था। पर उसने मर्यादाओ का उलघन न करके मेवाड़ को स्वतंत्र करने तथा अकबर के सामने घुटना न टेकने की ठान ली थी। उसी प्रकार से सम्राट अकबर ने देश के अन्य राजपूत राजाओ की तरह मेवाड़ के शासको को झुकते न देखकर साहस न छोड़ा और उनका निरन्तर सामना करना ही सोचा।

राणा प्रताप गौरवपूर्ण राजवंश के एक समुज्ज्वल रत्न थे। वह जिस राज्य से सम्बद्ध थे उसका भूतकाल बहुत ही समुज्ज्वल एवं गरिमायुक्त रह चुका था। बापा रावल, राणा कुम्भा और राणा सांगा की वीरता एवं शौर्य को उन्होंने उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त कर लिया था। एक पीढ़ी पूर्व ही राणा सांगा का लोहा सारे राजस्थान में माना जाता था और सारे राजस्थान के राजा उसको अपने शिरमौर मानते थे। आमेर के राजा मान का सम्राट अकबर के साथ घनिष्ट सम्बन्ध तथा आमेर के अन्य राजाओ के भी राज्य; सम्पत्ति एवं प्रभाव का निरन्तर विस्तार मेवाड़ के राज्य के लिए एक भयंकर संकट उपस्थित किये हुये था। मेवाड़ में उस समय भी राणा आर्थिक दुर्व्यवस्था का सामना कर रहा था। राणा का साथ अन्य राजा–महाराजा भी नहीं दे रहे थे। ऐसी स्थिति में राजा मान की वीरता, शासन पटुता और दान की यश गान जो देश में फैल रहीं थी उस सब को देखते हुए राणा प्रताप में राजा मान के प्रति शत्रुता, घृणा और क्षोभ होना स्वाभाविक ही था पर राणा प्रताप अपनी स्वतंत्रता के प्रति प्रेम, सत्य-निष्टा के आगे किसी भी हेय विचार को अपने में नहीं रख रहा था– यह आश्चर्य ही नहीं वरन् उसके असाधारण व्यक्तित्व की बात थी। सम्राट अकबर संकट और विपत्तियो का वह मानस–पुत्र था जिसने तेरह वर्ष की आयु में साक्षर न होते हुए भी दिल्ली में सिंहासन पर बैठने के थोड़े दिनो पश्चात् हेमू से राज्य के लिए लोहा लिया। विजयी अकबर ने पराजित एवं घायल शत्रु की हत्या से विमुख हो अपनी मानवता का प्रथम परिचय किया। तीन सौ वर्ष पुराने इन भावी शासन में सम्भवतः प्रथम बार ही अकबर ने अपने आपको भारतीय अनुभव किया और अपने साम्राज्य को भारतीय साम्राज्य का रूप दिया। ऐसा करने के लिए उसने अपने साम्राज्य के मुसलमान--भिन्न नागरिकों को नागरिकता का समान अवसर दिया। अकबर का साम्राज्य संगठन इस प्रकार से विजेता का अधिनायकत्व नहीं था वरन भारतवर्ष की राजनैतिक एकता का तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप एक यथासम्भव श्रेष्ठ संगठन था। यद्यपि इस समग्र नव कल्पना को ध्यान में लाने एवं उसे मूर्तरूप देने का सारा काम अकबर का था। उसको सहायता एवं समर्थन का बल बाहर से पर्याप्त मात्रा में मिला। ऐसे भारत–राष्ट्र की स्थापना जिसमे सारा देश सम्मिलित हो और जिसमें देश की सभी विभिन्न कोटि के नागरिको का सक्रिय सहयोग हो, अकबर के व्यक्तित्व की एक सबसे बड़ी देन भारत के इतिहास को है। जैसा कि अन्यत्र कहा गया है अकबर एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। अधिक पढ़ा लिखा न होने पर उसमें सूझ-बूझ, दूरर्दशिता तथा जनप्रियता अनुपम थी। उसकी वीरता एवं उसके शौर्य से भी उसमें अद्भुत वैयक्तिक आकर्षण था। विराट नीति को स्थिर करके सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को समझना एवं निर्णय देना— ऐसे दो गुण उसमें थे जिसने उसे उदार मित्र के साथ उदार शत्रु भी बना दिया था। कला – प्रियता एवं गुण ग्राहकता उसमें

महाराणा प्रताप—एक व्यवस्थापक के रूप में

—डॉ० गोपीनाथ शर्मा, एम ए. पी. एच. डी.

सांगा की मृत्यु मेवाड के इतिहास में एक विघटन के युग का प्रारंभ करती है जिसके फल-स्वरूप मेवाड में अनेक राजनीतिक उथल-पुथल तथा विभिन्न आन्तरिक और अभ्यन्तरिक समस्याओ का प्रारभ होता है। १५२८ से १५३७ ई० की थोडी अवधि मे ही मेवाड पर तीन शासकों का राज्य हो चला था जिसमें सिवाय पारस्परिक द्वेष और स्वार्थ सम्पादन के प्रयत्नों के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण घटना उल्लेखनीय नहीं है। रत्नसिंह और सूरजमल के वैमनस्य ने मेवाड और हाडौती के सम्बन्ध में कटुता पैदा कर दोनो राज्यो को निर्बल बना दिया। दोनो का पारस्परिक द्वेष इतना बढ़ गया कि वे एक दूसरे को जीवित नहीं देख सकते थे। अन्त में दोनों शिकार के बहाने लड़कर मृत्यु की गोद में जा बैठे[1]। जब रत्नसिंह के छोटे भाई विक्रमादित्य मेवाड के शासक बने तो वहाँ की दशा अत्यन्त शोचनीय हो चली। उन्हें अपने पद और उत्तरदायित्व का कोई भान नहीं था। शासन कार्य में उन्हे कोई रूचि न थी। चाटुकारो और पहलवानो की संगति में रहकर उन्होने अपने पद और अधिकार का दुरूपयोग करना आरंभ कर दिया। उनके व्यवहार से असन्तुष्ट होकर अभिमानी सरदारों ने दरबार में जाना बन्द कर दिया और वे अपने-अपने ठिकाने में जाकर रहने लगे[2] जब इस अवस्था में बहादुरशाह ने मेवाड पर आक्रमण कर दिया तो महाराणा के लिए सिवाय शत्रु से अपमानजनित सन्धि करने के सिवाय और कोई चारा न रह गया। इस पराभव ने भी राणा की आंखों को न खोला और वे अपने रहन-सहन तथा व्यवहार में पूर्ववत् बने रहे[3]। फल यह हुआ कि पृथ्वीराज के औरस पुत्र वणवीर ने अवसर पाकर १५३६ ई० में राणा की हत्या कर दी और वह स्वय मेवाड का शासक बन बैठा। जब अराजकता और निन्दनीय कार्यों का दौर बढता ही जारहा था कि कई सरदारो ने मिल कर उदयसिंह को अपना नेता स्वीकार किया और वणवीर को परास्त कर उसे (उदयसिंह) मेवाड़ का शासक घोषित किया[4]।

१. वीर विनोद, भाग २, पृ. ४, ख्यात, पत्र २६-२७

२. ओझा · उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ. ३९४; कैंब्रीज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ३, पृ. १३०, जी. एन. शर्मा-मेवाड एन्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ४७

३. बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ '३६१-६२; मीरान, पृ. २६०-६३ (पाण्डुलिपि)।

४. कुम्भलगढ़ दान पत्र, वि. स. १५९४; अमर काव्य वशावली, पृ. ३२; मेवाड एण्ड मुगल एम्परर्स, पृ. ५९-६०।

में खेती की व्यवस्था से जनता के लिए काम भी खोज निकाला गया और उस भू-भाग को आवाद करने में भी सहायता मिल गई। इस नई व्यवस्था से आक्रमणकारियों को बडी हानि हुई— एक तो उनके लिए विध्वंसकारी कार्यों के लिए कुछ भी अवशेष न बचा था और दूसरा शत्रुओं के लिए रसद प्राप्त करने की संभावना समाप्त हो गई[6]।

जब इस व्यवस्था से सुरक्षा प्रवन्ध समुचित रूप से सम्पादित हो चुका तो प्रताप ने अपने अपने सामन्तों तथा आश्रितों का भी सहयोग प्राप्त करने में प्रयत्नशीलता दिखाई। इस कार्य में उन्हें अपने व्यक्तित्व, आदर्शवादिता तथा क्रियाशीलता से बडी सफलता मिली। शिशोदिया सरदार, स्थानीय सरदार तथा अन्य वाहरी राजपूत-वंशों ने प्रताप को अपना नेता स्वीकार किया और सभी मेवाड़ की सुरक्षा के लिये उसके सहयोगी वन गये। चौहान, शिशोदिया, तंवर, राठौड, सोलंकी आदि राजपूत वंशों ने मेवाड़ के लिए बलिदान चढ़ाने को अपना-अपना सैन्य वल प्रताप को सुपुर्द कर दिया और सभी देश की रक्षा के कार्य में लग गये। इन राजपूत वंशो के अतिरिक्त ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र तथा भीलों के जत्थे भी महाराणा के साथ देश-रक्षा के पुनीत कार्य के लिए कमर वांध कर तैयार हो गये। हल्दीघाटी के युद्ध में इन सभी जातियों का, जिनमें मुसलमान भी सम्मिलित थे, सहयोग था। राज्य के तथा राज्येतर सामन्तो तथा सम्पूर्ण जनता का सहर्ष सहयोग प्राप्त करना और आस-पास के राज्यों से मैत्री-संयोग बढ़ाना प्रताप की सहिष्णु तथा विचारशील नीति का परिचायक है। इस नीति को समयोचित और चतुर नीति कहा जा सकता है[7]।

सुरक्षा नीति की भांति प्रताप ने सैन्य व्यवस्था तथा युद्ध-प्रणाली को भी नया मोड़ दिया। हल्दीघाटी के युद्ध के पहिले प्रताप ने जगह-जगह चौकियां बिठादी थी तथा गुप्तचरों को भी लगा दिया था जिससे शत्रुओं की चाल से वे अवगत हो सकें। युद्ध के लिए उन्होने सम्पूर्ण सेना को नहीं लगाया था, वरन् सेना के कुछ अंग को कोल्यारी में सुदूर छोड़ा था जो मुगलों की वियकित सेना को परेशान कर सके और स्थानीय सेना के इलाज आदि आवश्यकता में सहायता पहुंचा सके। पुरानी राजपूत प्रणाली की भांति युद्ध में लडकर मर मिटने पर प्रताप विश्वास नहीं करते थे। यही कारण था कि उन्होने किसी युद्ध में या मोर्चे में डटकर मुगलो से मुठभेड न की। शत्रु को अपनी छावनी में घेर लेना, उसकी रसद को रोक लेना, भागती हुई सेना का पीछा करना, शत्रु के डेरे को लूटना

---

६ वदाउनी : मुन्तखाव, भा. २, पृ २२८; वीर विनोद, भा. ५, पृ. १४६, जी. एन. शर्मा : मेवाड एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. ८६ ८७

७. सूर्यवश, पृ. १९, वंशावली राणाजीनी पृ. ६८; बदाउनी : मुन्तखाव, भा. २, पृ. २३१, अकबरनामा, पृ. ९९, १५२, तबकात, पृ. ३३३, जी. एन. शर्मा · मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. ९१-९६।

ग्रादि नई प्रथाएँ थी जिन पर प्रताप ने बल दिया जिसके फलस्वरूप अकबर की महान् शक्ति प्रताप को परास्त न कर सकी। एक ही युद्ध में लड़कर युद्ध को समाप्त करना वह सही नहीं समझते थे। युद्ध को लम्बा बढ़ा कर शत्रु की शक्ति का नाश करना वे अधिक उपयोगी मानते थे। इस नई गति विधि से प्रताप अपने समय में (चित्तौड़ और मांडलगढ़ को छोड़) पुनः मेवाड़ को अधीन करने मे सफल हुए[8]।

जन-जागरण तथा जन-संगठन की क्षमता भी प्रताप में खूब थी। सम्पूर्ण पहाडी भागों में घूम-घूम कर तथा कष्ट साध्य जीवन को बिताकर उन्होने जनता के नैतिक स्तर को बनाये रखा। प्रताप ने उनके जीवन की समस्या को अपने जीवन की समस्या बनाया। वे कई दिन ग्रामीण जनता के बीच में विचरण करते रहते और जन-आन्दोलन के द्वारा देश को सजग बनाये रहे। मुगलों के लिए ऐसे नए संगठन का मुकाबला करना बडा कठिन था[9]।

जब मुगलों का भय कम हो गया और देश भी एक सूत्र में संगठित हो चला था तो प्रताप ने जन जीवन को सुव्यवस्थित करने का बीडा उठाया। उन्होने नई बस्तियों को एक रूप देने के लिए चांवड में राजधानी को स्थापित किया। समुचित शासन व्यवस्था के लिए वे शासन के प्रमुख कर्णधार बने परन्तु उन्होंने कई विभागों की देख रेख के लिए विभागीय अध्यक्षों की नियुक्ति की। पुराने अधिकारी या तो मर चुके थे या नई प्रणाली के लिए उपयुक्त नहीं थे। महाराणा ने नई शासन व्यवस्था के लिए नए दल को तैयार किया। रामा नामक मुख्य प्रधान को हटाकर भामाशाह की नियुक्ति इसी दिशा में एक नया कदम था[10]। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में परम्परा और नई परिस्थिति के अनुकूल आचरण का सामंजस्य था। जिस विभागीय वर्गीकरण की शासन पद्धति का प्रारंभ प्रताप ने किया था उसी का रूप हम महाराणा अमरसिंह के समय में पाते हैं[11]।

समसामयिक ग्रन्थो व अन्य साधनों के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रताप की राजधानी में न्याय का समुचित प्रबन्ध था। अपराधियो की संख्या उचित दण्ड देकर कम करदी गई थी जिससे चोरी डकैती तथा अनैतिक आचरण का राज्य म कोई भय नहीं रह गया था। अमरसार का लेखक अलंकृत भाषा में लिखता है कि यदि प्रताप के

---

८. नेणसी ख्यात, पृ. ११–१२; वीर वीनोद, पृ. १५,;
जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ ९६--१०७;

९, अकबरनामा, भा. ३, पृ. १६६;
जी. एन. शर्मा : मेवाड एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. ११०।

१०. मामो परधानों करे, रामो कीधो रद्द, प्राचीन पद्य, उधृद्त,
ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भा, १ पृ. ४३१।

११. अमरसार, प्रताप वर्णन, श्लोक, ६०–७५। सर्ग १, श्लोक २५५--२५६।

राज्य में पाष की विद्यमानता स्त्रियों के अलकाओं में ही थी चोरों के पकड़ने के लिए पाष का उपयोग नहीं होता था। इसका आशय यह है कि सभी में नैतिक आचरण था अतएव दण्ड में कठोरता का प्रयोग करने की आवश्यकता न थी[12]।

प्रताप की राजधानी की स्थिति भी व्यापार वाणिज्य की अभिवृद्धि के लिए अत्यन्त उपयोगी थी। चावण्ड के चारो ओर फल, फूल तथा धान्य की पैदावार के लिए भूमि उपयोगी थी। ऐसे समृद्ध स्थान को राज्य का केन्द्र बनाकर प्रताप मे केवलमात्र सुरक्षा के विचार से प्रजा का हित सम्पादन नहीं किया वरन् गुजरात तथा मालवा से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की[13]।

एक अच्छे शासक की भांति प्रताप ने कलात्मक प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहन दिया। इन प्रवृत्तियों में चित्रकला की प्रवृति बड़े महत्व की थी जो चावण्ड चित्रशैली[14] के नाम से विख्यात है। मेवाड़ चित्र शैली को इस शैली ने समृद्ध बनाने में बड़ा योग दिया था। इस शैली में विषय के प्रतिपादन में तथा रंगो के प्रयोगों में सादगी तथा भाव प्रदर्शन में गांभीर्य प्रमुख हैं। इस शैली के बने हुए चित्र श्री गोपीकृष्ण कानोड़िया तथा श्री मोतीचन्द खजानची के संग्रहो में सुरक्षित हैं। एक रागमाला का चित्र जो प्रताप के समय के ठीक बाद वि. सं. १६६२ में बना था इस बात को प्रमाणित करता है कि रागमाला का चित्रण प्रताप के समय से प्रारंभ हो गया था तथा इस माला का आधार स्थानीय चित्रकला की अभिव्यक्ति था। इससे यह भी प्रतीत होता है कि रागमाला का चित्रकार निसारदी (नासिरुद्दिन) या निसार आदि चित्रकार थे जो एक चित्र को अनेक चित्रकार मिलकर मुगल पद्धति के अनुकूल बनाते थे। निसार या निसारुद्दीन का नाम यह भी सिद्ध करता है कि प्रताप के राज्य की नीति धर्म सहिष्णु थी जिसमें जाति, धर्म आदि का भेद न था। शासकीय नियमों में उदारता थी अन्यथा निसारदी या नासिरुद्दिन नामक व्यक्ति के लिए राज्याश्रय संभव न था। यदि हम चित्रशैली को अधिक बारीकी से देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि पृष्ठभूमि के चित्रण में तथा पुरुष और स्त्रियों की आकृति मे दक्षिण तथा पश्चिमी तटीय भागो और मालवा के प्रभाव की भी छाप है। ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक मेवाड का सांस्कृतिक सम्बन्ध इन विभिन्न भागो से परिपक्व अवस्था में पहुंच चुका था।

चित्रकला की भांति प्रताप ने स्थापत्य कला में भी रूचि ली। उनके समय के स्थापत्य मे

---

१२. अमरसार, प्रताप वर्णन श्लोक, ६०-७५

१३. वही, श्लोक ६०--७५।

जी. एन. शर्मा : मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परस, पृ. ११७-११८।

१४. मेरा लेख : मेवाड़ पेन्टिग, उत्तर भारती, भा. ६, नं. २, पृ. ६२--६३।

सैनिक तथा साधारण जन-जीवन के स्थापत्य का सम्मिश्रण था। उस समय के बने हुए महलो की दीवारो, सुरक्षा के प्रबन्धों और बुर्जों के अवशेष जो कमोल, उभयेश्वर, कमलनाथ, चावण्ड आदि में पाये जाते हैं इन विशेषताओं को स्पष्ट बतलाते हैं। इन सभी महलो को पहाडी नाको तथा घने जंगली भाग में बनाया गया था। चावण्ड के महलों में तो दबी हुई नालियां भी दिखाई देती हैं जो पास वाले जलाशय से पानी लाने और उसे इकट्ठा करने की योजना बतलाती है। इन महलों से गुप्त मार्ग से निकलने के साधन भी सैनिक स्थापत्य पर प्रकाश डालते हैं[15]।

प्रताप की व्यवस्था में साहित्यिक उन्नति का भी प्रधान स्थान है। पद्मिनी चरित्र की रचना तथा दुरसा आहडा की कविताएं प्रताप के युग को आज भी अमर बनाये हुए हैं। चावण्ड में यह परम्परा पिछले समय तक भी मिलती रही हैं।

प्रताप में, अतएव, एक अच्छे सेनानायक के हीं गुण न थे वरन् उनमें एक अच्छे व्यवस्थापक की विशेषताएं थी। उनका ओजस्वी चरित्र उन प्रतीको में हैं जो शासन, कला तथा सामाजिक संगठनों से सम्बन्धिन है।

राष्ट्रे प्रदोषयति नित्यमहो प्रदीप्तां
नाम्नः स्मृति. सपदि यस्य नवात्मशक्तिम्
वीराग्रणि विजयते भुवि स प्रतापो
राणावर स्त्रिभुवन प्रथितः प्रतापः ॥१॥

स्वात्माभिमान जनको जनमानसेषु
प्रोद्दीप्त भास्वर यशः परिभासमानः
राणा प्रताप- रविरेष सदोदयः सन्
नास्तं कदाचन गतो न पुनश्चगच्छेत् ॥२॥

—पं० विद्याधर शास्त्री

१५. शोध-पत्रिका में मेरा लेख-महाराणा प्रताप की उजड़ी हुई राजधानी;
मेरा लेख, महाराणा प्रताप और उनका पर्वतीय जीवन, महाराणा प्रताप (स्मारिका), जयपुर, पृ.४४।

महाराणा प्रताप और तंवर नरेश

—रत्नचन्द्र अग्रवाल

उदयपुर के प्रख्यात सरस्वती भण्डार में सुरक्षित 'अमर काव्य' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मेवाड नरेश महाराणा उदयसिंह (प्रतापसिंह के पिता) ने ग्वालियर नरेश रामशाह (रामसिंह) को उनकी सहायतार्थ मेवाड़ में बारांदसोर नामक प्रदेश दे दिया था[1]। यह रामशाह ग्वालियर के राजा 'विक्रमादित्य' का पुत्र था। मुगल सम्राट अकबर के सेनापति इकबाल खां से पराजित होने पर रामशाह अपने तीनों पुत्रों, शालिवाहन, भवानीसिंह, और प्रतापसिंह, सहित मेवाड़ाधिपति उदयसिंह की शरण मे आगए थे[2]। प्रसिद्ध इतिहासकार 'अलबदायुनी' ने अपने ग्रंथ मुन्तखबुत्तवारीख में हल्दीघाटी युद्ध का आंखो देखा वृत्त प्रस्तुत करते हुए यह लिखा[3] है कि "इस लड़ाई मे चित्तौड़ वाले जयमल के पुत्र और ग्वालियर के तंवर नरेश रामशाह अपने पुत्र शालिवाहन सहित बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारे गए। तवर-वश का एक भी वीर पुरुष बचने न पाया"। दूसरी ओर माननीय ओझाजी ने[4] यह भी मत प्रतिपादित किया है कि "विक्रम संवत् १६३३ (=१५७६ ईस्वी) में महाराणा प्रतापसिंह के पक्ष में रहकर, हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में अकबर की सेना से लड़कर राजा रामशाह अपने दो पुत्रो सहित काम आया। केवल उसका एक पुत्र शालिवाहन बचने पाया"। यह विरोधाभास प्रतीत होता है। स्थिति तो यह है कि हल्दीघाटी के युद्ध में रामशाह का ज्येष्ठपुत्र शालिवाहन भी स्वर्गलोक पधारा था। सन् १९५६ मे मुझे हल्दीघाटी क्षेत्र में, 'खमणोर' ग्राम के बाहर समतल भूमि पर बनी हुई दो छतरियों की खोज करने का सुअवर प्राप्त हुआ था। ये दोनों आधुनिक ब्लॉक डेवलपमेन्ट कार्यालय के पीछे विद्यमान हैं। श्री ओझाजी ने भी इनका उल्लेख नहीं किया है। इनमें से बांई ओर की छोटी सी छतरी के एक स्तभ पर लघुलेख उत्कीर्ण है जिससे यह सिद्ध होता है कि विक्रम संवत् १६८१ में महाराणा प्रताप के पोत्र महाराणा कर्णसिंह ने उक्त स्मारक का निर्माण कराया था और "यह ग्वालियर के राजा रामशाह के पुत्र शालिवाहन की छतरी है" शीलालेख में इसका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है। मेवाड़ी भाषा का यह लघुलेख हल्दीघाटी के युद्ध के प्रसंग में रक्तलाई अर्थात् रक्तताल नामक

१, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपुताने का इतिहास, १९३२, भाग २, पृष्ठ ७३२

२. टॉड राजस्थान (हिन्दी), प्रथम खण्ड पृष्ठ ३५२-५३.

३ ओझा उपर्युक्त, पृष्ठ ७४८.

४. उपर्युक्त, भाग १, पृष्ठ २३५.

स्थल विशेष की जानकारी करने में सहायक है— यहीं पर तंवर वंशज राजा रामशाह व उनके पुत्र सद्गति को प्राप्त हुए थे। मेवाड़ की स्थिति महाराणा प्रताप के पौत्र कर्णसिंह के राज्यकाल में सभल चुकी थी—उसी समय इन तंवरवंशी नरेशों को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए 'शालिवाहन' की यह छतरी वनायी गयी थी। मेवाड़ के महाराणा कर्णसिंह ने अपने पितामह महाराणा प्रताप के साथी इन वीरो की याद को बनाए रखा और उनका एक स्मारक भी बना दिया- यह उनकी उदारता का सूचक है।

उपर्युक्त लघुलेख तत्कालीन इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री है। इसका सुपाठ्याश निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:—

पक्ति १- समत[5] १६८१ बरषे[6]।
,, २- रना[7] करणसीघ जो।
,, ३- ने कराई छतरी[8]
,, ४- गलेरक[9] रज[10] की
पंक्ति ५- रजमरस[11] बेटो[12]
,, ६- सलवहण[13] ज री[14]
,, ७- सोलवट[15] मदीजत
,, ८- .. ने कम कीधो[16]

उक्त लेख की लिपि देवनागरी व भाषा मेवाडी है जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

'खमणोर' ग्राम से वाहर इस छतरी के चारों ओर सुविशाल समतल भूमि वनास नदी के किनारे तक फैली है यह स्थल विशेष 'रक्तताल होना चाहिए। 'खमणोर' ग्राम का नाम तो 'खामणपुर' था— यह विक्रम सँवत् १३१७ के, खमणोर से ही प्राप्त, एक शिलालेख में वर्णित है। उक्त शिला आज कल उदयपुर के राजकीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है।

रणछोड़ भट्ट कृत प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ 'अमर काव्य' मे वर्णित शालिवाहन सम्वन्धी उद्धरण भी महत्वपूर्ण है यथाः—

---

५. सवत्
६. वर्षे
७. राणा कर्णसिंह ज
८, छतरी बनवाई
९. ग्वालियार के
१०. राजा के
११. राजा रामशाह के
१२. पुत्र
१३. शालिवाहन
१४. की
१५. सिलावट = सूत्रधार जिसका नाम 'मदीजत' था।
१६. ने काम किया अर्थात् छतरी का निर्माण किया।

तत्र प्रविष्टंश्चतुरुष्क वीरान् दिल्लीशहिन्दूकगणांश्च धीरान् ।
निवारयामास न ते प्रविष्टा यदा समस्ता : प्रबभूवुरुग्रा : ।।
ते कच्छवाहा--मुगला : पठानास्ततो भटान् प्रेषयति स्म राणा ।
पुत्रैर्युत तु वर शालिवाहनं सरामसाहिं युधि चाहुवाणकान् ।
झालादिकान् खण्डितवन्त एव तानेते गत तवरमण्डल दिवि ।।
विखण्डितानां भवनेश्वरस्य महाभटानां गणनां विधातुम् ।
विद्याविनोदी स गणेश्वरोपि शक्तो न कोऽन्यः प्रभवेत् समर्थः ।।

यहाँ भी युद्ध में रामशाह, शालिवाहन एवं अन्य तँवर वंशी वीरो के निधन का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

खमणोर ग्राम के बाहर उपर्युक्त छतरी व शिलालेख मुगल एवं राजपूत इतिहास की महत्वपूर्ण थाती है और तत्कालीन स्थापत्य कला की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। यह उस सपूत का स्थायी स्मारक है जिसने मुगल आक्रमणों से टक्कर लेने मे तनिक भी संकोच न किया था। यह उस लाडले शालिवाहन की याद दिलाता है जो अपने पिता व भाइयो के साथ मेवाड़ रक्षा कार्य हेतु स्वर्ग सिधारा था। मेवाड नरेश कर्णसिंह ने इस छतरी का निर्माण करा ग्वालियर नरेशों की महत्वपूर्ण सहायता के प्रति आभार प्रदर्शित किया था। यह मेवाड़ और ग्वालियर के प्राचीन राजघरानो को एक सूत्र में पिरोने वाला अटूट धागा है। हल्दीघाटी खमणोर क्षेत्र के बीच इस छतरी की महत्वपूर्ण विद्यमानता तो और भी उल्लेखनीय है।

***

तत्तनूजनिरय प्रतापको यत्प्रतापमिहिरोशुजनिर्य :
वैरिवर्ग वनितास्त्रपयोदः ख्यापयत्यतितरांनिजकीर्ति ।।८।।

(भीमपद्मोश्वर मन्दिर प्रशस्ति)

कुम्भलगढ़ का युद्ध (१५७८ई०)

—श्रीराम वल्लभ सोमानी

जैसलमेर भंडार में भोज चरित नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रहित है। इस ग्रंथ की प्रतिलिपि कुम्भलगढ़ मे १५७७ ई० में की गई थी और अन्त की प्रशस्ति में अकबर और प्रताप सम्बन्धी कुछ वृतांत दिया है जो सम सामायिक इतिहास के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है।

महाराणा प्रताप जिसने अकबर की आजन्म अधीनता स्वीकार नहीं की थी मेवाड़ की राजगद्दी पर २८ फरवरी १५७२ ई० को आसीन हुआ था। अकबर का मेवाड पर सबसे पहला आक्रमण महाराणा उदयसिंह के शासनकाल में १५६७–६८ ई० में चित्तौड़ पर हुआ था। उस समय दुर्ग का भार जयमल और पत्ता को सोंप कर महाराणा कुम्भलगढ़ के पहाड़ों की तरफ चला गया। जयमल बीरमदेव राठोड [1] का पुत्र था और मेड़ता हाथ से निकल जाने के पश्चात् यह मेवाड चला आया था। चित्तौड़ युद्ध के १ वर्ष पूर्व की, जयमल के शासनकाल में कोठारिया ग्राम में लिखी "धर्मदत्त कथा" (१५६६ ई०) की [2] प्रशस्ति मिली है। यह ग्रन्थ इस समय राघनपुर के जैन भँडार में संग्रहित है। इस प्रशस्ति के अवलोकन से प्रकट होता है कि जयमल को कोठारिया गांव जागीर में मिला हुआ था। आमेर शास्त्र भंडार में "सम्यक्त्व कौमुदी" नामक [3] एक हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहित है। यह ग्रंथ चित्तौड पर अकबर की विजय के कुछ समय पश्चात् १५६८ ई० में कुम्भलगढ़ में महाराणा उदयसिंह के राज्य में लिखा गया था। इससे प्रकट होता है कि उस काल में महाराणा उदयसिंह वहां अवस्थित हो चुका था।

इस प्रकार महाराणा प्रताप ने अकबर के साथ शत्रुता पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त की थी जिसके फलस्वरूप उसे आजन्म युद्ध में व्यस्त रहना पड़ा था। अकबर जैसे प्रवल शासक से

(१) बीरमदेव मेडता का स्वामी था। इसका मालदेव के साथ दीर्घकाल तक संघर्ष चलता रहा। इसने अजमेर से लेकर चाकसू तक का भाग जीत लिया था। इसके समय की कई ग्रंथ प्रशस्तिया मिलती हैं। इनसे वि० स० १५९२ मे मेडता पर इसका अधिकार होना प्रकट होता हैं। मालदेव ने मेड़ता जीत लिया तव बीरमदेव ने शेरशाह से सहायता लेकर वापस मेडता प्राप्त कर लिया।

(२) सवत् १६२३ वर्ष माघ मासे कृष्ण पक्षे चतुर्थी तिथौ सोमवारे श्री कोठारिया नगरमध्ये राष्ट्रकूट श्री जयमलजी राज्येमच्छ्री खरतरगच्छ गण गगननमोमणि कल्प श्री पूजिनदेव सूरिविजयराज्ये—

(धर्मदत्त नृपकथा की प्रशस्ति)

(३) "संवत् १६२५ वर्ष शाके १४९० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्ग शीर्ष शुक्लपक्षे षष्ठम्यां शनौ श्री कुम्भल मेरुदुर्गरा० श्री उदयसिंह राज्ये श्री खरतरगच्छे श्री गुणलाल उपाध्याये. स्ववचनार्थ लिखापित—"

(सम्यक्त्व कथा कौमुदो की प्रशस्ति)

युद्ध करने के लिये उसने न केवल मेवाड को संठ-ठित किया वल्कि एक-२ देशवासी के दिल मे मातृभूमि के लिये मर मिटने का सकल्प[4] पैदा कर दिया था। यह युद्ध मेवाड के राजपूत वर्ग तक ही सीमित नहीं था। वल्कि सब ही वर्गो के लोगो ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। भीलो का सह-योग अभूतपूर्व था। उसने मुगल सेनाओ पर गुरिल्ला पद्धति से आक्रमण कर उन्हे इतना परेशान कर दिया था कि किसी भी मुगल सेना-पति की हिम्मत नहीं होती थी कि वह मेवाड के पहाडी भागो में आक्रमण के लिये आसानी से प्रवेश कर सकें।

फारसी तवारीखों में अकवर की कुम्भलगढ विजय [6] १३ शव्वान हि० सं० ६८६ (१५ अक्टूवर, १५७८) में होना वर्णित है। इसकी विक्रमी संवत् की तिथि १६३५ वि० सं० आती है। यह आक्रमण शाहवाजखां के नेतृत्व मे किया गया था। महाराणा प्रताप ने राव भाण के नेतृत्व में वहां थोड़ी सी सेना रहने दी और अल्पकालीन युद्ध के पश्चात् कुम्भलगढ़ पर अक-वर का अधिकार हो गया। दुर्ग को भारी विनाश हुआ। कहा जाता है कि कोई जीवित प्राणी नहीं वचा था जो वस्तुत अकवर की प्रभुसत्ता स्वीकार कर सके। किन्तु "भोज चरित" की इस प्रशस्ति से पता चलता है कि अकवर के शासन-काल में कुम्भलगढ़ पर नियमित रूप से कार्य चलता आ रहा था। इसमे स्पष्टतः "अकवर-वातशाह राज्ये कुम्भलगढ़ विग्रहे विजयो भवति" शब्द अंकित है। यह प्रशस्ति युद्ध के शीघ्र वाद की ही हो सकती है। इतना विशाल आक्रमण होते हुए भी प्रतिलिपिकार अपना कार्य यथावत् करता रहा था और मुगलों के शासनकाल मे भी यह कार्य जारी रखा था जो उल्लेखनीय है। इसके विपरीत कुमारपाल ने जव पाली पर आक्रमण किया [7] तव त्रुटित ग्रंथ लेकर कई प्रतिलिपिकार वहां से भाग खड़े हुए। मेवाड़ मे वि. सं. १६३३-से १६३५ तक दोनो वर्षो मे भीषण संघर्ष चलता

---

(४) श्री जी. एन. शर्मा—मेवाड एण्ड मुगल एम्परर्स पृ० ७६-७७

(५) भीलो का महत्व १४ वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही मिलता है। वि० सं० १४०५ में विरचित "प्रद्युम्नचरित" में भीलो द्वारा मार्ग शुल्क लेने का उल्लेख मिलता है। (हउ वटवाल नारायण तणउ, देइ दाण मुहि लागउ घणउ) वि० स० १४११ में विरचित श्रावकाचार मे इनके जगल में निवास और धनुष वाण लेकर के विचरण वर्णित है। शृंगी ऋषि के लेख के अनुसार महाराणा हमीर ने इन्हे पहली वार जीतकर मेवाड के राजाओं के आधीन बनाया था। कुम्भा के समय यह जाति एक महत्वपूर्ण सैनिक क्षमता वाली जाति थी। पारसी तवारिखों मे इनके कई संदर्भ उपलब्ध हैं।

(६) मुन्तखाव उत तवारीख जिल्द ०, पृष्ठ २७५

(७) पंचाशक प्रकरण वृति की वि० स० १२०७ की प्रशस्ति द्रष्टव्य हैं इसमे "पल्लीभगे त्रुटितं पुस्तकामिद-मग्रहीत" लिखा है।

रहा था। कभी किसी महत्वपूर्ण चोकी को मुगल सैनिक ले लेते थे और कभी राजपूत इन्हें वापस हस्तगत कर लेते थे। अकबर स्वयं भी मेवाड में आया था। उसने वि० सं० १६३३ में राजा मानसिंह, भगवानदास आदि के नेतृत्व में कुछ सेना इसलिए भी भेजी कि राणा की गतिविधि मालूम की जा सके। अकबर गोगून्दा गया और वहां से मोही और मदारिया की तरफ गया। इस प्रकार सम्पूर्ण पहाडी क्षेत्र को उसने घेर लिया ताकि राणा कहीं भी कुशलतापूर्वक भाग न सके किन्तु उसे इसमें कोई सफलता नहीं मिली। अकबर अपनी इच्छा की पूर्ति किये विना ही मालवा लौट गया। इसके पश्चात् कुछ सेना मानसिंह के नेतृत्व में भेजी। इस सेना ने भी राणा से कुछ क्षेत्र जीत लिये किन्तु राणा ने उसे वापस पहाडों में जाने को बाध्य कर दिया[8] कुम्भलगढ़ विजय के लिये शाहबाजखां को लगाया। जिसने उक्त दुर्ग को विजित किया था। इस प्रकार इस प्रशस्ति के सम्बन्ध मे दो विकल्प हो सकते हैं :—

(१) या तो इसमें वर्णित घटना उक्त युद्ध के पहले की है।

(२) या इसमें दी गई तिथि गलत है।

इस सम्बन्ध मे घटनाकाल के शीघ्र बाद ही हि० स० ९८७ तक पूरी हुई तारीख-ए अकबरी, मे जिसे हाजी मोहम्मद आरिफ कन्धारी ने लिखी थी, पृष्ठ २६२-२६३ पर इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"हि० सं० ९८४ में रोहतास का किला जीता और इस साल में अकबर अजमेर आया शाहबाजखां को कुम्भलमेर का किला जीतने भेजा। दुर्ग विजय की सूचना सफर हि० सं० ९८६ में शाहबाजखां तथा अन्य दरवारियो द्वारा दरवार में भेजी गई कि बहुत ही मुश्किल से इस किले को अपने कब्जे में कर लिया गया है। इस कारण कि हजरत बादशाह सदैव अपने सेवको की खुशी और उन्नति का ध्यान रखते हैं और हमेशा उनका यह स्वभाव है कि इस्लाम धर्म को मानने वालो तथा इस्लाम धर्म की दिन प्रतिदिन उन्नति होती रहे तथा कुफ्र की हिमायत करने वालो के समस्त स्थान दरवार के सामन्तों द्वारा विजित हो। चूंकि कुम्भलमेरु का किला ऐसे मुल्क में स्थित है कि उसकी ऊंचाई बहुत है और देखने वालों की आंख उसके छज्जे तक मुश्किल से पहुँचती है और यदि उसको देखने का प्रयास भी करते हैं तो पीछे की ओर सिर के बल गिर पडते हैं। चूंकि उनका यह उद्देश्य था कि यह किला उनके अधिकार में आ जाय, अतः उन्होंने जीतने के लिये समस्त चिन्ता दरवार के सामन्तो पर निहित की। इस पहाडी इलाके में एक राणा का राज्य है कि उसके महलो की ऊंचाई और वहा तक पहुंचने के रास्तों

(८) "मान प्रकाश" में मानसिंह द्वारा कुम्भलमेरु जीतने का उल्लेख है- (शोध पत्रिका वर्ष १८, अंक १, पृष्ठ ३५ एव ३७) शाहबाजखां द्वारा की गई विजय इससे भिन्न रही होगी क्योंकि इसमे दुर्ग विजय का श्रेय मानसिंह को दिया हुआ है।

की कठिनाई के कारण उसने अपने मस्तिष्क में घमंड को स्थान दे रखा था। अपने समस्त साथियों तथा समकालियो से गर्व करता था कि मैं किसी के आधीन नहीं हूं। आज तक कोई वादशाह अपने लगाम की डोरी से उसके कान नहीं छेद सका। तथा इस्लाम राज्य का उस देश मे पदार्पण नहीं हुआ था। न जाने कितने वादशाह तथा सुल्तान उस प्रदेश को जीतने के लिये परेशानी तथा हसरत को लेकर मर गये और इस किले को फतह करने में हमेशा हार मानी। हजरत वादशाह के मनमें यह था कि खुदा के आशीर्वाद से इस किले को अपने कब्जे में ले आये— उपर लिखे हुए सन् में शाहवाजखां ने धोखे और चालाकी से (खिदहाव फरेवदादा) उस किले को कब्जे में कर लिया। समस्त जनता को जो किले में थी तलवार के घाट उतार दिया। राणा भागकर पहाड़ों में चला गया।"

इस वर्णन से स्पष्ट है कि शाहवाजखां का घेरा लम्वे समय तक रहा था। अथवा एक वार हि० सं० ९८४-८५ में संभवतः उसे कुछ सफलता मिली हो और राणा द्वारा इसे वापस जीत लिया गया हो। अन्यथा कत्ले ग्राम के बाद जैन साधुओं का वहां ग्रन्थ-रचना करना कभी भी संभव नहीं हो सकता है। इस संबंध मे और शोध किया जाना चाहिये। प्रशस्ति समसामयिक है इसलिए प्रामाणिक मानी जा सकती है। मूल प्रशस्ति में "गोपाचल सस्थान मध्ये लिखितं" वाक्य है। यह संभवतः कुम्भलगढ दुर्ग का ही एक भाग है। मूल प्रशस्ति इस प्रकार है:—[९]

इति श्री धर्मघोष गच्छे धर्मसूरिसताने पाठक राजवल्लभ कृते श्री भोज चरित्रे भानुमती विवाह वर्णनो देवराज सज्जीभूत वर्णनो नाम पंचम प्रस्तावः। श्री भोज चरित्रं सम्पूर्ण समाप्तम्। ग्र थाग्रम् १८०१ !! संवत् १६३४ वर्षे चैत्रवदि १० दिने अकवर पातीसाह् विजयराज्ये कुंभमेरगढ विग्रहेविजयो भवति। वा० भावधर्म शिष्य गणि श्री उदयनन्द सीषस्य (शिष्यस्य) हारी लिखितं स्वलूमधे (?) मांगलिक ययो भवति। कली (लि) काल समा (समये) चैत्रे दसमी। बुध बासरे। गोपाचल संस्थान मध्ये लीक्षतं भोज चरित्र ज...?

(९) जैसलमेर भण्डार की ताडपत्रीय सूची, ग्रंथांग २५६

पातल और पीथल का पत्र व्यवहार

—डॉ० मनोहर शर्मा

पृथ्वीराज राठौड और महाराणा प्रतापसिंह राजस्थान के इतिहास में परम प्रकाशमान हैं। इन दोनों महापुरुषो का व्यक्तित्व असाधारण है, फलस्वरुप इनको देश भर में गौरव प्राप्त हुआ है। राजस्थान मे इस प्रकार के चारित्र्य-सम्पन्न नरवीरों के संबंध में स्तुति परक पद्यो का लोक प्रचलित होना सर्वथा स्वाभाविक है क्योकि यहां की जनता का इतिहास-बोध सदा से बडा उत्कट रहा है। किसी भी लोकवीर के गुण-कर्मों से प्रभावित होकर कवि-वाणी प्रकट होती है और फिर वह जनता के जीवन का अग बन जाती है। लोग उसे भूलते नहीं और समयानुसार अपने पूर्वजो के चरित्रगान के समान उसका प्रयोग करके गौरवान्वित होते हैं। इसी रूप में पृथ्वीराज राठौड (पीथल) और महाराणा प्रतापसिंह (पातल) का पद्यात्मक पत्र-व्यवहार है। वह निम्न रूप में प्राप्त है —

पृथ्वीराज राठौड

पातळ जो पतसाह, बोलै मुख हूंता बयण।
मिहर पिछम दिस माँह, ऊगै कासपरावउत॥१॥
पटकूं मूछा पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली वात इक॥२॥

महाराणा प्रतापसिंह

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूं इकलिंग।
ऊगै जांही ऊगसी, प्राची वीच पतंग॥१॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेतै पतो कलमां सिर केवाण॥२॥
साग मूंड सहसी सको, सम जस जहर सवाद।
भड पीथल जीतो भला, बैण तुरक सूं वाद॥३॥

इन दोहो (अथवा सोरठो) का प्रसँग इस प्रकार प्रकट किया जाता है कि महाराणा ने विपत्तियो से संत्रस्त होकर दिल्लीपति अकबर को आधीनता-सूचक पत्र लिखा, जिसे पाकर बादशाह ने पृथ्वीराज राठौड के सामने बड़ा गर्व प्रकट किया। पृथ्वीराज ने उस पत्र को नकली बतलाते हुए प्रतिकार हेतु दो सोरठे महाराणा को लिख भेजे और उनका उत्तर तीन दोहो मे उन्हे प्राप्त हुआ।

इस लौकिक-प्रवाह की ऐतिहासिकता के सबंध मे विद्वानो मे मतभेद है और प्रामाणिकता हेतु कोई पुष्ट साधन उपलब्ध न होने पर भी यह विवाद चल रहा है।

इन दोहो मे प्रयुक्त दो शब्दरूप विशेष ध्यान देने योग्य हैं। वे हैं—पातल (प्रतापसिंह) और पीथल पृथ्वीराज। राजपूत-समाज मे पत्रव्यवहार का शिष्टाचार वडा ही सम्मानपूर्ण एवं उच्चकोटि का है। 'पातल' और 'पीथल' शब्दरूप राजपूतों के लिए चारण-समाज में परम्परानुसार प्रयुक्त किए जाते हैं। इस प्रकार इस पत्र व्यवहार की शैली राजपूत-समाज की न होकर किसी चारण-कवि की चीज प्रतीत होती है। चारण सरस्वती

का उपासक है परन्तु मूल--रूप में वह शक्ति का पुत्र है। प्रस्तुत पद्यों का समग्र--प्रभाव इन्हे किसी चारण की रचना ही प्रकट करता है।

इस प्रकार पात्रो की विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए उनके मुख से कहलवाई गई यह किसी महान् कवि की वाणी है, जिसका नाम काल--प्रवाह ने अज्ञात कर दिया है। राजस्थान की लोक--प्रचलित साहित्य--सामग्री मे से इस प्रकार के और भी अनेक उदाहरण सहज ही दिए जा सकते हैं। इतिहास--वोध से सम्पन्न और काव्य रसिक राजस्थानी जनता ने उदार--हृदय रहीम को भी तो राजस्थानी कवि बनाकर सुख माना है। जन--साधारण में कहा जाता है कि रहीम ने महाराणा प्रतापसिंह को यह दोहा लिख भेजा था—

ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसभर ऊपरै, राख नेहचो राण ॥

स्पष्ट ही इस दोहे के रूप में प्रकट राजस्थानी कवि की वाणी को रहीम की रचना मान लिया गया है और इस में प्रयुक्त 'अमर शब्द' की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। साधारण जनता को इसकी प्रामाणिकता के विवाद में कोई रुचि भी नहीं है।

उपर्युक्त पद्यात्मक--पत्र व्यवहार की ऐतिहासिकता के बारे में काफी लिखा गया है परन्तु इसकी साहित्यिक--गरिमा के संबध में किसी ने प्रकाश डालने की चेष्टा नहीं की है, जो एक उपयोगी और सरस विषय है। ध्यान रखना चाहिए कि ये पद्य विशेष रूप से अर्थ--गंभीर हैं।

प्राचीन काल से भारतीय प्रजा के सामने अपनी स्वाधीनता एवं जीवन-पद्धति की सुरक्षा का विकट प्रश्न रहा है। इस पुनीत कार्य हेतु सदा से भारतीय जनता संघर्ष एवं आत्म--बलिदान करती रही है। वाह्य--आक्रमणकारियो ने अनेक बार इस देश को आक्रान्त किया और हर समय भारतीयो द्वारा उनका सामना किया गया। समय--समय पर यहा ऐसे त्यागी और वीर महापुरुष हुए हैं, जो देश की सम्मिलित शक्ति एवं गौरव के प्रतीक--रूप म लोक--सम्मान क पात्र बने हैं।

कई बार हमारा राष्ट्र गौरव गिरा भी है परन्तु वह सर्वथा विनष्ट कभी नहीं हुआ। दिल्लीपति अकबर के जमाने में भारतीयों के सामने बडी विकट स्थिति आई और देश--गौरव के बचे रहने में संदेह पैदा हो गया। उस समय भारतीयता की उपासक समस्त प्रजा की आँखें महाराणा प्रतापसिंह की ओर लगी हुई थीं। महाराणा स्वयं वनवासी बने हुए थे परन्तु वे सम्पूर्ण देश के लिए गौरव के प्रतीक थे। उनकी आन ही भारतीयों की आन थी। ऐसी स्थिति में यदि महाराणा पराधीनता स्वीकार कर लेते तो भारत का सम्मान सर्वथा विनष्ट हो चुकता और हजारो वर्षों से जिस ज्योति को जागृत रखने के लिए असख्य नरवीरो ने आत्म-बलिदान किया था, वह व्यर्थ चला जाता। इसी भावना से प्रेरित होकर किसी राष्ट्रकवि ने ये दोहे (अथवा सोरठे) बना कर भारतीय प्रजा को समर्पित किए हैं।

पृथ्वीराज राठौड़ स्वयं उच्चकोटि के कवि एवं भारत-भक्त थे। उनके मुख से उपर्युक्त सोरठे कहलवाकर राजस्थानी-कवि ने सोने को सुगन्ध-मय बना दिया है। ये उदगार पृथ्वीराज राठौड़ के ही प्रतीत होते हैं और उनके चारित्र्य के सर्वथा अनुकूल हैं। परन्तु अन्य राजस्थानी-कवियों की वाणी में भी असाधारण संजीवनी-शक्ति प्रकट हुई है और उन्होने आश्चर्यजनक रूप से वीर-निर्माण का कार्य किया है। महाराणा प्रतापसिंह महावीर थे, वे कवि न थे। उनका चारित्र्य उनके उत्तर में प्रकाशमान है। इस प्रकार इस पत्राचार में स्वाभाविकता का जो सौन्दर्य द्रष्टव्य है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पृथ्वीराज के पत्र में दिए गए प्रथम पद्य को लीजिए। अकबर दिल्ली का बादशाह है। उसने बड़ी शक्ति संचित कर रखी है। परन्तु महाराणा प्रतापसिंह भारत के हृदय-सम्राट हैं। एक ओर भौतिक शक्ति है तो दूसरी तरफ आत्मा का बल है। अकबर ने अपनी नीति और तलवार से यहां साम्राज्य स्थापित कर लिया परन्तु फिर भी महा-राणा के रूप मे भारत की आत्मा स्वाधीन थी। वह कभी अकबर के सामने झुकी नहीं। यह एक ओर शक्तिशाली विस्तृत-साम्राज्य एवं दूसरी ओर छोटे से भूभाग में केन्द्रित एक राष्ट्र के गौरव का संघर्ष था। राष्ट्रकवि ने प्रथम सोरठे में इसी प्रश्न के महत्व की ओर संकेत किया है— "यदि प्रताप अपने मुख से ऐसा वचन कहता है कि अकबर 'बादशाह है' तो काश्यपुत्र सूय पश्चिम मे उदय होने लगता है।" महाराणा स्वयं सूर्यवंशी हैं और उनका लोक-प्रतिष्ठित विरुद 'हिन्दुआ-सूरज' है। महाकवि ने इस प्रयोग के द्वारा प्रकृति की आदि-परम्परा और भारतीय जीवन-पद्धति को समान धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार महा-राणा के द्वारा पराधीनता स्वीकार करना सृष्टि-क्रम का स्पष्ट परिवर्तन है। जो किसी भी स्थिति में वांछनीय नहीं।

दूसरे सोरठे जैसा उद्गार तो शायद ही कभी किसी कवि के मुख से प्रकट हुआ होगा— "शिव (एकलिंग) की सृष्टि के व्यवस्थापक (दीवाण), मुझे दो में से एक बात लिख दो - "मैं अपनी मूंछो पर स्वाभिमान के साथ हाथ फेरूं या अपने शरीर को स्वयं ही तलवार से काट डालूं ?" इन शब्दो में कविमुख से सम्पूर्ण भारत की आत्मा बोल रही है। राजस्थानी-साहित्य में इस प्रकार की और भी अनेक रचनाएं हैं, जिनके द्वारा वह सम्पूर्ण भारत की आवाज के रूप में सामने आता है। इस दोहे के पीछे भी सम्पूर्ण भारत के हृदय की पीड़ा है। यह एक व्यक्ति की आवाज नहीं परन्तु एक प्राचीन एवं विशाल जाति की आवाज है। यह एक प्राचीन राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है, जो प्रताप की 'हां या ना' पर निर्भर है। अतः कवि विस्तार मे नहीं जाना चाहता। उसने लघुतम प्रश्न उपस्थित किया है। राष्ट्र का गौरव ही राष्ट्रकवि का जीवन है। राष्ट्र की पराधीनता राष्ट्रकवि की मृत्यु है। वह मान खोकर जीवित रहना नहीं चाहता। भारतीय कवि का स्वाभाविक रूप यही है, जिसका इस राज-स्थानी सोरठे मे साक्षात् दर्शन करके पुण्य-लाभ किया जा सकता है।

कवि ने बहुत ही थोडे से शब्दों में बड़ी गहरी बात कह डाली है। ऐसे प्रश्न का उत्तर महाराणा प्रतापसिंह के द्वारा उसी रूप में दिया जा सकता है, जिस रूप में वह आगे के तीन दोहो में दिया गया है। जब कवि-वचन रूपी पवनदेव ने भ्रम की घनघटा को उड़ा दिया तो सूर्य का प्रकट होना अनिवार्य ही था।

महाराणा की ओर से दिए गए उत्तर में 'तुरक' शब्द विशेष रूप से ध्यातव्य है। भारत मे असुर, यवन, म्लेच्छ, तुरक आदि शब्द समानार्थक से हो गए हैं और इन सब के पीछे एक ही भावना है। यह भावना भारतीय स्वाधीनता एवं संस्कृति पर चोट करने वालों के प्रति विरोध की सूचक है। भारत एक जीवित राष्ट्र है। उसमे आक्रामक के प्रति सार्वजनिक-विरोध की स्थायी भावना है। उसमे सुदूर स्थित आत्मीय के प्रति सुदृढ़ भावात्मक एकता है। महाराणा के उत्तर में यही दृढ़ता प्रकट हुई है। इसका सार है— "राठौड़ पृथ्वीराज, तुम गर्व के साथ मूँछों पर ताव दो। सूर्य तो सदा ही पूर्व मे ही उदित होगा। मेरे विषय में तुर्क से किए गए विवाद मे सदा ही तुम्हारी विजय है।"

इस प्रकार इस पत्र व्यवहार के पाच पद्यों में भारत की विजय का गौरवगान है। यह अकबर पर महाराणा प्रतापसिंह की विजय है। यह अकबर पर पृथ्वीराज राठौड़ की विजय है। सबसे ऊपर यह कवि--वाणी की विजय है। राजस्थान में सदा से कवि को विशेष सम्मान मिलता रहा है। इसका मूल कारण कवि--वाणी की तीव्र प्रेरणा है, जो इस पत्राचार में व्याप्त है। ❋

महाराणा प्रताप की तलवार, शिवाजी या दुर्गादास राठौड़ की तलवार किसी की भी मान ली जाय, एक ही बात है। इसकी तीखी धार कभी मन्द नही होती। यह वैसी ही कठोर और वैसी ही तेज धार युक्त बनी रही है और बनी रहेगी जैसी कि उन प्रातः स्मरणीय वीरो के हाथ मे बनी रही थी। अधिक समय तक काम मे न लाने से यदि कुछ जंग लग भी जाता है तो कर्त्तव्य-धर्म-बल से उठे हुए हाथ से चलने एवं रुधिर से धुलने पर वह अधिक तेज होकर अधिक चमकने लगती है।

(स्व०) क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह
(खरवा ठाकुर)

विरुदछिहत्तरी

— डॉ॰ मोतीलाल मेनारिया

विरुदछिहत्तरी[1] डिंगल भाषा की एक बहुत विख्यात रचना है। लोकप्रियता की दृष्टि से इसका डिंगल साहित्य मे सर्वोपरि स्थान है। साहित्य-प्रेमियो द्वारा जितना मान इस छोटी सी रचना को प्राप्त हुआ उतना डिंगल भाषा के बड़े से बड़े ग्रन्थ को नहीं मिला। यह ग्रन्थ मेवाड़ के महाराणा प्रताप की आत्म-कथा से जुड़ा हुआ है। अतएव जहां कहीं महाराणा प्रताप का यशोगान होता है, जहाँ कहीं उनके शौर्य और पराक्रम की चर्चा होती है, वहां विरुदछिहत्तरी के दो-चार दोहे अवश्य सुनने को मिलते हैं।

अभी तक विरुदछिहत्तरी दुरसाजी आढ़ा की कृति मानी जाती रही है और कहा जाता रहा है कि यह मुगल सम्राट अकबर के समय की रचना है। परन्तु कुछ गहराई से अध्ययन करने पर ये बातें निर्मूल जान पडती हैं।

विद्वानो ने दुरसाजी का अस्तित्व – काल सं॰ १५९२–१७१२ स्थिर किया है[2] जो अनुमानाश्रित है। लेकिन ये अकबर के समकालीन थे, इसमें कोई मतभेद नहीं है। क्योंकि ये बीकानेर-नरेश महाराजा रायसिंह (सं॰ १६३०–४८) के आश्रित थे जो अकबर के विश्वासपात्र सेनापति थे और जिन्होने इनको चार गांव, एक करोड़ पसाव और एक हाथी प्रदान किया था[3]। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि विरुदछिहत्तरी अकबर की समसामयिक रचना है और यह दुरसाजी आढा की कृति है। कारण, इसमे मुगल बादशाह अकबर के लिये अत्यन्त अभव्य शब्दावली का प्रयोग हुआ है।[4] जैसेः—

गढ़ ऊंचो गिरनार, नीचो आवू ही नही।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी॥
अकबर कुटिल अनीत, और विटल सिर आदरे।
रघुकुल उत्तम रीत, पाले राण प्रतापसी॥
अकबर कूट भजाण, हियाफूट छोड़े न हठ।
पगां न लागण पाण, पणधर राण प्रतापसी॥
अकबरियो हल आस, अंब पांस भाखे अधम।
नाथे हिये निसास, पास न राण प्रतापसी॥
गोहिल कुल घन गाढ, लेवण अकबर लालचो।
कोड़ी दे नह काढ़, पण घर राण प्रतापसी॥
अकबर मच्छ अयाण, पूछ उछालण वल प्रवल।
गोहिल-वत गह राण, पाथोनिधी प्रतापसी[4]॥

१, श्री प्रताप सभा, उदयपुर, द्वारा प्रकाशित।

२. डिंगल गीत, (रावत सारस्वत और कुवर चंडीदान द्वारा संपादित), पृ०–१४ (टिप्पणिया)

३ दयालदास री ख्यात, पृष्ठ ११८।

४. विरुदछिहत्तरी, पृ० १, ३, ४, ८ और ७१।

अकबर जैसे प्रतापी सम्राट के व्यक्तित्व के संबंध में कोई भी समकालीन कवि विशेषकर अकबर का आश्रित कहा जाने वाला कवि ऐसा लिखने का साहस नहीं करेगा और न उसका आश्रयदाता उसे ऐसा लिखने की इजाजत देगा।

यह अकबर-कालीन रचना नहीं है, इसका दूसरा प्रमाण अन्तर्साक्ष्य के रूप में इस पुस्तक में ही उपलब्ध है। यथा:—

दिल्ली हूंत दुरुह, अकबर चढ़ियो एक दम।
राण रसिक रणरुह, पलटे केम प्रतापसी॥
उड़े रीठ अणपार, पीढ लगा लाखां पिसण।
वेढीगार वकार, पैठो उदियाचल पतो॥
अकबर दल अप्रमाण, उदैनयर घेरे अनय।
षांगा बल खूंमाण, साहां दलण प्रतापसी॥
देवारी[5] सुरद्वार, अड़ियो अकबरियो असुर।
लड़ियो भड़ ललकार, पोलां खोल प्रतापसी[6]॥

अन्तिम दोहे में देवारी के दरवाजे पर अकबर और प्रताप के युद्ध का वर्णन है जिसकी पुष्टि इतिहास से नहीं होती। अकबर अथवा अकबर की सेना से महाराणा प्रताप का कभी कोई युद्ध देवारी के दरवाजे पर नहीं हुआ। मुस्लिम सूत्रों के अनुसार अकबर उदयपुर में आया अवश्य था पर वह देवारी के रास्ते से नहीं आया। वह दिल्ली से सीधा अजमेर पहुंचा और वहां से गोगून्दा, मोही, मदारिया[7] तथा उदयपुर[8] होता हुआ बांसवाड़े[9] चला गया।

इसी दोहे के चतुर्थ चरण में 'पोलां खोल-प्रतापसी' से उदयपुर के विभिन्न दरवाजों की ओर संकेत है। परन्तु उस वक्त ये दरवाजे थे ही नहीं। उदयपुर की शहरकोट और इन दरवाजो को बनवाने का काम महाराणा प्रताप के पौत्र महाराणा कर्णसिंह (सं० १६५६-८४) ने आरम्भ किया था[10], पर उनके समय मे पूरा नहीं हो सका। इसलिए आगे के महाराणाओ के समय में भी चालू रहा और अन्त में जाकर महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं० १७६७-१८०८) के शासनकाल में समाप्त हुआ।

इन तथ्यों के आधार पर विरुदछिहत्तरी का रचनाकाल सं० १८०८ के बाद का स्थिर होता है।

---

५. देवारी का दरवाजा उदयपुर से ७ मील दूर पूर्व दिशा में देवारी रेलवे स्टेशन के पास है। इसको महाराणा उदयसिंह (१५९४-१६२८) ने बनवाया था। इसके किवाड महाराणा राजसिंह ने (सं० १७०९-३७) ने लगवाये थे। इस सम्बन्ध की एक प्रशस्ति वहां लगी हुई है; "महाराजाधिराज महाराणाजी श्री राजसिंहजी आदेशात सावण सुद ५ सोमे सम्वत् १७३१ विषे पोल रा कमाड चढ़ाव्या॥ लिखतु जोषी गोरखदास साह पंचोली नाथू पंचोली।"

६ विरुदछिहत्तरी, पृष्ठ ८ और ९.

७. प्रो० श्रीराम; महाराणा प्रताप (अंग्रेजी), पृ० ८९.

८. वही; पृ० ९१.

९. डा० ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७५७.

१०. डा० ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ८२९.

इस संदर्भ में विरुदछिहत्तरी की भाषा के संबंध में भी थोड़ा-सा विचार कर लेना समीचीन जान पड़ता है। डा० तैस्सितोरी ने डिंगल भाषा के दो स्वरूप माने हैं— (१) प्राचीन डिंगल और (२) अर्वाचीन डिंगल। सं० १२५० से सं.१६५७ की डिंगल को उन्होंने प्राचीन डिंगल और सं. १६५७ से अब तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल कहा है[11]। विरुदछिहत्तरी की भाषा अर्वाचीन डिंगल है। इसकी भाषा दुरसाजी के डिंगल गीत आदि की भाषा से नहीं मिलती, जिनकी भाषा वस्तुतः प्राचीन डिंगल है। उदाहरण:—

—गीत—

अह माथे राण आभ लग ऊंचो,
नव पडे वस भालर नाद ॥
रोप्या भला रायपुर राणा,
पडे न आतप तणो प्रसाद ॥१॥

मेछां अगम भुवनमें सूरज,
गुण पूजाकर पूज गया ॥
अगाहट रोपै इल ऊपर,
अमर तणों देवल अमर ॥ २ ॥

पाषाणां चुणियां वह पहुंची
अबका दिन जातां अन भंव ॥
वड़ा वडा गजबंध वपाणों
दापाहरा तणां धजबंध ॥ ३ ॥

अवचल मंडप करै अगाहट,
मुर जिम थापै कवे मुर ॥
मुहे मांगियो तू दीवो मौन
पता मनोहर रायपुर[12] ॥ ४ ॥

—दुरसाजी

मांगो करम सहाय, बादर सूं भिड़ियो वेहद।
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥
अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपति।
अनमी रहियो एक, पहुमी राण प्रतापसी ॥
हलदीघाटी हरोल, घमंड उद्धारण अरि घड़ा।
धारण करण अडोल पहुंच्यो राण प्रतापसी ॥
दुविधा अकबर देख, किण विध सूं थापल करे।
पमंग ऊपर पेख, पाखर राण प्रतापसी ॥

—विरुदछिहत्तरी[13]

भाषा का यह अन्तर इतना स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में अधिक टीका-टिप्पणि व्यर्थ है।

डिंगल कविता के सैकड़ों प्राचीन लिखित संग्रह-ग्रन्थ हमारे देखने में आये हैं। इनमें से कुछ में दुरसाजी आढ़ा के फुटकर गीत, कवित्त (छप्पय), भूलणा इत्यादि पढ़ने को मिले पर विरुदछिहत्तरी के दोहे कहीं दिखाई नहीं दिये। सिर्फ २० वीं शताब्दी के दो-एक हस्तलेखों में ये दोहे देखे गये जिनसे विदित होता है कि विरुदछिहत्तरी इतनी पुरानी रचना नहीं है जितनी कि वह मानी जा रही है।

---

११. वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासौतरी, पृष्ठ ४ (भूमिका)।
१२. ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणा यशप्रकाश, पृ० १४३–१४४।
१३. पृ० ४, ६, ७ और १०।

सारांश, यह कि विरुदछिहत्तरी न तो मुगल सम्राट अकबर अथवा महाराणा प्रताप के समय की रचना है और न यह दुरसाजी आढ़ा की लिखी हुई है। सम्वत् १६०० के बाद किसी समय किसी दूसरे व्यक्ति ने इसे लिखा है [14] और प्राचीन बताने के अभिप्राय से दुरसाजी का नाम इसके अन्तिम दोहे में जोड दिया है:—

कवि प्रारथना कीन, पडित हूँ न प्रवीणपद।
दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव शरण प्रतापसी [15]॥
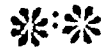
:

······The historians of Akbar, dazzled by the commanding talents and unlimited means which enabled him to gratify his soaring ambition, seldom have a word of sympathy to spare for the gallant foes whose misery made his triumph possible. Yet they too, men and women, are worthy of remembrance. The vanquished, it may be, were greater than the victor.

Vincent A Smith.

१४ सम्वत् १९६६ में स्वर्गीय ठाकुर भूरसिंह शेखावत का 'महाराणा यशप्रकाश' ग्रन्थ छपा था। इसमें विरुदछिहत्तरी पूरी की पूरी प्रकाशित हुई है। इसी समय कोई व्यक्ति इस रचना को लिखकर सामने लाया जान पड़ता है।

१५. विरुदछिहत्तरी ; पृष्ठ १६ ।

कर्मवीर भामाशाह

—बलवन्तसिंह महत्ता

महाराणा प्रताप के प्रधान मन्त्री वीर भामाशाह का प्रथम उल्लेख समकालीन ग्रन्थ कवि हेमरत्नसूरि[1] कृत "गोरा बादल कथा पद्मनी चउपई"[2] की प्रशस्ति में मिलता है, वह इस प्रकार है:—

पृथवी परगट राण प्रताप ।
प्रतपइ दिन दिन अधिक प्रताप ।।
तस मत्रीसर बुद्धि निधान ।
कावडिया कुल तिलक निधान[3] ।।
सामि धरमि धुरि भामु साह ।
वयरी वस विधुंसण राह ।।
तसु लघुभाई ताराचन्द ।
अवनि जाणि अवतरिउ इन्द्र ।।
ध्रूय जिम अविचल पालइ धरा ।
शत्रु सहू कीधा पाधरा ।।
तसु आदेश लही सुभ भाई ।
सभा सहित पांमी सुपसाई ।।
वात रची ए बादिल तणी ।
सांमि धरमि ए सोहामणी ।।

भामाशाह का जन्म वि० सं० १६०४ आषाढ शुक्ला १० सोमवार तदनुसार २८ जून, १५४७ ई० को हुआ माना जाता है। इसके अनुसार भामाशाह महाराणा प्रताप से सात वर्ष छोटा था। भामाशाह की मृत्यु महाराणा प्रताप से तीन वर्ष बाद माघ शुक्ला ११, १६५६ विक्रमी को हुई, जब वह ५१ वर्ष का था[4]। महाराणा अमरसिंह ने गंगोद्भव तीर्थ [मेवाड--राजघराने का दाह सँस्कार स्थल] में स्वयं के लिए निर्धारित स्थान के निकट भामाशाह का दाह संस्कार कराया और छत्री बनाने की आज्ञा दी। इस सम्मानपूर्ण कार्य द्वारा वीर भामाशाह को उसके द्वारा मेवाड के राजवंश के लिये की गई उत्कट सेवाओं के लिये श्रद्धांजलि अर्पित की गई[5]।

---

१. हेम रत्नसूरि समकालीन अयाचक विद्वान साधु थे। भामाशाह के भाई ताराचन्द ने इनसे आल्हा-उदल के ढंग पर गोरा-बादल और पदिमनी चरित्र लिखवाया था। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६४५ के श्रावण शुक्ला ५ को सादड़ी में की गई, जहाँ पर प्रताप की ओर से प्रशासक नियुक्त था।

२. इस ग्रन्थ का प्रकाशन हाल ही में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ने किया है।

३. भामा बावनी खुम्माण रासो आदि प्राचीन ग्रन्थो में भी भामाशाह का कावडिया कुल में उत्पन्न भारमल का पुत्र होना लिखा है।

४. वीर विनोद भाग २ पृ० २५१

५ गंगोद्भव, आयड़ (उदयपुर) में महाराणाओ के दाह सस्कार-स्थल में भामाशाह की छतरी विद्यमान है।

भामाशाह जैन धर्मानुयायी कावेडिया गोत्र का ओसवाल महाजन था। श्री अगरचन्द नाहटा ने १६ वीं शताब्दी की दो पट्टावलियां प्रकाशित कराई हैं जिनके अनुसार वि॰ सं॰ १६१६ में उसका पिता भारमल चित्तौड में विद्यमान था जो पहिले तपागच्छ का अनुयायी रहा, बाद में उसने देवागर से प्रभावित होकर नागोरी लोकागच्छ को स्वीकार कर लिया था। इनसे भारमल के परिवार के धनी बनने का वृतान्त भी मिलता है[6]। भारमल को महाराणा सांगा ने अलवर से बुलाकर अपने पुत्र विक्रमादित्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व देकर रणथभोर दुर्ग की किलेदारी प्रदान की थी[7]। महाराणा उदयसिंह ने वि० स० १६१० में भारमल को अपना सामन्त बनाकर एक लाख का पट्टा दिया था। चित्तौड की तलहटी में पाडन पोल के पास इनकी हस्तिशाला थी और किले पर महलों के सामने तोपखाने के पास उनकी बड़ी हवेली थी। इससे महाराणा उदयसिंह के काल में इस परिवार की उच्च प्रतिष्ठा एवं स्थिति का प्रमाण मिलता है।

उदयपुर में भामाशाह महलों के पास गोकुलचन्द्रमाजी के मन्दिर के निकट रहते थे जो स्थान दीवानजी की पोल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाराणा प्रताप के काल में जावर एक महत्वपूर्ण सुरक्षा–स्थल रहा माना जाता है। यहां मोती-बाजार के निकट भामाशाह की हवेली थी ऐसी

---

६. ॥ ॐ शिव ॥ सं० १६१६ चित्रकूट महादुर्गे कावडिया
नन्दनो भारमल्लो धनी तपागणीयो ऽ भूत। तेन देवागर
सूरिणामभिधानं युद्ध क्रियाधारक त्वं चाश्रुतं तदादित इव
तदगुण रंजित चेतस्कोऽवदत् · · · · · इति भाव तया
शुद्धात्मा भारमल्ल तस्मिन्न वसरे, तत्र त्या भोमा
नामा नाहटोऽस्ति तद्‌गृहेपु पुण्य योगाद्दक्षिणावर्त : शंख
प्रादुर्भूत तत्सान्निध्यात गृहे अष्टादशकोस्यो धनस्य प्रकटी भवति ॥
— — ... ... —
भामा कोऽवदत कर्णे भो। सामय सम्बधिन् मम पुत्री
तव च पुत्रो भविष्यति तयो सम्बंध- कर्तुं श्री फल स्थाने इदमदभुत
महात्म्यं शंखं ददामि, इत्यनिन्तच्य समुत्पन्न परमामोदो वहुत दान
मान पूर्ववम गृहीतं भारमल्ल : गृहकोष्ठ कान्त : समभ्यच्र्य समयक
चन्दन चतुष्कि कोपरि सस्मृतो देवस्ने नाष्ट दशकोटि धन तत्र प्रकटित कृतं।

७. वीर विनोद भाग २, पृ० २५२। मेवाड़ के इतिहास में ओसवाल परिवार के लोगों को किलेदारी का उत्तरदायित्व दिया जाता रहा है। ऐसे सुप्रसिद्ध किलेदारो में रणथम्भोर का भारमल, कुम्भलगढ का आशासाह, चित्तौड़गढ का महता चीत, प्रताप के समय में कुम्भलगढ का महता नरबद; माण्डलगढ़ का महता अगरचन्द प्रमुख हुए हैं।

मान्यता रही है। जावरमाता का विशाल मन्दिर[8] भी भामाशाह द्वारा निर्मित माना जाता है।

भामाशाह के प्रारम्भिक जीवन के संबध में कुछ ज्ञात नहीं होता। यह सभव है कि महाराणा उदयसिंह द्वारा चित्तौड़ त्याग के साथ यह परिवार भी उसके साथ पहाड़ो में चला गया हो। उस काल मे भामाशाह ने पर्वतीय जीवन का अच्छा अनुभव प्राप्त किया। ऐतिहासिक दृष्टि से भामाशाह का प्रथम उल्लेख हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना के हरावल के दाहिने भाग में युद्ध करने का मिलता हैं। उसके साथ उसका भाई ताराचन्द भी था। युद्ध के प्रारम्भ में प्रताप के हरावल ने बादशाही सेना को जो शिकस्त दी, वह प्रसिद्धि है। भामाशाह और उसका भाई हल्दीघाटी के युद्ध से बच गये।

हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात महाराणा प्रताप ने मुगल बादशाह के खिलाफ एक दीर्घकालीन कठिन पर्वतीय युद्ध का प्रारम्भ किया, जो लगभग बारह वर्षों तक अनवरत रूप से चला। इस सघर्ष में प्रताप के अविचल एवं वफादार सहयोगी के रूप मे भामाशाह इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है। इसी सँघर्ष के दौरान में वह एक अच्छे योद्धा एव रणनीतिज्ञ तथा कुशल प्रशासक एवं संगठक के रूप में प्रकाशित हुआ। यही कारण था कि कुछ वर्षो बाद ही राम महासाणी के स्थान पर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। इस घटना के संबंध मे निम्न कहावत प्रसिद्ध हुई:—

भामो परधानो करे, रामो कीदो रद्द।
धरची बाहर करण नूं, मिलियो आय मरद्द ॥

प्रताप के दीर्घकालीन युद्ध की कई महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ भामाशाह का नाम जुड़ा हुआ है। भामाशाह ने मेवाड़ की सैन्य टुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए स्वतन्त्र रूप से कई बार शाही इलाको पर आक्रमण किये और लूटपाट कर मेवाड़ के स्वातन्त्र्य सघर्ष के लिये धन प्राप्त किया। ये आक्रमण गुजरात, मालवा और उत्तर मेवाड के सरहद के इलाको मालपुरा आदि में होते थे। आमेर का मानसिंह जब मेवाड मे शाही थाने स्थापित कर रहा था उस समय कुंवर अमरसिंह के साथ भामाशाह मालपुरे की लूट मे लगा हुआ था। वि० सं० १६३५ का

---

८. जावरमाता का मन्दिर सबसे पहिले वसन्तगढ निवासी जेतक ने महाजनों के निगम की आज्ञा से वि० सं० ७०३ में मेवाड के राजा शिलादित्य के समय में बनाया था। उस समय यह स्थान उद्योग और व्यापार का बडा केन्द्र था और दूर दूर से आये हुए महाजन यहां रहते थे। [सामोली के शिलालेख के आधार पर]

महाराणा रायमल के काल में मालवे के बादशाह द्वारा इस मन्दिर का विध्वस कर दिया गया था। भामाशाह ने इसका पुननिर्माण कराया हो। वि० स० १६५० का शिलालेख मन्दिर में मौजूद है।

भामाशाह का मालवे का धावा सुप्रसिद्ध है। चूलिया में महाराणा प्रताप को भामाशाह ने जो पच्चीस लाख रुपये तथा वीस हजार अशर्फियां भेंट की, वह इसी का परिणाम था।

दिवेर की घाटी के युद्ध मे महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल फोजो को वुरी तरह परास्त किया। डा० कासिका रंजन कानूनगो ने लिखा है कि इस महत्वपूर्ण युद्ध में चूण्डावतो और शक्तावतो के साथ भामाशाह ने प्रमुख भाग अदा किया था[9]। खुम्माण रासो के अनुसार महाराणा अमरसिंह के काल मे भामाशाह– अहमदावाद से दो करोड का धन लेकर आया था[10]।

महाराणा प्रताप के प्रधान होने के नाते उसने प्रशासन की व्यवस्था, सैन्य संगठन, युद्धनीति और आक्रमणों की योजना आदि मे भामाशाह ने प्रमुख हिस्सा लिया होगा, यह निसन्देह है और इससे भामाशाह की योग्यता और कुशलता का तथा उसकी सेवाओ एवं उपलब्धियो का आभास मिलता है। महाराणा प्रताप के ताम्रपत्रो-परवानो आदि पर भामाशाह का उल्लेख मिलता है।

वादशाह ने अपनी भेद नीति के द्वारा न केवल राजपूतो को एक दूसरे के विरुद्ध करके अपने दरवार में उच्च पद, मंसव आदि देकर रखा था, वल्कि राजपूत राज्यों के आंतरिक प्रशासन का कार्य करने वाले अधिकारियो को भी वह मुगल दरवार मे प्रतिष्ठा देता था। ओसवाल जाति के वच्छावत कर्मचन्द को, जो पहिले वीकानेर का प्रधान रहा था, दरवार में वैठक देना इस वात का उदाहरण है। भामाशाह को इसी भांति महाराणा प्रताप से अलग करने का प्रयत्न किया गया। अकवर के द्वारा इस उद्देश्य से भेजे गये चतुर कूटनीतिज्ञ अब्दुर रहीम खान खाना ने भामाशाह से मुलाकात की और उसको प्रलोभन आदि देकर वादशाह की सेवा मे आने को कहा। यह वात उस समय हुई जव कि महाराणा प्रताप संकटपूर्ण आर्थिक एवं सैनिक स्थिति मे जीवन और मृत्यु का संघर्ष कर रहे थे। भामाशाह द्वारा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के प्रलोभन को ठुकराना और स्वाभिमान एवं सच्चाई का संकटपूर्ण जीवन स्वीकार करना उसके उज्ज्वल चरित्र का प्रमाण है।

भामाशाह ने महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल मे जिस कुशलता और राज्यभक्ति के साथ प्रधान का कार्य किया उससे भामाशाह को तो प्रतिष्ठा और विश्वास मिला तथा उसके घर मे तीन पुश्त तक तीन महाराणाओं का प्रधान पद रहा। वास्तव में वह वस्तपाल, तेजपाल जैसा जो अन्हिलवाड़ा के सोलंकी राजाओ

---

९. K. R. Qanungo : Studies in Rajput History P. 52

१०. कप्पड पीया कापड़ा, लीधो धन दो कोड़।
साथ समान कियो सहू, समा कीया सजोड़॥
अहमदावाद सु भामो साह। अमर पास आयो उछाह॥

के प्रधान थे और जिन्होने आबू पर जैन मन्दिर बनवाये, पराक्रमी और नामवर था। भामाशाह के लिये यह प्रसिद्ध है कि उसने मरने से पहिले अपनी पत्नी को एक बही दी, जिसमे मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ था और कहा सकट के समय यह बही महाराणा के नज्र करना। इस खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलता रहा[11]।

जनश्रुति के आधार पर भामाशाह के संबंध में एक मान्यता चली आती है। जब महाराणा प्रताप अत्यन्त संकट में पडे और राज्य के सभी आर्थिक साधन समाप्त होने से स्वदेश छोड कर अन्यत्र जाने लगे तो भामाशाह ने बहुत बड़ी संपति लाकर प्रताप को भेंट की जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था[12]। श्री गौ० ही० ओझा इस बात को कल्पित कथा मान कर लिखते हैं कि भामाशाह और उसका पिता भारमल उदयपुर राज्य के सच्चे स्वामिभक्त, सेवक थे। भामाशाह ने राज्य के खजाने की सुव्यवस्था रखी। किन्तु महाराणा प्रताप के पास धन की कमी होने की बात सही प्रतीत नहीं होती। भामाशाह राज्य की सम्पति को सुरक्षित स्थानों मे गुप्त रूप से रखवाता था, जिसका ब्यौरा वह एक बही में रखता था। वही बही उसने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी स्त्री को दी[13]। श्री कानूनगो भामाशाह द्वारा भेंट की गई सम्पत्ति को अपने सैनिक अभियान द्वारा लूट कर लाई गई सम्पत्ति मानते हैं।[14] स्पष्ट ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव मे इस सम्बन्ध में सही स्थिति प्रकट करना कठिन हैं। किवदंती का आधार यदि भामाशाह का त्याग है, जिसके लिये भामाशाह की इतिहास मे प्रसिद्धि हुई है, तो यह भी असंभव नहीं प्रतीत होता कि धनी परिवार का होने से स्वयं प्रताप के साथ त्याग एवँ बलिदान का जीवन व्यतीत करने वाले भामाशाह ने अपनी पारिवारिक संपत्ति को भी स्वतन्त्रता के निमित्त प्रताप को भेंट की हो।

कानूनगो भामाशाह की प्रशसा मे लिखते हैं कि उसका नाम सम्पूर्ण राजपूताना मे उतने ही श्रद्धा और आदर से लिया जाता है, जितना कि महाराणा प्रताप का। भामाशाह न तो नेताजी पालकर था और न नाना फडनवीस।[15] श्यामलदास ने भामाशाह के पराक्रम और नाम की तुलना अन्हिलवाडा के सुप्रसिद्ध प्रधान वस्तपाल, तेजपाल से की है।

---

११. वीर विनोद भाग २, पृष्ठ २५१-२५२

१२. कर्नल जेम्स टॉड कृत राजस्थान का इतिहास भाग प्रथम

१३. ओझा · उदयपुर का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ ४६३

१४. K. R Qanungo : Studies in Rajput History P. 52

१५. वही। नेताजी पालकर शिवाजी का विश्वस्त साथी था जिसको औरगजेब ने प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया था। नाना फडनवीस एक प्रसिद्ध मराठा कूटनीतिज्ञ और देशभक्त हुआ है किन्तु उसने सार्वजनिक धन का अपने स्वार्थ के लिये दुरुपयोग किया।

कविवर लोचन प्रसाद पांडे ने भामाशाह को भाव भीनी श्रद्धांजली देते हुए कहा है: —

पूजा के योग्य तू है, वणिक, सजीव श्री शक्ति की मूर्ति तू है।
हे अहा धन्य तेरा वह धन, जननि भक्ति की मूर्ति तू हैं॥

तुझसे स्वाभिमान चतुर मन्त्री, वर आत्म त्यागी वीर।
भारत में क्या दुर्लभ है, इस वसुधा मे भी धार्मिक वीर॥

महाराणा प्रताप की वीरता उस भावना की प्रतीक है जिससे अधीन जातियाँ अन्यायियों की सत्ता के विरुद्ध बगावत करती हैं और मनुष्य जुल्मों के आगे गर्दन झुकाने से इन्कार कर देता है।

—कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर'

अरावली पहाड़ों का सामरिक महत्व

—जमनालाल दशोरा

अरावली की स्थिति एवं बनावट:—

पृथ्वी के इतिहास मे आदिकाल में निर्मित अरावली आडाअॅवला या अरडावंनिया पहाडो के नाम से पुकारे जाते हैं। ये पहाड़ भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रान्त राजस्थान के बीचों-बीच दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक ४३० मील लम्बे फैले हुए हैं और राजस्थान के बाहर दिल्ली तक चले गये हैं। इस प्रकार समग्र अरावली पहाडों की लम्बाई कच्छ की खाडी से दिल्ली तक करीब ७०० मील है। इनकी ऊंचाई दक्षिण मे आबू के पास ५६१५' है लेकिन उत्तर मे जाते जाते घटकर १०००' तक रह जाती है। ये एक विशिष्ट प्रकार के जल विभाजक का काम करते हैं। इन पहाड़ो से कई नदियां निकल कर पूर्व और पश्चिम दिशाओ मे बहती हैं। अरावली पहाड दक्षिण मे १५० मील तक चौड़े होकर दो शाखाओ मे बंट जाते हैं एक शाखा राजस्थान के दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर चलकर अजमेर जिले मे होती हुई टोंक, जयपुर, झुंझनू और अलवर जिलो मे होती हुई दिल्ली तक चली गयी है। दूसरी शाखा बांसवाडा, चित्तौड, कोटा, और बून्दी जिलो मे होती हुई अजमेर के पास पहली शाखा से मिल जाती है। इन के बीच-बीच मेवाड, उपरमाल और हाडोती के पठार बन गये हैं जो समुद्र की सतह से २००० फीट से अधिक ऊंचे हैं।

अरावली पहाड राजस्थान की प्राकृतिक बनावट के मुख्य अंग हैं तथा वे इस प्रदेश को दो भागों में विभक्त करते हैं। इसके पश्चिम में विस्तृत थार का मरुस्थल राजस्थान का २/३ भाग घेरे हुए है। ये पहाड इस मरुस्थल को आगे नहीं बढने देते हैं। इन पहाडो मे विंध्याचल के बराबर सघन और आर्थिक महत्व के वन तो नहीं पाये जाते हैं लेकिन इनकी प्राचीन चट्टानो में लोहा, जस्ता, शीशा, ताम्बा, अभ्रक, संगमरमर, एस्बस्ट्स आदि कई खनिजों के भंडार पाये जाते हैं। ये पहाड हजारो वर्षों से आदिवासी भीलो, गरासियों और मीणो के निवास स्थल रहे हैं। इन पर सुरक्षा के लिये राजपूत काल मे ६ठी से १६वीं शताब्दि के मध्य अनेकों दुर्गों की संरचना हुई। १६वीं-१७वीं शताब्दि में ये पहाड महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और राजसिंह के लिये अच्छे सैन्य संचालन स्थल और सुरक्षा के स्थान रहे।

ऐतिहासिक भूमिका:—

पर्वतमालाओ का मानव इतिहास में व्यापक सामरिक एवं राजनैतिक महत्व रहा है। युद्ध-रत सैनिकों ने संकटकाल मे पहाड़ों का सुरक्षात्मक उपयोग किया है। भारत के इतिहास में अरावली पहाड़ सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक स्थान रहे हैं और इन पहाड़ों की चोटियों, घाटियों

झरनो और दर्रों का वर्णन इतिहास में यत्र-तत्र बड़े रोचक ढंग से अंकित हुआ है। यह पर्वत-माला संकटकाल में युद्ध-रत योद्धाओ के लिये सैन्य संगठन करने और एकाएक आक्रमण करके पुनः पहाडो मे छिप जाने वाली गुरिल्ला युद्ध नीति के लिये बहुत ही उपयुक्त और महत्वपूर्ण आधार रहे हैं। किन्तु ये पहाड शान्तिकाल मे मानव के लिये आनन्ददायक प्राकृतिक सौंदर्य-स्थल तथा मौन और एकाकी साधना करने वाले योगियो के लिये उपयोगी स्थल भी रहे हैं।

राजनैतिक सीमा-विभाजन की दृष्टि से भारत के इतिहास मे विंध्याचल पर्वतमाला की भांति अरावली पर्वतमाला का बड़ा महत्व रहा है। इस पर्वतमाला द्वारा राजस्थान प्रदेश के पूर्वी एवं पश्चिमी भागो मे विभक्त होने से भिन्न भिन्न शक्तियां जन्म लेती रही। मध्यकाल मे पश्चिम मे मारवाड में प्रधानतः राठोड़ो और पूर्व मे मेवाड में सिसोदिया राजपूतो का आधिपत्य रहा। थार के रेगिस्तान एवं इस पर्वतमाला के कारण उत्तर के आक्रमणकारी प्रायः पूर्व की ओर अथवा पश्चिम की ओर मुड़ जाते थे। दक्षिण-विजय को प्रस्थान करने वाले दिल्ली के बादशाह भी पर्वतीय भाग के विस्तृत प्रदेश को प्रायः अछूता छोड जाते थे। दक्षिण की ओर ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर्वतीयमाला ने राजस्थान और गुजरात प्रदेशो के बीच विभाजन रेखा का कार्य किया है। पहाड़ो में सुरक्षा की दृष्टि से घने वन, ऊंची घाटियो और गुफाओ के स्थल बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। ये स्थल सदा से वनीय जन्तुओं के निवास स्थान रहे हैं। आत्म रक्षा की दृष्टि से मानव ने इन स्थलों में प्रवेश किया। मैदानी इलाको की भांति जब तीर, तलवार और बल्लभ पर्वतो में भी चलने लगे तो ऊंचे २ पर्वतो पर दुर्गों का निर्माण शुरु हुआ और पर्वतीय इलाको की सुरक्षा की दृष्टि से नवीन सामरिक व्यवस्था एवं रीति-नीति का जन्म हुआ। इस प्रकार की दुर्ग-संरचना के क्रम मे अरावली पहाडो पर कई दुर्गों का निर्माण हुआ जिनमें दिल्ली, बयाना, राजगढ़, झुंझनू, आमेर, तारागढ़, (अजमेर), उंठाला, देवगढ़, कुंभलगढ़, कोटडा, मांडलगढ़, भैंसरोड़गढ़, बूंदी, हम्मीरगढ़, जहाजपुर, मंडोर, सिरोही, सिवाना, जालोर, अचलगढ़ (आबू) जोधपुर, गलियाकोट, देवलिया, प्रतापगढ, कुशलगढ, ओंगगढी, बांसवाडा आदि किले बने। इसी प्रकार राजस्थान मे विंध्याचल के ढालो पर धौलपुर, रणथम्भोर, कुम्हेर, भैंसरोडगढ़, चित्तोड, इन्द्रगढ़, उंटगढ़ आदि किलों का निर्माण हुआ। इन किलो की उपादेयता एवं उपयोगिता वर्षों तक उनके अजेय रहने पर प्रकट होती रही। राजस्थान के चित्तौड़गढ, रणथम्भोर आदि किले अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण तक अजेय रहे। भरतपुर का किला तो अंग्रेजो की गगनभेदी तोपो के सामने भी अजेय रहा।

सामरिक महत्व:--

इस भांति पर्वतमाला तथा उन पर स्थित दुर्ग सामरिक दृष्टि से कई प्रकार से उपयोगी सिद्ध होते थे।

१. घोड़े हाथियों आदि पर सवार होकर आक्रमण करने वाले लोगो के लिये अज्ञात एवं दुर्गम घाटियो को पार करना बड़ा कठिन होता था तथा आक्रमणकारियो को गुप्त पर्वतीय स्थलो से होने वाले तीरो, पत्थरो आदि के प्रहारों से भयानक विनाश का सामना करना पड़ता था।

२. ऊँचाई के कारण दूर से आने वाले शत्रु आसानी से दिखाई पड जाते और उनकी गतिविधियो की जानकारी रखना सरल होता था।

३. आक्रमणकारी के तीर और बन्दूको की गोलिया किले में रहने वाले सैनिकों का उतना विनाश नहीं कर पाती थी, जितना कि पर्वत की चोटी पर बने किले के परकोटे मे रहने वाले लोग बुर्जों, सहतीरो से तीरो, बन्दूको एवं पत्थरो से आक्रमणकारियो का विनाश करते थे।

४. किले घिर जाने पर किले के अन्दर कई दिनो के रसद और पानी का प्रबंध होने के कारण किले के अन्दर से एवं बाहर से शत्रु पर अचानक आक्रमण कर भाग जाने वाली युद्ध-नीति से आक्रमणकारियो को त्रस्त किया जाता था एवं उस इलाके से आवश्यक रसद आदि प्राप्त करना भी कठिन कर दिया जाता था।

५. सकरे पर्वतीय मार्गो, दर्रों को प्राय: द्वार बनाकर बद कर दिये जाते थे। वहा दोनो ओर पहाड़ो की चोटियो पर चोकसी के लिये सैनिक रहते थे, जिससे हमलावर लोगो को संकरे मार्ग मे होकर जाने मे कठिनाईया रहती थी और कई बार दर्रे पार करते करते ही उनकी बहुत सी फौजें काट दी जाती थी। महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह आदि के काल में जब जब मुगल सेनाओं ने मेवाड पर आक्रमण किया, उन्हें धाँगडमऊ, मुंकदडा, देवारी, चीरवा, ऊंदरी के घाटो या देसूरी एवं राणकपुर की नाल या हल्दी-घाटी से होकर प्रवेश करना पड़ता था। इन संकरे पर्वतीय मार्गो मे उनको भारी विनाश का शिकार होना पडता था। ऐसा कहते हैं वर्तमान जयसमुद्र का निर्माण भी संकरे पहाडी मार्ग को रोकने के लिये किया गया। इसके पानी को पार कर शत्रु सेना के लिये दूसरे किनारे के इलाके पर आक्रमण करने में भी बड़ी बाधा आती थी। इसी सुरक्षा की दृष्टि से पिछोला झील के किनारे उदयपुर के राजमहल बनाये गये तथा उदयपुर नगर बसाया गया।

६ अरावली पहाड के दक्षिण-पूर्व के मगरा, छप्पन, भोमट, मेवल, कांठल, वागड आदि इलाको के सघन वनो तथा चित्तौड, बूंदी, कोटा, सवाई माधोपुर और भीलवाडा के पहाड़ो में पाये जाने वाले सघन वनो में उत्तरी भारत के समतल मैदानों के रहने वाले आक्रमणकारी सदैव असफल रहे। इन पहाडी इलाको मे विपत्ति के समय रहने पर खाने के लिये जंगली अनाज और जगली जानवरो का शिकार उपलब्ध हो सकता है।

७ सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इन पहाड़ों के विषम वातावरण में स्वच्छंद निवास करने वाली और पहाडी मार्गो से परिचित युद्धप्रिय आदिम जातिया निवास करती हैं जिनका सहयोग जब कभी किसी राजा को प्राप्त हुआ उसको

पराजित करना प्रवल से प्रवल शत्रु के लिये असाध्य होगया। इसके अलावा प्राकृतिक जीव और मलेरिया आदि बीमारियाँ आदि भी बाहर से आने वाले लोगो के लिये घातक प्रमाणित होती थी। इस प्रकार अरावली पहाड़ों मे निवास करने वाले लोगो पर आक्रमण करना प्राय. उतना ही दुघर्ष और संकटप्रद था जितना कि शेर की गुफा में प्रवेश कर उसे छेड़ना। साथ ही इन वनवासियो से शस्त्र, भोजन, वस्त्र और आवास के साधन प्राप्त हो जाते थे जो आक्रमणकारी के लिये दुर्लभ होते थे।

अरावली के प्रसिद्ध दुर्ग:—

अरावली पर्वतमाला के विस्तृत क्षेत्र में निर्मित कई दुर्ग इतिहास-प्रसिद्ध रहे हैं। मेवाड और हाडौती, अजमेर और आमेर के दुर्गो का निर्माण इन्ही पहाड़ों पर हुआ है। इन पर्वतमालाओ का महत्व मेवाड के इतिहास में महाराणा सांगा से राजसिह तक अत्यधिक रहा है। महाराणा प्रताप का तो समग्र जीवन ही अरावली पहाड़ों में कटा था। यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि महाराणा प्रताप और अरावली पहाड़ एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये थे।

अरावली पहाड़ो पर दुर्ग बनाने का अधिकांश कार्य राजपूतों द्वारा किया गया है। परिहार, परमार, चौहान, सिसोदिया, राठोड़, कछवाहा और भाटी राजपूतों ने चित्तौड़, आबू, स्वर्णगिरि (जालोर) तारागढ़, रणथम्भोर, कुंभलगढ़, भटनेर, सिवाना, मांडलगढ़, बयाना, मलियाकोट, आमेर, जैसलमेर, मण्डोर और जोधपुर के किले बनाये। जाटों ने धौलपुर, भरतपुर, डीगके किले बनाये। इस प्रकार इन सब दुर्गों को देखने पर ज्ञात होता है कि सबसे अधिक किलो के बनाने का काम ६वीं से १६वीं शताब्दि के मध्य हुआ। इस काल में अरावली पहाडो पर छोटे बड़े १०० से भी अधिक किले बनाये गये। इनमें सबसे अधिक किले और इमारतें बनाने का काम महाराणा कुम्भा ने किया। उन्होंने अपने जीवन काल मे ८० किले और कई इमारतें बनायी।

इतिहास मे कई शताब्दियों तक सुदृढ दुर्गों ने आक्रान्ताओ से रक्षा करने का कार्य सफलतापूर्वक किया। मध्यकाल मे बारूद के आविष्कार के साथ दुर्गों की अभेद्यता टूट गई। अलाऊद्दीन खिलजी द्वारा चित्तोड़ और रणथम्भोर दुर्गों का ध्वंस इसका प्रारम्भ था। अरावली के अन्दर के घने भागों के दुर्गों का महत्व फिर भी बना रहा।

अरावली और प्रताप:-

१५६७ ई० के चित्तौड-पतन के बाद अरावली पर्वतमाला का सामरिक दृष्टि से नवीन तरह से उपयोग किया गया। महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ की असमर्थता का ख्याल करके अरावली के घने भागों मे चले गये। उन्होंने चारो ओर दुर्गम पर्वतीय श्रेणियो से घिरी वर्तमान उदयपुर घाटी को अपना केन्द्रस्थल बनाना निश्चित किया।

निरन्तर मुगल आक्रमणों के आगे महाराणा प्रताप को उदयपुर की घाटी भी त्यागना पड़ा, क्योंकि इस घाटी में प्रवेश के लिये उत्तर और पूर्व दिशाओं में अपेक्षाकृत सरल मार्ग हैं। गोगूंदा

स्थान का चुनाव भी प्रताप को शीघ्र ही छोड़ना पडा, क्योंकि देसूरी और हल्दीघाटी के मार्गों से प्रताप पर मुगल सेना का बरावर दबाव पड़ता रहा। अन्त में प्रताप अरावली के अत्यधिक विकट भागों में चले गये। छप्पन का पर्वतीय भाग प्रताप के लिये स्थायी सुरक्षा-स्थल बन गया। उससे लगी हुई दक्षिण-पूर्व की ओर की चावंड की घाटी को प्रताप ने अपना राजनैतिक एवं सामरिक कार्य-स्थल (राजधानी) बनाया।

चावँड का स्थान सामरिक दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इस स्थान पर आक्रमण करना शत्रु के लिये दुस्तर कार्य था। आक्रमण होने पर निकट के दुर्गम एवं वनीय पर्वतो मे गायब होना आसान रहता था। इसके अलावा इस स्थान से निकल कर समय समय पर मालवा, गुजरात और गोडवाड इलाको में आक्रमण कर लूटपाट मचाना तथा लौट कर पहाडों मे छिप जाना बड़ा सरल रहता था। इसी स्थान से प्रताप और उसके सेनापतियो ने कई वार मुगल प्रदेशो पर सफल आक्रमण किये, मुगल सेनाओ का विनाश किया और धन एवं साधन प्राप्त किये। प्रताप ने इसी समय सफल 'छापामार' युद्ध नीति का संगठन एव संचालन किया। जिसके लिये वे इतिहास-प्रसिद्ध हो गये हैं। इसी नीति का बाद मे शिवाजी ने प्रयोग किया।

इस संकट-काल में प्रताप और उसके साथियो के परिजन भीलो के सहारे छप्पन के विकट एवं दुर्गम पर्वतो में रहते थे। सम्भवत मेवाड़ राज्य के सभी प्रकार के साधन कोष आदि भी इस भाग में सुरक्षित रखे गये होगे। कमलनाथ के पर्वत पर प्रताप का सपरिवार रहने की वात इस इलाके में प्रसिद्ध है और उस पर्वत पर आज भी कुछ खंडहर अवशिष्ट हैं, जहां प्रताप का परिवार रहता था।

अरावली के इस भाग में भ्रमण करने पर सर्वत्र प्रताप से सम्वंधित स्थान, खंडहर, स्मारक आदि दृष्टिगत होते हैं। इन सभी स्थानों के साथ प्रताप के जीवन की कोई न कोई घटना जुड़ी हुई है। इन इलाकों मे प्रताप के सम्वन्ध मे कई प्रकार की घटनाएं एवं किवदंतियां प्रचलित हैं जो प्रताप के जीवन एव चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालती हैं।

हिन्दी-काव्य और महाराणा प्रताप

—डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

हिन्दी-काव्य में भक्ति, शृंगार एवं वीरता की तीन प्रमुख प्रवृतियां मिलती हैं। इन प्रवृतियों में वीरता की प्रवृति उसके साथ आदिकाल से ही जुडी हुई है। भक्तिकाल मे यह प्रवृति दिव्य चरित्रो का अंग बनी और रीतिकाल के शृंगारिक वातावरण मे इसने देश और धर्म के लिए युद्ध-रत वीरो का साथ दिया। आधुनिक काल मे इस प्रवृति का विकास राष्ट्रीय भावना के रूप में हुआ जिसके फल-स्वरूप अनेक ओजस्वी चरित्र भारतीय मानस को प्रभावित करने में समर्थ हुए। हिन्दी-काव्य को समृद्ध बनाने वाली वीरता की इस प्रवृति ने ही भारतीय इतिहास को महाराणा प्रताप का वह पवित्र तथा शौर्यपूर्ण चरित्र दिया, जिसके बिना महाराणा प्रताप का प्रताप वह प्रखरता न प्राप्त कर पाता जो आज उसे प्राप्त है, अस्तु।

हिन्दी-काव्य मे महाराणा प्रताप संबधी कविता की अलग एक धारणा हो बन गई है। उनके जीवन-काल से अब तक मुक्तक और प्रबन्ध की शैलियो में अनेक काव्य लिखे गए हैं। उन काव्यो की विषय और शिल्प की दृष्टि से ही नहीं जीवन-दर्शन की दृष्टि से भी अनेक मौलिक प्रवृतियां हैं, जिनका सम्यक् आकलन एक स्वतंत्र शोध-प्रबन्ध का विषय है।

ध्यान देने की बात है कि हिन्दी-काव्य की रचना डिंगल, पिंगल, ब्रज, अवधी, मैथिली और खडी बोली की छ भाषा-शैलियों में हुई है। आधुनिक काल तक आते आते ये शैलियां मिलकर एक हो गई हैं और भाषा-शैली की दृष्टि से हिन्दी-काव्य को एक-रूपता प्रदान करने मे सफल हुई हैं।

इन छः भाषा-शैलियो मे से राणा प्रताप-संबंधी काव्य-धारा का विकास केवल ४ मे ही हुआ। अवधी और मैथिली में अब तक कोई स्वतन्त्र काव्य देखने को नहीं मिला। डिंगल और पिंगल राजस्थान की बोलियो की साहित्यिक काव्य-शैलियां थी। इनमें रचना करने वाले कवि प्रायः चारण और भाट थे, जो आश्रयदाता राजाओं का गुणगान करते थे। राणा प्रताप का अधिकांश जीवन युद्धो मे व्यतीत हुआ था, अत वे किसी भी अर्थी कवि को आकृष्ट नहीं कर सकते थे। केवल वे कवि ही उनके चारित्र पर काव्य-रचना कर सकते थे, जो किसी के दिव्य गुणो पर रीझ सकते हों या जिन्हे देश और समाज की रक्षा की चिंता हो। राजस्थान के इस महावीर राणा प्रताप के गुणों पर ऐसे अनेक कवि रीझे और उन्होने डिंगल शैली में एक ऐसी शाश्वत काव्य-धारा प्रवाहित की जो खड़ी बोली की शैली मे विकसित राष्ट्रीय काव्य-धारा की गँगा में मिलकर एक तीर्थ के रूप मे परिवर्तित हो गई।

इतिहास के मर्मज्ञ और हिन्दी साहित्य के भक्त डॉ० देवीलाल पालीवाल ने बहुत परिश्रम से अप्रकाशित रूप में उपलब्ध डिंगल के समस्त काव्य-सृजन का प्रकलन "प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप" नामक ग्रंथ में किया है। इस ग्रंथ को देखने से पता चलता है कि राणा प्रताप संबंधी काव्य की रचना हिन्दी में उनके समकालीन कवि पृथ्वीराज से ही प्रारंभ हो गई थी। वही कवि था, जिसने घास की रोटी भी संतान के हाथ से छिन जाने पर अकबरी साम्राज्य के आगे झुक जाने का निश्चय करने वाले राणा प्रताप को पत्र लिख कर सचेत किया था। फिर उन्होंने देश की बलिवेदी पर जिस गरिमा के साथ अपने आपको समर्पण किया, उसे भारतीय इतिहास भुला नहीं सकता। पृथ्वीराज की ये पंक्तियां उस इतिहास का महिमा-शिखर हैं—

जासी हाट बात रहसी जक
अकबर ठग जासी एकार।
रह राखियो खत्री ध्रम राणं
सारा ले बरतो ससार॥

डिंगल में पृथ्वीराज के स्वर मे स्वर मिला कर जिन अन्य समकालीन कवियों ने राणा प्रताप के पावन चरित्र का गायन किया उनमें, दुरसा आढा पीरा आसिया, रामा सांदू, जाड़ा मेहडू, गोरधन वोगसा आदि के नाम प्रमुख हैं। ये वे कवि हैं, जिन्होंने किसी कामना से प्रताप का यश-गान किया था, अपितु उनके सामने राणा प्रताप के वे गुण थे जिनसे देश और जाति की रक्षा होती है। दुरसा आढा ने लिखा है—

आया प्रन भूपत आवाहण
भुजंग भजग तजे बल भंग,।
रहियौ राज खत्रीध्रम राखण
सेत उरग कलोधर संग॥

रामा सांदू ने राणा प्रताप की वीरता पर रीझ कर केवल कविता ही नहीं की थी, अपितु आत्म-बलिदान भी किया था, जिसका कवि पृथ्वी-राज राठौड़ ने अपनी कविता में बड़े गौरव के साथ स्मरण किया है :—

चारण जाणं माय चारणा
अवं समै विच नथ, अनथ,
धरमां तणौ न वैठो धरणं
रामौ वैठो रभ रथ।

पृथ्वीराज राठौड का प्रताप के संबंध में निम्नांकित दोहा उसके समकालीन अन्य कवियों की भावनाओं को भी अपनी भावभूमि मे समेटे हुए हैं:—

माई एहडा पूत जण, जेहडा राणा प्रताप।
अकबर सूतौ ओझकं, जाण सिराणे साप॥

इन पंक्तियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि अपने समकालीन हिन्दी काव्य पर ही राणा के पुण्य चरित्र का कितना गहरा प्रभाव था। राजाओं के आश्रय मे रहने वाले कवियों ने अपने अपने आश्रयदाताओं का बड़े बड़े ग्रंथों में गुणगान किया है किन्तु वे सभी बड़े ग्रंथ इस एक दोहे की भाव-गरिमा पर तुल जाते हैं। पृथ्वीराज प्रताप के शत्रु के दरबार मे रहे थे, अतः उनमे अधिक प्रताप के पराक्रम का अकबर पर पड़ने वाला प्रभाव अन्य कौन कवि जान सकता था?

अकबरी दरबार के ही एक अन्य व्रजभाषा कवि गंग भी महाराणा प्रताप की वीरता, देश-भक्ति एवं गरिमा से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने भी मुक्त कंठ से प्रताप के गुणो का वर्णन किया है।

प्रताप के समकालीन कवियो ने केवल मुक्तक कविताएं लिख कर ही प्रताप की प्रशंसा नहीं की अपितु प्रवन्ध कविता में भी उनके यश का गान किया था। माला सांदू ऐसे कवियो मे प्रमुख है। उसने 'महाराणा प्रतापसिंहजी रा झूलणा' नामक प्रवन्ध कविता की रचना की। डिंगल के कुछ अन्य कवियो ने भी प्रताप के सवध मे प्रवन्धनात्मक कविताए लिखी। किसोरदास, दलपतिविजय एव गिरधर आसिया के नाम ऐसे कवियो मे गिनाए जा सकते हैं। गिरधर आसिया का 'सगत रासौ' काव्य की उदात्त भाव-भूमि पर प्रताप की महिमा प्रस्तुत करता है।

व्रजभाषा की शैली मे राणा प्रताप का वर्णन स्वतंत्र प्रवन्घ के रूप में नहीं मिलता। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उसमे प्रताप-संबंधी स्वतत्र काव्य लिखे ही नहीं गए होगे। वस्तुत: मुगलो के आतक के कारण मध्य देश की भषा मे उनका उतना प्रचार-प्रसार नहीं हो सका। मुक्तक रुप मे जो अन्य उदाहरण मिलते हैं उनमे व्रज-भाषा के कवि-मानस पर प्रताप के निरतर वढ़ते हुए प्रभाव का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। डा० देवीलाल पालीवाल ने कई एसे सुन्दर छद अप्रकाशित संग्रहो से खोज निकाले हैं जिनसे प्रताप के चरित्र पर चढ़ता हुआ व्रजभाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति का रंग अत्यधिक आकर्षित हो उठा है।

उदाहरणार्थ १९वीं शताब्दि के कवि स्वामी गणेशपुरी के प्रताप संबंधी मुक्तको में से एक छंद इस प्रकार है:-

बाढ़ी वीर हाक हर डाक भुव चाक चढो।
ताक ताक रही दूर डाक चहुँ कोर में।
बोलिकै कुबोल हय तोल वहलोल खां पै।
वागो-प्रान कता रान पता को विनोद में।
टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट
सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद मे।
राह गोद मंगल की मंगल गुरु की गोद
गुरु गोद चद की अरु चद रवि गोद मे॥

अगर व्रजभाषा की शैली में लिखी गई प्रताप-संवधी सभी मुक्तक कविताएं सुरक्षित रह पाती तो उससे हिन्दी साहित्य की अद्भुत समृद्धि होती। किंतु मुगल साम्राज्य के आतक ने परा-धीन जाति को वह सव नहीं करने दिया। स्वतंत्रता-पूर्वक वे कवि प्रताप का यशगान नहीं कर सकते थे जो राजदरबारों मे रहते थे और अन्य कवियो के काव्य की सुरक्षा के साधन ही नहीं थे।

व्रजभाषा में प्रताप-संवंधी प्रवन्ध-काव्य का उदाहरण केसरीसिह बारहठ का 'प्रताप चरित्र' काव्य है। इसकी रचना १८८४ वि० मे सोन्याणा (मेवाड़) में हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी कविता में राष्ट्रीय भावनाओ को स्थान देकर हिन्दी कवियों के लिए राष्ट्रीयता का जो मार्ग प्रशस्त किया था, उसी का प्रतिफल इस काव्य में हुआ है। "प्रताप-चरित्र" के इस छंद की भाव-भूमि देखिए:—

पूरन पवित्र परताप, है चरित्र तेरो।
पढिवे तें मेट देत संकट भिताप में॥
मेरे जानिके में रामनाम सो महान मंत्र।
पाठ के करे ते हठि जात पुन्ज पाप के॥"

वीर-रस-पूर्ण इस काव्य में केसरीसिंहजी बारहठ ने राणा प्रताप की वीरता का सर्वत्र मनोहारी आलंकारिक वर्णन किया है। कवि ने रीतिकालीन आलंकारिक शैली ही नहीं अपनाई, अपितु परम्परा से चले आते हुए उपमान भी स्वीकार किए हैं तथा पौराणिक संदर्भों का सहारा लेकर रोचकता उत्पन्न की है। उदाहरणार्थ रणभूमि का दृश्य यहां दृष्टव्य है। इस वर्णन से ब्रजभाषा की अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन की कडी जुडती है:—

अलकापुरी में अजौंपरी राशि मुन्डन की,
अजौं चन्द्रहासन सुवास इतरन की।
रक्तनाल वहे तातें धरा ना पटी है अजौं,
दीखत है लाल लाल अजौं भूमि रन की।
घोर घमासान रच्यों पातल इरिद्वी घाट,
पीर ना मिटी है अजौं रोष के फनन की।
साल प्रतिसल टाल टाल के निकाल कर,
अजौं चन्द्रमाल खाल आढत गजन की।

निश्चय ही इन पंक्तियों में कवि ने ओज रखा है, उसके पीछे जातीयता के स्वाभिमान की ठोस भूमिका है, जो आधुनिक कालीन राष्ट्रीयता के विरोध मे कहीं भी खडी नहीं मिलती। गांधीवादी राष्ट्रीय भावना के गायको ने भी जातीयता के भावो को महत्व दिया है तथा विभिन्न कथा-प्रसंगो एवं भाव-भूमियो से राष्ट्र को जगाने, बलिदान करने एवं स्वतंत्रता लाने की प्रेरणा बारहठ के प्रताप-चरित्र में भी वर्तमान है।

ब्रजभाषा का आसन छीनने वाली खड़ी बोली में तो महाराणा प्रताप का एक ऐसा भव्य विम्ब राष्ट्रीय भावना की भूमि से उठा, जिसने समस्त देश को ही अपने जादू से चमत्कृत कर दिया। जनता, कवि तथा स्वाधीनता के सेनानियों को राणा प्रताप स्वतंत्रता के पर्याय नजर आने लगे। वस्तुतः खडी बोली की प्रताप-संबंधी कविता ने राष्ट्रवीर की जो मानस-प्रतिमा देश को दी, उसका स्थान शिवाजी तो ग्रहण कर ही नहीं सके, अन्य आधुनिक शहीद भी नहीं कर पाए।

खडी बोली में राणा प्रताप संबंधी काव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनो ही रुपों में प्रचुर परिमाण मे लिखा गया। जहां तक प्रताप-संबंधी मुक्तक-काव्य का प्रश्न है, उसमें भावना के रंग अधिक उभरे हैं, किंतु प्रबन्ध काव्य में विचार और राष्ट्रीयता का दर्शन भी उभर कर आया है। जिन कवियो ने राणा प्रताप के संबंध में मुक्तक कविताएं रची हैं, उनमें प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चोहान, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, शिशु, रामावतार 'अरुण' राकेश, श्यामनारायण पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, सुमनेश आनंद मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, कन्हैयालाल सेठिया तथा हरिकृष्ण प्रेमी आदि कवि प्रमुख हैं। इन कवियो ने प्रताप को मातृभूमि को मुक्ति दिलाने वाला मा का सच्चा सपूत तथा देश और जाति का रक्षक बतलाया है।

सर्वत्र उसकी वीरता का वर्णन राष्ट्रीय दृष्टि से किया गया है। अधिकांश मुक्तक कविताओं में प्रताप के चरित्र की वे भूमियां अनावरित की गई हैं, जो आधुनिक परिवेश में देश के प्रति प्रेम जगाती हैं तथा जाति की स्वाधीनता के लिए बलिदान की प्रेरणा देती हैं। उदाहरणार्थ 'वीरांगना' (डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश' कृत) में 'राणा का स्वप्न' कविता में राणा समस्त देश की पराधीनता की पीड़ा अनुभव करता हुआ स्वप्न मे मृत चेटक की यह बोली सुनता है:—

वह अरि जो भारमाता को
बधन मे जकड़े बैठा है,
जो दिशि–दिशि से ऊपर के सब
अंबर को पकडे बैठा है,
हिल जाय गगन उसका भय से
ऐसी हुंकार सुनाओ तो।
उठ प्रलयपयोधर से गरजो
असि से ज्वाला चमकाओ तो॥

प्रसिद्ध कवि हरिकृष्ण प्रेमी ने समस्त देश की स्वतंत्रता के लिए प्रताप को वन वन भटकता हुआ देखा है:—

भारत के सारे बल को जब, कसा वेड़ियो ने अनजान।
तब केवल तुम ही फिरते थे, वन वन पागल सिंह समान॥

जिन कवियों ने खडी बोली मे प्रताप के पावन चरित्र को विषय बनाकर प्रबन्ध-काव्यो की रचना की, उनमे जयशंकर प्रसाद, श्यामनारायण पाण्डेय, गोकुलचंद्र शर्मा और रणवीरसिंह शक्तावत के नाम प्रमुख हैं। जयशकर प्रसाद ने "महाराणा का महत्व" एवं गोकुलचंद्र शर्मा ने "प्रणवीर प्रताप" नामक खण्डकाव्य में प्रताप के चरित्र का शौर्यपूर्ण राष्ट्रीय चित्र उभारा है। इन कार्यों की भाषा आधुनिक युग की व्यापक राष्ट्रीयता को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। कवियों ने प्रताप की वीरता के पीछे उसके त्याग, बलिदान जाति-हित एवं पराक्रम के भावो को सारे देश के साथ जोड कर चित्रित किया है।

श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' मे राष्ट्रीयता का पक्ष उतना महत्व नहीं रखता जितना महत्व उन्होंने प्रताप के हिन्दू-प्रेम को दिया है। व्यक्ति-पक्ष प्रधान है, फिर भी वह पक्ष राष्ट्र के कल्याण की भावना को महत्व देता है। वीरता आदि के चित्र जितनी ओजपूर्ण भाषा मे पाण्डेयजी ने प्रस्तुत किए हैं, उतनी ओजपूर्ण शब्दावली भूषण के काव्य में भी नहीं मिलती। अत. दृष्टिकोण की ही नहीं कवित्व की भी हल्दी-घाटी को गरिमा प्राप्त हुई है।

शिशुपालसिंह 'शिशु' ने भी हल्दीघाटी की एक रात मे प्रताप को राष्ट्रीय दृष्टि से देखा है। रणवीरसिंह शक्तावत के 'प्रताप' महाकाव्य मे यद्यपि हिन्दू-प्रेम को वर्णन की पृष्ठभूमि बनाया गया है तथापि कवि ने हिन्दू शब्द के अर्थ को धर्म की भावना तक सीमित न रखकर भारतीय जाति का वाची बना दिया है और उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करने वाले शासक-वर्ग को यवन की संज्ञा दी है। अतः 'प्रताप' महाकाव्य की भाव-धारा भी राष्ट्रीयता के उपक्रमों में ही प्रवाहित मिलती

है। अभिव्यक्ति में अभिव्येवता अधिक होने पर भी भावोद्‌बोधन की अपार क्षमता है।

इन काव्यों के अतिरिक्त रामनारायण माथुर कृत "हल्दीघाटी का युद्ध" मिश्र कृत "भारतसूर्य" आदि ग्रंथ भी महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

सारांश यह कि हिन्दी-काव्य में महाराणा प्रताप को अपने काल से ही गौरवपूर्ण स्थान मिलना आरंभ हो गया था। उनके त्याग, बलिदान, स्वातंत्र्य-भावना तथा प्रजा मुक्ति की कामना को कवि-गण आदरणीय और उल्लेखनीय मानने लगे थे। अतः अपनी प्रतिभा के प्रसूनो से वे इस पावन चरित्र का गायन करने को प्रेरित हुए। हिन्दी की डिंगल, पिंगल, व्रजभाषा एवं खड़ी बोली नामक चार भाषा-शैलियो में वह चरित्र निरंतर ऊंचा उठता गया और आधुनिक काल में आकर समस्त देश को जगाने मे सहायक हुआ। खड़ी बोली के कवियो ने राणा प्रताप के उस बलिदान को मुगलो की शक्ति के आगे कोई विशेष परिणाम नहीं लगाया था। अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिलाने में सबसे बड़ी प्रेरणा-शक्ति सिद्ध कर दिखायी। भविष्य में भी यह पावन-चरित्र हिन्दी काव्य में ऐसी प्रेरणा-शक्ति बनकर रहेगा — यह निश्चित है।

मेवाड़ में जैन धर्म और आ० हीर विजय सूरि को—

महाराणा प्रताप का दिया हुआ पत्र

—अगरचन्द नाहटा

मेवाड मे जैन धर्म का प्रचार काफी प्राचीन काल से है। चित्तौड के निकटवर्ती माध्यमिका नगर से प्राप्त जैन अभिलेख के अनुसार जैन धर्म का प्रचार महावीर-निर्वाण के कुछ समय बाद ही हो गया था। माध्यमिका नगर से जैन साध संघ की माध्यमिका शाखा निकली। वैसे उज्जैनी, दशपुर आदि मालव-प्रदेश में तो भ० महावीर के समय से ही जैन धर्म प्रचारित था ही। महावीर के कुछ शताब्दियों बाद तक के मेवाड के जैन धर्म प्रचार संबधी उल्लेख ज्ञात नहीं है पर आठवीं शताब्दी में आचार्य हरिभद्रसूरि हुये। उन्होने चित्तौड मे रहते हुये 'धूर्ताख्यान' नामक प्राकृत ग्रंथ की रचना की। प्राचीन प्रबन्धों के अनुसार आचार्य हरिभद्र तो चित्तौड के ही थे। उसके बाद तो समय-समय पर अनेक जैनाचार्यों और साधु-साध्वियो का भी मेवाड प्रदेश में विहार होता रहा। १३ वीं शताब्दी में जगचन्द्र सूरि आहड (आभाटपुर) में आये और उनके विशेष तप करने से वहाँ से 'तपागच्छ' का प्रादुर्भाव हुआ। १२ वीं शताब्दी से खरतर-गच्छ का भी इस प्रदेश में अच्छा प्रचार रहा है। सुप्रसिद्ध आचार्य जिनवल्लसूरि और जिन दत्तसूरि का चित्तौड़ में काफी प्रभाव था। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे जिनोदयसूरिजी ने मेवाड़ में जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया। उनके विहार का कुछ वर्णन 'विज्ञप्ति महालेख' में पाया जाता है जो मुनि जिन विजयजी सम्पादित 'जैन विज्ञप्ति लेख संग्रह" मे छप चुका है। १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे खरतरगच्छ की दो शाखायें जिनवर्द्धनसूरि और जिनभद्रसूरि से अलग-अलग हो गई। जिनवर्द्धन सूरि की पिप्पलक शाखा के आचार्यों के कई लेख चित्तौड आदि में प्राप्त हुये हैं। १७वीं शताब्दी में खरतरगच्छ में दो और शाखा-भेद हुये अर्थात् जिनरंगसूरि और जिनरत्नसूरि दोनों की परम्परा अलग-अलग हो गई। और दोनों का उदयपुर आदि में अच्छा प्रभाव रहा। इधर विजयगच्छ और लोंकागच्छ का भी १७वीं-१८वीं शताब्दी में विशेष प्रचार हुआ। आगे चलकर स्थानक-वासी और तेरापंथी सम्प्रदाय का प्रभाव भी मेवाड प्रदेश में बढ़ता गया। उदयपुरादि में अन्य कई गच्छों के जैन महात्मा जाति वाले हैं। १७वीं शदी के हीरानंदसूरिजी को महाराणा कुंभा ने कविराज पद दिया था।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के उपरोक्त गच्छों के अतिरिक्त दिगम्बर सम्प्रदाय का भी इस प्रदेश में अच्छा प्रचार रहा है। चित्तौड़ का जैन कीर्ति स्तम्भ दिगम्बर श्रावक का ही बनाया हुआ है। चित्तौड़ पर श्वेताम्बरों के तो ३२ जैन मंदिर १६वीं

शताब्दी मे विद्यमान थे जिनका उल्लेख 'चित्तौड़ चैत्य पारपाटी' मे मिलता है और इस सबध मे मेरा लेख जैन सत्यप्रकाश व शोध पत्रिका मे छप चुका है। शोध पत्रिका के प्रारम्भिक वर्षों में 'जैन साहित्य मे चित्तौड़' शीर्षक लेखमाला मैने प्रकाशित करनी प्रारभ की थी। पर वह दो-तीन अंकों में ही प्रकाशित हो सकी, आगे का काम रूक गया। मेवाड के गांव गांव में जैनों की बस्ती है। और अनेक स्थानों में जैन मन्दिर हैं। उन सबका इतिहास टटोला जाय तो काफी नवीन जानकारी प्रकाश में आ सकेगी। स्व० यतिवर्य अनूपऋषिजी ने मेवाड़ के कई स्थानो के जैन मन्दिरो व मूर्तियो के लेख सग्रहीत किये थे।

मेवाड के अनेक स्थानो के महत्वपूर्ण विवरण जैन काव्यादि ग्रन्थो में पाये जाते हैं। उनका सग्रह किया जाय तो इस प्रदेश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड सकता है। १५वीं शताब्दी में पोरवाड धरणासाह ने महाराणा कुम्भा के राज्य काल मे बहुत ही कलापूर्ण और अजोड़ स्थापत्य कला वाला त्रैलोक्यदीपक जैनमदिर बनाया। १६वीं शताब्दी के करमासाह ने शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार किया जिसका विवरण मुनि जिनविजयजी सम्पादित 'शत्रुंजय तीर्थ द्वारा प्रवन्ध' आदि मे पाया जाता है। १७वीं शताब्दी के भामाशाह और १८वीं शताब्दी के दयालशाह तो विशेष प्रसिद्ध हैं ही।

महाराणा प्रताप के समय मेवाड की स्थिति बडी विकट रही। सम्राट अकवर ने कई बार सेना भेजकर मेवाड़ को तहस-नहस करने का प्रयत्न किया पर महाराणा ने अनेक कष्ट सह कर भी अपनी आन-बान को सुरक्षित रखा। चित्तौड़ का आक्रमण कितना भँयकर था, इसका कुछ वर्णन खम्भात के पोरवाड जैन कवि ऋषभदास ने प्रसंग-वश 'हीर विजय सूरि रास' में किया है।

अकबर और प्रताप के समय दो महान जैनाचार्य बडे ही प्रभावशाली हुये हैं। उन्होने सम्राट अकबर को जैन धर्म का प्रतिबोध किया था। तपागच्छ के आचार्य हीर विजयसूरि संवत् १६३९ में फतहपुर सीकरी जाकर सम्राट से मिले थे और संवत् १६४८-४९ में लाहोर जाकर खरतरगच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने सम्राट को जैन धर्म के प्रति विशेष आकृष्ट किया। इन दोनों आचार्यों के साथ सम्राट अकवर का विशेष धार्मिक सबंध रहा, इसका विशेष विवरण 'सुरीश्वर सम्राट', और हमारे युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि' ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है।

सम्राट अकबर अपने प्रारंभिक जीवन में काफी क्रूर रहा है। पर अन्तिम जीवन में अनेक धर्माचार्यों के सम्पर्क में आने से उसमें काफी परि-वर्तन आ गया। तपागच्छीय शातिचद्र, भानुचन्द्रादि और खरतरगच्छीय मानसिह (जिनसिंह सूरि), समय सुन्दर आदि का भी अकबर से अच्छा संबध था। हीर विजय सूरि और जिनचन्द्रसूरि के सम्राट पर प्रभाव के सूचक कई फरमान-पत्र प्राप्त होते हैं और शिलालेखो (समकालीन) के आधार पर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अकबर ने अपने राज्य में वर्ष ६ महीने जितने दीर्घकाल के समय भिन्न-भिन्न दिनो में जीव-हत्या बन्द करवा दी थी और अनेक जैन तीर्थों

की सुरक्षा के फरमान भी जारी किये थे। जैन-महापर्व-पर्युषण के १२ दिन जीव हिंसा न की जाय इसका एक फरमान तपागच्छ वालो को दिया गया और आषाढ़ चौमासे के ८ दिन तक जीव हिंसा न हो तथा खम्भात बन्दर की मछलियां न मारी जाय ऐसे फरमान खरतरगच्छ के जिनचन्द्र सूरिजी को दिये गये। अकबर का शासनकाल भारत का स्वर्णकाल या उन्नति का युग कह सक्ते हैं। जैन धर्म एवं समाज का भी इस समय अच्छा उत्थान हुआ।

महाराणा प्रताप वर्षों तक अकबर के प्रतिद्वन्दी रहे। एक के ऊपर एक आपदाएं उनके उपर आती रही, इसलिये धार्मिक दृष्टि से मेवाड में विशेष प्रगति नहीं हो पाई, जैनाचार्यों के साथ महाराणा प्रताप का क्या ऐसा सबंध रहा, इस विषय में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। पर जैन श्रावको का मेवाड मे काफी प्रभाव था, इसलिये साधु-साध्वियों का इस प्रदेश में उस संघर्ष के समय में भी विहार होते रहना सम्भव है। आसपास के अनेक स्थानो में तो जैन यति-महात्माओं द्वारा धर्म प्रचार होता ही था। 'जैनानन्द पुस्तकालय, आगम मंदिर, पालीताणा' से मुझे एक ऐसे पत्र की नकल प्राप्त हुई है जिसके अनुसार राणा प्रताप ने आ० हीरविजय सूरिजी को एक पत्र भेजा था। और उसमे अपने वहां आने का अनुरोध किया था। मूल पत्र कहां है ? जिसकी कि यह नकल की गई, यह ज्ञात नहीं हो सका है। पत्र की भाषा और शैली भी कुछ संदिग्ध सी है। संवत् १६३५ के आसोज सुदि ५ को यह पत्र लिखा गया है। उस समय हीर विजय सूरि सम्भवतया गुजरात में थे। मगसुदानगर को यह पत्र भेजा गया है। यह नगर कौनसा और कहां है ? यह ठीक से पता नहीं। इस पत्र से राणा प्रताप उस समय चावण्ड में थे। इस पत्र की प्रामाणिकता के संबंध में तो मैं मूल पत्र देखे बिना कुछ नहीं कह सकता। पर मुझे जैसी प्रति मिली है उसकी नकल नीचे दी जा रही है।

हीर विजय सूरि को राणा प्रताप का दिया पत्र ?

श्री रामोजायति ।।

श्री गुणेस प्रसादातु श्री एकलिंगप्रसादातु स्वस्त श्री मगसुदानग्र म्हासुभस्थाने सरब औपमा लाअेक भटारकजी म्हाराज श्री हीरवजेसूरजी चरण कुमलायण स्वस्त श्री वजेकटक चावड रा डेरा सुयाने म्हाराज धराज श्री राणा प्रताप सीयजी ली० पगे लागणो वचसी, अठारा समाचार भला है, आपरा स्दा भला छाहीजे। आप बडा के पुजणीक है बडा करवा रालेजी जीसु ससट रखावेगा अप्र १ आपरो पत्र अणादना म्हे आहीआ सो करण कर लखावेगा श्री बड़ा हजुर री बगत पदारवो हुवो जीस्में अठासु पाछा पदारता पातसा अकब्रजी ने जेना बाद म्हे ग्यान रो प्रतिबोद दीदो जीरो चमतकार मोटो बता आ जीवहिंसा छरकला त्या नाम पखेरू री वतीसो माफ काइ जीरो मोटो उपगार कीदो सो श्री जेन राग्र म्हे आप असाइज अदोतकारो अबार री स्मे देखता आप जुफेले न्ही

श्राखी पुरव हीद स्थान अत्र वेद-गुजरात सुदा चारू दसा मे धरम रो बडो अदोतकार दखाणो जढ़ा पछे आपरो हुओ न्ही सो कारण कई वेगा पदारसी आगे सु पटा प्रवाना कारण रा दसतुर माफक आप्रेहेजी माफक तोल मुरजाद सा बावत रेगा श्री बडा हजुर री बखत आप्री मुरजाद सामो आवारी कसू पडी सुणी सो काम कारण लेखे भुल रइवेगा जीरो अदेसो न्ही जाणेगा आगेसु श्री हेमाआचरजी ने श्री राज म्हे मान्याहे जीरो पटो कर देवा णो जी माफगयारो पगरा भटारख गादी प्रआवेग तो पटा माफक मान्य जावेजा श्री हेमाचारजी ने पेला श्री वडगच्छ रा भटारख जी ने बडा कारण सु श्री राज म्हे मान्या जी माफक आपने आपरा पगारा गादी प्र पाटवी तपगच्छ राने मान्या जावेगाइ सुवाये देस म्हे आप्रे गच्छ रा देवरो तथा उपासरो वेगाजी री मुरजाद श्री राज सुवा दूजा गछरा भटारख आवेगा सो राखेगा श्री समरण ध्यान देव जात्रा करे जठे आद करावसी भुलसी न्ही ने वेगा पदारसी प्रवा णगी पचोली गोरो समत १६३५ रा वर्षे आसोज सुद ५ गुरूवार ॥

श्री जैनानद पुस्तकालय आगम मदिर पालीताणा प्रति न० ३६७०

महाराणा प्रताप-सम्बन्धी नवीन ज्ञातव्य

—डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए; पी.एच.डी.

एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ[1] मे महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय नवीन ज्ञातव्य प्राप्त हुए हैं। विद्वज्जगत् की जानकारी और विचार हेतु इन उल्लेखों को यहां प्रस्तुत किया जाता है।

सुप्रसिद्ध हल्दीघाटी-युद्ध मे ग्वालियर के रामशाह तंवर द्वारा अपने पुत्रों सहित महाराणा प्रताप के पक्ष में मुगल सेना से लडते हुए काम आना सम्वद्ध समस्त इतिहास ग्रन्थो से विदित होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि रामशाह महाराणा प्रताप से रु. ८००-०० आठ सौ रुपये रोकड प्रतिदिन प्राप्त करते थे। अवश्य ही रामशाह के साथ निश्चित संख्या में सैनिक भी थे जिनके व्यय हेतु उक्त द्रव्य उन्हे प्रतिदिन प्राप्त होता था।

इस उल्लेख से महाराणा प्रताप की तत्कालीन सम्पन्नता प्रकट होती है।

हल्दीघाटी–युद्ध विषयक उक्त उल्लेख इस प्रकार है :—

"राजा रामशाह तुंअर, गुआलेर रो धणी महाराणाजी श्री प्रतापसिंहजी कनै था। सो विषामाहे रुपईया ८०० रोज १ रोकड़ पावता। हलदी री घाटी वेढ़ १ तठै कांम आया। सं० १६३२ श्रावण वदि ७ राणो प्रतापसिंघजी कछवाहों मोनसींघ सुं वेढ़ तिण माहे काम आया। सोनिगरो मोनसींघ अखैराजोत १ राठौड़ रामदास जैतमालोत २ राजा रांमसाह ग्वालेर रो धणी ३ डोडीयो भीम साडावत ४ पडिहार सेढ़ू ५ सादू रामो धरमावत ६।"

विचारणीय है कि हल्दीघाटी युद्ध का समय प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में विक्रमी संवत् १६३३ द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला २ दिया गया है और इस लेख मे विक्रमी संवत् १६३२ श्रावण कृष्णा ७ है।

महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात् कठिनाई मे बाहर से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु महाराणा के मंत्री भामाशाह ने सैनिक व्यय की उचित व्यवस्था की। इस विषय में उक्त ग्रन्थ में यह उल्लेख मिलता है।

"राणांजी श्री प्रतापसींघजी नौ विषामाहे पाति साहजी री फौजा जोर दबाया। बवण नौ क्युं ही पहूंचै नहीं। तद दीवाणजी कह्यो। हु अहमदानगर रै पातिसाह तीरे जासा। तरै सा भामै कह्यो। बारा वरस तांई पांच हजार घोडा नौ तेल नै षावाण ताई चाहीजसी। सो हु दावं ही तठा सुदेसु। दीवाण इसी मत विचारो"

महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध दिवेर युद्ध के विषय मे निम्नलिखित उल्लेख है—

१. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ, क्रमांक ३५४६४.

"पछै रांणो प्रतापसींघजी इणे मगरे आया। सुर तांण चकतौ पातिसाह रौ भाई गांम देवेर रै थाणै थो। सो राणांजी ऊपर आयौ। तठै वेढ़ हुई। तठै राणांजी रा साथ री गोली सुरताण चकतो रै लागी। रांणौजी लडाई जीती। बीजी तरफ सहबाजखान कांबौ थो। सो पिण न्हासे गदौ। राणाजी रै धरती वली।"

कर्नल जैम्स टॉड ने दिवेर युद्ध भूमि को ग्रीस के प्रसिद्ध रणक्षेत्र पेरेयान से उपमित किया है।2 ४६० ई० पूर्व के मेरेथान युद्ध में शूरवीर युनानियों ने विजय प्राप्त कर ईरानियो को अपने देश से बाहर निकाल दिया था।

इस ग्र थ मे आगे लेख है कि महाराणा प्रताप का जन्म संवत् १५९७ में हुआ और महाराणा प्रताप ने विक्रमी सवत् १६५७ मे मालपुरा लूटा:—

"सँवत १५९६ रा जैठ सुदि ३ राणांजी श्री प्रतापसींघजी रौ जन्म। सं० १६५७ रा चैत माहे रांणै प्रतापसींघजी मालपुरो मारयौ। सँ० १६५७ दिन ३ लूट्यो।"

विचारणीय है कि महाराणा प्रताप का जन्म स० १५९७ ज्येष्ठ शुक्ला ३ को और देहान्त स० १६५३ मे माघ शुक्ला ११ को माना जाता है। इस ग्रन्थ में महाराणा प्रताप के मृत्युकाल के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस ग्रन्थ में लेखनकाल उपलब्ध नहीं है किन्तु संभव है कि इस ग्रन्थ का लेख महाराणा प्रताप का समकालीन हो। महाराणा प्रताप जैसे राष्ट्रीय वीरो के संबंध में अनेक लेख हमारे प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थो में उपलब्ध होते हैं। इतिहासकारो का परम कर्त्तव्य है कि ऐसे बिखरे हुए लेखों को विधिवत् संकलित करें और सम्यक् रूपेण इनका परीक्षण करते हुए हमारे राष्ट्रीय इतिहास का पुनर्निर्माण करें।

❊::❊: ❊

---

२. एनल्स एण्ड एण्टीक्विटाज आफ राजस्थान क्रुक सस्करण लन्दन भाग १ पृ० ४०२३

वीर भावना के प्रमुख प्रेरक : महाराणा प्रताप

—डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया

प्रभु का संसारी संस्करण पुरुष है। पुरुष मे चार पुरुषार्थों का सम्यक् समीकरण विद्यमान रहता है। जीवन मे इन पुरुषार्थों को उद्दीप्त करने के लिये वीर-भावना का संचार आवश्यक है। वीर-भावना से अणुप्राणित होकर जो पुरुष इन पुरुषार्थों का योग-प्रयोग करते हैं, वे वस्तुतः कामवीर, अर्थवीर, धर्मवीर और मोक्षवीर कहलाते हैं। इन चारो पुरुषार्थों में जो सम्यक् रुप से वीर होता है उसे महावीर कहते हैं। हमारे यहां प्रत्येक युग मे ऐसे महावीर अवतरित होते रहे हैं। सोलहवीं शताब्दी के महावीर : विख्यात महाराणा श्री प्रतापसिंह के श्रीनाम से जाने, माने और पहिचाने जाते हैं।

महाराणा प्रताप के जीवन ने भारतीय जीवन को विशेषतः प्रभावित किया है। व्यक्ति समाज और समाज राष्ट्र का निर्माण करता है। इसी प्रकार राणा प्रताप ने अपनी स्वतत्रता मेवाड की स्वतत्रता और मेवाड की स्वतंत्रता राष्ट्र की स्वतंत्रता मानी थी। उनका यह स्वतत्रता का प्रयोग हमे मय-समय पर अणुप्राणित करता रहा है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम मे देश-वासियो मे वीर भावना भड़काने के लिये महाराणा प्रताप के जीवन-चरित्र ने धधकती ज्वालामुखी का काम किया है।

"कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू" स्वयं कवि की वाणी का विषय बनकर हिन्दी वीर काव्य साहित्य को समृद्ध किया है। इस संदर्भ में महाकवि प० श्यामनारायणजी पांडेय कृत हिन्दी खड़ी बोली की पहली और अकेली काव्यकृति-'हल्दीघाटी', स्वर्गीय प० गोकुलचन्द्र शर्मा विरचित 'प्रणवीर प्रताप,' शिशुपालसिंह शिशु' कृत "हल्दीघाटी की एक शाम" श्री व्रजेन्द्र अवस्थी रचित 'चेतक' तथा श्री भागीरथ भास्कर की प्रताप विषयक ओजस्वी रचना विशेषतः उल्लेखनीय है। राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली द्वारा बाल साहित्य के प्रकाशन का यशस्वी कार्यारम्भ हुआ है। इसी सदर्भ में श्री विश्वनाथजी लिखित 'महाराणा प्रताप' नामक कृति महत्वपूर्ण है। वर्षा ऋतु मे विशेष रूप से यहा के लोक-जन-जीवन में आल्हा के साथ महाराणा प्रताप विषयक आख्यान गाये दुहराये जाते हैं। यहाँ हम इन काव्य कृतियो मे चित्रित प्रताप के प्रतापी-जीवन की संक्षिप्त चर्चा कर उस वंद्यवीर आत्मा को 'शब्द श्रद्धाजलि' अर्पित करेंगे।

वीर भावना के रूप में महाराणा प्रताप और वीर-व्यवहार कुशल की दृष्टि से क्षत्रपति शिवाजी का नाम उत्तर भारत के बच्चो-बच्चो के लिये आलोक स्रोत का काम करता रहा है। कविवर श्री भागीरथ भास्कर ने प्रताप की शक्ति और शौर्य का उल्लेख करते हुये कहा हैं— यथा

'ताप था प्रताप था
प्रताप की कलाई मे !'

× × ×

युद्ध क्षेत्र में प्रताप के प्रताप से भयभीत शत्रुपक्ष की दशा-दुर्दशा का उल्लेख पठनीय है— यथा—

"हल्दी फिर जाती
हल्दीघाटी की लड़ाई में ।"

इस महान् आत्मा का पवित्र-चरित्र, देश-भक्ति, स्वाधीनता, स्वाभिमान, स्वावलम्बन और आत्मत्याग आदि अनेक सद्गुणों की चर्चा श्री पं० गोकुलचन्द्रजी शर्मा की आदिम काव्यकृति- 'प्रणवीर-प्रताप' में २०२ छन्दो में हुई है ।

चित्तौड़गढ को स्वतंत्र कराने का दृढ संकल्प क्या आज के शासको के लिये समर्थ प्रेरणाप्रद 'राजपथ' नहीं हैं । यथा-

'मै राज्यसुख भोगा करू ,चित्तौड गौरव नष्ट हो।
मुख मोड़ लू कर्त्तव्य से क्या देशसेवा भ्रष्ट हो।"

× × ×

"मेवाड़-धरणी शत्रुकर से मुक्त होगी शीघ्र ही,
गुरु गर्व होकर चूर्ण होगा पतित मुगल महीन्द्र ही।
अब तुर्क सिंहासन हिला दूंगा उडा आर्यध्वजा,
इन क्रूर यवनोको चखा दूंगा अहो रण का मजा।"

राणा की प्रतिज्ञा प्रत्येक देशवासियो के हृदय मे देशप्रेम, निस्वार्थ कर्तव्य भावना का अमूल्य प्रेरणा स्रोत रहा है । यथा –

"तबतक न शय्या-शयन नृप, प्रासाद वास करूं कभी,
यह प्रण किया मैंने दिशाओ! कान दे सुनलो सभी।
यह ठानकर आदेश यों प्यारी प्रजा को दे दिया,
सर्व पर्वतो मे जा रहो, मेवाड मे न जले दिया।।"

यशस्वी वीर रस प्रधान महाकवि पं० श्याम-नारायणजी पाडेय की वाणी को मुखरित करने वाला पहला प्रेरणाप्रद चरित्र महाराणा प्रताप का ही रहा है । उन्होंने हल्दीघाटी' नामक प्रबन्ध काव्य रचकर वस्तुतः हिन्दी साहित्याकाश में दृढ़ प्रतिज्ञ हिमालय की अमर स्थापना की है । कवि का प्रताप स्वतंत्रता का निरुपमेय दीवाना है, यथा-

यज्ञ अनल सा धधक रहा था
यह स्वतंत्र अधिकारी ।
रोम रोम से निकल रही थी,
चमक चमक चिनगारी ।।१।।

वीर राजपूत को सम्बोधित करते हुये कवि ने प्रताप का संदेश बड़ी ओजस्वी वाणी मे व्यक्त किया है, यथा—

"नही देखते सतियों के जलने
का है अङ्गार कहाँ ।
राजपूत ! तेरे हाथो में
है नङ्गी तलवार कहाँ ।।"

झाला माना जैसे वीर यह आह्वान सुनकर बलिदानी के रुप मे उद्घोष करते हैं जिसे सुनकर न केवल चेतन अपितु अचेतन भी मातृभूमि की बलिवेदी पर बलिदान करने को उद्यत हो जाते हैं, यथा —

"निज शरीर को आहुति दूगा.
किसी वात की चाह नही ।
मैं प्रताप के लिये मरूगा,
हटो हटो परवाह नही ।।"

एक ओर मानसिह जसे शक्तिधर शत्रुपक्ष मे सम्मान पाकर महाराणा के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र मे उपस्थित होते हैं, उधर मेवाड के मनुष्य ही नहीं, पशुकुल भी अपने प्राणो की बाजी लगाने के लिये आकुल हो उठे हैं— राणा प्रताप के जिस्वान

अश्व चेतक की वीरता का वर्णन करते हुये कवि-वर ने वस्तुतः कीर्ति स्तम्भ की स्थापना की है, यथा —

"रण बीच चौकड़ी भरभर कर
चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोडे से
पड़ गया हवा का पाला था।।"

चेतक के कार्यकलाप को देखकर लगता है कि आज के अनेक युद्ध उपकरण – टैंक, जेट, एटम आदि फीके प्रतीत होते हैं। यथा—

"गिरता न कभी चेतक तन पर
राणा प्रताप का कोड़ा था।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर,
या आसमान पर घोड़ा था।।
जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था।।"

समर केशरी, प्रतापी प्रताप के कार्यकलाप आज के समर-संस्थान के लिये आदर्श पाठक्रम का काम करते हैं।

कोल खानखाना के प्रतापसिंह राना पर,
बाना हिंदवाना को सुहाना तो गया रीतै।
दाह के करन पातसाह के उराहने पै,
चाह के मरन रनराह के जयारी तै।
पानि देकें मुच्छन कृपान पुनि पानि देकें,
पाम लौं उड़ावे म्लेच्छ वीरता बयारी तै।
सूरन के हाके होत क्रूरन के साके होत,
हूरन इलाके होत तूरन तयारी तै।।

—अब्दुर्रहीम खानखाना

अकबर के चित्तौड़ आक्रमण का—

कवि ऋषभदास कृत वर्णन

—अगरचन्द नाहटा

खम्भात के पोरवाड़ ज्ञातिय श्रावक कवि ऋषभदास ने सम्वत् १६८५ के विजयादशमी को हीर विजयसूरि रास की रचना की। कवि ऋषभदास की और भी अनेकों रचनायें प्राप्त हैं वह कवि (गुजराती) के रूप में काफी प्रसिद्ध है। रास में इसने प्रसंगवश सम्राट अकबर का अच्छा वर्णन किया है। उसमे उसकी ऋद्धि-सिद्धि एव विजयों का उल्लेख है ।

यहां पर केवल उसके चित्तौड़ आक्रमण का ही विवरण उपस्थित किया जा रहा है। इस वर्णन मे लिखा है कि आकाश मे उसका प्रताप रूप सूर्य उगा। यश रुपी चन्द्रमा प्रगट हुआ। अकबर गाजी हाथी की तरह था। सब देश के राजा उसके अधीन हो गये थे। संग्राम मे सदा उसकी जय होती रही और पाप करने मे उसने कोई कमी नहीं रखी। पाप का भय उसे था ही नहीं। चित्तौड़ लेते समय उसे जो पातक लगा उसे एक जीभ से वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर कवि ने वर्णन किया है कि किस तरह चित्तौड़ पर आक्रमण किया गया और जयमल, पत्ता ने कैसी शूरवीरता दिखाई। चित्तौड़ की रानियों और नारियों ने जौहर किया। चित्तौड़ को कब्जे मे करके अकबर ने वहां कत्लेआम मचाई, जो महाजन जीवितव्य की बड़ी आशा लेकर उससे मिलने गये उन्हें भी यम घर पहुँचा दिया गया। जिन स्त्रियो ने उसे मोती से वधाया उनको भी मार डाला। कोट को गिराया। मन्दिरो को ढाया। इस तरह अकबर यमदूत या काल की तरह क्रोधी होकर क्रूर बन गया। अन्त मे कवि ने कहा है कि जब वह गढ़ लेकर वापस आरहा था तो एक गर्भवती को जमीन पर पड़ी हुई और मरी हुई देख कर उसके मन में दया का संचार हुआ और सहसा उसके मुख से यह निकल पड़ा— या खुदा! मैं बडा दोजखी हूं। मैंने बहुत बुजगारी की। ऐसे कार्यों से बोहस्त न पाऊंगा और मेरी बड़ी ख्वारी होगी। मुझे चित्तौड आक्रमण का जिन महात्मा ने मुहूर्त दिया उसने भी ठीक नहीं किया। मैंने कितने खून किये और दोजख का भागी बना।

गुणग्राही अकबर, जयमल पत्ता, की असाधारण वीरता से बहुत ही प्रभावित हुआ और उनकी मूर्ति बनाकर आगरे के किले में हाथी के ऊपर स्थापित की।

कवि ने स्पष्ट लिखा है कि अकबर के आक्रमण से वहां का शासक उदयसिंह भयभीत हो गया था। उसे धीरज नहीं रहा। तब जयमल ने उसे कहा – कि हम युद्ध करेंगे और राणा किले को छोड कर चला गया।

कवि ऋषभदास एक जैन श्रावक था। चित्तोड़ आक्रमण की घटना के करीब ५० वर्ष बाद उसने हीर विजयसूरि रास बनाया पर उस समय अकबर और चित्तौड आक्रमण की भयकरता को लोग भले नहीं थे। लोक-मुख से, गुजरात में रहते हुये, कवि ने जो कुछ व जैसा सुना अपने काव्य में उसे स्थान दे दिया। इसमें कुछ अतिशयोक्ति और व्यतिक्रम हो सकता है क्योकि किसी भी घटना को कुछ वर्षों बाद सुनी सुनाई बातों से लिखने वाला हु-बहु वर्णन नहीं कर सकता। फिरभी जनश्रुति में वह घटना जिस रूप में प्रसिद्ध हुई उसकी कुछ झांकी कवि के वर्णन से मिल जाती है।

यहाँ अकबर के चित्तौड आक्रमण का वर्णन हीर विजयसूरि रास से उद्धृत किया जा रहा है-

आकाशे सूर ढकायो जसि, प्रताप रूप सूर उग्यो तसि।
यश रूपी ओ त्यांहाँ किओ चद, अकबर गाजी जिस्यो गयंद॥
सकल देशना राजा जेह, छिद्र सूरमा देखे तेह।
मनस्युं चिते होस्ये खीग्र, दीसेछे अकबरनी जीग्र॥
संग्रामि जय अेहनि सदा, पाप थकी नवि बीहि कदा।
चित्तोड लेता पात्यक थयुं, अेके जीभें न जाअे कह्यु॥
लीधो गढ नवि जाअे जसि, यत्र ढीकली कीधो तसि।
नाखे उछालीने पाहाण, गढमां पडता हणे पराण॥
गढ तोही लीधो नवि जाय, वहु मानवनो खय तहिं थाय।
पाछो अकबर न दीअे पाय, बढि सबळ चित्तोडो राय॥
अकवर रहिं गढ घेरो करी, मुगल रहिं गढ पाछलि करी।
ऊपरिथी मूके नर नालि, घणा पुरूष मरे समकालि॥
गज घोडा मानव जे मरें, तेहनि गढ खाई मां भरे।
उपरि शूरनर चाल्या जाय, पोलें जई दीअे घण घाय॥
ऊपरथी नांखे नर पाहण, हणे घणा पुरूषना प्राण।
अकबर शाह पाछो नवि वले, चक्री भरत जिम लडत नहले॥
वढे गुमानी अकबरशाह, गढ चित्तोड न लीधो जाय।
हिंदू तुरक न आपे नमी, करे उंबरा वात तिहाँ समी॥
बेठी माल गज छोडे देह, वलोपातशाह खिजमति लेह।
मन मनायुं पातशाह तणुं, माणस मोकल्युं गढि आपणुं॥
राणाने जई कर्यो जुहार, पृथ्वी शिद करावो खुआर।
दीजे धिया निज खिजमति घणी, वढीस्युं करस्यो प्रजारेवणी॥

जईमल पता पासे परधान, दूततणा बे काप्या कान ।
कर्या फजेत दीधु अपमान, तुज पादशानी नाठी शान ॥
मांगी बेठी हस्ती माल, न देऊ मस्तकतणो मुआल ।
धिय आपी जुग्यु धीक्कार, बोल्यो हिन्दुनो अवतार ॥

॥ दुहा ॥

अेक पति ने वली पाणिमुं, राखि शके तिहा राखि ।
जे उतर्युं अध पाइके, ते न चढे नर लाखि ।
बाल नमामु जीववुं, भली सनामी भूख ।
माथु जाजो नाकस्युं, नाक म जास्यो टूक ॥
अेक नर मुआ ते जीवीआ, जस कीरति जगि सार ।
कीरति खडी थिर रह्या, धीक तेनो अवतार ॥
"ढाल – वासुपूजय जिन पूजय प्रकाशो अे देशी ॥
धिग अवतार कहुं नर तेहनो, जे रणि कायर थाय ।
जा अकबर शाहनिं तुं कहीजे, वढवो चोपट घाय ॥
वल्यो दूत ते वचन सुणी ने, आव्यो अकबर पास ।
करण देखाडे कर जोडीने, पूरववात प्रकाश ॥
न दीअे बेठी कैसी दमडी, दीअे जयमल तुम गाली ।
लडे विगर चित्तोड़ न आवे, वात करो सब खाली ॥
सणी पातशाह कोप्यो प्यारे, हल्ला करे ज हकारे ।
जल जावा न दीअे गढ माहिं, कणना नाकां भारे ॥
मदाफरी महमूदीअें अन्न; चित्तोड मांहि वेचाय ।
तव राजा परजा गढ माहि. आकल व्याकुल थाय ॥
राणो धैर्य खमे नहिं त्याहरे, कहे मुगल नें मिलिये ।
जयमल कहे नव मिलीअे राजा, वहि अगनिमां जई वलीअे ॥
तुमे जाओ वढस्युं अमे अेहस्युं, राखुँ स्यत्री लाज ।
जेमल पता रह्या रण माडो, छांडी गयो महाराज ॥
जाणे वात अकबरशा जयारें, त्यारें पुरुष हकारे ।
गज मोटा गाजता त्यांहि, पोलि माथां मारे ॥
भांजि पोलि गढ भेल्यो जयारिं, हिंदू हुआ होसीआर ।
सोल भमर होय त्यांहां मोटा, पापतणो नहिं पार ॥

चद्रा रूपवती इन्द्रांणी, चित्रकोटनी राणी।
वीरमती वाघेलो वलतो, होमे अगनीमां प्राणी॥
वहु नारि सुत साथे दाधी, वर्णवता दुख लागे।
महा पातिग जाणिने पंडित, कविता पाछो भागे॥
जयमल पता गज अश्व हणीनि, अकबर साम्हा धाय।
वढता किमे न पाछा भागि, जो शतखंड अंग थाय॥
शाहा अकबर देखी खुसी थाअे, क्या लडते दो भाई।
न लडो गढ देऊं तुम पीछा, हुमाउ केरी दुहाई॥
जयमल पता कहि न रहूं वढता, पाछा पाय न देस्युं।
नारी पुत्र गढ माल गमाडी जीवी काहुं करेस्युं॥
शूरपणु देखी शाह हरख्यो, झालो जीवता दोय।
जयमल पता ते हाथि न आवे, वढी शत खंडज होय॥
शाहा अकबर गढमां जई पेसे, ताम कपाय अघोरी।
चितोड़ की मत कुत्ती छोड़ो, सवकु मारो ठोरी॥
महाजन मिलवा कारणि आवे, ते जम घरि पुहुचावे।
हणी नारी गढ चित्रोड केरा, जे मोतीज वधावे॥
पाडी कोट लगाड़यां मंदिर, सबल पाप तिहां कीधुं।
सम खाअे खवरावे तेहना, पातिग लोक प्रसीधुं॥
अस्यो काल जम सरीखो अकबर, केहो पीर तेहने मिलस्युं।
जे जाओ ते जाओ भाई, अमे तो पाछा हलस्युं॥
अकबर शाहा गढ लेई वलीओ, गर्भवती एक नारी।
मारी भोमि पडी ते दीठी, दया ई मन मंआरी॥
या खुदा मि बड़ा दोजखी, कीनी वोहोत बुजगारी।
इस करणी थी बीहस्त न पाऊं, होईगी बोहोत खोआरी॥
करडो आंगली शीश धुणावे, आगरे में जब आवे।
चित्रोड़ ग्रहवा महुरत आप्यु, ते महात्मा तिहां जावे॥
करी तसलीम नि वात प्रकाशे, कैसा मूहूरत दीना।
सुणी पातशा मुखमां मारे, मुख वांका तस कीना॥
वेश पहिन कया महुरत दीना, केता खुनमें कीना।
मि दोजख का हुआ विभागी, उसमि बांहा लीना॥

आओ मिल्या कया हर्ष धरता, कया खूबी तिं कीनी।
दोजख कुंडी पीछि पावे, अवल शिख्या मिं दीनी॥

॥ दुहा ॥

तुझे तजारख मिं दीउं, मुझकुं देगो खुदाय।
तुझ कुं भी देगा खुदा, दोनू दोझख जाय॥
पापभीरू अकबर अस्यो, पाम्यो सबल जगीस।
देश देशना नरपति, आवी नामे शीश॥

॥ चौपाई ॥

सर्व भूप मांहि ते वडो, कुंभ माहि जि कामज घड़ो।
कामधेनु गवरीमां जेम, सकल रायमा अकबर तेम ॥१॥
वृक्ष मांहि कल्पद्रुम जाणि, पत्थरमां जिम हीरा खाणि।
जलमा निरमल गंगा नीर, त्यम मुगलमां अकबर मीर ॥२॥
अेहवो अकबर चिहु दिशे फिरे, सकल रायने ते वश करे।
जीती बाजते पाछो फरे, आवी आगरा मांहि ऊतरे ॥३॥
जयमल पताना गुण मन धरे, बे हाथी पत्थरना करे।
जयमल पत्ता बेसार्या त्याहि, अैसा शूर नहि जगमांही ॥४॥
गढ माही पेसी नर बोलेह, जयमल पतापगढ हमकुं देह।
न दीऊं गढ करूं संग्राम, झूझी जगमा राखुं नाम ॥५॥
अेहवा जयमल पत्ता जगि जेह, अकबरशाहना वैरी तेह।
शूरपणानो गुण ते लीध, दरवाजे दोई मूरति कीध ॥६॥

॥ गाहा ॥

किं कामिनी किं कविरस, कि सारंग सरेण।
मन तन लो अण लग्गति, शीश घूमत न जेण ॥१॥
चित्त चमक्कीअ शीश धुणक्कीअ, रोमि रोमि उल्लास।
तोहु निरगुण परगुण लेई, मुखे न भाखे खास ॥२॥
मुखि बोलि गुण अकबरशाहि, जयमल पत्ता वाधी शोभाय।
गज ऊपरि चढाव्या दोय, आगरा गढ दरबारि जोय ॥७॥
पछे देश वली जीत्या सहू, मोटा गढ ते लीधा बहू।
एक छत्र नमे सहु कोय, जीती सीकरी आव्या सोय ॥८॥
पते थई जीत्यां सहू गाम, तेणे सीकरी फतेपुर नाम।
सील गाऊ गढ फिरतो होई, पाने डामर तलाव ते जोइ ॥९॥

महाराणा प्रताप एवं 'मान प्रकाश'

—डा० प्रभाकर शास्त्री

हिन्दू-सस्कृति के रक्षक, सिसोदिया क्षत्रिय-वंश कुल-भूषण, महाराणा प्रताप का नाम भारत-वर्ष के इतिहास में 'स्वाधीनता-संग्राम के पुजारी' के रूप मे स्वर्णाक्षरो से अ कित है। महाराणा उदयसिंह की मृत्यु पर सन् १५७२ ई० में महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। इनके पास न राजधानी थी और न कोष ही था, परन्तु बडे धैर्य से इन्होने राज्य सम्भाला और सेना इत्यादि की तैयारी करने लगे। आमेर के कुंवर, बादशाह जलालुद्दीन अकबर के कृपा-पात्र सैनिक, मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम का प्रताप द्वारा तिरस्कार करने सम्बन्धी कथा इतिहास प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध में मानसिंह ने स्वयं अकबर की सेना का नेतृत्व किया था। उसके बाद भी मान-सिंह तथा अन्य कछवाहा सरदार मेवाड के विरुद्ध मुगल सेना के साथ लड़ते रहे थे। मेवाड की स्वतन्त्रता छीनने के लिये अकबर ने मेवाड़ मे ५० थाने नियत किये और स्वय वहां प्रबन्ध करने के लिये गया, परन्तु मेवाड मे उसका कभी पूर्ण अधिकार नहीं हुआ। यह भी सत्य है कि महा-राणा प्रताप के पास अर्थाभाव के साथ ही सेना व शस्त्रास्त्र भी नहीं थे। यह सबकुछ समझते हुए भी महाराणा प्रताप ने अपनी आन व मातृभूमि की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। उनका यह बलिदान आज भी भारतीय संस्कृति का गौरव बना हुआ है।

मुगल बादशाह जलालुद्दीन अकबर का तीन विशिष्ट प्रकार के राजपूतों से सम्पर्क हुआ था, जिनमें (१) सरलता से आत्म-समर्पण करने वालो मे आमेर के शासक (२) डटकर युद्ध करने करने के उपरान्त विजेतासे ससम्मान समझौता करने वालो मे रणथम्भोर के शासक तथा (३) आत्म समर्पण करने से सर्वथा निषेध करने के साथ ही निरन्तर युद्ध करने वालों में महाराणा प्रताप का नाम लिया जाता है, जो एक गौरव की बात है।1

आमेर (जयपुर या ढूंढाड की प्राचीन राज-धानी) के शासक तथा सम्राट अकबर के प्रधान सेनापति मिर्जा राजा मानसिंह 'प्रथम' की स्तुति में लिखे गये एक अप्रकाशित ऐतिहासिक महाकाव्य "मान प्रकाश" का पता चला है, जो खण्डित रूप में एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते मे सुरक्षित है। इस हस्तलिखित ग्रन्थ का परिचय- "शोध-पत्रिका" (वर्ष १८, जनवरी-अप्रैल, ६७) मे प्रकाशित हो चुका है। यहां उसके राणाप्रताप विषयक अंश को प्रस्तुत किया जा रहा है। मूल ग्रन्थ अनेक स्थानो पर त्रुटित, अपूर्ण व अशुद्ध है।

---

१ 'भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास"— एस आर शर्मा, अनुवादक- श्री सत्यनारायण दुबे, द्वितीय सस्करण, १९६१, पृष्ठ ३४५ के आधार पर।

जहाँ तक सम्भव हो सका है, शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। यहां पर सिर्फ शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रयाणमाकर्ण्य महीश्वरस्य
वैरिप्रियाः प्रेयसि वीतसंगाः।
बभूवुरुत्साहित चातुरङ्गा
भेजुः कुरंगा इव काननानि ॥ १ (पृष्ठ-२३ए)

शूरः प्रतस्थेऽरिविदारणाय
स मानसिंहः सहितो बलौघैः।
तदा जलौरिव शकितोऽभूत्
किमर्ज्जुनः कि पृथुरेष भूप. ॥ २

संस्थापयन्निर्जित वैरिवृन्दान्
धर्मानपि स्वच्छतरप्रताप. ।
दीनान् द्विजानप्यथ देवताना
सद्मानि पद्मापतिरजितानि ॥ ३

---

१. 'महीश्वर महाराज मान के विजय-प्रस्थान को सुनकर अपने प्रियतमो से वियुक्त होकर शत्रु-कामिनियाँ-हरिणो के समान वनो का सेवन करने लगी। (यहा केवल राय मुरारिदास अपने नायक मिर्जा मान की प्रशसा मात्र कर रहा हैं। सस्कृत-काव्यो में ऐसा वर्णन बहुतायत से उपलब्ध होता है।)

२ शूरवीर मानसिंह शत्रु के विदारणार्थ सेना सहित चल पडा। उसे देखकर शत्रु-समूह (विपक्षी राजगण) शकित हो उठा। जिस प्रकार समुद्र अर्जुन व राजा पृथु को देखकर हुआ था।

विशेष-ऐसी कथायें प्रसिद्ध हैं कि अर्जुन (सहस्त्रार्जुन) जब दिग् विजय के लिये निकला तो उसकी विशाल सेना को देखकर समुद्र शकित हो गया था। इतनी सेना उसका अस्तित्व समाप्त न कर दे, यह आशका थी। इसी प्रकार महाराज पृथु ने सर्वत्र व्याप्त इस समुद्र को हटा कर यहा पृथ्वी बनायी थी। पृथु द्वारा निर्मित होने से ही यह पृथ्वी कहलाती है। अत: उन पूर्व स्मृतियों के आधार पर कवि ने यहाँ भी कल्पना का है।

३. 'स्वच्छतर प्रतापी राजा मान विजित शत्रु-समूह को, धर्म को तथा दीन ब्राह्मणादि को पुन. संस्थापित करता हुआ एवं पद्मापति भगवान विष्णु से रञ्जित देवालयो की स्थापना करता हुआ विजय यात्रा के लिए चल पडा।' पूर्व पद्य मे समागत क्रिया 'प्रतस्थे' का अन्वय यहा भी करना होगा। मानसिंह गोविन्द भगवान के अनन्य उपासक थे- यह तत्कालीन संस्थापित मन्दिरो मे स्पष्ट है। जयपुर में गोविन्द देव का मन्दिर (अजमेर की घाटी पर) आपके द्वारा ही निर्मित है—ऐसा सुना गया है।

रिपुशतान्यथ देशमशेषतो
वशमसावनयन्नयकोविद. ।
नृपतिरेव तदा जगतामभूद्
अनुमतो मुमुदे मुदिताशयः ॥ ४

अथाजगामाभिमुखोक्तवह्नि—
र्जनैर्वृतो धर्मधुरीण मुख्य ।
तमाह्वयामास महोग्रवीर्य
राणानृप मानमही महेन्द्र. ॥ ५

'उवाच त वीर ! बहिः प्रयाहि, त्व पातिसाह् भज सर्वभारं. ।
योद्धुं मतिश्चेद् बहिरेहि तूर्णं, योधैर्मदीयैःकुरु युद्धमृद्धः ॥' ६

नृपोक्तवाक्य बहुशो निशम्य राणा नृप· क्रोध वशादुपेतः।
हन्तुं महीपालमरिं प्रकोपाद्दण्डाहतः सर्प इवाजगाम ॥' ७

'तदीययोधाः सहसा समन्तात् श्री मानसिंहोपरि पेतुरुग्राः।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधान् ववर्षु रम्भोदगणाइवाप. ॥' ८

---

४. " अनेक शत्रुओं, देश-विदेशो को अपने अधिकार मे करता हुआ वह नीतिवेत्ता संपूर्ण ससार का अनुमत होकर प्रसन्न हुआ । " इस पद्य में केवल उसकी प्रशसा की गई है ।

५. धर्मधुरिणो मे भी प्रमुख, सामन्तादिजनो से परिवृत, अग्नि के समान तेजस्वी राजा मान (राणा प्रताप को जीतने के लिये) पहुँचा । महान शक्तिशाली 'राणा' (नृप) को महाराज मानसिह ने बुलाया ।

६. म० मानसिह ने राणा से कहा—वीर, बाहर आओ । तुम्हे सर्वस्व देकर बादशाह की सेवा करनी है । यदि युद्ध करने की इच्छा है तो शीघ्र मैदान मे आजाओ तथा समृद्ध होकर मेरे योद्धाओ से युद्ध करो ।

७. राजा मान की बात सुनकर राणा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और डडे से पीटे गये सर्प के समान (क्रुद्ध भाव से) राजा मान को मारने के लिए आ पहुचे ।

८. राणा के योद्धा एकाएक मानसिंह पर आक्रमण करने लगे । उन योद्धाओं ने शर (बाण) असि (तलवार) शक्ति, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) परश्वध (परशु) आदि की वर्षा कर दी, जिस प्रकार मेघ-समूह जल की वर्षा करते हैं ।

विशेष-यहाँ राणा व मानसिंह की अनबन का कोई कारण उल्लिखित नहीं है । ऐसा प्रतीप होता है, यह उसके उपरान्त का वर्णन है, जब मानसिंह सेना सहित आक्रमण करने आया था तथा हल्दीघाटी में युद्ध हुआ था, जिसका उल्लेख-अबुलफज्ल, निजामुद्दीन, बदायूनी आदि ने विस्तार के साथ किया है ।

'किमुभयैर्मुमुचे न चिराच्चमूर्नववधूरिव भावनयानया ।
तरुणकुंभिगतिः स्फुरदम्बराचरण चुम्बितचन्द्रमुखद्युतिः ॥' ९

'तेपा प्रताप प्रसमीक्ष्य भूपो युद्धाय चैतान् स्वयमाचकार ।
सिंहो यथा वारणराजमुच्चैं विहन्तुकामः स तथा ऽवभाषे ॥' १०

क्षणेन स क्षोणिपतिर्विपक्षान् विद्राव्य तान्दोर्युगलप्रतापैः ।
दत्यानिवेन्द्रः स बभौ विजित्य प्रताप सन्तापित वैरिवर्गः ॥ ११

धनदेन करेण केवलं धनदो भूमिपतिर्बभूवह ।
सुतरामाहितापकारिणा महसाऽसो गरुडोपमो न किम् ॥ १२

वज्राङ्कितेनैव करेण भूपः पुरन्दरस्यापमिति जगाम ।
प्रतापदावानलदग्धवैरिकक्षोऽप्यलक्ष्यो द्रुतयांबभूव ॥ १३
प्रतापतिग्माशुरसित्वमेव यमोऽसि कोपेन रणाङ्गणेषु ।
एको विधात्रा विहितोऽसि तस्मादीशो दिशः पालयितुं प्रयत्नात् ॥ १४

---

९. युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि दोनों सेनायें बहुत देर तक युद्ध की इस भावना से नववधू के समान, जो तरुण गजपंक्ति की गति से युक्त, तथा चमकती हुई तलवारों की कान्ति से उदीप्त थी,— मैदान न छोड सकी ।

१०. जिस प्रकार सिंह म्ह न हाथी को मारने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार प्रताप पक्षीय योद्धाओ के प्रताप को देखकर राजा मान ने स्वयं युद्ध के लिये ललकारा । (वह उसी प्रकार गर्जा जैसे सिंह हाथी को देखकर गरजता है) ।

११ राजा मान भुज-प्रताप से क्षण भर मे विपक्षियो को छिन्न-भिन्न कर, जीतकर अपने प्रताप से वैरि-वर्ग को सन्तप्त करता हुआ इन्द्र के समान शोभित हुआ ।

१२. धन देने वाले हाथ से (पर्याप्त धन देने के कारण) वह राजा मान 'धनद' (कुवेर) कहलाया । अत्यधिक शत्रु पीडक होने के कारण वह गरुड के समान क्यों न माना जाय ? [अहि+ताप+कारिणा, आहित + अपकारिणा, दो प्रकार से पदच्छेद होगा ।]

१३ वज्र से अंकित भुजा होने से वह राजा इन्द्र के समान होगया । अपने प्रताप रूपी दावानल से शत्रु रूपी शुष्क तृणो को दग्ध कर राजा मान ने शीघ्र उन्हें अलक्षित कर दिया ।

१४. मानो दिक्तरुणियां ही स्तुति कर रही हैं —" आप प्रताप रूपी सूर्य हैं, रणस्थलों मे कोप करने के कारण 'यमतुल्य' हैं । विधाता ने आपको दिशाओ के पालनार्थ इसीलिए बनाया है । आप दिशाओं के स्वामी हैं ।

नस्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैः सहस्राजिह्वोऽप्यथको मनुष्यः । १५
भ्रमरहितमुदार हृत्सरोज नृपस्य, स्फुरति नियतमेव यत्र कृष्णाङ्घ्रियुग्मम् ।
बलिदमनविधौ यद् भूतले नोन्ममीख तव तदणुमपि स्यात् केनतन्नैव जाने ॥ १६
न स्तोतुमीशोऽस्ति भवन्तमुच्चैस्सहस्रजिव्होऽप्यथको मनुष्यः ? ।
एवं स्तुतो दिक्तरुणीभिरीष हहत्समीरस्य मिपान् महीशः ॥ १७
एवं रणे युध्यति मानसिंहे समागतो माधवसिंह वीरः ।
विश्रम्यतां क्षोणिपते क्षणान्नस्त्रन्नश्यतां युद्धमिद जगाम ॥ १८
इतीरयित्वाऽभिमुखो रणाग्रे व्यग्रान्समग्रान् विदधेऽरियोधान् ।
तदा न युद्धाय पुरोबभूवुः केचिद् भयात्तस्य परिस्खलन्तः ॥ १९
तद्बाणभिन्ना बहुशो विपन्ना दीनाबभूवुः कति भूमिपालाः ।
केचिद् विहायाजिमही प्रतस्थुः स्थिताश्चिरङ्कचन योद्ध कामाः ॥ २०

---

१५. सहस्त्र जिह्वा वाला सर्पराज भी आपकी स्तुति करने मे समर्थ नही है, तो मनुष्य का तो सामर्थ्य ही कहां ? [यह एक पंक्ति ही है। इसकी पुनरावृति हुई है अग्रिम पद्य के उपरांत। सभवत यह पद्य लेखक की नही लिपिकर्ता की भ्रान्ति है।]

१६. राजा का हृदय भ्रमरहित एवं उदार है, जहां कृष्ण का चरणकमल नियत रूप से स्फुरित होता रहता है। जिस चरणकमल ने वलि राजा के दमनावसर पर भूतल से आकाश तक नाप लिया था, उसका अणु भाग भी तेरे किस अंग के समान हो, यह नहीं जाना जा सकता।

१७. आपकी स्तुति करने के लिये हजार जिन्हा वाला नागराज भी समर्थ नहीं है, तो मनुष्य की तो सामर्थ्य कहां ? इस प्रकार (१४ से १७ तक) तेज वहने वाली हवा के बहाने मानो राजा मान दिशा रूपी स्त्रियो से स्तुति किया गया।

१८. इस प्रकार मानसिंह के युद्ध करते हुए माधवसिंह वीर आगये। वे बोले—राजन्, आप क्षण भर विश्राम कीजिये, इस युद्ध को समाप्त कीजिये।

विशेष—माधवसिंह मानसिंह के छोटे भाई थे।

१९. यह कहकर वीर माधवसिंह युद्धाभिमुख हुए तथा सभी विपक्षी योद्धाओ को व्यग्र बना दिया। उस समय उनके भय से कोई भी युद्ध के लिए सामने नहीं आया।

२०. माधवसिंह के बाण से अनेक योद्धा छिन्न भिन्न हो गये, अनेक राजा दीन हो गये, कुछ युद्ध भूमि छोड़कर भाग गये, कुछ युद्ध करने के लिये कुछ समय खड़े रहे।

निशेव तद्वासरमास युद्ध गतेऽस्तमेवन्तदरातिमित्रे ।
संकोचिते तत्तरुणीमुखाब्जे स माधवेन्दुः सहसोद्दिदीपे ॥ २१
उद्दीपिते माधवसिंह चन्द्रे तमांसि तत्रासुरमी प्रतीयाः ।
तत्पक्षभाजाम्वदनानि रेजुः कुमुद्वतीनामिव काननानि ॥ २२
राणा तदा दुर्मदवीर वीर्यो दुर्य्योधनायास्य पुरो बभूव ।
स कर्ण कल्पोऽर्जुनकल्पवीर्य्यं विजेतुकामः परुष जगाम् ॥ २३
यत्व रणे माधवसिंह, वीरान् बलेन विद्राव्य मुदम्विधत्से ।
क्षणेन तत् क्ष्मापतिना समेत मुदा विहीन सहसा विधास्ये ॥ २४
राणा-नृपे जीवति या जिगीषा यूनोवृ था सा भवतोरुपेता ।
युवाम्विजानीतमिद मदुक्त, सत्यं शपे विष्णुपदारविन्दम् ॥ २५
इतीरयन् बाणशतेव वीरः आच्छादयामास स तौ प्रकोपात् ।
छन्नम्यून व्वासरमास युद्धे रुद्धन्तथाऽभद्गगनं शरौघैः ॥ २६

---

२१. दिन मे रात्रि की कल्पना की गई है । अराति (शत्रु) का मित्र भी शत्रु ही होगा । शत्रुओं के युद्ध मे इस प्रकार अस्त हो जाने पर वह दिन रात्रि के समान होगया । मित्र यहां द्व्यर्थक है । शत्रु परक एंव सूर्य परक । सूर्य के अस्त होने पर रात्रि का आगमन होता है । उन शत्रुओ की तरुणियो के मुख सकुंचित होगये । [सूर्यास्त होने पर कमलिनिया सकुचित होगई] अर्थात शत्रुओ की स्त्रियां म्लानमुखी हो गई । तब माधवसिंह रूपी चन्द्रमा उस रात्रि मे सहसा प्रकाशित हो उठे । [काव्यगत सौन्दर्य दर्शनीय है]

२२. माधवसिंह रूपी चन्द्रमा के उद्दीपित [प्रकाशित] होने पर ये शत्रु अन्धकार वन गये । तथा माधवसिंह के पक्ष वाले योद्धाओ के मुख कुमुदिनियो के वन के समान खिल उठे ।

२३. दुर्मदवीरवीर्य राणा प्रताप माधवसिंह से लडने के लिये [दुर + योधनाय] सामने आगया । कर्ण के समान प्रतापी राणा प्रताप अर्जुन के समान शक्तिशाली राजा मान को जीतने की इच्छा से कठोर वचन बोला ।

२४ राणा ने कहा— माधवसिंह वीरो को अपने बल से विद्रावित कर इस रणभूमि मे जो हर्ष का अनुभव कर रहे हो, मैं अभी क्षण भर में राजा मान सहित तुम्हें हर्षहीन बनाता हूं ।

२५ राणा प्रताप के जीवित रहते तुम युवकों की जो जीतने की इच्छा है, वह व्यर्थ ही है । मै जो कह रहा हूं, उसे अच्छी प्रकार जानलो, मै भगवान विष्णु के चरणो की शपथ खाकर कह रहा हूं ।

२६. इस प्रकार कह कर वीर प्रताप ने उन दोनो को सैकड़ों बाणो से ढक दिया । आकाश बाण समूह से आच्छन्न होगया और वह दिन दुर्दिन के समान प्रतीत होने लगा ।

आदौ गजेनैव गजो नियुक्तस्तुरंगमेनैव तुरङ्गमोऽपि ।
पदातिना पत्तिरथ व्ययुध्यन् समस्तदासीदुभयोः प्रयोगः ॥ २७

एव प्रवृत्ते गुरुसगरेऽस्मिन् विसिस्मिरे दैवतमण्डलानि ।
शस्त्रान्धकारे गहने प्रवीरा भेजुर्भयच्छन्नमनः शरीराः ॥ २८

यस्समुखे यस्य पपात वीर स्त त जघान स्वपरो न भेदः ।
(बा)राणाचमूर्व्वाण विभिन्नदेहा भेजे विदेहा विदिशो दिशोऽपि ॥ २९

राणा नृपो वाणशतेन भूयः शूर स जीमूत इवान्वरुद्ध ।
तद् बाणसच्छान्नतनुः स धन्वी तं योद्धुकामः पुरतोवभूव ॥ ३०

तद् वाणसंभूतघनान्धकार व्याधूय भास्वानिव मानसिंहः ।
वभौ रणक्षोणिमुखे रिपूणामप्रेक्षणीयो धरणीधुरोणः ॥ ३१

यतो यतो युध्यति दन्तिराजी ततस्ततो युध्यति मानसिंहः ।
सादो तथा पत्तिरथाप्ययुध्यन् युद्ध तदासीद्विषता स लक्ष्यः ॥ ३२

---

२७. सर्व प्रथम हाथी से हाथी भिड गये तथा घोडे से घोडे । पैदल से पैदल लडने लगे । इस प्रकार उस समय दोनों ओर से समान प्रयोग हो रहा था ।

२८. इस भयंकर सग्राम को देखकर देवताओ का समूह भी आश्चर्य चकित होगया । शस्त्रों की अधिकता से हुए घने अन्धकार मे भय से आक्रान्त मन व शरीर वाले योद्धा इतस्ततः भागने लगे ।

२९. जो जिसके सामने चला गया, उसने उसे मार डाला । अपने पराये का भेद नहीं रखा गया । राणा की सेना वाणों से छिन्नभिन्नशरीरा विदेह के समान इतस्तत. दौड़ने लगी ।

३०. जिस प्रकार वादल जलधारा से भूमि को रोक देता है, उसी प्रकार उस राणा ने पुनः सैकडो वाणों से शूरवीर मानसिंह को रुद्ध कर दिया । उसके बाणो से आच्छान्न धनुर्धारी युद्ध की कामना से उसके सामने जा खड़ा हुआ ।

३१. राणा प्रताप के वाणों से उत्पन्न घने अन्धकार को दूर करके सूर्य के समान मानसिंह रणभूमि में शत्रुओं के लिये उत्प्रेक्षणी होगये ।

३२. जैसे जैसे हाथियो की पंक्ति लडती थी वैसे ही वैसे मानसिंह भी युद्ध कर रहे थे । घुड़सवार और पैदल भी लड़ रहे थे । वह युद्ध शत्रुओं द्वारा लक्ष्ययुक्त था ।

खड्गेन भिन्नाः करिणो निपेतुः शरेण लूनाः परसादिनोऽपि ।
पदातयोऽमी तरसा भयेन पेतुर्महीपालमणेरमुष्य: ॥ ३३

एवं नृपे युध्यति मानसिंहे प्रताप सतापितवैरिसंघे ।
अरातियो विगतप्रकोपाः भेजुर्व भियावै विदिशोदिशोऽपि ॥ ३४

समुध्यतान्तत्र महाभटानामसृङ् नदी प्रादुरभूदुदारा ।
परासुमातङ्गमहाद्रिला केशेन शैवालवती विरेजे ॥ ३५

भयावहा भीरुजनावलीनामानन्ददा, सा, भटमण्डलीनाम् ।
चकार वीर्य्येण नदीमदीनां रमानसिंहो, जित मानसिंहः ॥ ३६

देशे निराशो विजये तथा द्रा (क) (रा) णानृपो विद्रुतसर्वगर्वः ।
रणं प्रयातुन्तरुणं सचेतश्चक्रे समुद्भ्रान्ति गतिः क्रमेण ॥ ३७

हृतगति रति वेगादास राणा नृपोऽपि,
द्विमुख इव स पश्यन् पृष्ठदेशे पुरोऽपि ।
नरपतिरति रोषाद् धावमानोऽस्य पश्चाद्
असु रहितमिवैनं अस्तमेक मुमोच ॥ ३८

---

३३. खड्ग से काटे गये हाथी और बाणों से छिन्न-भिन्न घुड़सवार वहां गिरे हुए थे। महीपाल मणि मान के डर से अनेक योद्धा भी (पैदल) गिर पड़े थे।

३४. इस प्रकार प्रताप से संतप्त कर दिया है शत्रु वर्ग को जिसने ऐसे राजा के युद्ध करने पर शत्रु-योद्धा क्रोध रहित होकर विभिन्न दिशाओं में भयभीत होकर भाग गये।

३५. युद्ध करने वाले योद्धाओं की वहां खून की नदी उत्पन्न हो गई। मरे हुए हाथी महान् पर्वत के समान लग रहे थे तथा योद्धाओं के केश शैवाल (सिवार) की शोभा दे रहे थे।

३६. जिसने मानरूपी (स्वाभिमान रूपी) सिंह को जीत लिया है, उस मानसिंह ने अपने पराक्रम से रण नदी को विशाल बना दिया। यह भीरुजनों के लिए भय देने वाली एवं वीर योद्धाओं के लिये आनन्ददायिनी हुई।

३७, (अपने) देश की विजय से निराश, विनष्ट सर्वगर्व चपलगति राणा प्रताप ने अपने मन को पुनः रण में जाने के लिये (युद्ध करने के लिये) तरुण (ताजा) बनाया। अर्थात् वह पराजय का अनुभव करके भी पुनः युद्ध के लिये फड़क उठा।

३८ द्विमुख (दो मुखवाले, व्यक्ति के समान वे) वेग से आगे तथा पीछे देखता हुआ राणाप्रताप हत-गति होगया। इस (राणाप्रताप) के पीछे क्रोध से दौड़ते हुए राजा मानसिंह ने भी निष्प्राण के समान इस एक को ही छोड़ा। अर्थात्–राणाप्रताप तो बच गया, शेष सभी राणापक्षीय योद्धा मारे गये या अधीन होगये।

रणशिरसि रिपूणां मृत्युरेवास्ति कीर्त्यै
नरपतिकुलभाजां क्ष्माभुजस्तेनपण्डाः ।
समरभुवि जितानां वैरिभूपावलीनां ।
प्रणतिमि तिबहुज्ञाः कीर्त्तये कीर्तयन्ति ॥ ३९

श्रीमानसिंहभुजचडमरीचिदग्धा
केचिन्नियेतुरवनी पतयोऽम्बरासौ ।
द्वन्द्वं च केचिदपहाय निकुञ्जमीयुः
केचित्तदीय पदपल्लवमीयुरार्त्ताः ॥ ४०

संलग्ना नृपतेर्बभूवुरथ ये तीक्ष्णासिधारापथे
ते स्वर्व्वामविलोचनारतिरसोल्लासा स्पदंशत्रवः ।
उद्यत्तिग्मकर प्रताप दहन ज्वालाकरालस्य ये
खड्गस्यासु-रसंमुखा रणमुखे ते निर्जिताः भूमिपाः ॥ ४१

इत्य देगमशेषतोऽस्य तनयन्दुर्गं वश नीतवान्
धर्मानप्यवनीपतोन्द्रतिलकस्सस्था पयन्निर्वभौ ।
भदेवानथ देवव्वृन्द सदव प्रोन्मूलिते पत्तने
नैवं कर्म सुदुष्करं सुकृतधान् जित्वा परान् वैरिणः ॥ ४२

काचित्कुम्भलमेरुकानन दरीद्वारिद्विषन्मण्डली
पश्यन्ती नृपतेः प्रतापदहन ज्वालावली दाविषः ।
हित्वा तत्परिधान भूर्जवसन जाता कुलीनापि सा
दिग्वासा किमहो महोन्नतिहृदः कोपोऽपिलोकोत्तरः ॥ ४३

---

३९. युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं की मृत्यु ही राजाओ की कीर्ति के लिये है। वे राजा लोग निष्फल नहीं हैं। युद्ध-भूमि में जीते गये शत्रुराजाओ के समूह को प्रणति (नमस्कार) की बहुज्ञ व्यक्ति, कीर्ति के लिये स्वीकार करते हैं।

४०. मानसिंह के भुजदंड की किरणो से जले हुये कुछ राजा लोग अम्बर से पृथ्वी पर गिर पडे। कुछ योद्धा युद्ध छोडकर अपने घर भाग गये और कुछ पीडित होकर उनके चरणाश्रित होगये।

४१. जो योद्धा राजा मान की तीक्ष्णधारावाली तलवार के मार्ग में आये, वे शत्रु लोग स्वर्ग-सुन्दरियों के रतिरसोल्लासके भागी हुए (स्वर्ग चले गये)। जो उगते हुये तपवांशु (सूर्य) के प्रताप रूपी दहन (अग्नि) ज्वाला से कराल (भयकर) खड्ग के सम्मुख नहीं आये, वे राजा लोग स्वत ही जीत लिये गये।

४२. इस प्रकार संपूर्ण देश, राणा के पुत्र एवं दुर्ग को अपने अधिकार मे कर लिया व उन्मीलितपुर में ब्राह्मणो को पुनः मन्दिरों में बसाता हुआ एवं धर्म की भी स्थापना करता हुआ राजा मानसिंह शोभित हुआ। उसने शत्रुओं को जीतकर इस प्रकार का कोई दुष्कर कार्य नहीं किया।

४३. कोई कुम्भलमेरु (दुर्ग विशेष) के जंगल की गुफा के द्वार स्थित शत्रु मंडली, प्रतापी राजा मानसिंह के प्रताप रूपी दहन (अग्नि) ज्वालामुखी को देखती हुई कुलीन भी यह पहने हुए भूर्ज वस्त्रों को छोडकर दिग्वासा (नग्न) होगई। कवि कहता है- तेजस्वी व्यक्तियों का कोप भी लोकोत्तर (अलौकिक) होता है।

Rana Pratap and the Andhras

—Prof. K V R. Narasimham, M. A., Ph D.

Rana Pratap Singh—the very name thrills every patriot. That part of our motherland, which is known as Rajasthan and the house of Udaipur in particular can legitimately be proud of giving birth to such an illustrious son of our Bharat-mata.

Rana Pratap is the doyen of our freedom fighters. His unparalleled patriotism and unflinching devotion to dharma, his matchless tenacity and incomparable prowess can inspire any patriot in any part of the globe, His greatness can never be confined to a time or clime.

We had to fight the Britisher, and he was strong We needed an example, which we could emulate. Rana Pratap was one such He fought Akbar the Great, the mightiest of the Moghuls Rana Pratap became an indelible source of inspiration for the Indian people and it was his noble spirit that roused and inspired us to fight the mighy British Empire. vanquishing it ultimately from the Indian soil.

All patriots did not come out openly to fight the Britisher. If terrorists and satyagrahis employed different weapons, a physically passive patriot could do some thing else It was the writer A writer has an important role to play in the freedom—fight. The writers could create a general atmosphere conducive to the fight and without this proper atmosphere, the freedom movement in our country could never have gained such gigantic proportions

In a very subtle way the necessary back-ground for the fight was created. Many a writer did not oppose the Britisher openly But they chose similar circumstances, where in a true patriot acts and acts in a very different way than a traitor would do. They could freely discuss state-craft, inspire the people to be righteous and spur them to action wherever it was necessary

Can a writer get a better example than Rana Pratap's to do justice to his pen ?

Rana Pratap's untiring efforts for the Swarajya were first known to the people of Andhra through the "Annals of Rajasthan." Kala Prapurana Chilakamarti Lakshminarasimham known as Andhra Scott, was inspired by Todd's work. His was a master pen, He wrote the 'Rajasthan Kathavali' The first part of this book gives in detail the life and the place of Rana Pratap among the heroes of Hindusthan. Eversince, many a poet drew inspiration from Rana Pratap Singh

Sri Siva Sankar Sastry translated 'Rajapoota Jivana Sandhya" a Bengali novel into Telugu, which again could be a good source to draw the material from

The stage, unlike a poem, is a mass medium If the poem could be a treat to

the scholar, the stage could reach the illiterate villager.

"Rana Pratapa Singh" a Telugu play written by Sri Vedula Satyanarayana Sastry had the source material from Rajapoota Jivana Sandhya. The play-writer is a poet of no mean order, and as such this drama in five acts could be to the cultivated taste of the reader

We have many more dramas with Rana Pratap Singh as the hero Dwijendralal Roy's works have an honoured place among Indian historical dramas Some of them are translated by Sri Sripada Kameswara Rao, He abridged the drama of Sri Roy to a third This Telugu play can at once be a good piece of literature and has a good stage value too

Sri Gundimeda Venkata Subba Rao too followed more or less Sri Roy in his "Rana Pratap-The lion of Rajasthan" Sri Subba Rao, an adept in play-writing, is at his best at a historical drama The drama in five acts gives a vivid picture of the exploits of Rana Pratap

These two Dramas have a very welcome feature about them There is a general feeling among us that Rana Pratap was no doubt a great patriot, but he was an unsuccessful fighter But that feeling is reduced to a bare minimum in these two plays Both the plays end with an optimistic note In fact, Rana Pratap could regain all his lost territory excepting Chitor This was brought in aptly, and proper justice was done to the great fighter Both the dramas end with the death of Maharana Pratap But the hero's death does not strike a discordant note even in an Indian heart The audience feel that Rana Pratap did his best and left the unfinished work to his compatriots He was not protrayed as a hero who died of a broken heart

A deviation from the current belief was made by Sri Subba Rao It is said that Rana Pratap, in a weak moment, worte a letter to Akbar surrendering himself to the mighty Moghul; and it was Prithvi Singh a poet, who adorned Akbar's court that could inspire the Rana once again and spurred him to action against Akbar But Sri Subba Rao suggests that the letter is only a forged one, brought out at the instance of Akbar, only to save the face of the Moghuls and demoralise the freedom fighters As far as the other part of the episode is concerned, it is accepted that Prithvi Singh, though a court poet of Akbar, had great respect for the Rana It is quite possible that he too was misled, and so got annoyed and his letter inspired Rana Pratap Whether the letter was forged by Akbar to save his own face or dubbed as forged by the play-wright to save the face of the hero, is a matter to be decided by the historians But it surely opens a new field for researchers Even if the letter were a genuine one, the change brought out by Sri Subba Rao is most welcome, as it gives a tonic effect to the hero's character And such a deviaton is recommended by our rhetoricians

Another drama, "Rana Pratap Singh" by Sri I Yajnanarayana ,is more or less an adaptation to the stage of the material available elswhere The play is in good Telugu

but the supernatural element in a historical drama is generally taken to be out of place and this play could not be very popular.

Sravyakavya is more or less a class medium. Sri Rajasekhara Stavadhani, took to Sravyakavya. At the masterhands of this poet, this kavya turned out to be a classic. It is on a par with Sivabharatamu another historical poem, by Sri Venkatasesha Sastry The Sivabharatamu has Chatrapati Sivaji as the hero Sivabharatamu and "Ranapratapasimha charitramu" can be said to be twins; one excels the other in poetic beauty; both have historical themes, and freedom fighters as their heroes They came out at a time when we were in the thick of the fight with the Britisher.

Rana "Pratap Singh Charitramu" brings out the hero's life & exploits in detail. We get a glimpse of his compatriots and his enemies and their devotion and even their malice. The poem takes us to an epic atmosphere, of course, without the supernatural element in it.

These are some of the works on Rana Pratap Singh. Though he was dubbed as a misguided patriot by some people, the nation, in general, and the poets, in particular, took him as a perennial source of inspiration Andhras are no exception to this.

Maharana Pratap left behind a story and a record in history so glorious as to inspire freedom-loving people everywhere.

—*R. P. Tripathi.*

Maharana Pratap and Shivaji

—Prof. M. J. Pathakji

The ruling house of Mewad carried on for centuries a great fight against the different Muslim dynasties which were successively occupying the throne of Delhi. This struggle almost became continuos and very bitter since the time of Rana Sanga. It was Rana Sanga who gave up the usual defensive tactics of the Rajputs and went upto Sikri to challange the conquest of Hindustan undertaken by Babar. Since that year 1527 A. D. for more than one hundred and fifty years an incessant fight went on between the Sesodias of Mewad and the Mogul Emperors of Delhi.

All these struggles were carried on with intermittent successes and reverses. In this long difficult fight of generations between the Mewad Rulers and the Mogul Emperors, undoubtedly the most heroic as well as the most inspiring was the one put up by Rana Pratap against Akbar. This confict, is of great importance from several points of view, all of which will be referred to here very briefly as these few lines are written by way of a general appreciation only of the great Pratap.

Pratap had to oppose one of the most remarkable kings who ever ruled India. Some consider Akbar as one of the greatest kings the world has ever seen. Whatever the historian's opinion may be, it can be definitely affirmed that Pratap had to face a very powerful adversary.

Islam had penetrated India for the preceding five centuries and the Mogul period was one of culminating glory for Islam in the country. Even during the Mogul period the regime of Akbar had a characteristic strength and grandeur. Pratap with his limited resources of men money and material had to combat against the unlimited resources of an empire which was fast increasing its control over the whole of North India. Smith says: "the empire of Akbar during the last quarter of the 16th century was the most powerful in the world and its sovereign was immeasurably the richest monarch on the face of the earth."

Moreover, during the sixteenth century Hindus had lost all hopes of maintaining, far less of extending their power in the whole of India. Rana Sanga's defeat in 1527 brought to a finish for the time being, all ambitious designs of the Rajputs. Hemu's overthrow in the 2nd battle of Panipat of 1526 at the hands of Akbar demolished all ideas of mighty Hindu revival to the five century old military and political domination of the Muslim conquerors. In addition to these disappointing events happening in North India, the battle of Talikota fought in 1965 brought to a disastrous end the Vijayanagar Empire in south India. In this way the century was one of complete political mastery of Islam over the Hindu kings and the latter who were carrying on a mighty though hopeless resistance to overwhelming

Islamic forces rushing into India had received their death-blow. Pratap came on the scene of action in 1572 A D. — exactly at a time when the Hindus were thus already terribly submerged thrice in less than forty years—1527 to 1565—under the ever expanding flood of oceanlike Muslim conquering hordes.

Such disheartening state of things forHindus in their own country thus brought even the proud Rajputs to submission before the might of Akbar and his Moguls. But this fact aggravated very considerably the already difficult task undertaken by Pratap. His own kith and kin went over to his opposite camp. Those very brave and mighty Rajputs who had put up a terrific resistance for more than eight centuries beginning from the conquest of Sind by Mahamud Kasim in 712 A.D. to the battle of Sikri in 1527 A D, had now laid down their arms before Akbar. It was on irony of fate the so soon af er the gallant effort of Rana Sanga and the determined resistance of thousands of his Rajput warriors against Babar the descendants of those very warriors now began to submit willingly not merely their power but even their daughtersto Akbar.

We come across numerous instances in earlier Rajput history when for the sake of not giving his daughter to a Muslim monarch, a Rajput king would wage a desperate war, get thousands of his brave fighting men killed and finally if the struggle would appear fruitless, he would himself poison the same daughter and would also see that all ladies of his harem and those of his fighting men burn themselves in the terrible 'Jauhar' and therafter would lead all his Rajput men in saffron clothes for the performance of 'Kesariya' and die to a man. A Rajput king would sacrifice everything for upholding what he regarded a matter of prestige and honour for his family.

That the inheritors of such high and noble traditions should by themselves offer their daughters in marriage to the Mogul Emperors shows clearly the depth of the feeling of hopelessness which had overcome the Rajputs af engaging into a challenging fight with the Delhi monarchs It proves that they had lost heart in their ceaseless valiant fight of centuries against Muslim conquerors and they now became unknowingly by marriage alliances party to a scheme of empire building which had an ultimate purpose of their own destruction—an object which they could not realize at the time.

Pratap was the only Rajput who really understood this planning of Akbar and stood against it like a man. With a guerilla war fare of utmost difficulties, miseries and obstacles to himself, his family members and his heroic fighting men, he vehemently protested by his action this attempt of Akbar to completely emasculate the Rajputs In the vast ocean of the prevailing Rajput defeatism Pratap firmly stood like a conspicuous beacon light on a rock, inspiring countless generations of Rajputs who have followed him to look up to him for a noble outlook, an unrivalled determina-

tion for righteous purpose and an unparalleled capacity to suffer all possible difficulties for a cherished ideal

It my be also emphasized that Pratap's undertaking was far more difficult strenuous and complicated than that of Shivaji, who is generally acclaimed the saviour of the Hindus.

Pratap's kingdom was geographically much nearer to the Mogul Emperor's headquarters and therfore far more exposed to danger than Shivaji's The latter being far away from Delhi and Agra was much safer Besides, the vast – Vindhyachal range also intervened between Mogul capital and Shivaji's area of adventure

Pratap had to challenge a king of rising fortune who was fast developing his empire Shivaji opposed an empire wherein deterioration had already set in The former had thus to fight against a power growing from strength to strength, the latter had to finish a weakening structure.

The army led by Akbar had still kept up the strong traditional sturdy fighting capacity of its central Asian blood, whereas the one led by Aurangzeb had lost its high fighting calibre and had grown enervated since the days of Jahangir and Shah Jehan which had brought in for the Moguls prosperity beyond measure leading to luxury and pleasures of life even among the common soldier. To fight with Akbar's army was thus much more difficult for Pratap than to break down Aurangzeb's force for Shivaji.

Pratap was single-handed in his opposition to Akbar The other Rajput kings connected with him by a common faith and blood relationship took up the side of Akbar Even Pratap's own brothers gave up his country's cause and went over to Akbar The non-Rajput opponents of Akbar were also few and were easily vanquished by Akbar and his generals Thus almost the whole brunt of a fresh and growing empire's full weight fell upon Pratap, whereas Shivaji's effort was one of the several great efforts at that time throughout India to oppose the evil deeds of Aurangzeb. The Sikhs in Punjab, the Jats and Satnamis in Central India, Rana Raj Singh of Mewad and Durgadas Rathod of Marwad in Rajputana, even in South India Bijapur and Golconda together with Shivaji were all one in not allowing Aurangzeb to have his own wishes easily carried out The last Sikh Guru Govind Singh opposed Aurangzeb till the latter's death; the Guru himself dying a year later in 1708. Rana Raj Singh who had made Mewad too hot for Aurangzeb's vast army survived Shivaji for six months Durgadas, the inveterate opponent of Aurangzeb, was carrying on his vigorous campaign even against the latter's successor The kingdom of Bijapur submitted to Aurangzeb in 1686 and that of Golconda in 1687 – a few years after Shivaji's demise This both kingdoms carried on their wars against the Emperor in South India together with Shivaji helping each other alternately. Prof. Sharma remarks in 'Crescent India' page 550, (Vol II), In the eyes of Aurangzeb the worst offence of Kutb Shah was his fraternising with infidels (the Marathas). Shivaji, after his fight from Agra in 1666 had received effective help from Golconda in recovering forts

from the Moguls. In 1677 Shivaji was promised an annual subsidy at Haidrabad for the defence of his territory.

Pratap was helped by none except the single instance we come across of his own minister Bhamashah helping him with money All others— Rajputs and Muslims–had joined hands to completely annihilate Pratap The Marathas with a single voice without any defection were behind Shivaji. It required a far more powerful determination to be in Pratap's position than to be in that of Shivaji

Both employed noble means to carry out noble aims But among these two, Pratap may be given a higher place. Akbar's territory was so near Pratap' own. He could also have righteous indignation against his brother Rajput kings who joined Akbar and whose territories were contiguous to his own. But he did not plunder any of these territories He only wanted to protect his own kingdom and to restore what he lost Shivaji, on the other hand, took away several times immense treasures form Surat which was then a part and a port of the Mogul Empire Pratap's more high levelled ways in this way brought to him greater difficulties.

Moreover, Pratap flourished almost at the end of the great long Rajput epoch, at a time when the whole Rajput race was obviously exhausted in all sorts of resources by several centuries of single handed deadly struggle with countless Muslim aries pouring into India from time to time Thus an exhausted Rajput Kingdom had to oppose the might of a freshly started empire continuously rejuvenated by Muslims coming from Central Asia Such tremendous difficulties could not be faced by even the other brave Rajput rulers and their Rajput warriors. So it was that they gave up their disastrous struggle and accepted the Mogul's domination which they thought to be inevitable. It adds volumes to the credit of Pratap that he was not overcome by such circumstances and kept his head erect and heart unnerved for a strenuously long period of twenty-five years. when all other mighty Rajputs lost their usual firmness and completely surrendered to the Moguls.

In contrast with Pratap, Shivaji had an easier problem to tackle. The latter hea ed a national rising of the fresh and young Maratha race, everyday gaining new vitality and had only to strike down an imperial power which had already grown dilapidated from within by its own inherent weakness

Tuus in the case of Pratap an old, exhausted devita ized Rajput race had to face the growing might of a new race of Moguls helped moreover by his (Pratap's) own kith and kin, whereas Shivaji with his fresh Maratha race had merely to pull down a tottering imperial sturcture which had been worn out and had become so overgrown as to be intrinsically unmanageable

Lastly, Pratap had to oppose Akbar's policy which was apperently very tolerant but really most dangerous to Hindus Akbar was at the time greatly admired and respected for his so called liberality

by his contemporary men and his political game was followed to a great extent by the British rulers later on, accompanied by results too fresh to require any analysis here. Thus it was most difficult for Pratap to get any general sympathy from the common Hindu of the time who thought he was exceptionally free from any religious persecution by Akbar On the contrary, Shivaji had to oppose the religious fanaticism of Aurangzeb which naturally aroused in the hearts of the masses of the people a hatred against the intolerant Imperial religious policy. Aurangzeb could not even conciliate w th the Shia Muslim Kingdoms of the Deccan. So it happened that in the task which Pratap undertook all Muslims were against him and many Hindus even not merely did not sympathize with him but actively supported the cause of his enemy Akbar, whereas in the work of Shivaji not merely all Hindus were actively helping him, but even the harssed Shia Muslims were on his side. In this way Pratap had to oppose an externally tolerant religious policy which was naturally admired by most Hindus who in those mediaeval times were unfamiliar with such apparent religious liberalism Shivaji had to break down a fanatic and intolerant system of government which brought about the destruction of thousands of Hindu religious places of worship, a state of things bringing bitter resentment in the hearts of all Hindus, and thus evoking a far more popular approval for his challenge to the Empire

The work of both Pratap and Shivaji has been mighty and tremendous Both have been very great in their own way, but if we compare the two and the circumstances under which they were placed and had to carry out their work, it can be definitely laid down that Pratap's task was certainly an uphill one His acheivements were more difficult of accomplishment, more strenuous in their execution, hindered by many more adverse circumstances and brought about in the midst of far fewer favourable environments than those of Shivaji

Generations after generations have passed since the death of Pratap but he has remained immortal No sooner as Akbar, the greatest Mogul Emperor is remembered, immediately the memory of Pratap becomes fresh Even otherwise his memory is imperishable. He has always been the ideal of the Rajputs in general and their kings in particular.

The Hindus have the time-old convention of giving their children the names of the persons whom they look up to as models When the Hindus very much respect some one, they assign his or her personal name to their newly born children. In this way Rama, Lakshman, Bharat, Krishna, Bhim, Arjun, Karna, Sita, Jasoda, Anasuya have been adopted for many as their proper names So it has been with regard to pratap Since his days many Rajput kings, numberless Rajput commoners and thousands of other Hindus have been named as Pratap Rana Pratap thus lives as Partap in the memory of countless people, who consciously or otherwise remember his great name and his immortal work and go on paying their tribute to a man enshrined permanently in their hearts, by constantly reciting his name.

Such was Pratap. He more than merely justified his name which signifies 'force' or 'power.' He was Pratap in name and he became Pratap in fact.

Maharana Pratap & Panjabi Literature

—Dr. Surindar Singh Kohli

Maharana Pratap has become an image for heroism and patriotism throughout the length and breadth of our country It is because of his unique love for the motherland He fought against aggression and foreign domination throughout his life He never submitted to the Mughal imperialism, but accepted a harder life with his band of loyal followers He had to go without food and without shelter for days, but this did not and could not cow down his indomitable spirit Nothing could make him swerve from his high ideals and grim determination He stood for liberty.

Guru Gobind Singh of the Panjab—the tenth Guru of the Sikhs—and Shivaji of Maharashtra also faced Mughal imperialism like Maharana Pratap, therefore whenever there is a reference to the past glory of **Bharat**, to the patriotic fervour and towards the struggle for independence, the names of all the three appear together They together present a significant instance of national integration whereby the Rajputs, the Sikhs and the Marathas become one, having the same ideal in view, i e , the protection of the motherland from the hordes of the foreign invaders

We are wonder-struck, when we read the stories of the great sacrifices that were made by Rajput princes and princesses. No prince would turn his back in the battlefield, this was their unique tradition No prince would accept the interference of any foreign element within his territory The Rajput blood was to be kept pure and, if need be, the womenfolk burnt themselves to death in the face of the onslaught of the advancing enemy. Maharana Pratap was a symbol of such a glorious tradition, The Mughal Emperor wanted to subdue such a brave Maharana. If the Maharana wanted, he could easily enjoy all the comforts of life, but it was to be at the cost of Rajput traditions, which the great Rana could not tolerate

Our Panjab, being the gateway to India, had to bear the brunt every time, when our country was invaded. Our people had to be always ready for sacrifices. Guru Gobind Singh prepared an army of the **Khalsa** for the defence of the country The heroic deeds of brave Panjabis were sung in the form of **Vars** But a closer study of this genre of the poetic expression reveals that till the modern period no reference is found of the great Rana in the Panjabi heroic poetry This was most probably due to the fact that because of the fewer modes of conveyance, the contacts were very few.The knowledge about the historical personages was very much limited Moreover, the patriotic fervour was localised During the British regime, an all-India consciousness for independence was awakened People began to think in terms of the whole subcontinent Agreat organisation, i e , Indian

National Congress, was constituted with the main aim of the attainment of independence. This movement aroused heroic and patriotic feelings. The poets and literateurs also began to think on all-India basis Since the emotional outburst of the people can be brought about through poetry, we hardly find any reference to the Maharana in Panjabi prose, fiction and drama. His heroic life was, however, rendered in Panjabi, in the school text-books after independence. Short patriotic songs were also interspersed in these texts, eulogising the great sacrifices made by Guru Gobind Singh, Maharana Pratap and Shivaji for the motherland.

The Panjabi poets, after independence, and especially in the recent Chinese and Pakistani invasions, have sung numerous songs in order to inspire and arouse the spirit of our brave soldiers in particular and our folk in general. In these songs we find several references to the brave Rajputs and especially the exemplary feats of the great Rana. We produce below some of the examples:—

1- O! My Pratap! arise and put on thy armour.
(Vidhata Singh Tir in his poem, **Dhi Puttar nun Awaz**)

2- Thou art the son of Pratap
(Kartar Singh Balaggan in his poem, **Bharat de Nau jawan nun wangar**)

3- They have their history of Mewar in the background
(Gurdit Singh Kundan in his poem, **Desh de Rakhe**)

4- . and Pratap have raised our prestige very high
(Hazara Singh Gurdaspuri in his poem, **Laggi Chot Nagare te**)

5- We swear by . .. . and Chittor
(Darshan Singh Awara in his poem, **Suagat**)

6- Awaken again the glorious tradition of Pratap
(Niranjan Singh Naqis in his poem, **Sahitkar nun wangar**)

7- Pratap and have raised its honour
(Bishan Singh Upashak in his poem, **Mcmahon Line**)

8- Will he be able to face the blow of the sword of Pratap ?
(Kartar Singh Shamsher in his poem, **Rubaeean**)

9- How can the unswerving warriors of India tolerate ...
Those Rajput .. warriors of six feet height ?
(Bhagwant Singh in his poem, **Mitr Dhrohi nun**)

10- We sacrifice our lives to keep up our honour to preserve the prestige of Rajput mother's milk,
Our .. ... Ranas have sacrificed their lives for this honour.
(Sant Inder Singh chakravarti in his poem, **Bir Bolian**)

11- You have been goaded on by Pratap and ...
(Surjit Multani in his poem **Seema te Lar Rahe Sipahi nun**)

12- We have to follow the footsteps of Rana and ..
(Amar Komal in his poem **Bir Sainkan da Geet**)

13- You are the offspring of .. and Pratap;
If need be, place your head on the palm of your hand for the sake of your country.
(Gurdev Singh Maan in his poem **Geet**)

14- We are the sons of Pratap,
We did so that our country may live.
(Dr. Vishwa Nath Tiwari in his collection **Tan di Chikha**)

15- We are lions . . we are and Ranas
(Uttam Singh Tej and harbans Kaur in their collection **Kulian Chhamkan**)

16- We are lovers of and Pratap
(Inderjit Hassanpuri in his poem **Var deiay Zindgani**)

Such like references may be found in the poems of other poets Maharana Pratap now belongs to all Indian Literatures. Because of the golden ideals that he followed, he will be remembered for ever by the people of the Panjab

—•—

IMPACT OF MAHARANA PRATAP AND OTHER RAJASTHANI HEROES ON ORIYA LITERATURE & NATIONAL MOVEMENTS IN ORISSA

—*Dr. Gopal Chandra Misra, D. Litt.*

A name to remember, the bravest of the braves among the Rajputs, to Maharana Pratap Singh, belongs to the unique honour of having pledged his life to the cause of his dear motherland, at the cost of sheding blood, waging war for a quarter of century. Rajasthan the land of the Aryan has the signal honour of having produced a galaxy of proclaimed heroes, welknown in India for their extraordinary valour conviction and a high sense of patriotism always characterised by self-sacrifice, fearlessness and death-defying sprit. The Rajput heroes, even after centuries of their death have been shining as bright luminaries and will continue to shine as such throughout the ages Their geniuses were unsurpassable, their firm ways of upholding morals and values were simply rare and for this they attained perfection as heroes and won universal recognition like Maharana Pratap Singh, and Particularly Rana Pratap has been described as a Popular personality in Indian literatures, and of all the good qualities of such a renowned hero, 'Patriotism was his offence' as this is remarked by Dr Smith, the welknown historian- It was invitable for the force of his character that youthful Ranapratap son of Udai Singh would defy the might of Akbar the great Mogul ruler in Indian history (1556-1605). He possessed enormous strength that he sitting in his forts, could shake, the entire Mogul empire to its very foundation and the heritage of building fortifying and consolidating the Rajputs has passed on to this great exponent of Patriotism in our country. Rana Pratap shared his nation's grim determination and his bravely acts have been portrayed as to reflect integrity, originality and a tradition that belongs to India only and that is upholding ones' freedom against all odds.

In Oriya litera ture modern ism took its shape in the early years of the present century the new innovations were in form of stories, poems and fictions and the author of such stories and fictions chose thematically to draw upon the lives of great Indian personalities, historical, social, and political Thus Budha, Ashok, Ranapratap, Sivaji anp other personalities in variousfields of life were adopted as popular subject matter for study materials of children as well as adults. Glimpses of such glorious lives unlocked humanity from every readers' heart and brought to the Parched mind the needed moisture of understanding and sympathy of the many facts of Indian heroism, the Rajasthani heroism struck the imagination of the literary bards of Orissa from the last quarter of the last century and they presented either in fiction or in drama the Rajasthani personalities their acts, achievements to the Oriya readers in a most enchanting manner and absorbing style. In oriya

literature the Battle of Haladighati has been thematically accepted, celebrated and imortalised in the works of historians and authors The battle is wel-remembered and the valour of Rajputs has been identified with the bravely acts of Rana Pratap The grand mothers narate to their dreaming grand children such amazing deeds of Pratap, the youthful soldiers jump to feet to hear of the extraordinary skill of fighting of Pratap. The whole of Rajasthan, may the whole of India a resounded with the marching song of Pratap Singh, his amazing deeds another exciting tales of Haladighati have found place in so many compositions, poems short stories for children and one act plays. The important features of such compositions based on the heroic tales of Rajput heroes headed or preceeded by Rana Pratap Singh is its deep patriotic note and national appeal Since the later half of the last century with the begining of renaissance in Oriya literature these heroic tales of Rajsthan poured in Oriya compositions and periodicals and it create a similar atmosphere in the country.

The glorious life of Rana Pratap and his lineage has been sung in Oriya literature including the translation of the Todds annals of Rajasthan and the descriptions as given by Siba Prasad Das Ramachandra Aharya, Godavarish Mohapatra, Kalindi Charan Panighani, Dayanidhi Misra, Dhaneswar Stapathi, Aswimini Kumar Ghose are thrilling and provide a sumptuous feast of heroic tales of Rajasthan the spectacular performances of the Rajasthani fighters against the Moghul troops. "Rana Pratap Singh" is a book (a biography) written by Godavarish Mahapatra and also a book with the same title is written by Sri Dayanidhi Misra reveals to the Oriya children the hero in his true colour a noble charactor rare in the history of the freedom movement of a country

Rana Pratap's noble and fearless character has baffled the foreighers and the titles published in Oriya are devoted to the study of his high genius In modern Oriya Literature whether Juvenil or General there exists numerous works in which lives of great Rajput heroes and their historic performances have been represented reconstructed fr m the available records

In Godavarish Mohapatra's book 'Rana Pratap' the Chapters deal with the brief history of Rajput clan Mewar coronation of Maharana Pratap, preparation for war against by Rana, severe ordeal, Akbar, Haladighati letter of Pruthiviraj, recovery of Mewar, and the last years of Rana Pratap It contains all the qualities of an essentially good and absorbing story and in their telling the author has succeeded in producing life throbbing effects on the minds of yoing readers After all Rana aspired to free his mother land from the clutches of the Turks, while some of his contempories surrendered their territories to the invading Moghuls Rajputana produced a hero who proclaimed at the cost of his life "Freedom first, Freedom second, freedom always" This is remarkable for its sense of historical responsibility and literary splendour.

A passage from the above book clearly shows how successfully the author has brought out the salient features in the life of Rana

"SANTAN AJI Ma Pakhare Bidrohi Au Upaya Nahi Deshar Ehi Dundinare Taku Lakshya Digare Chalaiba pain Eka Bhagabanhi Saha E Katha Bhabila Bele Prapatanka Akhire Luha Ase Sira Prasira Tharia Fae Kahanti-Hai. Pua hoi Mar e durdasa kipari dekhibi Jiban dele ki mar mukti nahi Santan raktare mibarar ban giri kandara ranjita kale kan chitor udhar hoi parib nahe, Taha Jadi hua sethilagi Pratap Prastuta achhi Sethilagi Pratap age sarathi heb Varsa Manib nahi bajra manib nahi Akas manib nahi. Sagar Manib Nahi Agniki Akatarare abicharare lampha deb." — what simplicity of language and profoundity of thought Here Pratap pledges himself to the cause of liberation of Chitor and for the achievement of that noble mission Pratap himself is his own Charioteer no rain no thunder, no cloud, no ocean, no fire, will keep him back from his march Here Pratap is considered and portrayed as the greatest patriot of mother land and in the construction modern nationalism in India Rana Pratap's sacrifice has always been acknowledged. The modern position of nationalistic India only underline the far sighted vision and practical wisdom of boldness of those Rajput heroes like Rana Pratap in the sixteenth century India, and the character of Rana Pratap and his life should be considered from this aspect only, Throughout his activities, plannings and marches Pratap created a wonderful spirit enduring and sustaining and trained a large band of sincere devoted soldiers an executives whose successors generated a force in the national movements in British India and provided an impetus to the congress, Volunteers, not only in Orissa but throughout this country The biagraphy of such proud son of India is again well represented in Dayanidhi Misra's book "Rana Pratap" His epic struggle which in fact forms preceeding part of the national history of nineteenth century India has been wel documented A good biographer Sri Misra has done well to gather together vast materials from 'Toods' 'Rajasthan'. The book divided into chapters of unequal extent is a faithful record of the history of Rajputs and its heroes. Having 106 pages the book was at first serialised in the Oriya Journal 'Mukur.'

This biographical work has all the good qualities which a well brought out book in this generation should indeed have, an appealing theme, a concise and lucid exposition of Rajput Chivalry in maedieval India.

"Rajput Gaurab" (Glory of Rajputs) is a title in two volumes written by Sibprasad Das, the welknown historical biographer in Orissa was published by the Students store, Berhampur in the year 1935 and 1936. The historical facts as dealt with in these two volumes are rich and varied. The book has emphasised the emotional, imaginative and adventurous aspect of the Rajput chieftains, warriors, and generals It revelled in the heroism of Rajput rulers In nut shell the author has attempted to discover the charm of

medieval war-chivalry and love of freedom. Indeed the biographer has revived the forgotten Rajput glory and has restored faith in the struggle for freedom, the triumphant resurgence of Indian Nationalism. Rana Pratap has, in his acts, shown that self-sacrifice in the war is the only reward for a worthy son of a great country The topography and history of Rajputana, Mewar, Bappaditya, Rana Samar Singh, Rani Padmini, Hamir, Rana Sangram Singh, Bikramajit, Panna, Udai Singh, Sakta Singh, Rana Pratap, Rana Raj Singh, Jayachandra, and many other interesting personalities have been dealt with vividly in these volumes.

Mewar (1928), **Bikaner** (1931), **Marwar** (1930) by the same author are notable literatures on the rise and decline of Rajputs in central India and in all these writings the sacrifice and love for freedom of Rana Pratap has sparkled like jewel. A great deal has been written in periodicals or books and in all these the patriotic behaviour of the hero and his enigmatic personality has been understandably brought out. Rana Pratap's undivided loyalty to his mother-land has inspired millions in this country. Invariably every young man understands the enduring qualities of Pratap's character, the man for whom the most young men and women today in India entertain the same sentiment as the Germans for Frederick the Great or the Italians for Garribaldi.

The impact on Oriya literature and the national movement in Orissa in the early twenties is easily discernible. Thematically the thrilling story of this great patriot Rana Pratap offers a parallel background in British India when the countrymen had to wage war under the leadership of the Congress party to get rid of foreign rule. The theme of Rana Pratap can be identified with the national struggle for freedom in this present century. The theme of Rajput heroism has been acceptable in novels and short stories also. Ramachandra Acharya's novels, **'Kamal Kumari'** and **'Pranaya Prabah'** are the two among others to note Also in **'Birbharat'** by Basudev Mohapatra, we comes across a strikingly similar theme Kalindi Charan Panigrahi's one-act play **'Padmini'** is also a serious piece in which the undaunted heroism of highly conscious and daring Rajput women have been celebrated. In schools and colleges young boys and girls have rather been impressed at the depth of character and sacrifice of such illustrious sons and daughters of Rajputana and invariably they choose to dramatise them on occasions As J. L Garvin profoundly observed "That we may keep our hold upon the meaning of life and preserve a conviction of human destiny, there is nothing more vital than that we should remember our dead"; and as such few names can we recollect in modern India with more patriotic fervour or deep sense of gratitude than that of 'Rana Pratap' the selfless patriot of medieval India, a life of noble pursuits and dedicated services He was one of our truly great heroes whose memory time can not efface, symbol of sacrifice and self- respect On the whole the valour and military achievements of Rajasthani heroes constitute a record of the Indian history of which one is justly proud.

IMPACT OF MAHARANA PRATAP AND RAJASTHANI HEROES ON THE LITERATURE AND MOVEMENT OF BENGAL

—Sukhamay Mukhopadhyay

Bengal was unfortunately the first State of India to be enslaved by the British after the latter's victory at the Battle of Plassey (1757). But Bengal was also the first Indian State, where yearning for freedom took concrete shape towards the close of the last century.

Since the rising of the yearning for freedom, the Bengalees began to adore those heroes of India and abroad, who fought for the freedom of their countries It is interesting to note that most of the heroes adored by the Bengalees were Rajputs. The reasons were not far to seek Col. Tod's **Annals and Antiquities of Rajasthan** was very popular among the educated Bengalees A Bengali work named "**Rajput-Kahini**," based on Tod's "**Rajasthan**" and written by Kaliprasanna Das Gupta was widely read by all sections of the Bengalees These two books were mainly responsible for the popularity of Rajput heroes in Bengal.

Of those popular Rajput heroes, the position of Rana Pratap is the highest His name became a household word in Bengal His relentless struggle for freedom won everybody's heart and it inspired the patriotic people of this State, who were themselves fighting for freedom. Many novels and dramas about him were written by both eminent and non-eminent Bengalee writers.

I

First we shall deal with the novels. The earliest and the best among such novels is "**Rajput-Jivan-Sandhya**" (1879) by Ramesh Chandra Dutt This novel covers almost the entire career of Rana Pratap. In it, the battle of Haldighati has been described in detail. The rescue of Pratap by his brother, Shakta, Pratap's unflinching struggle for freedom, his decision of making submission to Akbar in time of despair, giving up of that idea at the exhortation of Prithviraj, the poet, his plan of migrating to the Indus Valley, timely financial help by his minister Bhama Shah and his final rally have also been described Parallel with the historical story of Rana Pratap, an imaginary story concerning Tej Singh and Durjay Singh, depicting their traditional rivalry and ultimate fight and Tej Singh's love with Pushpakumari, a Rajput girl, runs through the novel The customs and habits of the Rajputs of that time have been reflected in this story.

The novel "**Rajput-jivana-Sandhya**" ends with a sad tone, Its concluding chapter deals with the defeat and ultimate subordination of the Rajputs by the Mughals after the death of Rana Pratap The writer heaves a deep sigh at the loss of independence of such a valiant race

Among the other novels, based on the story of Rana Pratap, two can be mentioned One is "**Mantrer Sadhan Rana Pratap**" by Haran Chandra Rakshit and the other is ' **Pratap Sinha**" by Damodar Mukherjee The first novel is worth-mentioning for its patriotic spirit. In it, the author has told the story of Pratap in a lucid style and has frequently given patriotic sermons In the second novel, the enmity between Rana Pratap and Man Singh, the battle of Haldighati, Amar Singh's (son of Rana Pratap) love and marriage and the famous story of Salim's love with Mehrunnissa have been described. Both the novels have been popular among the readers

II

Among the dramas about Rana Pratap, Jyotirindranath Tagore's "**Asrumati**" (1879) is the earliest The plot of the drama is briefly this —

Rana Pratap had a daughter named Asrumati, who was born on the eve of the Mughal invasion of Chitor Asrumati was brought up by a Bhil chieftain. She was handed over to her father when she grew up When Pratap after the battle of Haldighati was wandering in the forests of Mewar, Asrumati was caught by the soldiers of Man Singh, the enemy of Rana Pratap Then Asrumati caught the notice of Salim the son of Akbar. Salim fell in love with her and wanted to marry her, at which Asrumati gave her consent But Pratap's brother, Shakta Singh did not approve of his niece's marriage with a Mughal prince. So, he planned to marry Asrumati to Prithviraj, the court-poet of Akbar Knowing this plan, Salim became jealous. He killed Prithviraj and hit Asrumati with a weapon, as a result of which, Asrumati became unconscious Shakta Singh brought Asrumati to senses and took her back to her father. At that time Rana Pratap was in his death-bed When he came to know of her daughter's love-affair with a Muslim prince, he ordered her to take poison and die But soon he learnt of her daughter's innocence from Shakta Singh He then ordered Asrumati to become a nun and remain a virgin throughout her whole life After this, Rana Pratap died.

Asrumati is a tragic play. In it, the two characters, Salim and Asrumati are well-developed Rana Pratap is a side-character in this drama But his valour, sense of self-esteem and uncompromising attitude have been portrayed fully

Girish Chandar Ghosh, the celebrated Bengalee playwright, began to write a drama named "**Rana Pratap**", but he could not finish it Only two acts of the drama were written

Dwijendralal Roy (better known as D. L. Roy), another famous Bengalee playwright, wrote a complete drama named '**Pratap Sinha**' (1905) Its plot is almost completely based on Tod's **Rajasthan** This drama is charged with fiery patriotism. Its plot is briefly this—

Rana Pratap Singh, after losing Chitor, vowed before the Goddess Kali to recover it. Pratap took shelter in the

forest. The Mughals were at this time masters of Mewar, but its inhabitants had deserted the localites and entered into the forest. Akbar the Mughal emperor ordered Man Singh to attack Pratap and subdue him. Man Singh was once insulted by Pratap, when the latter refused to dine with him He attacked Pratap with a vast army. Pratap, with a handful of Rajput soldiers, fought gallantly at the battle of Haldighati and was defeated. Chaitak (Chetak), his horse, fled from the field, carrying the Rana on his back Pratap, with his family, entered into the forest again The Mughals tied several times to capture him but he managed to escape every time due to the timely help of his brother and loyal chieftains Pratap had to suffer much for his valiant struggle. Once he considered the suffering unbearable and decided to make peace with the Mughals by offering allegiance to Akbar. But at the insistence of Prithviraj, the court-poet of Akbar, he gave up this idea. Then he received ample support from his followers and with their support, he recovered the whole of Mewar, except Chitor and Mandalgarh.

Along with the patriotic and historical story of Pratap, an imaginary love-story has been tagged in this drama. In this love-story, Shakta Singh (the brother of Pratap), Daulat-un-nissa (the niece of Akbar) and Mehr-un-nissa (Akbar's daughter) constitutes the eternal triangle. Shakta is, however, wedded to Daulat-un-nissa, who ultimately died Shakta. after insulting Salim, is killed. This story does not fit in with the spirit of the drama.

In this drama. the character of Pratap is fully developed. But he has been practically deified. Shakta is a mysterious person. Man Singh, as the enemy of Pratap, .disgusts the readers, but at the same time one feels sympathy for him because he has been unjustly treated by the Hindu society. Akbra of this drama is a shrewd politician and a debauchee.

On the whole, D. L Roy's drama, **'Pratap Sinha'** is a magnificent attempt to depict the great Rajput hero in his true self. It is one of those works of Bangali literature, which evoked real patriotism in the hearts of the people of Bengal.

III

Next, we shall deal with those novels and dramas which are based on the stories of other Rajput heroes Among these Rajput heroes. the position of Raj Singh is the highest.

Bankim Chandra Chatterjee, the great Bengali novelist wrote a first-rate novel named **"Raj Sinha"** whose hero is Raj Singh This noval deals with the war between Raj Singh and Aurangzeb. It describes how Chanchal Kumari, the princess of Rupnagar (a small State of Rajasthan) demolished the picture of Auranagzeb and incurred the wrath of Aurangzeb, who, in order to punish her, wanted to marry her. Chanchal Kumari. unwilling to marry Aurangzeb, sent a letter to Raj Singh, offering herself to him This caused the war between Aurangzeb and Raj Singh as a result of

which Aurangzeb was defeated and disgraced. Along with this main plot, there is also a sub-plot which deals with the love-affair between zeb-un-nissa, Aurangzeb's daughter and Mubarak, one of Aurangzeb's commanders. This sub-plot is very artistically woven and it ends with the killing of Mubarak by his wife, Dariya Bibi, and the completion of the tragedy of Zeb-un-nissa.

The novel, **Raj Sinha**, though based on Todd's Rajasthan, does not confine itself only to the narrative of Tod. The affair of the princess of Rupnagar (Kishegarh) is taken from Tod, But Tod nowhere says that this affair was the cause of the war between Aurangzeb and Raj Singh. In fact, this affair occured twenty-one years before the said war and the war broke out for an altogether different reason, viz. Raj Singh's giving shelter to Jaswant Singh's widow and son. The war between Aurangzeb and Raj Singh also did not end in such a crushing defeat of the former, as Bankim Chandra has pictured

In spite of certain amount of departure from the history, **'Raj Sinha'** is a magnificent novel It is specially laudable for bringing into limelight the noble, selfless and gallant character of Raj Singh to the Bengali people for the first time.

The war between Raj Singh and Aurangzeb also forms the subject-matter of an important Bengali drama, **'Alamgir** written by Kshirodeprasad Vidyavinode The cause of the war in this drama, too, is the affair of the princess of Rup nagar But in this drama, Udaipuri, the Bagum of Aurangzeb, plays a very important role, She is painted as a noble and intelligent lady with political foresight, who occassionally brings the fanatic Aurangzeb to senses. Ultimately, Udaipuri earns the respect of Raj Singh. The drama ends with the unhistorical meeting and embrace of Aurangzeb and Raj Singh in a cave of the Aravalli hills. In this drama, the tragedy of Raj Singh's private life and the rivalry of his two sons, Bhim Singh and Jai Singh, have also been manifest. In it, Bhim Singh does a great sacrifice by withdrawing from the rivalry and leaving Mewar. But he comes to the help of his mother-land when the war with Aurangzeb starts. in the last scene of the drama, Bhim Singh breathes his last before the eyes of his father and Aurangzeb.

The drama, **'Alamgir'** contains many fictitious and imaginary elements As a drama also, it has many flaws But it is, nevertheless, an important drama. Its importance lies mainly in unfolding the two great historical characters, viz Aurangzeb and Raj Singh

IV

Now we shall give an account of those works, which deal with the heroes of Rajasthan, other than Pratap Singh and Raj Singh

One such work is Michael Madhu sudan Datt's drama, **Krishna Kumari** It is based upon a chapter of Tod's **Rajasthan** The sad story of Krishna Kumari the daughter of Rana Bhim Singh of Mewar, has been told in this drama When Krishana Kumari attains

marriageable age, her father tries to marry her. But, eventually, a rivalry ensues between two Rajput kings, Jagat Singh and Man Singh, both of whom wanted the hands of Krishna Kumari. The story ends with the suicide of Krishna Kumari who gave away her life to save Mewar. There is no great quality in this drama. But it is to be admitted that this is the first tragedy among Bengali dramas.

Another work of this type is Jyotirindranath Tagore's drama **Sarojini**. This drama tells of Alauddin Khilji's invasion of Chitor and the self-sacrifice of Sarojini, the daughter of Rana Lakshman Singh, who was mistaken by Alauddin as Padmini. This is a mediocre drama But the scene of the self-sacrifice of Sarojini and other Rajput ladies evoked respect and patriotism in the hearts of the spectators. Therein lies its value

Two dramas of Dwijendra lal Roy (D. L Roy) deserve special mention in this section One is **Mawar Patan** (1908) [The fall of Mewar]. In it, the invasion of Mewar by the Mughals after the death of Pratap Singh, the heroic fight of Rana Amar Singh and the ultimate surrender of Mewar have been described. This drama is full with fiery patriotism all through In the end, while sighing a deep sigh for the fall of such a great country, the author does not fail to point out the inherent defects of the Hindu society, which were mainly responsible for the fall of Mewar. Rana Amar Singh, Govinda Singh and other Rajput characters of this drama are patriotism personified Another important character of this drama is Mahabat Khan, a Rajput converted to Islam, who plays a leading part in subjugating Mewar, in order to revenge the injustice done unto him by the Hindu society. **Mewar Patan** is one of the most magnificent historical drama of Bengal. The songs of this drama are also wonderful, particularly, the songs sung by the bardess Satyavati are without any parallel.

The second drama of D. L. Roy to be mentioned in this connection is **Durgadas**. This drama tells of the heroic achievements of Durgadas, one of the commanders under Jaswant Singh, the Maharaja of Marwar. The plot of the drama is briefly this.—

When Jaswant Singh died, Aurangzeb at the instigation of his wicked Begum, Gulnair, Planned to capture Jaswant's wife and his little son, Ajit Singh which was foiled by Durgadas Durgadas miraculously rescued the wife and son of his deceased master from the clutches of Aurangzeb and took them to Rana Raj Singh of Mewar Then followed Aurangzeb's war with Mewar and Marwar, the unsuccessful rebellion of Aurangzeb's son, Akbar, Durgadas's giving protection to Akbar, his escorting Akbar to Maharasthra, Gulnair's falling into love with Durgadas and refusal by Durgadas, Ajit Singh's ungrateful behaviour to Durgadas and Durgadas's taking asylum in Mewar. In this drama the character of Durgadas has been portrayed marvellously. He is not only a hero, but a noble man, an ideal character, free from any vice One may argue that in painting the character of Durgadas, the dramatist has been

more heroworshipping than objective. But the author's main object was to rouse respect for Durgadas in the minds of the readers and spectators of the drama. There he has been fully successful.

Besides these dramas of D. L. Roy, his another drama, **Tarabai**, also deals with a story of the history of Rajasthan, i. e. the story of Rana Raimal, his three sons and one of his daughters-in-law, Tarabai This is an unimportant drama with no special feature in the story or its treatment. D. L. Roy's two other dramas, **Nur Jahan** and **Shah Jahan** though dealing mainly with the Mughals, contain Rujput characters and through them the author has paid tribute to the valour and patriotism of the Rajputs.

V

Rajput chivalry did not find so much expression in Bengali poetry as it did in the other branches of Bengali literature. Only two works deserve mention in this respect.

The first is Rangalal Banerjee's **Padmini Upakhyan** (1858) It is a fairly long poem written in conventional metres In it, the well-known story of Alauddin Khilji's invasion of Chitor and Padmini's self-sacrifice has been told. The best part of this poem is the commander's words of encouragement to the Rajput soldiers, which fill the hearts of the readers with inspiration

The second work of poetry to be mentioned in this context is Rabindranath Tagore's **Katha**(1899),This book is a collection of short poems, all of which are taken from historical and semi-historical works. They speak of the chivalry, patriotism, nobility and sacrifice of Indians through different ages. Six poems of **Katha** deal with the Rajputs. In one of these poems **Mani** the story is about a brave Rajput king, who, even in captivity, refused to offer 'salam' to Aurangzeb. the emperor of India. In another **Raj Vichar**, we see that a Rajput king gives capital punishment to his son, who attempted to rape a Brahmin's wife. In a third **Nakal Garh** we find that a native of Bundi sacrifices his life to save a false fort styled 'The Killa of Bundi' from demolition by the Rana of Chitor. Another poem **Katha Horikhela** tells of the cleverness of a Rajput queen who trapped the Pathan commander, Keshar Khan, pretending to play 'Holi' with him and ultitimately killed him. In another poem **Vivaha** the separation of a young girl and her self-sacrifice on hearing the news of her husband's death have been described In the last poem on Rajputs, the tragedy of a Rajput commander of a fort has been described who had to choose between violating his king's orders and surrendering the fort to the enemies and who ultimately put an end to his own life to solve the problem All these poems are very beautiful and they bear ample testimony of Tagore's respect for the Rajputs

The last work to which we shall refer is Rabindra Nath Togore's **Kaj-Kahini**. The work is written in prose, but its style is poetical. In it, the author

described in an enchanting manner the teles of Rajput heroes and heroines of different times, such as Shiladitya, Goha Bappaditya, Padmini, Hamvir, Chanda, Kumbha and Sangram Sinha

VI

The impact of Rana Pratap and other Rajput heroes on the movement of west Bengal has been enormous. Though the Bengalees do not observe any special 'utsav' for the Rajput heroes (as they have done for Shivaji), all the fighters for freedom have been inspired by them.

The lofty position, which Rana Pratap has held in the minds of the Bengalees, will be clear from the severe criticism by numerous critics towards Jyotirindranath Tagore, who in her drama **'Asrumati'** made the daughter of Rana Pratap fall in love with Akbar's son. Jyotirindranath had to give explanation for his doing so time and again, although his explanation did not satisfy the critics Once Girish Chandra Ghosh, the celebrated actor and play-wright, was invited to appear in a role at a performance of 'Asrumati'. He accepted the invitation and appeared in the first act But the very idea of a love-affair between Pratap's daughter and Akbar's son shocked him so much that he refused to take part in the subsequent acts

Rana Pratap's heroic fight with the Mughals in the field of Haldighati, inspired every Bengalee No wonder, therefore, the fight of Jatin Mukherjee (Bagha Jatin) and his comrades with the police-force of the British will be compared with the Battle of Haldighati. This was done by Kazi Nazrul Islam, who eulogised the bank of Budi Balam (a river of Orissa) where the fight of Jatin Mukherjee took place, as '**Naba Bharater Haldighati**' (the Haldighati of New India).

Rana Pratap was highly praised by all the political leaders and national heroes of Bengal. His name is even now inspiring us Other Rajput heroes have also been respected and adored by us all along. That is why a Bengalee writer commented that Rajputana was the second home of the Bengalees

The Battle of Haldighati

Dr. A L. Srivastava

Rana Pratap looked upon Man Singh, as Abul Fazl rightly observes, 'as the landholder, subordinate to himself,"(1)that is, a scion of a vassal, though ruling, family and that too not in a distant past. He, therefore, considered it derogatory to allow him to enter free Mewar as an invader, and was keen to encounter him at Mandalgarh. But he was persuaded to risk a pitched battle in the open plain in which the Mughals were adepts Consequently descending from the rock fortress of Kumbhalgarh, he moved down the hill and encamped at the village of Lohsingh, 8 miles west of Haldighati, where the Kumbhalgarh range narrows itself into a pass Here he spent the night preceding the battle. The Mughal army had already arrived at Molela, and now the distance between the two hostile forces was hardly 12 miles

Site of the battle

This memorable battle is popularly known as that of Haldighati, which is fittingly designated by Tod as the Thermopolyae of Mewar. Haldighati (not Haldighat,as some modern writers think) is a mountainous pass of a yellow colour (exactly like that of a spice drug called haldi or turmeric, when broken) extending from the south for a mile and a half in the north-easterly direction, and ending just south of the village of Khamnaur. That is why Abul Fazl calls it the battle of Khamnaur. Though a participant in it, Badayuni gives it the name of the battle of Gogunda. It is, however, clear from the account left by Badayuni himself that the battle did not take place at Gogunda or at Khamnaur, nor anywhere inside the pass which is so narrow that even now after a lapse of nearly four hundred years two men can hardly walk abreast through most part of it (2)

Nor even could the battle have been fought at the only plain inside the Haldighati pass popularly known as the Badshah Bagh This Badshah Bagh is too small a place for a battle-ground between the armies aggregating at the lowest estimate 8,000 men and an equal number of horses and elephants combined. And the deployment and manoeuvres of the question in this restricted area This eyewithness definitely states that the left wing of the imperial army was posted at the entrance of the pass (dar Dahna-i-ghati) which is two to three miles south-east of Khamnaur. It follows, therefore, that the Mughal cen-

1 A N Akbar nama Vol. III, P. 173.

2 Recently the government of Rajasthan has converted the entire pass into a motorable road and disfigured it beyond recognition

tre and right wing extended from the entrance of the pass (ghati) in the east to the river Banas in the west He further observes that the Rana's army came from behind the pass (az aqub darra baramdah), that his vanguard under Hakim Sur issued out from the west side of the hill (az janib qibla ruai-i-koh) and that he (Rana) himself came out of the west of the pass (az miyan-i-ghati) behind Hakim Sur [3] It is thus clear that the battle took place outside the entrance of the Haldighati (pass) and in the plain between that pass and the village of Khamnaur Badayuni is right when he says that the ground was rough and rugged, was studded with stones and covered by thorny bushes [4] The first encounter between the vanguards of the two armies took place here, and the subsequent fighting in the plain south-west of Khamnaur, extending upto the southern bank of the river Banas [5]

A Mewar tradition, as preserved in its Khyats, gives the strength of the Imperial army under Man Singh as 80 000 horse, and that of the Rana 20,000 Muhnot Nainsi's figures are 40,000 on the side of Man Singh and 9,000 to 10,000 on that of the Rana [6]

Tod, however, says that the Rana brought into the field 22,000 brave Rajput troops of whom only 8,000 returned to their homes, the remaining 14,000 met the soldiers, death in the field [7] These figures are highly exaggerated, and seem to be in keeping with an Indian proverb that " the intelligent exaggerate a thing four times whereas the ignorant do it ten times " The contemporary Mughal historians, including Badayuni who was present at the battle, put Man Singh's command at 5,000 troops [8] Which consisted mostly of Centeral Asian Uzbeks, Qazzaqs and Badakhshis, besides Indian Muslims, such as the Sayyids of Barha, Shaikhzadas of Fatehpur Sikri and others and the Rajputs, mostly of Man Singh's own Kachhwaha clan. The Rana had about 3,000 horse, [9] and just a few hundred Bhils under punja who were not mentioned by the historian Badayuni as they remained far behind in the rear and took no part in the battle. The Mughals possessed light artillery of an improved veariety, but no field guns, as it was impossible to drag them inro the interior of the mountainous region of western Mewar The rana had no artillery,

3 M T (Muntakhab-ut-Tawarikh) Vol II, p 231-232.

4 Even today the place is exactly like that

5 The present writer visited Haldighati twice, first in June 1930 and for the second time with Sir Jadunath Sarkar and went to Balicha where Pratap's noble steed Chetak lies buried. In his third visit in November 1960 he found the ancient monument (pass) completely disfigured by the misplaced zeal of a reforming minister, not responsive to the ancient glory of his land

6 Ojha. Udaipur Rajya ka Itihas,, Vol II, p. 745.

7 Tod, Annals and Antiquities, p. 351 and 353.

8 M T. Vol II,p. 228;T. A Vol,II,p 321

9 M. T; Vol. II, p. 231.

and besides the sword, his principal weapons in this war were bow and arrow and the lance. Both sides possessed war elephants.

Battle of Haldighati, June 18, 1576.

The Imperial army was marshalled in the following manner In the front line were posted a little more than 80 chosen young skirmishers, called the chicken of the front line (chuza-i-harawal) under Sayyid Hashim Barha Behind these was the advance guard in two contingents, one commanded by Jagannath Kachhwaha and the other by Asaf Khan, the bakhshi of the army. The third line was that of iltumish or advance reserve under Madho Singh Kachhwaha The centre, consisting of the contingents of Khwaja Muhammad Rafi Badakhshi, Shihab-ud-din Karoh, Payanda Qazzaq, Ali Murad Uzbek, and his own Kachhwaha clansmen, was commanded by Man Singh himself.

The right wing, composed mostly of the Sayyids of Barha, was under Sayyid Ahmad Khan Barha, and the left wing consisting of the contingents of the Shaikhzadas of Sikri (relations of the Shaikh Salim Chishti), some other Muslims and the Kachhwaha Rajputs of Raja Lun Karan of Sambhar, was commanded by Ghazi Khan Badakhshi The rear of reserve was under Mihtar Khan [10]

As the Rana's army had to proceed from its place of encampment through the narrow pass [11] of Haldighati, it could not be marshalled in proper order. It came out of the mouth (dahna) of the pass in two batches, the advance guard under the command of Hakim Sur was followed by the main army under Rana Pratap himself When the Rana came face to face with the Mughal force in the open, he drew up his army in the following manner The advance guard, consisting of the contingents of Kishan Das Chundawat of Salumber, Bhim Singh of Sardargarh, Sanga of Deogarh and Ram Das (son of Jaimal) of Badnor and some Afghan troops, was led by Hakim Sur, who had joined the Rana in order to settle his scores with the Mughals, the hereditary enemies of his race. The right wing was commanded by Ram Shah, ex-ruler of Gwalior and the left wing by Man Singh Jhala Pratap with the bulk of his brave troops took up his position in the centre [12] The rear consisting of the Bhils under Rana Punja of Panarwa concealed in the interior of the pass and did not come into contact with the enemy in the open plain The Rana had not set apart any section of his toops to act as reserve in the time of emergency. He had no fire-arms

On the morning of June 18, 1576 the Rana's advance guard led by Hakim

10 M. T, Vol II, p 230-231, A N, Vol III, p 174

11 T A (Tabaat-i-Akbari), Vol II, p 323

12 A N, Vol III, p 174

13 The date was 21st Rabi. I, 984 A H -- June 18, 1578 (Vide English Translation of A N, Vol. III, p 245)

Sur appeared suddenly at the mouth (north-eastern entrance) of the Haldighati pass and was soon followed by the main army under the Rana himself Pratap took up the offensive and his vanguard made so fierce and successful a charge that the Mughal Chickens of the front line under Sayyid Hashim and advance guard under Jagannath and Asaf Khan were huddled together and rolled up into one in the rugged and bushy plain; they were defeated and driven back. Sayyid Hashim fell from his horse and Asaf Khan, followed most probably by Badayuni, fled back to the shelter of the Mughal centre Jagannath Kachhwaha fighting desperately was about to fall when the iltimish under Madho Singh came to his rescue. The reinforcing iltimish too could not stand before the onset of the Rana's army whose wings pushed forward to charge their Mughal opponents The Imperial left wing under Ghazi Khan Badakhshi was attacked by the Rana's right wing under Raja Ram Shah and was defeated and forced back The charge was so irresistible that the Rajputs of Lun Karan of Sambhar, who were in the Imperial left wing, fled like a flock of sheep, and running through the Imperial advance guard took shelter with the Mughal right wing under the Barha Sayyids The Shaikhzadas of Fatehpur Sikri fled in a body, and while fleeing an arrow struck the buttocks of their leader Shaikh Mansur, son-in-law of Salim Chishti, and the wound continued to give him trouble for a long time afterwards Ghazi Khan, though a mulla, persevered on for sometime until he received a sword cut in his right hand which injured his thumb Then he could stand no longer and fled crying out "Flight from overwhelming odds is one of the traditions of the Prophet." The Imperial troops who had turned their backs in the first Rajput onset fled ten to twelve miles beyond the river Banas without drawing in their reins.

At this time the Rana's left wing under Mana Jhala charged the Mughal right wing which too, in spite of the valour and resistance displayed by the Sayyids, sustained defeat Nevertheless, the Sayyids of Barha did not abandon their position and persevered on. Had they not done so, writes Badayuni, a great disaster would have befallen the Imperial army.

After breaking the enemy's first line of the chickens of the front, advance guard, iltimish and the right and the left wings, the Rana's men turned toward the Mughal centre. Raja Ram Shah of Gwalior putting himself in front of the Rana made such gallant charges on the Rajputs of Man Singh as defy description. Man Singh too joined the battle and fought so bravely as to extort the admiration of so hostile a critic as Abdul Qadir Badayuni who exultingly remarked that Man Singh's leadership that day convinced him of the truth of Mulla Sheri's remark that "the Hindu wields the sword of Islam" In order to come to close grip with the enemy, the Rana sent forward his elephants to break the Mughal centre and to make a way for

his troops to the position held by Man Singh The famous Sisodia elephant named Lona encountered the Mughal Gajmukta and wounded him. The latter was about to flee when a bullet struck Lona's driver (mahawat) which made the animal turn back. Lona's place was taken by Ram Prasad, the most famous of the Rana's elephants, whom Akbar had coveted for a long time. The Mughals sent forward Ran Madar to oppose Ram Prasad who was about to prevail over its rival when his mahawat was shot dead by an arrow Seizing hold of the opportunity Husain Khan, the superintendent of the royal elephants, jumped with alacrity from his own elephant on to the back of Ram Prasad, who thus came into the possession of the Imperial army. The centres of the hostile forces now drew nearer, and in the close hand to hand fighting. R m Shah with his three sons (Salibahan, Bhan Singh and Pratap Singh), and Ram Das, son of the illustrious Jaimal, performed prodigies of valour and fell fighting valiantly to their last breath The latter (Ram Das) fell from a stroke inflicted by Jagannath Kachhwaha. The fierce fighting between the Rajput chiefs and rank and file of the two sides was marked by indescribable animosity and bitterness Challenge after challenge was hurled by both the sides, and personal combats took place The Rana riding his famous steed Chetak and Man Singh his elephant, took part in the fighting But the bardic story recorded in the Amar Kavya Vanshavali and Raj Ratnakar that Chetak jumped like a hungry tiger on to the head of Man Singh's elephant, that the infuriated Rana gave a spearthrust to his opponent which the latter parried by reclining himself in the howda, and that the attacking horse received a cut in one of his fore legs, seems to be apocryphal. It is, however, a historical fact that the Rana and Man Singh approached each other and "did valiant deeds." Happily they did not meet in a personal combat, and the Rana was opposed by Madho Singh Kachhwaha who had rushed to the assistance of his leader. The Kachhwahas devotedly crowded round Man Singh and made repeated attacks on the Rana, who received arrow and spear wounds in a contest with Madho Singh Kachhwaha. Nevertheless the Rana's side was prevailing, and if he had kept a b dy of fresh troops as a reserve and thrown them into the battle at this stage, it is likely that victory would have crowned his brow. But that was not to be Seeing that the battle was going against the Imperial army, Mihtar Khan, the commander of the Imperial reserve, rushed to the field with his kettle-drums beating and proclaiming loudly that Akbar had arrived by forced marches. The Rana's men, who had been under arms since four in the morning, were already exhausted, the momentum of their initial success was gone and the Mughals had now rallied from all sides The arrival of Mihtar Khan with fresh troops and the r ports of Akbar's arrival at the battle-field in person disheartened the Sisodias, and the wounded Rana's devoted attendants, sezing the bridle of Chetak, turned him back towards the entrance of the Haldighati Pass.

It was probably a little before the Rana's withdrawal, when his small army was practically surrounded, that what Badayuni describes as his personal exploit took place. The eye-witness account of this writer is vitiated by the lack of correct sequence of the events, and its author's unconcealed prejudices must be corrected by a reference to Abul Fazl's brief but precise description. After the battle was all but won, and the Mughal van aud wings had returned to fight, Badayuni on the advice of Asaf Khan went on shooting indiscriminately, friendly aud enemy Rajputs alike, claiming that it was a service to Islam and taking comfort from the idea that he had done his duty by fighting against the 'infidels' and earned the merit due to a 'ghazi' (slayer of infidels).

Before the Rana had quitted the field, Jhala Bida of Badi Sadri out of pure devotion snatched away the royal umbrella from over the head of his chief who, surrounded by the enemy, was in imminent danger, and rushing forward against Man Singh's men cried out that he was the Rana. This released the pressure on Pratap and, accompanied by Hakim Sur, he was able to escape safely through the Haldighati pass to Gogunda. The battle continued for sometime after the Rana had left the field. Bida met the hero's death that he had coveted The struggle came to an end with his fall and the remnant of the Rana's army turned its back and retreating through the pass reached Koliyari, west of Gogunda, without molestation. The battle had begun at about 8 in the morning and ended at mid-day. Man Singh came out victorious 14

The battle claimed a huge toll of lives on both the sides. On the Imperial side 150 troopers were killed and more than 300 were wounded. The Rana lost more than 500, most of whom were 'distinguished men' The more prominent among those who laid down their lives were Raja Ram Shah of Gwalior and his three sons, Jhala Bida of Badi Sadri, Ram Das of Badnor, Dodia Bhim Singh, Shankar Das Rathor. Rawat Naitsi and Jhala Man Singh The members of the Tanwar ex-ruling family of Gwalior paid loyally with the last drop of their blood for the protection and hospitality accorded to them by their generous patron, and not a single male member fit enough to succeed Raja Ram Shah survived the battle of Haldighati The number of the wounded on the Rana's side must have been more than double that of the dead.15

The result of Haldigati

Haldighati proved to be as barren a victory as it was hardwon Man Singh's campaign failed in its primary object, viz, the death or capture of Rana Pratap and the subjugation of Mewar The 18th

14. A N, Vol III, p 174–175, M. T. Vol II, p 230–234, T A, Vol. II, p 323, Vir Vinod Vol II, p 150–153
15. A. N. Vol III, p. 175; M. T., Vol. II, p. 233–234, T A. Vol II, p. 323, Ojha, Rajputana ka Itihas Vol. II p. 755.

of June in the burning hills of western Mewar was so hot that "the very brain boiled in the cranium" and "the air was like a furnace and no power of movement was left in the soldiers" Naturally the exhausted Mughals were unable to pursue[16] the fugitives and the Rana escaped safely to Koliyari, west of Gogunda, where he spent the night following the battle in security. Moreover, the Mughals were apprehensive of being ambushed, and they believed the Rana had concealed his troops behind the hills and might renew the contest So Man Singh returned to his camp at the bank af the Banas, and moved to Gogunda the next day

The battle did not break the Rana's power, it only caused a temporary set-back to his fortune From more than one point of view the battle proved to be a blessing in disguise. Far from disheartening him or making him give up resistance, it stiffened the the Rana's attitude and give him fresh confidence. The brave stand of his troops against the most powerful and the richest monarch on earth convinced him of his moral strength and determined him to continue the struggle. Haldighati is a dividing line between Pratap's policies and activities before June 18, 1576 and after that date. After the valuable experience gained In this battle the programme of the recovery of the Mughal occupied Mewar began to be given a practical shape. Pratap would not repeat the mistake of a frontal attack on a wastly superior enemy in the open field. Hence-forward he adopted the guerilla system of warfare so well-suited to the physical condition of his country and the genius of his people, particularly the primitive Bhils. The lessons of Haldighati became responsible for a change in the character of warfare between Pratap and Akbar.

16 T A, Vol II, p. 323, wrongly thinks that the Mughals pursued the fugitives

IS MAHARANA PRATAP TO BLAME FOR RESISTING AKBAR ?

—*Dr. Dasharatha Sharma*

Maharana Pratap is sometimes blamed for not having helped the unification of India by recognising Akbar's suzerainty.[1] But the scholars arguing like this should take into consideration the conditions under which the Rajputs were required to serve the Mughal Emperor. Were the conditions good enough to be accepted by a self-respecting people ? Or were the Rajputs to surrender everything, especially their honour, before they could be the pillars of the edifice called the Mughal Empire and by some even the Mughal confederation ? Till then the Rajputs had played a brilliant role in the history of India. They had fought for its independence and every Rajput ruler to whichever clan he might have belonged regarded other clansmen as members of his own fraternity as it were and treated them with all the considerations which are and should be the privilege of every self-respecting people. Did they have the same or a similar treatment at Akbar's court ?

We are prone to idealise Akbar's reign With only the fulsome Akbarnama and other Muslim histories as our guides, we give Akbar more than his due. We disbelieve Tod But we should not, at least, have any reason to disbelieve the Dalapat Vilasa a Rajasthani historical chronicle which was written during the reign of Maharaja Rai Singh of Bikaner (1571-1611 A D) and has been published recently by the Sardul Rajasthani Research Institute, Bikaner. It is an account of an eye-witness. We find from it that Rai Singh's cousins were given in marriage to Akbar, and Rai Singh served Akbar loyally at Jodhpur, Sirohi, Nagor, various sites in Gujrat and Siwana. As far as the material side was concerned. these services, whether of the Bikaner house or others, did not remain unrecognised and unrewarded. But one ought to look to other things also, things which do matter in a rational being's life but refuse to be measured in a material scale.

When Akbar began his qamargha hunt in the Bhera-Rohtas-Girjhaka area, many of the Rajput chiefs accompanying the Emperor were encamped on the bank of the river Jhelum On Akbar's reaching there the Rajputs hastened to put on their clothes and pay respect to him. One Darji, however, was a bit late Akbar whipped him himself A young Rajput prince, named Prithidipa, had been allwoed to play on by his maternal uncle Though surrounded by Rajputs for whose sentiments he should have cared, Akbar ordered the poor uncle to be whipped, and the self-respecting Rajput, unable to bear the insult, and

1. See Dr R S Tripathi's The Rise and Fall of the Mughal Empire (Referred to by Dr A L Srivastava in Summaries of Papers submitted to the IHC, Aligarh 1960, p 35)

expecting neither sympathy nor backing from anyone stabbed himself thrice with his one dagger, thereby infuriating the Emperor even further and making him pass an order for having the Rajput trampled to death by an elephant. The Rajput chiefs looked on helplessly, not even one raising his voice in protest against Akbar's inhuman orders.

When Prince Dalpat Singh of Bikaner and some of his companions saw Akbar after cremating the Rajput's body, they found him shouting, " Let the Hindus consume cows and the Muslims pigs " He took off his turban and had his locks cut off. The Rajputs also took off their turbans (and probably followed his example) Akbar's shouting continued, "These Rathods have royal blood in their veins but the Sekhawats are mere Jats." Normally no Rajput tolerates such insults But tehse wonderful Rajputs of Akbar's court instead of reacting suitably to the occasion, retired sheepishly to their tents, and puttig on their bodies the signs of 'Sankha' and Chakra' prepared themselves for death (an ignoble one of course, because it was for no noble cause and nothing better than the suicide of a hapless victim of destiny) If Akbar did not ultimately have them put to death, it was ot non account af Rajput valour or martial spirit, but because he could, when he desired, put a curb on his own caprices.

Stories of the way Akbar treated Rajputs must have reached Maharana Pratap and made him realise the utter ignominy of submitting to Akbar, even in the interests of a so-called confederation. A man does not live by bread alone, though the Maharana realised the importance of bread too, if we are to believe some of the stories of his wanderings and sufferings in the hills and jungles of Mewar, and Indians may feel deservedly proud of the fact that Rajasthan had till then a few proud spirits which put freedom and self-respect above the tinsel of material rewards. Rajput chivalry lived on after 1557 A D. not in the persons of rich Rajput grandees of the Mughal court, like the Maharaja Man Singh and Rai Singh, but the brave fighters like Maharana Pratap and others who inspired by his example yearned to live only in an atmosphere of full freedom, political as well as cultural

●●

महाराणा प्रताप के आदर्श और सिद्धान्त

डॉ० देवीलाल पालीवाल

भारतीय इतिहास के विख्यात स्वातन्त्र्य योद्धा महाराणा प्रताप का ऐतिहासिक मूल्यांकन इतिहासकारो द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया है, जिससे प्रताप के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत सामने आये हैं। एक बात मे लगभग सभी इतिहासकार एक मत हैं, कि महाराणा प्रताप इतिहास में एक अटल प्रतिज्ञापालक, अदम्य स्वतन्त्रता-प्रेमी एवं महान् त्यागी और बलिदानी योद्धा हो गया है। किन्तु उसके ऐतिहासिक महत्त्व उसके व्यक्तित्व एवं उसके आदर्श, सिद्धान्त और नीतियो के बारे में विचार वैभिन्य है।

प्रताप और इतिहासकार

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं-" राणा प्रताप की वीरता, अटल स्वतंत्रता-प्रियता और कष्ट साधना एव बलिदान से प्रभावित होकर कई आधुनिक लेखको ने प्रताप के संघर्ष के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह गभीर इतिहास नहीं है। अबुल फजल और अन्य फारसी लेखकों ने शूरवीर प्रताप को महत्त्वहीन चित्रित किया है, जब कि कतिपय अन्य लेखकों ने अकबर और मानसिंह को। यह संघर्ष हिन्दू और इस्लाम धर्मों के बीच में नहीं था बल्कि मुगल साम्राज्य और मेवाड राज्य के बीच का संघर्ष था।

"प्रताप के साहस सकल्प और अदम्य इच्छा शक्ति की कितनी ही प्रशंसा की जाय, किन्तु यह स्वीकार करना पडेगा कि उसके सिद्धान्त राजपुताना के अन्य तत्कालीन राजाओं के सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न था। प्रताप मेवाड की स्वतंत्रता और सिसोदिया वश के प्रभुत्त्व के लिए लडा, किन्तु अन्य राजा लोग उस के सम्बध में उत्साहित नहीं हुए क्योकि मेवाड के बडे शासकों के सम्बंध मे उनका पूर्व अनुभव सुखद नहीं रहा। यह कहना अविवेकपूर्ण होगा कि शेष सभी राजपूत कायर एवं डरपोक हो गये थे और उन्होने अपनी स्वतंत्रता सुख-उपभोग के लिए बेच दी थी। अकबर ने अपनी नीतियों से यह सिद्ध कर दिया था कि वह उनके राज्यों को आत्मसात नहीं करना चाहता था और न वह उनके सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप करना चाहता था। वह चाहता था नये साम्राज्यी संघ (Imperial Confederation) के प्रति उनकी वफादारी, उनका खिराज देना, विदेशी नीतियों का समर्पण करना, मुगल संघ की निश्चित सैनिकों के साथ सेवा करना तथा अपने राज्यों को मुगल साम्राज्य का एक अंग मानना। मेवाड के चारण-भाटो की प्रचारात्मक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलते जिनसे यह सिद्ध किया जा सके कि तमाम राजपूत राजाओ पर वैवाहिक संबंध थोपना अकबर की सामान्य नीति थी। राजपूत राजा इसके लिए स्वतत्र थे।

"सभी परिस्थितियों पर गौर करके अधिकांश राजपूत राजाओं ने ईमानदारी और विश्वास से मुगल सम्राट की अधीनता में मुगल संघ में शरीक होना पसन्द किया। विवेक और दूरदर्शिता मुगल संघ में शरीक होने वाले राजपूतों के साथ थी जब कि प्रताप कोरे काल्पनिक आदर्शों और भावुकतापूर्ण विचारों से ग्रस्त था।"[1]

डा. गोपीनाथ शर्मा का मत है—"यह स्वीकार्य है कि अकबर एक महान और उदारचेता सम्राट था, जिसने देश को राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकताबद्ध करने की आदर्श नीति का अनुसरण किया। प्रताप का एकता से अलग रहना उस महान कार्य पर एक प्रकार का बड़ा आघात था। उस सीमा तक प्रताप की नीति उसके देश के लिये हानिकारक थी। यदि उस समय प्रताप मुगल व्यवस्था मे शरीक हो जाता तो वह अपने देश को विनाश और बरबादी से बचा सकता था। उस का दीर्घकालीन संघर्ष उन दिन को आने से नहीं रोक सका जब कि उसके पुत्र अमरसिंह के काल में मेवाड़ मुगल साम्राज्य के आधीन हो गया। यदि मेवाड को वही अवसर पहिले मिला होता तो उसका पिछड़ापन मिट गया होता।" आश्चर्य की बात यह है कि उपरोक्त मत प्रकट करने के साथ-साथ डा. शर्मा यह भी कहते हैं—"किन्तु प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास मे स्वतन्त्रता के एक महान सैनिक के रूप में अमर रहेगा जिसने संघर्ष के इस नैतिक स्वरूप पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और भौतिक लाभ अथवा हानि की चिन्ता किए बिना लड़ता रहा। उसने हिन्दुओं के गौरव को कायम रखा। जब तक यह जाति जीवित है, वह इस बात के लिये चिरस्मरणीय रहेगा कि उसने एक विदेशी के विरुद्ध संघर्ष में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। स्वतन्त्रता के एक महान योद्धा, आदर्श के दृढ़ पालनकर्ता और चरित्रवान योद्धा के रूप में आज भी वह करोड़ों लोगों के लिये आदर्श व आशा का स्रोत बना हुआ है।"[2]

डा. गोपीनाथ शर्मा के इस परस्पर विरोधी तर्कों से पूर्ण मत के अनुयायी कई और विद्वान भी हैं। कतिपय विद्वान प्रताप के उद्देश्यों और आदर्श को संकीर्ण मानते हैं। विजय चन्द्र मजूमदार कहते हैं—"यदि आदर्श ऊंचा न हो तो प्रताप की जैसी दृढता और वीरता भी फलदायक नहीं हो सकती। प्रताप चाहे कितने बडे देवता क्यो न हो वह अपने वंश गौरव की प्रतिष्ठा रखने के लिये व्यग्र थे।" डा. रघुवीरसिंह के मतानुसार "स्वाधीन भारत के इस नये वातावरण में तत्कालीन ऐतिहासिक धारणाओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्शों की संकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मक नीति में हर प्रकार की रचनात्मकता का पूर्ण अभाव सुस्पष्ट हो जाता है।"[3] इसी बात को

1. R P. Tripathi Rise & Fall of the Mughal Empire, P. 222-225
2 G N Sharma Mewar & the Mughal Emperors, P 121
3 डा रघुवीरसिंह · पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृष्ठ 77

श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट बदल कर इस भांति कहते हैं—" आदर्श चाहे कितना संकीर्ण हो उसमें सम्पूर्ण आस्था रखकर उसके लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले कभी नहीं मरते।" 4 कतिपय विचारकों ने इससे आगे बढ़ कर राणा प्रताप को अबुल फजल की भाँति एक छोटा जमींदार, विवेकहीन विद्रोही आदि भी माना है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने महाराणा प्रताप के आदर्श तथा उद्देश्यो एवं नीतियो के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। महाराणा प्रताप द्वारा अकबर के भारत की एकता के महान् कार्य में शरीक न होने के के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि ऐसा करना प्रताप की ही भूल थी, उसके बारे में हां या नहीं मे उत्तर देना कठिन है। डा० श्रीवास्तव कहते हैं कि भूतकाल में वर्तमान युग की धारणाओं एवं विचारों को पढ़ने से यह भ्रांति उत्पन्न हुई है। उनका कहना है कि प्रताप के तथाकथित असहयोग के लिये प्रताप की अपेक्षा अकबर अधिक दोषी था, जो प्रताप के मुगल दरबार में हाजिरी देने की बात पर अधिक अडिग रहा। अकबर की हठ के कारण युद्ध चलता रहा और अमरसिंह के काल मे जहांगीर द्वारा मेवाड़ के राणा को मुगल दरबार मे हाजिर होने से मुक्त रखने की शर्त स्वीकार करने पर ही शान्ति हुई। डा० गोपीनाथ शर्मा के तर्क को भ्रमपूर्ण बताते हुए उन्होंने कहा है कि १६१५ ई. में अमरसिंह को जहांगीर से सम्मानपूर्ण सन्धि की जो शर्तें मिली वह प्रताप और अमरसिंह के १८ वर्ष लम्बे संघर्ष के कारण ही। यह सम्मान आमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, डूंगरपुर आदि राज्यों को नहीं मिला। डा. श्रीवास्तव कहते हैं– "प्रताप को अकबर महान के विरुद्ध सफल संघर्ष के कारण भारतवर्ष की प्रधान तात्विक भावना (Elemental Spirit) का प्रतीक माना गया है, जो सर्वथा उचित है। यह भावना देश के परम्परागत गौरव की रक्षा करती है और उस गौरव पर आंच लाने वाली हर बात के विरुद्ध संघर्ष करती है।5 किन्तु डा. श्रीवास्तव यह भी कहते हैं कि प्रताप में रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता और राजनैतिक अन्तर्दृष्टि का अभाव था।6

तत्कालीन धार्मिक स्थिति और प्रताप

महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में प्रकट किये गये विभिन्न इतिहासकारो के मतो पर विचार करने तथा प्रताप के आदर्श और सिद्धान्तो की चर्चा करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम तत्कालीन परिस्थितियो तथा प्रचलित धारणाओं एवं सामासामाजिक वातावरण पर गौर करें जो उस समय व्याप्त थे। निःसंदेह ही इतिहास का मध्य युग धर्मान्धता और अत्याचारो से परिपूर्ण रहा है, भारत भी इस वातावरण से अछूता नहीं रहा। सामन्ती राजतन्त्रीय युग के इस काल मे धार्मिक प्रचार-प्रसार के पीछे साम्राज्यी-प्रसार और नवीन

4. राजेन्द्र शंकर भट्ट : महाराणा प्रताप, पृष्ठ 116
5 A L. Srivastava , AKbar the Great, Vol. 1, P. 222-224
6. Ibid, P. 197

प्रदेशों की विजय के मन्सूबे रहते थे। विशेष बात यह है कि भारत मे धार्मिक कट्टरता और अत्याचार का काल इस्लाम के प्रवेश से प्रारम्भ होता है, जो भारत मे प्रविष्ठ होने के समय तक अपने क्रान्तिकारी स्वरूपको खोकर रुढीवादी और विकृतिपूर्ण बन चुका था। इस्लाम के आगमन के पूर्व और बाद में भी मूल भारतीय सांस्कृतिक परंपरा उदारता, सहिष्णुता और समन्वय की रही, यद्यपि इस देश में धार्मिक मत-मतान्तर बढते ही गये थे किन्तु अशोक और हर्षवर्धन जैसे सम्राटो की व्यवहार-परम्परा बराबर चलती रही। मध्य एशिया से निरन्तर आक्रमण होते रहे, दिल्ली में सल्तनतें बदलती रही और प्रत्येक नवीन आक्रमणकारी भौतिक लक्ष्यो की पूर्ति के लिए बडे से बडे 'गाजी' के रूप मे प्रकट होता रहा।

इन परिस्थितियो में निस्सन्देह ही मुगल साम्राज्य के निर्माता अकबर को इस बात का श्रेय जाता है कि उसने अपनी दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझबूझ और साहस से नवीन नीतियो का सूत्रपात किया,जो भारतीय भावना और परम्परा के अनुरूप थी। उस काल मे भारत जिस धार्मिक और सामाजिक परिवर्तन की हलचल से गुजर रहा था उसका भी अकबर की धार्मिक नीतियों के निर्माण पर भारी असर पडा था।[7] अकबर के उदार दृष्टिकोण और व्यवहार ने धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता एव समन्वय की प्रवृत्तियो को बडा बल दिया। अकबर की इस नीति ने उसकी साम्राज्यी सत्ता को जन-आधार प्रदान किया, जो उसके पूर्व की सल्तनतो को प्राप्त नहीं हुआ था, जिनकी सत्ता भारत पर विदेशी जुए के समान ही रही। किन्तु अकबर के दृढ प्रयत्नों के बावजूद भी उसकी उदार नीतियो का कट्टरपंथियो द्वारा विरोध ही नहीं हुआ बल्कि उसके काल में भी समय-समय पर ऐसी घटनायें होती रही जो भारतीय मानस को आघात पहुँचाने वाली थी। यह स्वाभाविक था कि विदेशी दासता एवं धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध संघर्षरत राजपूत सघ का नेतृत्व करने वाले सिसोदिया वंश का उत्तराधिकारी प्रताप (जिस वंश को सम्पूर्ण दिल्ली-सल्तनत काल के कार्यकलापो एव परिवर्तनो का ज्ञान था) अपना दृष्टिकोण स्थिति के गहन और परिपूर्ण अध्ययन और भविष्य मे होने वाले परिवर्तनो को ध्यान में रख कर बनाता।

भारत मे अकबर ने अपने साम्राज्य का प्रारम्भ युद्धबन्दी हेमू का वध करके और 'गाजी' (काफिरो का वधिक) की उपाधि धारण कर के शुरू किया।[8] मुबारक, मीर हब्शी, खिज्रखां, मिर्जा मुकीम और याकूब जैसे उदारवादी अथवा शिया धर्म को मानने वाले लोग अत्याचार के शिकार हुए। बदायुनी लिखता है कि न केवल गैरमुसलमानो बल्कि सभी मत के विरोधियों को भी टूट कर मार डालने का रिवाज प्रचलित था (वह स्थिति १५६९ ई के पूर्व तक रही)। यहा तक कि १५८८ ई मे जब एक शिया धर्मानुयायी को कत्ल करने वाले सुन्नी को फांसी की सजा दी

7 Sri Ram Sharma The Religious Policy of the Mughal Emperors, Page-18
8 Ibid , Page 11

गई तो लाहोर के लोगो ने मृत शिया की कब्र को अपवित्र किया ।[9] अब्दुलनबी ने काजी की शिकायत पर एक ब्राह्मण का इस्लाम की निन्दा के दोष के कारण वध कर दिया । लाहोर के गवर्नर हुसैन खां ने, जो १५७६ मे मरा, हिन्दुओ के लिये अपनी बाँहो पर विभिन्न रगो के पेवन्द लगाने, घोडो पर सवारी नहीं करने देने जैसे अपमान जनक नियम लागू कर रखे थे। अबूल फजल और बदायुनी आदि समकालीन लेखक इस बात के साक्षी हैं कि १५९३ ई० तक कई हिन्दू बलात् मुसलमान बनाये गये थे। जब अकबर ने टोडरमल को वित्त मन्त्री बनाया तथा मानसिंह को मुगल सेनापति बना कर महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजा तो बड़ा विरोध हुआ और अकबर को हिन्दुओ की सेवाओ के उपयोग और राजपूत का राजपूत के विरुद्ध उपयोग आदि तर्क देकर विरोध को शान्त करना पडा था। हल्दीघाटी के युद्ध मे बदायुनी और आसफखाँ का वार्तालाप प्रसिद्ध है[10] १५८१ ई० मे सूरत मे कतिपय पुर्तगीज बन्दियो को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के आधार पर जान बख्शी गई । १५७२-७३ ई० मे जब कांगडा विजय किया गया तो नगरकोट के मन्दिर की देवी का छत्र तीरो से छेद दिया गया, २०० गायो का वध किया गया और उनका रक्त मन्दिर की दीवारो पर छिड़का गया। उसी वर्ष हुसैन-कुलीखा लाहोर से मसूद हुसैन और अन्य बन्दियों को सींगो सहित गाय के चमडे में बन्द करके दरबार में हाजिर हुआ[12] ऐसी घटनाएं उस समय घटी जो उस काल की प्रचलित कट्टर धारणाओं एव मनोवृत्तियो की द्योतक हैं।

धार्मिक उदारता और स्वतन्त्रता का पोषण

राजस्थान के राजपूत और मेवाड के सिसो-दिया इतिहास में धार्मिक उदारता और समन्वय के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। वे शिव एव शक्ति के उपासक होते हुए भी बौध धर्म, जैन धर्म, वैष्णव

9 Akbarnama, Vol II, Page 46

10 युद्ध करते समय जब प्रताप के राजपूत सैनिको और मुगल सेना के राजपूत सैनिको के मध्य फर्क करना कठिन हो गया तो बदायुनी ने यह बात एक अन्य मुगल सैनिक आसफखां से कही तो उत्तर मिला– राजपूत किसी भी ओर का मारा जाय, इससे इस्लाम का लाभ ही है। मानसिंह को मुगल सेना का सेनापति बनाने का बदायुनी भी विरोधी था, किन्तु जब उसने मानसिंह को प्रताप के विरुद्ध बड़ी वीरता और चातुर्य से लड़ते देखा तो प्रसन्न होकर बोला कि हिन्दू द्वारा इस्लाम की तलवार धारण करने की मुल्ला शेरी की बात सही है।

11. Badayuni, Vol II, Page 162.

12 Akbarnama, Vol II, Page 46.

कबर के शासन के सम्बन्ध मे कुछ और बातें भी विचारणीय हैं– राज्य भाषा विदेशी फारसी भाषा थी। १००० जात और सवार से ऊपर के १३७ मन्सबदारो मे हिन्दू केवल १४ थे। मुगल फौजो मे तब भी मध्य एशिया के लोगों की बडी मात्रा में भर्ती की जाती थी और उनको ही प्रधानतः जिम्मेदारी के पद दिये जाते थे।

धर्म और इस्लाम धर्म के प्रति सहिष्णु बने रहे और उनको अपने मत-प्रचार की स्वतन्त्रता दी। प्रताप ने इस विरासत को बडी पवित्रता से निभाया। यही कारण था कि प्रताप को हकीम-खाँ सूर का सहयोग और जालोर के ताजखाँ की मित्रता मिली। प्रताप द्वारा अब्दुल रहीम खान-खाना के स्त्री बच्चो की पूरी हिफाजत और सम्मान के साथ वापस लौटाने की बात इतिहास प्रसिद्ध है। प्रताप अथवा उसके अनुयायियो का एक भी ऐसा कृत्य इतिहास मे नहीं मिलता जिससे धर्मान्धता और कट्टरता प्रकट होती हो। यद्यपि प्रताप और उसके सहयोगी १५६८ ई० मे अकबर द्वारा चित्तौड मे किये गये ३०००० व्यक्तियो के सहार को कभी नहीं भूल सके। तत्कालीन स्थितियो मे प्रताप का अकबर के प्रयोजन के प्रति सशकित रहना पूरी तरह स्वाभाविक था।

प्रताप की आशका निर्मूल नहीं निकली। अकबर की मृत्यु के बाद ही असहिष्णुता और कट्टरता ने पुनः सिर उठाया और औरगजेब के काल मे पुन. भीषण स्थिति पैदा होगई। मनुष्य जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु होती है उसकी आत्मा की स्वतन्त्रता, उसके विश्वासो और विचारो की स्वतन्त्रता। उस पर जब प्रहार होता है तो वीर और साहसी लोग प्राणार्पण करके भी मुकाबला करते हैं और जो लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं वे पराधीन दास हो जाते है। प्रताप ने जो निर्णय लिया और निश्चय किया उसको अन्तिम दम तक निभाया। इतिहास साक्षी है कि प्रताप का निर्णय गलत नहीं था।

विदेशी दासता के विरुद्ध संघर्ष

मुगल तुर्कों और पठानो की भांति विदेशी जाति के लोग थे, जिन्होने आक्रमण करके उत्तरी एवं मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। अकबर ने पठान शक्ति के ह्रास, पठानो व हिन्दुओ के वैमनस्य और राजपूत एवं अन्य हिन्दू शक्तियो के गृह-कलह का अपनी दूरदर्शिता एव कूटनीतिज्ञता से लाभ उठाकर मुगल शक्ति को बलवान बना लिया था। प्रताप अन्य राजपूत राजाओ की भांति मुगलो की दासता स्वीकार करने के लिये तैयार नही था। राजस्थान के राजपूत और प्रधानतः मेवाड़ के राजपूत विदेशी सत्ता के खिलाफ निरन्तर सघर्ष करते रहे थे और उसके अस्थायी स्वरूप और शासन परिवर्तनो को ध्यान मे रखते हुए कार्यवाही करते रहे थे। प्रताप को अपने वश के गौरवपूर्ण इतिहास का अहसास था और महाराणा कुम्भा और सांगा जैसे पूर्वजो की परम्परा और आदर्श उसके सम्मुख थे।[13] मेवाड को सांगा और प्रताप के बीच के काल मे तथा उससे पूर्व

---

13 अबुल फजल लिखता है— राणा को इस बात का घमड था कि वह उस कीर्तिमान वश में उत्पन्न हुआ है, जिसके पूर्वजों ने इस देश पर प्राचीन काल मे शासन किया था। अपनी स्थिति की दृढ़ता, भूमि के विस्तार और राजपूत सहयोगियो की बडी संख्या के कारण, जो कि स्वाभिमान की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत हैं, प्रताप की दृष्टि पर पर्दा गिर गया है।
Akbarnama, Vol III, p 244.

अलाउद्दीन खिल्जी के समय विदेशी जाति के प्रभुत्व का संकट देखना पडा था, मेवाडी या तो लड़ते रहे या उन्होने सम्मानजनक सुलह आदि अवश्य करली, किन्तु दासता कभी स्वीकार नहीं की।

प्रताप ने निश्चय ही परिस्थितियो को ध्यान में रखते हुए अकबर के साथ किसी प्रकार की सम्मानजनक सधि के लिये प्रयत्न किया। यही कारण था कि प्रताप ने अकबर द्वारा प्रेषित चार-चार दूतमडलो का पूरा स्वागत किया और तीसरे राजदूत भगवन्तदास के साथ प्रताप ने अपने कुवर अमरसिंह के साथ मेवाड का दूतमंडल भी आगरा भेजा।[14] किन्तु अकबर प्रताप को भी उसी स्थिति में आधीन बनाना चाहता था, जिसमे कि अन्य राजपूत राजा थे। उस स्थिति का अर्थ था मेवाड का महाराणा मुगल दरबार मे हाजिर होकर अपनी सेवाएं अर्पित करे, दरबार मे मुगल शिष्टाचार के अनुसार सिज्दा करे, मन्सबदार बनकर मुगल साम्राज्य के विस्तार एव दृढ़ता के लिये अपनी शक्ति एवं सेनाओ का उपयोग करे और मेवाड को मुगल साम्राज्य की जागीरी भूमि के रूप मे स्वीकार करे। (अकबर ने राजपूत राजाओ पर अपनी कन्याओं का विवाह उसके साथ करने के लिये सीधा दबाव डाला हो उसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, इसलिये यह मान्यता अस्वीकार्य है कि अकबर की ओर से प्रताप पर इस प्रकार का कोई भी दबाव डाला गया हो।) प्रताप इस स्थिति को स्वीकार करने के लिये तैयार नही था।

तत्कालीन राजस्थानी साहित्य, राजपूत धारणाओ एवं परम्पराओं तथा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियो का अध्ययन करने से डा० त्रिपाठी का यह मत सही प्रतीत नहीं होता कि अन्य राजपूत राजाओ ने ईमानदारी, विश्वास और विवेक से तथाकथित "मुगल संघ" मे शरीक होना स्वीकार किया। डा० त्रिपाठी Mughal Imperial Confederation के स्वरूप को कितना ही महत्त्व दें, वह भारतीय परम्पराओ एव परिस्थितियो के अनुरूप राज्य-संघ नहीं था। अकबर के साम्राज्य का आधार केन्द्रीय निरंकुश राज्य सत्ता, स्वेच्छाचारी शासन और उसमें सम्मिलित विभिन्न राज्यो द्वारा अपनी स्वतत्रता का पूर्ण समर्पण था। अकबर की तमाम धार्मिक एव राजनैतिक उदारता के बावजूद अकबर के साम्राज्य का प्रधान तत्व केन्द्रीय सत्ता का निरंकुश एव स्वेच्छाचारी स्वरूप बना रहा। यह बात फारसी तवारीखो से भी स्पष्ट हो जाती है। बीकानेर राजघराने से सम्बधित एक तत्कालीन ऐतिहासिक महत्व का ग्रन्थ "दलपत विलास" मुगल दरबार मे सेवारत राजपूत राजाओ की असह्य एव अपमानजनक स्थिति की वास्तविकता को प्रकट करता है।[15] लगभग सभी राजपूत राजा मन्सबदार बना कर अपनी सेनाओं सहित अपने राज्यो से दूर मुगल अभियानो मे भेज दिये जाते थे। उनके राज्यों के

14. Akbarnama, Vol III, p. 92.

15. दलपत विलास, सं० रावत सारस्वत पृ० ६५–१०५

भीतर और मुगल दरबार में निरतर ऐसे षड्यन्त्र चलते रहते थे, जिससे राजपूत राज्यों की आंतरिक स्वायत्तता नाममात्र की रहती थी। मुगल शासन पद्धति अधीनस्थ राजाओं के वंशाधिकारी को सिद्धान्त रूप में नहीं मानती थी। ऐसे राजा सिद्धांत रूप में मुगल जागीरों के स्वामी थे। उनके राज्य मुगल जागीर के रूप में थे। जब कोई राजा मरता तो उसके उत्तराधिकारी को सम्राट द्वारा उत्तराधिकार की सनद दी जाती थी। ऐसे मौकों पर मुगल बादशाह द्वारा कभी कभी वंश परम्परा के अनुसार हकदार के स्थान पर अन्य को उत्तराधिकारी बना दिया जाता था। बीकानेर, जोधपुर आदि राज्यों की घटनाएं यह भी प्रकट करती हैं कि जब भी कोई राजपूत राजा थोड़ा-बहुत स्वतत्र रुख अपनाने की चेष्टा करता, उसके लिये अपना राज्य खोने का खतरा पैदा हो जाता था।

राजपुताने के अन्य राजाओ ने मुगल आधीनता स्वीकार तो की किन्तु प्रसन्नता एवं विश्वास से नहीं, परिस्थितियों की मजबूरी और अपने राज्यों को कायम रखने की दृष्टि से। अकबर की भेद नीति एव सैन्यशक्ति ने उन्हे झुका दिया। राजपूतों के गृह कलह एवं अकबर की प्रलोभन नीति के कारण राजपूत सरदारो तथा राजाओं में आगरा दौड के लिये होड लग गई। अकबर का दरबार समस्त राजपुताना के राजनीतिक षड्यन्त्रों का केन्द्र बन गया। एक समकालीन राजस्थानी कवि ने इस स्थिति को इन शब्दों मे प्रकट किया—

आलापै राग गारडू अकबर,
दे पैंतीस असट कुल दाव।
राण सेस वसुधा कथ राखण,
राग न पातरियो अहराव ॥[6]

अकबर ने राजपूत भावनाओं तथा उनके स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए अपनी राजपूत-फूट-नीति निर्धारित की। एक ओर अकबर ने आधीन राजपूत राजाओ के पास उनके राज्य रहने दिये और उनके धार्मिक विश्वासो का आदर किया, दूसरी ओर उनमें दरबारी प्रलोभनो के लिये तथा बादशाह का कृपापात्र बनने के लिये गौरवविहीन प्रतिस्पर्द्धी पैदा की। राजाओ के बीच तथा प्रत्येक राज्य के सरदारो और राजाओ के बीच गुटबाजी और वैमनस्यता उत्पन्न की। समय-समय पर उनके राज्यो मे आन्तरिक हस्तक्षेप किये। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले राजा अकबर के निकट के कृपापात्र बने और दरबार में अधिक प्रतिष्ठा हासिल की और वे दरबारी षड्यन्त्रों में अपनी सुरक्षा और प्रभाववृद्धि की दृष्टि से अधिकाधिक भाग लेने लगे। संक्षेप मे अकबर की कूटनीति ने राजपूत सघ को सदा के लिये पगु बना दिया, राजपूत शक्ति को छिन्न भिन्न कर दिया, राजपूतो को उनके परम्परागत शौर्य एव आत्म-गौरव से विहीन कर दिया और उनके बीच अधिक गहरा वैमनस्य और कटुता उत्पन्न कर दी।

प्रताप अकबर की भेद नीति का शिकार नहीं हुआ, यह उसकी शक्ति से भयभीत नही हुआ और

---

6. डा० देवीलाल पालीवाल : प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप, पृष्ठ ६

न उसके दरबारी ऐश्वर्य के प्रलोभन का शिकार हुआ। उसके विपरीत उसने मुगल-दासता के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाया। तभी समकालीन राजस्थानी कवि जाड़ा मेहडू ने कहा—

हाथी बंध घणाँ घणां हैमर वध
कसूं हजारो गरब करौ ।
पातल राण हसै त्यां पुरसां
भाड़ै महला पेट भरौ ॥[17]

एक अन्य कवि के शब्दों में—
गिरपुर देख गवाड़, भमिया पग पग भाखरौं ।
मह अजसै मेवाड़, सह अजसै सीसोदिया ॥[18]

क्षात्र धर्म की रक्षा—

समकालीन और बाद के राजस्थानी साहित्य ने महाराणा प्रताप को एक आदर्श वीर के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने प्रताप को क्षत्रियत्व के रक्षक के रूप में देखा है। भारत की क्षत्रिय जाति की सदा से कुछ आदर्श परम्पराएं रही, जिनकी राजस्थान के राजपूतों में मान्यता रहीं और वे उनका पालन करते रहे। वश गौरव एवं आत्म सम्मान की रक्षा, विदेशी दासता के विरुद्ध एकता और संघर्ष, स्वतंत्रता-संघर्ष में सर्वस्व त्याग और बलिदान, प्रतिज्ञापालन, चारित्रिक उच्चता, शरणागत को अभयदान आदि बातें क्षत्रियत्व के सिद्धांत की मुख्य आधार थी।

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य क्षत्रियो में उत्पन्न स्वार्थपरता, संकीर्ण भावना, नैतिक पतन पारस्परिक फूट और विलासप्रियता आदि बातों के लिये राजपूतों को कोसता है। प्रताप के समकालीन राजस्थानी कवियो ने प्रताप को सच्चा क्षत्रिय और क्षात्र-धर्म का रक्षक माना है जबकि अकबराधीन राजपूत राजाओ को उन्होने अपने क्षुद्र स्वार्थों नैतिक पतन और विलासिता के कारण पराधीनता स्वीकार करने के लिये कोसा है। डा० त्रिपाठी, डा० शर्मा, डा० रघुबीरसिंह आदि का यह मत भ्रामक है कि प्रताप के आदर्श मे सिसोदिया लोगों के गौरव की रक्षा की ही भावना रही। उनका यह मत प्रतापकालीन विचारकों के मत से मेल नहीं खाता, जिन्होंने प्रताप के सघर्ष को न केवल मेवाड़ की स्वतंत्रता और सिसोदिया वंश की आन-बान की रक्षा का सघर्ष माना है बल्कि प्रताप को विदेशी मुगलो के खिलाफ देश की रक्षा के लिये लडने वाले, क्षात्र-धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष करने वाले तथा स्वाभिमान और स्वतत्रता के लिये सघर्ष करने वाले योद्धा के रूप मे देखा है। यही कारण है कि एक ओर ग्वालियर का तवर राजा रामसाह और उसके परिजन तथा हकीमखां सूर जैसे योद्धा प्रताप के पक्ष में युद्ध करते हुए मारे जाते हैं, विभिन्न खापो के राजपूत प्रताप की सेना में एकत्रित होते हैं, राजस्थान भर से स्वतत्रताप्रिय राजपूत, चारण आदि मेवाड मे आते हैं; और इतना ही नहीं प्रताप के इस सघर्ष में मध्यकालीन युद्धों में सामान्यत निष्क्रिय और उदास रहने वाली जनता तमाम प्रकार का त्याग करके प्रताप को अटट और

17. वही, पृष्ठ ३८
18 वही, पृष्ठ ५७

अदम्य वफादारी के स थ सहयोग प्रदान करती है, दूसरी ओर अकबर के आधीन हो गये राजपूतों एव अन्य लोगों मे भी प्रताप के सघर्ष के प्रति हम-दर्दी और प्रशसा की भावना मिलती है ।

विचारणीय बात है कि अकबर के तमाम प्रयत्नो, शक्तिसिह जगमल, सगर आदि भाइयों के मेवाड़ त्याग तथा मेवाड की भीषण बरबादी के बाद भी मेवाड़ के सामन्त वर्ग में कोई फूट नहीं पडी और मेवाड़ के लोग आतंकित अथवा प्रलोभित नहीं किया जा सके । बीकानेर के कर्मचन्द की भाति मेवाड के भामाशाह को भी रहीम खानखाना द्वारा मुगलो की ओर मिलाने की चेष्टा की गई, किन्तु उसको सफलता नहीं मिली । यह सब प्रताप के व्यापक राष्ट्रीय आदर्शों के कारण ही सम्भव हुआ । इसी कारण मारवाड के राव चन्द्रसेन, जालोर के ताजखा, सिरोही के राव सुर-ताण, बूदी के दूदा, ईडर के नारायणदास तथा अन्य छोटे राज्यो के साथ मुगल विरोधी मोर्चा बनाना सभव हुआ । प्रताप के आदर्श के सम्बन्ध मे पृथ्वीराज राठोड़ ने, जो स्वयं अकबर का सेवक था, यह विचार प्रकट किये हैं :–

जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियो खत्री ध्रम राणो, साराले बरतै संसार ।।

मुगल विरोधी दीर्घकालीन संघर्ष मे प्रताप ने अन्त मे जो सफलता प्राप्त की, वह भी इतिहास का एक अनूठा उदाहरण है । अकबर की सम्पूर्ण शक्ति और कूटनीति प्रताप को कुचलने में असफल रही और जब थोड़ा सा अवसर मिला तो प्रताप ने कुछ ही महीनों में न केवल पहाड़ी प्रदेश बल्कि अधिकांश मैदानी भाग भी वापस जीत लिया ।

प्रताप और अकबर

हम आज आधुनिक प्रजातन्त्रीय युग में रह रहे हैं । आज से लगभग चार सौ वर्ष पुरानी धारणाओं और कार्य-कलापों मे हम वर्तमान युग की मान्यताओं के दर्शन नहीं कर सकते और यदि ऐसा करते हैं तो हम इतिहास के साथ न्याय नहीं करेंगे । डा. रघुवीरसिह जब यह कहते हैं कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निष्पक्ष अनुदर्शन करने पर राणा प्रताप के विशिष्ट आदर्श की सकीर्णता और उसकी विरोधपूर्ण नकारात्मकता की नीति में रचनात्मकता का अभाव दृष्टिगत होता है तो उनकी यह मान्यता ऐतिहासिक संदर्भ को भुला देती है । प्रताप के कार्यों को युग के सदर्भ में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने एक विशिष्ट आदर्श, प्रयोजन और उद्देश्य को लेकर सघर्ष किया । वह आदर्श मेवाड तथा सिसोदिया वश की सीमाओं में बन्धने वाला आदर्शनहीं था बल्कि आभारतीय था । प्रताप भूतकाल की ऐतिहासिक घटनाओं से अव-गत था और उस काल का राजनैतिक व तावरण भी उसके सन्मुख स्पष्ट था । वह अकबर के साथ समझौते की सीमा तक जाना चाहता था, किन्तु भविष्य भी उसके सन्मुख झांक रहा था । वह उदारता, सहिष्णुता, नैतिकता और चारित्रिक उच्चता की दृष्टि से आदर्श व्यक्तित्व था । इन

19. वही, पृष्ठ ५

गुणों में वह अकबर से बढ़ा-चढ़ा था। उदारता एव सहिष्णुता के वातावरण-निर्माण की दृष्टि से अकबर चेष्टा कर रहा था किन्तु अकबर जिस घेरे में बन्द था, वहां क्या ये मूल्य स्थायी रह सकते थे ? प्रताप का विरोध नकारात्मक नहीं था बल्कि उसका संघर्ष स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और आत्म-गौरव के मूल्यों की रक्षार्थ रचनात्मक सघर्ष था। उसने अकबर की उदारता और सहिष्णुता की नीतियों पर कभी आघात नहीं किया और उसने स्वयं कभी भी अनुदार और कट्टर व्यक्ति की भांति व्यवहार नहीं किया। उसका संघर्ष रक्षात्मक था, उन बातों के लिये जिनको अकबर की निरंकुशता स्वीकार नहीं करना चाहती थी। अकबर की निरंकुश सत्ता में भावी विघटन और कट्टरता के बीज छिपे हुए थे जो आगे जाकर पुन: फूटे। भारतवर्ष की एकता सदैव अनेकता (Unity in diversity) की मान्यता में रही। अकबर ने राजपूताने के राजाओ से जो सन्धि की, उसमें उसकी यह मान्यता नहीं रही। उसने राजपूताने में फूट के बीज बोये, राज्यों को कमजोर किया और उनके परम्परागत गौरव और विशिष्टताओ पर आघात किया। अन्यथा अकबर और प्रताप के बीच सम्मानजनक सन्धि कभी असम्भव नहीं होती।

निष्कर्ष

डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने ठीक ही कहा है कि प्रताप भारत की तात्विक भावना (Elemental Spirit) का प्रतीक था। यह भावना सदैव राष्ट्र की स्वतन्त्रता और गौरव की रक्षा के संघर्ष में आगे रही है। महाराणा प्रताप राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और गौरव की भावना से ओत-प्रोत था, यद्यपि उसने यह भावना एक छोटे से क्षेत्र में बडी शक्ति का मुकाबला करते हुए प्रदर्शित की।

यह प्रताप के उच्च आदर्श ही थे, जिन्होंने प्रताप को भारत की भावी पीढ़ियों के हृदय में प्रतिष्ठित किया और जिनके कारण वह भारतीय जनता का अमर प्रेरणा-स्रोत बन गया। भारत मे जब भी अन्याय और जुल्म के खिलाफ आवाज उठी, प्रताप का स्मरण किया गया। स्वयं छत्रपति शिवाजी के लिये प्रताप ने एक आदर्श उदाहरण का कार्य किया। ब्रिटिश-विरोधी स्वातन्त्र्य संघर्ष में बगाल से लेकर गुजरात तक और सुदूर कर्नाटक तक महाराणा प्रताप के अनुपम स्वातन्त्र्य सघर्ष और बलिदान के उदाहरण ने जन-जन को उत्साहित किया, बल और विश्वास दिया और स्वतन्त्रता के लिये सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा दी। यह कम महत्व की बात नहीं है कि भारतीय इतिहास का महान सम्राट, विशाल साम्राज्य का स्वामी और शक्तिशाली शासक अकबर भारतीय जन-मानस मे वह स्थान नहीं ग्रहण कर सका जो महाराणा प्रताप ने प्राप्त किया है।

प्रताप के विचारों की उदारता, सिद्धान्तों और आदर्शों की महानता, चरित्र की पवित्रता, व्यवहार की नैतिकता तथा स्वतन्त्रता के लिये उसके अटल निश्चय, अप्रतिम त्याग और बलिदान ने उसको भारतीय इतिहास का अमर व्यक्तित्व बना दिया है।

O

महाराणा प्रताप सम्बन्धी कतिपय जनश्रुतियां

—देव कोठारी

महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियां मेवाड में प्रचलित हैं। इनमें से कुछ जनश्रुतियों ने तो मेवाड़ के इतिहास में स्थान पा लिया है, बहुत सी अभी तक मौखिक रूप से प्रचलित हैं। उन सबको संकलित कर क्रमानुसार दिया जा रहा है जो प्रताप सम्बन्धी सामग्री एकत्रित करते समय प्राप्त हुई हैं।

१. चेटक को खरीदना

प्रताप जब राजकुमार थे, कंधार का एक व्यापारी नीला 'चेटक' और 'नाटक' नाम के दो घोडे बेचने के लिये नगर मे लाया। घोडो की विशेषताए सुन कर प्रताप ने व्यापारी को बुलाया और घोडो की परीक्षा करने के लिये नाटक घोडे को एक बडे मैदान मे खडा करके उसके खुरो को लोहे की किसी मजबूत वस्तु के साथ जमीन मे गाड दिये। इसके बाद प्रताप घोडे पर सवार हुए तथा चाबुक लगा कर एड लगाई। घोडे के चारो खुर वहीं गडे हुए रह गये और लहूलुहान घोडा मैदान मे दौड़ता रहा। घोडे को रोक कर ज्यो ही प्रताप नीचे उतरे घोडा वहीं गिर कर मर गया। प्रताप ने प्रसन्न होकर दोनो घोडो का मूल्य देकर नीले चेटक को खरीद लिया। इसी नीले घोडे चेटक के लिये प्रसिद्ध है कि वह एक टांग कट जाने पर भी हल्दीघाटी के मैदान से प्रताप को बचा कर ले गया और तब प्राण त्यागे।

२. प्रताप व शक्तिसिंह का मनमुटाव

एक बार प्रताप व शक्तिसिंह अन्य दरबारियो के साथ पास ही के जगल में शिकार खेलने गये। जंगल में उन्हें हरिन नजर आया और तत्काल दोनों ने तीर छोडे। तीर एक साथ हरिन के लगे, हरिन मर गया। हरिन के पास प्रताप व शक्तिसिंह पहुँचे तो दोनो के बीच विवाद हो गया कि किसके तीर से हरिन मरा है? विवाद इतना बढा कि दोनों वहीं तलवारें निकाल कर लड़ने लगे। किसी दरबारी का उन्हे छुडाने का साहस नहीं हुआ किन्तु एक वृद्ध राजपुरोहित यह न देख सका। पास मे जा कर समझाने लगा परन्तु दोनो भाई नहीं माने, इस पर राजपुरोहित ने कटार निकाल कर यह कह कर अपने सीने में घुसेड दी कि तुम्हे नर खून की आवश्यकता है तो यह लो। राजपुरोहित की लाश देख कर दोनो का क्रोध शान्त हुआ। प्रताप ने शक्तिसिंह को इस पर मेवाड़ से चले जाने को कहा। शक्तिसिंह अकबर से जा मिला।

३. प्रताप व मानसिंह का वैमनस्य

अकबर की ओर से मानसिंह प्रताप को समझाने के लिये उदयपुर आया। प्रताप ने उदयसागर की पाल पर उसे एक भोज दिया किन्तु राजपूतो के नियम के अनुसार भोज मे प्रताप सम्मिलित नहीं हुए और अपने पुत्र अमरसिंह को भेज

दिया। मानसिंह ने प्रताप के नहीं आने का कारण पूछा तो बताया गया कि उनके सिर में दर्द है। इस पर मानसिंह अपना अपमान समझ कर उठ गया तब तक प्रताप भी वहां आ गये उन्होने कहा कि जो अपनी बहन बेटियो को मुगलो के साथ ब्याह देते हैं उनके साथ हम भोजन नहीं करते। इस पर मानसिंह ने कहा कि मै आपके सिर-दर्द का इलाज करने के लिये शीघ्र ही आऊंगा। उसी समय किसी ने कहा कि आप आते समय अपने फूफा को भी लेते आवे। प्रताप ने भी कहा कि अगर आप स्वयं की ताकत से आयेंगे तो आपका स्वागत मालपुरा के वहां करेंगे और अकबर की सेना के साथ आये तो जहां सम्भव हुआ वहां करेंगे।

४. प्रताप व शक्तिसिंह का मिलन

हल्दीघाटी के युद्ध से प्रताप झाला मान (बीदा) के कहने से जब लौट पडे तो दो मुगल सैनिको ने प्रताप का पीछा किया। शक्तिसिंह ने जब यह देखा तो भाई का प्रेम उमड आया और मुगल सैनिको का पीछा किया। आगे एक नाले को लांघ कर प्रताप और चेटक तो आगे बढ गये किन्तु शक्ति ने मुगलो को वहीं मार गिराया और नाला लांघ कर 'ओ नीला घोड़ा रा असवार' को जोर से आवाज लगाई। प्रताप रुक गये। शक्तिसिंह पास आकर प्रताप के पैरो मे गिर पडा। उधर चेटक युद्ध में पैर कट जाने से घायल हो गया था वहीं मर गया। शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा प्रताप को दे कर वहां से रवाना कर दिया और स्वय मरे दोनो मुगल सैनिकों मे से एक का घोडा लेकर वापस युद्ध स्थल पर आ गया।

५. प्रताप की प्रतिज्ञा

मेवाड पर मुगलों के आक्रमणों से प्रताप के अन्य सामन्तो के साहस मे कमी आने लगी। ऐसी स्थिति मे प्रताप ने सब सामन्तो को एकत्रित कर उनके सामने रघुकुल की मर्यादा की रक्षा करने और मेवाड़ को पूर्ण स्वतन्त्र करने का विश्वास दिलाया और प्रतिज्ञा की कि जब तक मेवाड़ को स्वतन्त्र नहीं करा लूंगा तब तक राजमहलो में नहीं रहूंगा, पलंग पर नहीं सोऊंगा और पंच धातु (सोना, चांदी, तांबा, पीतल, और कांसा) के बर्तनो में भोजन नहीं करूंगा।

६. कुंभलगढ़ के कुंओं में जहर

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप कुंभलगढ़ जाकर पुनः लडाई की तैयारी करने लगे, तब शाहबाज खां ने आकर कुंभलगढ घेर लिया और एक सामन्त को रुपयो और जागीर का लालच देकर अपने पक्ष में करके उससे कुंभलगढ के बडे कुएं के पानी मे जहर मिलवा दिया। जब मौतें होनी शुरू हुई और प्रताप को पता चला तो किले को कुछ विश्वस्त लोगो को सम्हला कर पीछे के रास्ते से पास के जंगल मे चले गये। शत्रुओ के भयंकर आक्रमणो को देख कर बाद मे किले के फाटक खोल दिये गये। राजपूत मारे गये और किले पर शाहबाजखां का कब्जा हो गया।

७ प्रताप बाल-बाल बचे

कमलनाथ-आवरगढ़ मे जब प्रताप रह रहे थे, रात्रि को शत्रुओ के आने का समाचार मिला।

प्रताप रात्रि मे ही कुछ विश्वस्त सैनिकों को लेकर उधर रवाना हुए। रास्ते में एक भील-भीलनी मिले। उन्होने प्रताप को उधर जाने से रोका किन्तु प्रताप नहीं माने। साथ के सैनिको के समझाने पर प्रताप वापस लौट पडे। सुबह होने पर जब जाने वाले सैनिकों व शत्रुओ के बारे में समाचार मालूम कराये गये तो पता चला कि शत्रु तो भाग गये किन्तु सब राजपूत सैनिक घायल पडे हुए हैं। उन्हे वहां से गढ़ में मंगवा कर उपचार किया गया। बाद मे उन भील व भीलनी की तलाश की गई किन्तु वे नहीं मिले।

८ माली को मौत के घाट उतारा

मेवाड मे मुगल सैनिको को कहीं से रसद सामग्री न मिल सके इस उद्देश्य से एलान करवा दिया गया कि कोई भी व्यक्ति खेतो मे कुछ भी न बोये। ऊटाला (वल्लभ नगर) गाव मे वहां के एक माली ने मुगल सेनिको के बहकावे मे आकर अपने खेत मे कुछ सब्जियां बो दी। प्रताप को जब इस बात का पता चला तो स्वय ऊटाला गये, स्थिति का पता लगाया और जब उन्हे सत्यता पर विश्वास हो गया तो सब्जी बोने वाले माली को मौत के घाट उतार दिया।

६. प्रताप द्वारा राज-मर्यादा का पालन

अकबर की यह इच्छा हुई कि अपनी आन पर अडे रहने वाले प्रताप के जगल के जीवन के बारे मे उसे कुछ जानकारी मिले। इस उद्देश्य से उसने अपने एक वफादार व्यक्ति को राजपूत का वेश पहना कर मेवाड भेजा। बडे प्रयत्न के बाद वह व्यक्ति एक दिन प्रताप के निवास स्थान पर पहुंचा। उसने देखा कि प्रताप एक ऊंचे पर्वत पर बैठे हुए हैं तथा पास मे बैठे सामन्तो को एक एक दोना भोजन का दे रहे हैं। अन्त में प्रताप ने स्वयं लिया और फिर सब खाने लगे। यह बात जब अकबर को मालूम हुई तो प्रताप के जंगल में भी इस मर्यादा पालन तथा अपने साथियों के साथ इस स्नेह और समानता की भावना से बड़ा प्रभावित हुआ।

१०. वनबिलाव द्वारा रोटी छीनना

धोलिया पहाड में जब प्रताप रह रहे थे उस समय उन्हे खाने के लिये अनाज नहीं मिल पा रहा था। बड़ी मुश्किल से उन्होने 'मोल' नाम के घास के बीजो को एकत्रित कराया और दो तीन रोटियाँ बनवाई। इसमे से एक रोटी का टुकड़ा लेकर उनकी राजकुमारी खा रही थी। उसी समय जगल से एक वनबिलाव आया और वह रोटी का टुकडा छीन कर भाग गया। रोने की आवाज सुन कर जब प्रताप उधर आये तथा उन्हे सब स्थिति मालूम हुई तो बडी ग्लानि हुई और उन्होंने अकबर से सन्धि करने के लिये पत्र लिखा।

११. हकीम की आदर्श भावना

एक बार प्रताप के साथी सामन्तो की कुछ औरतें सैनिकों के हाथ पड गई। मुसलमान सैनिक उन्हे कहा ले गये हैं यह पता नहीं लग रहा था। दूसरे दिन रात्रि को एक मुसलमान हकीम घोडे पर बैठ कर प्रताप के पास आया और बोला, मुझ से यह देखा नहीं जाता कि आपके सामन्त जब मुसलमा

शाहजादियां पकड लाये थे, आपने उन्हे ससम्मान वापस लौटाया था। किन्तु आज आपके शत्रु आपकी बहन बेटियों की इज्जत लूटने पर उतारू हैं। मेरे साथ चलिये और उन्हे छुडवाइये। प्रताप अपने विश्वस्त सैनिको को लेकर हकीम के साथ गये और रात्रि में ही शत्रुओ पर आक्रमण कर औरतो को छुडवा लाये। प्रताप हकीम की आदर्श भावना पर प्रसन्न हुए।

१२. यजमानों को रोटी देना और लडकी की मृत्यु

प्रताप और उनका परिवार दो तीन दिन से भूखा था। कहीं से अनाज लाकर कुछ रोटिया बनाई और सबको अपने अपने हिस्से की रोटिया दे दी किन्तु प्रताप की लडकी ने अपना हिस्सा शाम को अपने छोटे भाई को देने के लिये सुरक्षित रख लिया। कुछ देर के बाद कुछ यजमान आये किन्तु प्रताप के पास देने व खिलाने के लिये कुछ भी नहीं था। लडकी स्थिति को समझ कर बचाया हुआ हिस्सा ले आई और प्रताप को दे दिया। जब यजमान वह रोटी खाकर चल दिये तो उसके कुछ ही क्षण बाद लडकी की मृत्यु हो गई।

१३. अकबर की मूंछे काटना

एक बार उदयसागर के पास अकबर अपने परिवार के साथ विश्राम कर रहा था। प्रताप के सामन्तो को जब यह मालूम हुआ तो उन्होने प्रताप से निवेदन किया कि अकबर को अपनी शक्ति बताई जाय। प्रताप सामन्तो की बात रखने के लिए मध्य रात्रि में नाव में बैठ कर अकबर के पडाव की ओर रवाना हुए। रास्ते में एक 'सिगोतरी' (स्थानीय देवी) प्रताप को मिली। उसने प्रताप को उसकी शक्ति प्रदान की। प्रताप ने अकबर के डेरे में जाकर सोये हुए अकबर की एक ओर की मूंछ काट दी और वहां जमीन पर 'प्रताप' लिख कर आगये।

१४ अमरसिंह को प्रताप की फटकार

एक बार मध्य रात्रि में अचानक तेज वर्षा होने लगी और अमरसिंह की झोपडी मे पानी टपकने लगा। इस पर अमरसिंह व उसकी पत्नी को वहां से दूसरी जगह सोना पड़ा। इस पर अमरसिंह की पत्नी ने कहा कि यह मुसीबत कब तक रहेगी? अमरसिंह ने बताया कि जब तक दाईजी राज चाहेगे। प्रताप ने यह बात सुनली। सुबह होने पर अमरसिंह को अपने पास बुलाया और फटकार सुनाई। अमरसिंह इससे बड़ा शर्मिन्दा हुआ।

१५. मेवाड़ की पगड़ी का गौरव

एक चारण अकबर के दरबार में गया। अकबर को सलाम करते समय उस चारण ने अपने सिर से पगडी उतार कर हाथ मे ले लिया और फिर सलाम किया। इससे अकबर बडा अप्रसन्न हुआ और सिर से पगडी उतारने का कारण पूछा। चारण ने कहा कि यह पगडी मेवाड के महाराणा प्रताप की दी हुई है इस कारण यह झुक नहीं सकती। इस पर अकबर प्रसन्न हुआ और चारण को बहुत इनाम दिया।

१६. मृत्यु के समय प्रताप की चिन्ता

प्रताप मृत्युशय्या पर लेटे हुए थे। दर्द अधिक था किन्तु साथ चिन्तित भी बहुत थे। पास बैठे सामन्तों ने चिन्ता का कारण पूछा तो प्रताप ने बताया कि मेरे मरने के बाद क्या अमरसिंह मेवाड़ की रक्षा कर पायगा ? यह सुन कर सामन्तों के साथ अमरसिंह ने स्वतन्त्रता के इस संघर्ष को जारी रखने का व्रत लिया। इससे प्रताप को बड़ी शान्ति मिली। थोड़ी ही देर बाद प्रताप ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

१७. गाड़िया लोहारों द्वारा प्रतिज्ञा-पालन

'चितौडगढ़ को जब तक शत्रुओं के शासन से मुक्त न कर लेंगे तब तक चित्तौड़गढ़ में प्रवेश नहीं करेंगे,' इस प्रकार की प्रतिज्ञा प्रताप के साथ उनके कुछ सामन्तों ने की थी। इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये कुछ इन सामन्तों ने बडे पैमाने पर लोहे के शस्त्र बनाने आरंभ कर दिये। वे प्रताप को शस्त्र देते रहे। वे प्रताप के साथ घूमते रहते और जहां भी विश्राम लेते वहीं शस्त्र बनाना आरंभ कर देते। प्रताप की मृत्यु के बाद भी उन्होंने शस्त्र बनाना और घूमते रहना नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे इनका परिवार बढ़ गया और साथ में गाडियां रखने लगे और जब चित्तोडगढ को जीतने की कोई आशा नहीं देखी तो इन्होने खेती के औजार बनाने आरंभ कर दिये। आज भी ये चित्तौड़गढ में प्रवेश नहीं करते।

१८. प्रताप द्वारा अकबर का आतिथ्य

एक समय अकबर ने प्रताप के अतिथि-सत्कार की परीक्षा लेने की ठानी। वह फकीर का वेश धारण कर प्रताप के निवास पर पहुचा। प्रताप ने उसका सत्कार किया। उस दिन प्रताप के पास भोजन नाम मात्र के लिये भी नहीं था। बडे सकट में पडे। घर पर आया हुआ महमान भूखा लौट जाय तो बडा पाप लगे। उन्होंने अपने इष्टदेव श्रीएकलिंग का स्मरण किया। उनकी कृपा से उसी समय पाँच पकवान की थाल प्रकट हुई, जिससे अकबर को तृप्त किया। जंगल में भी प्रताप की इस महमानवाजी को देख कर अकबर बड़ा आश्चर्यचकित हो कर लौटा।

※

प्रताप महिमा

जन्म उसका हुआ था जगती के मगल को
अमित अमंगल के दगल को दलने।
धरणी के धारण का कारण जो धर्म--स्तभ,
उसके विरोधी खल--मण्डल को मलने।
'श्रीपति" जो भारतीय वैभव—विलुण्ठन को
निकले लुटेरे, उन्हें चगुल में कलने।
भारत को गारत को करने बढा था, उस
शत्रु के अपार सैन्य सागर को थलने ॥

प० लक्ष्मीनारायण पुरोहित

गुजराती साहित्य में महाराणा प्रताप

—डा० भ्रमरलाल जोशी

गुजरात और राजस्थान दोनों प्रदेशों का शताब्दियों से सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। भौगोलिक सीमाओं के सामीप्य के साथ-साथ प्रारम्भ से ही दोनों के आचार-विचार, रीति-नीति, वेष-भूषा कला-विकास, भाषा और साहित्यिक मूल-स्रोत प्राय: समान ही रहे हैं।1 दोनों प्रदेशो की भाषाएं अपभ्रंश के एक ही रूप से विकसित हुई हैं। सदियों पूर्व राजस्थान की कई जातियां गुजरात में और गुजरात की कई जातियां राजस्थान में जाकर बस गई हैं पर उन्हें प्रादेशिक भिन्नता कभी महसूस नहीं हुई है। गुजरात और राजस्थान के कई राजकुलों की धमनियों में एक ही वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा है। मेवाड़ का राजवंश सौराष्ट्र से सम्बद्ध है।2 इस प्रकार मेवाड़ और गुजरात दोनों प्रदेशों का शताब्दियों से सांस्कृतिक सम्बन्ध बना हुआ है। गुजरात के एक साहित्यकार ने मेवाड़ और गुजरात के राजवंशों का सम्बन्ध बताते हुए कहा है कि मेवाड़ के महाराणाओं को जब तक सौराष्ट्र की राजकुमारी मिल सकती है तब तक वे किसी और का सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते थे।3

मेवाड़ी वीरों के शौर्य, दृढ़निष्ठा, देशभक्ति, उदारता, टेक, स्वामी—भक्ति आदि पर गुजरात मुग्ध है। गुजरात में बापा रावल, कुंभा, मीरा, हमीर, सांगा, प्रताप और राजसिंह को लेकर प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ है। इसमें से भी प्रताप पर तो अनेक साहित्यकारों की दृष्टि पहुंची है। प्रताप के शौर्य एवं उनकी देश भक्ति पर यहां के इतिहासकार ने अपरिमित श्रद्धा-सुमन चढ़ाये हैं।4 प्रताप जैसे मेदपाटीय वीरो के संबध में गुजरात का एक साहित्यकार तो यहा तक लिखता है कि रामायण और महाभारत के योद्धा अपने स्वार्थ के लिये लडे जबकि मेवाड़ के योद्धाओं ने अपने देश की रक्षा के लिये प्राण न्योछा-

1 'सौराष्ट्र अने राजस्थान ना आचार विचार एक सरखा, सस्कार, शौर्य अने सौंदर्यपण सरखा मेवाडनी मछगधा की भूमिका।

2 एमां ये मेवाडना राणा तो छे. सौराष्ट्रवासी मूल वल (वल्लभीपुर) ना वतनी—मेवाड़नी मछगधा, भूमिका।

3 मेवाड़पति ने ज्यां सुधी सौराष्ट्रनी राजकुवरी सांपडती त्यां सुधी अन्य राजकुवरीओना श्रीफल स्वीकारता नहि— मेवाड़ नी मछगंधा, भूमिका।

4 सिसोदियामां राणा प्रताप जेवा सद्गुण, उच्चभाव अने पराक्रमोनु दर्शन त्यार पछीनो बीजो कोई पण राजपूत करावी शक्यो नथी'— मेवाड़नी संध्या, पृ० १०

'प्रतापसिंह मां एक महत्वनो गुण ए हतो के तेमना वीरत्वमां नीचतानु चिन्ह जणातु नथी, प्रतापसिंह, पृ० ६, ले० डा० रा० मेहता—

बर किये हैं। यह कहते हुए गौरव की अनुभूति होती है कि गुजरात के साहित्यकारो ने मेदपाट को पवित्र वीर-तीर्थ के रूप में निरूपित किया है।

गुजराती में महाकवि नर्वद (सन् १८३३—१८८६) ने 'नर्म गद्य,' भाग २ (पृष्ठ ४०४—४०७) में देश के जागरण काल में सबसे पहले मेवाड एवं महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में संक्षेप मे मेवाड़नीं हकीकत नाम से लिखा। इसके बाद कई गुजराती साहित्यकार इस ओर अभिमुख हुए। 'जूनी धंधादारी रगभूमि' सस्था ने प्रताप पर लिखित नाटको को गुजरात तथा महाराष्ट्र अनेक नगरो में अभिनीत किया। गुजरात विद्या-पीठ ग्रंथालय अहमदाबाद की रीजनल कापी-राईट लाईब्रेरी मे छोटी-बड़ी कई देशी नाटक कम्पनियो की 'प्रताप नाटक ना गायनो', 'प्रताप नाटकना गायनो अने टुकसार', 'अश्रुमति' आदि के रूप में कई छोटी पुस्तिकाएं सुरक्षित हैं। जिनमे नाटक का कथासार तथा गीत हैं। इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रताप का चरित गुजरात में बहुत पहले से कितना लोकख्यात हो चुका था। गुजराती मे प्रताप पर लिखित नाटक, उपन्यास, कहानिया, कविताएं, जीवनचरित्र आदि उपलब्ध होते हैं।

नाटक

प्रताप सबधी गुजराती नाटको मे गणपतराम राजाराम भट्ट कृत प्रताप नाटक (१९२१ ई) नारायण हेमचन्द्र द्वारा अनुवादित बंगाली नाटक अश्रुमति (१८८७ ई.), डाह्या भाई धोलशाजी कृत अश्रुमति (१९०८ ई०), कविकान्त कृत सलीमशाह (अप्रकाशित), मणिभाई भूलाभाई पटेल कृत प्रतापसिंह, दौलतराम कृपाराम कृत महाराणा प्रताप, जयंतिलाल मेहता कृत मेवाड़ना सिंह अने बीजी वातो, झवेरचन्द मेघाणी द्वारा अनुवादित बंगाली नाटक राणो प्रताप (१९३४ ई०) मूलशंकर माणिक्यलाल कृत (संस्कृत नाटक) प्रतापविजयम् प्रधान हैं।

प्रताप नाटक गुजराती साहित्य की कृतियों मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। यह नाटक गुजरात के विद्यालयो में अनेक वर्षों तक पाठ्य पुस्तक के रूप में चलता रहा है और कई सस्थाओ द्वारा अभिनीत हुआ है।

कथावस्तु की दृष्टि से यह नाटक कवि नर्वद के नर्मगद्य की मेवाड नी हकीकत एव टाड कृत राजस्थान पर आधारित है। नाटक की कथा इतिहास-प्रसिद्ध है। प्रताप की स्वतन्त्रता अकबर को खटक रही थी। मानसिंह ने कई प्रलोभन देकर प्रताप को अकबर के दरबार मे लेजाने का प्रयत्न किया किंतु अन्त तक वह असफल ही रहा। मानसिंह अप्रसन्न हुआ। प्रताप को हल्दीघाटी मे मुगलो से लोहा लेना

5 भारत के रामायणमां वखाणेला जोद्धा तो मात्र तेमना स्वार्थ ने माटेज प्रख्यात थई गया, पण मेवाड ना राजपूतो तो पोताना उत्तम प्रकारना सदगुणो माटे प्रख्यात थया छे'

—मेवाडनी जाहोजलाली, पृ० ५ ले० श्री विठ्ठलभाई पनजी भाई

पड़ा। मानसिंह प्रताप को जीवित कैद करना या मारना चाहता था पर सफल नहीं हो सका। प्रताप युद्ध समाप्त होने के बाद कुम्भलगढ़ एवं फिर पहाडो में चले गये। अंत मे युद्ध के साधन एव अर्थ के अभाव के कारण उन्होने मेवाड छोड़ने का निश्चय किया। भामाशाह मेवाड़ के अर्थपति थे। उनके पास अपना पूर्व संचित काफी द्रव्य था। आपत्ति के समय उन्होने अपनी समस्त निधि प्रताप को समर्पित कर दी। प्रताप ने उस द्रव्य से पुन सेना सगठित की और युद्ध में विजय प्राप्त की।

नाटक का प्रधान रस वीररस है। वीर रस के अनेक अनुभाव एवं हावभावों का नाटक में सफल निरूपण हुआ है। हल्दीघाटी के युद्ध में मुगलो से लोहा लेने के लिए राजपूत सेना तैयार खडी है। सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा है। ऐसे समय 'राजा बारोट' अपनी जोशीली वाणी मे प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं कि वीरो! खड्ग खोल कर ऐसी हुंकार करो कि मुगलानियों के गर्भ गिर जाए--

कीकियारी करो कारमी खड्ग धरि,
गर्भ मुगलाणीना जाय तूटी।

देह तृण एव मिट्टी के समान तुच्छ है। युद्ध में विजयी वीरों को ही यश रूपी हेम कुंभ (सुवर्ण घट) की उपलब्धि होती है। अतः वीरो! इस अवसर पर चूको नहीं और अपनी 'नाक' (सम्मान) के लिए अपना सिर होड़ में लगा दो।

गात्र ने माटीना पात्र जेवु गणो,
हेमनो कुंभ जश आप बूझे,
नाकने काज निज शीश अर्पे वधु
शरीर ने तरणनी तुल्य जाणो।

नाटक मे जोधपुर, जयपुर आदि राजघरानों को मुगलो से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोसा गया है। प्रताप की पत्नी महारानी को एक आदर्श वीर क्षत्राणी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रताप----महारानी सम्वाद बहुत रोचक एवं भावोत्तेजक बना है। महारानी प्रताप को रण के लिए विदा करते समय मंगल कामनाए करती हुई कहती है कि युद्ध मे वे समस्त शत्रु--दल को भवानी के खप्पर मे होम कर विजय प्राप्त करें। वे अपने शर में राम के बाण की अमोघ शक्ति प्राप्त करें .... आदि।

कथ कोडामणा। लउं भला भामणाँ
जुद्धमा जइ भलो जश जमावो,
शत्रुदल खरग्मा ते खपावो,
रामना बाणनु बल बसो बाणमा
खड्ग मां कालिना खड्ग जेवु।
इन्द्रना वज्रनूं जोर भाले हजो
ढाल हनुमान तनु होय तेवु।

अश्रुमति नाम से दो नाटक गुजराती मे प्रकाशित हुए हैं। प्रथम है रविन्द्रनाथ ठाकुर के बडे भ्राता ज्योतिन्द्रनाथ कृत बगाली नाटक 'अश्रुमति' का नारायण हेमचन्द्र द्वारा गुजराती अनुवाद। इस कल्पित नाटक के प्रधान पात्र हैं--प्रताप की

कुंवरी अश्रुमती और अकबर-पुत्र सलीम। कथा-वस्तु हल्दीघाटी के युद्ध से प्रारम्भ होती है। युद्ध के बाद एक मुगल सेनापति फरीद अश्रुमती का अपहरण कर लेता है और उससे विवाह करना चाहता है। अश्रुमती सलीम को चाहती है जबकि प्रताप का भ्राता शक्तिसिंह कवि पृथ्वीराज से उसका विवाह करना चाहता है। सम्पूर्ण कथानक में ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा की गई है। नाटक में प्रताप को धीर, दृढप्रतिज्ञ और स्वातंत्र्य प्रेमी योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अन्तिम भाग मे मृत्यु शैया पर पडे हुए जब प्रताप अन्तिम श्वास गिन रहे थे वे अश्रुमती को आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर शिवाराधना का प्रायश्चित विधान करके दम तोडते हैं। डाह्याभाई घोलशाजी झवेरी कृत अश्रुमती नाटक की कथावस्तु कुछ भिन्न है। उसमे प्रताप का मुगलो द्वारा कैद किया जाना, शक्तिसिंह एव पृथ्वीराज द्वारा अपहरण से मुक्ति आदि घटनाएं दी गई हैं। स्पष्ट है इन नाटको की घटनाए इतिहास सम्मत नहीं हैं।

प्रतापसिंह नाटक की कथावस्तु 'प्रताप नाटक" के समान ही है कुछ नये स्त्री पात्र जोड दिये गये हैं। राणो प्रताप की कथा वस्तु भी टाड कृत राजस्थान पर आधारित है। इसमे मुगल राजकुमारियो से सम्बन्धित कल्पित घटनाओं का समावेश किया गया है तथा अकबर की कामुकता, नवरोज का मेला और पृथ्वीराज की पत्नी का अपने सतीत्व की रक्षा जैसी बातें भी प्रस्तुत की गई हैं। प्रतापविजयम् संस्कृत नाटक मे हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन अत्यन्त ही मार्मिक एव वीररस के भावों से ओतप्रोत है।

उपन्यास

गुजराती साहित्य मे महाराणा प्रताप के जीवन और आदर्शों को आधार बना कर कई उपन्यासो की रचना की गई है। इनमें मुख्य हैं-- रमणलाल वसन्तलाल देसाई कृत शौर्य तर्पण (१९५१ ई०) वसन्त कृत मेवाड नी सध्या (१९०८ ई०), ना० वि० ठक्कर कृत हल्दीघाटी नु युद्ध (१९०६ ई०), छगनलाल अमयाराम कृत प्रतापी प्रताप (१९४६ ई०) गोपालजी वीरमजी कृत मेवाड़ केसरी (१९५२ ई०) तथा डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता कृत वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप-सिंह (१९१४)। शौर्य तर्पण के लेखक रमणलाल वसन्तलाल देसाई गुजराती के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। मेवाड के राजवश को लेकर आपने तीन उपन्यास लिखे हैं-- मेवाड नो अरुणोदय' 'पहाड़ना पुष्पो' और 'शौर्य तर्पण'।

मेवाड़नो अरुणोदय बापा रावल को लेकर लिखा गया है। पहाड़ना पुष्पो में महाराणा उदयसिंह तथा उनकी प्रेयसी मालिन नन्दिनी के प्रेम का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है। तीसरा उपन्यास शौर्य-तर्पण प्रताप के चरित्र से सम्बद्ध है। प्रताप के राज्यासीन होने से लेकर उनके अन्तिम क्षणों तक का इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। उपन्यास में प्रताप के साहस, शौर्य, और अटूट सघर्ष का बड़ा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रताप अन्तिम दम तक स्वतन्त्र रहने की अपनी 'अणनम टेक' पर दृढ़ रहते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ से ही एक अवान्तर प्रेम कथा भी चलती है, वह है सामन्त-पुत्री गौतमी एव ग्वालियर के तंवर राजकुंवर शालिवाहन की प्रेम-कथा। इस कथा में कुंभलगढ़ के रक्षक देवराज को खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह विश्वासघात करके कुंभलगढ़ मुगलों को देदेता है। गौतमी इसका बदला उसका वध करके लेती है। उपन्यास के अन्तिम भाग में प्रताप भामाशाह के द्रव्य से मेवाड पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, फिरभी मेवाड का हृदय चित्तोड़ उन्हें प्राप्त नहीं होता है। प्रताप की आशा अधूरी ही रह जाती है।

उपन्यास में अनेक मर्मस्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। प्रताप मातृभूमि मेवाड़ को त्यागने के लिए तैयार हो रहे हैं। मेवाड़ से विमुक्त होने से पूर्व प्रताप की वीर पत्नी अश्रु-जल से भगवान सूर्य का तर्पण करती हैं। प्रताप के पूछने पर वह उत्तर में कहती है—"महाराज ! हजी सूर्य अस्त थया नथी बीजा कोईनुं नहिं तो आपणा आ सनातन पूर्वजनुं एकाद बिंदु वडे तो तर्पण करवुं पड़े-ने ? (पृ० २६२)

चरित्र—चित्रण की दृष्टि से प्रताप, झाला सरदार, कुंवर शालिवाहन, बभ्रु, देवराज आदि महत्वपूर्ण पात्र हैं। उपन्यास में प्रताप के चरित्र का विकास अच्छी तरह हो पाया है। वे एक ओर जहां वत्सल प्रजा-पालक हैं तो दूसरी ओर कठोर शासक भी।

मेवाड़नी संध्या अथवा प्रेमनी आहुती भी प्रताप के जीवन से सम्बन्धित उपन्यास है उनके जीवन के अंतिम दिन बड़ी निराशा में व्यतीत हुए। प्रताप मेवाड को किसी भी भांति स्वतन्त्र रखना चाहते थे। पर उनके बाद उन्हें अन्धकार ही दिखाई पड़ता था। दो कुंवरों मे से एक अजीतसिंह एक युवती के प्रेम में पड कर युवती के साथ ही पूर्णा नदी में समाधि ले चुका था। और दूसरे अमरसिंह में भी कोई विशेष दृढ़ता नहीं दिखाई दे रही थी। लेखक ने कृति का नाम 'मेवाडनो संध्या' रखा है, क्योंकि प्रताप को लेखक ने मेदपाट की उस अंतिम किरण के रूप में देखा था जिसके अस्त हो जाने के बाद मेवाड़ की धरती सदा के लिए वीर-विधुरा हो गई। 'प्रेमनी आहुती' जो इस उपन्यास का दूसरा शीर्षक है उसका संबंध कुंवर अजीतसिंह और उसकी प्रेयसी लक्ष्मी की प्रेम-कथा से है जिसका कि उपन्यास में विशेष महत्व है। पूर्णा नदी के तट पर अजीतगढ़ आज भी दोनों के प्रेम का साक्षी माना जाता है।

प्रताप के यश के वर्णन में लेखक ने यत्र-तत्र प्रताप सम्बन्धी प्राचीन राजस्थानी भाषा के पृथ्वीराज, दुरसा आढा आदि द्वारा रचित दोहों का प्रयोग भी किया है।

ऐतिहासिक घटनाओ को लेखक ने अपनी कल्पनानुसार परिवर्तित कर दिया है। उपन्यास की भाषा अलंकृत एव प्रांजल है। इसमें वीर एव शृंगार दोनों की धाराए समान गति से प्रवाहित हुई हैं।

मेवाड़ केसरी याने हिंदवो सूर्य रचना में पद्य का मिश्रण होने से इसे हम चपूकाव्य भी कह सकते हैं। सूर्य वंश का प्रभाव बतला कर बापा रावल से ही कथा प्रारम्भ की गई है। प्रताप एवं मानसिंह का काव्यमय संवाद भाव-पूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। प्रताप मानसिंह से कहते हैं कि यवनों के उच्छिष्ट से तोंद बढ़ा रखी है, किसी दिन मर्द से पाला पड़ेगा तो गत बिगड जायगी।

यवनो की जुठ से वढ़ायो शरीर ताको,
पारखो पडेगो जवे, मरद वो मुछालो है। (पृ. ६१)

प्रताप के अंतिम क्षणों का वर्णन अतीव कारुणिक है।

'उदयपुरना वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप' उनके जीवन पर आधारित इस उपन्यास में प्रताप के व्यक्तित्व को लेकर लेखक ने जो कुछ कहा है वह काफी महत्वपूर्ण है। प्रताप को उपन्यासकार ने सच्चे वीर के रूप मे चित्रित किया है। वह कहता है 'प्रतापसिंह मा एक महत्वनो गुण ए हतो के तेमना वीरत्व मा नीचतानुं चिन्ह जणातुं नथी' (पृ. ६)। वीर तो कई होते हैं पर उनकी वीरता अनैतिकता आचरणो के कीचड में फंसी हुई होती है। मानसिंह ऐसा ही था जिसकी वीरता परवशता के कर्दम मे फसी हुई थी। स्वधर्म पर ही आघात करना वीरोचित काम नहीं है।

काव्य

राजस्थान में जिस प्रकार डिंगल-साहित्य निर्मित हुआ है, उसी प्रकार गुजरात में भी चारणी-साहित्य लिखा गया है। डिंगल की भांति यह भी प्रायः वीरों के यशोगान से ही सम्बद्ध है। संभव है प्रस्तुत विषय पर गुजरात के चारणो, भाटों और बारोटो ने पर्याप्त लिखा हो। चारणी साहित्य पर गुजरात के साहित्य-कार श्री झवेरचन्द मेघाणी की 'चारणो अने चारणी-साहित्य' रचना मिलती है, पर इसमें भी प्रस्तुत विषय पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। गुजरात में कई हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार भी हैं। संभव है उनमें भी अनुसन्धित्सुओं को बहुत कुछ मिल सके। मुझे प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित दो रचनाएं प्राप्त हुई हैं:—

१. पुरोहितनी राजभक्ति तथा २. हल्दीघाटी नुं युद्ध।

दोनो रचनाए गुजरात के प्रसिद्ध कवि अरदेशर फरामजी खबरदार की हैं। दोनो ही अतीव प्रसिद्ध एवं रसपूर्ण रचनाएं हैं। ये रचनाएं पाठ्य पुस्तकों में भी वर्षों से चल रही हैं।

पुरोहितनी राजभक्ति रचना 'आपणा खड काव्यो' संग्रह में छपी है। आखेट के समय प्रताप और शक्तिसिंह में पहले कुछ कहा-सुनी हो जाती है और फिर दोनों खड्ग तान कर एक दूसरे पर टूट पडते हैं। राजवंश की रक्षा के लिए अन्त में पुरोहित अपनी बलि देता है। कवि ने बड़ा मर्म-स्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है—

…कूदी कूदा उछली उछली, सिंह शृंगार राखे,
राता ताता उभय कुंवरो, युद्ध नैपुण्य दाखे,
ऊभा ऊभा अवरजन सौ ध्रूजता मीट मांडे,
वृक्षो ध्रूजे ऊभेलां, अनिल घूघवतो घोर त्यां घोष पाडे

राजभक्त पुरोहित से यह दृश्य देखा न गया और उनका द्वन्दयुद्ध रोकने के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये—

भोंकीने ते कटारी झट निज उरमा त्यां पड़ी रक्त डूबे
लड़ता कुंवरो मध्ये विप्रनो देह तर्फडे

दूसरी कविता "हल्दीघाटी नु युद्ध" है। इसका कथानक खड काव्य के जितना व्यापक है। प्रताप अपने सरदारो का युद्ध के लिए आह्वान करते हैं:—

वीरा ! झट चालो रणमा
हर हर हर नादे घूमता,

प्रताप का आह्वान सुनते ही चूंडावत,सांगावत, राठोड, सिसोदिया, झाला, चौहान, परमार आदि सहस्त्रों वीर मुगल सेना पर मृगों पर सिह की भांति टूट पडे। भीषण मार-काट शुरू हुई। वीरों के रुंड-मुंडो से धरती पट गई। अकेले प्रताप की मार से सैंकडो वीर धरती पर लोट गये।

आकाश धरा त्या कंप्या,
रणक्षेत्रे आरभायो,
ढगना ढग वीरो पडता,
लडता अगणित मोगल ने,

× × ×

डोल्या चोडे ब्रह्माड !
शो भीषण हत्या काड !
नहि शवनो काइ सुमार,

× × ×

राणाए राखी रंग,
निज अश्वे मारी छलंग,

× × ×

छे प्रताप केरू आज।
ते घुमी रह्यो सिहराज,

सम्पूर्ण कविता वीर रस से पूर्ण है। अन्त में कवि प्रताप को लेकर कहता है कि उनका यश और उनके वीरोचित कर्मो को भारत सदा याद रखेगा——

राणाए ते दिन अते,
पण जगते जोयो ल्हेनी,
नथी भारत जन कदी भुल्यां,
सहु स्मरे प्रताप अने ते।

कवि अन्त में कहता है कि प्रताप के शौर्य के इन गीतों का जो स्मरण करेगा वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में असफल नहीं होगा, निराश नहीं होगा, 'करमाएगा' नहीं अर्थात् म्लान नहीं होगा—

छे धन्यज तम तलवार,
कदी करमाशे पलबार ?
तमशौर्य गीतो नरनार,
शूरा बावीश हजार

इतिहास

गुजराती में प्रताप विषयक दो इतिहास ग्रन्थ मिलते हे—

१ मेवाड़ नी जाहोजलालो
२ मेवाड़ना अणमोल जवाहिर याने आत्मवलिदा।

प्रथम ग्रन्थ १५ प्रकरणो मे विभक्त है। सूर्य वंश की उत्पति से लेकर महाराणा राजसिंह

तक के मेवाड़ के राजवंश का इसमे वर्णन किया गया है। इतिहासकार मेवाड का 'जाहोजलालो' (वैभव) का काल महाराणा राजसिंह तक ही मानता है, अतः इसमे राजसिंह तक का ही वर्णन किया गया है। जैसा कि स्वयं लेखक का कथन है उसने यह ग्रन्थ जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के संकुचित घेरे से मुक्त रहकर तटस्थ दृष्टि से लिखा है। इस ग्रन्थ के मूल-स्रोत हैं--कर्नल टॉड कृत राजस्थान, उसके संपर्क मे आने वाले अनेक राज बारोट, चारण और भाट, मेवाड की यात्रा करके लौटे हुए अनेक यात्री। अध्ययन से लगता है कि ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसकी कई आवृत्तियां निकल चुकी हैं। लेखक को इसकी आठवीं आवृत्ति उपलब्ध हुई है। ग्यारहवा प्रकरण महाराणा प्रताप से सम्बद्ध है।

दूसरा ग्रन्थ 'मेवाड ना अणमोल जवाहिर याने आत्म बलिदान' है। जो काफी बडा होने पर भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है। इसमे महाराणा कुंभा से लेकर महाराणा फतहसिंह तक का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ मे स्थान स्थान पर ऐतिहासिक स्थानो के चित्र भी दिये गये हैं। जैनियो की उदारता का वर्णन काफी बढा-चढा कर किया गया है, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाराणाओं के वर्णन के साथ जैनियो का कीर्ति-गान करना प्रमुख प्रयोजन रहा है।

इनके अतिरिक्त 'चारणो अने चारणी-साहित्य' मे पृ० १८८ पर चारण कवि केशरीसिंह सोन्याणा के 'प्रताप चरित्र' ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है, जो प्रकाशित हो चुका है।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त 'भारतना भडवीरो', 'भारतना वीर पुरुषो' जैसे अनेक ग्रन्थो में प्रताप विषयक कहानियां, जीवन चरित्र आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। प्रताप पर गुजरात मे बालसाहित्य भी लिखा गया है वीररस-पूर्ण छोटी छोटी बालपुस्तिकाएं पुस्तकालयो में काफी संख्या मे संग्रहीत हैं।

यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि गुजराती में ही नहीं अपितु देश की बंगला, मराठी, आदि इतर भाषाओ में भी समान काल में प्रताप पर साहित्य लिखा गया है। प्रताप पर ही नहीं किंतु शिवाजी, गुरू गोविन्द सिंह आदि पर भी प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ है। इस साहित्य निर्माण के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है, स्वतन्त्रता के लिए देश को जाग्रत करना। १९ वीं सदी में देश को स्वतन्त्र बनाने की एक प्रचंड लहर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गई थी। प्रताप, शिवाजी गुरू गोविन्दसिंह जैसे स्वतन्त्रताप्रिय वीरो के माध्यम से साहित्यकारो ने इस स्वातंत्र्य--लहर को चेतनाशील एवं आन्दोलित बनाये रखने का यत्न किया। प्रताप पर जो साहित्य देशव्यापी भाषाओ में लिखा गया, उसके पीछे भी साहित्यकारों की यही बलवती भावना रही थी। अवश्य ही साहित्यकारो ने अपना दर्शन कल्पना एवं अतिशयोक्ति का सहारा लेकर, ऐतिहासिक तथ्यो को तोड मरोड़ करके तथा कहीं कहीं भद्दे रूप में भी प्रस्तुत किया है।

महाराणा प्रताप : कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ एवं योग्य सेनापति

– डा० देवीलाल पालीवाल

भारतीय इतिहास के महान् साम्राज्य निर्माता और विजेता सम्राट अकबर के विरुद्ध लगभग २० वर्षों तक सफल युद्ध का संचालन करने वाले और विशाल साम्राज्य के मध्य एक टापू के समान स्थित मेवाड़ की स्वतन्त्रता को कायम रखने वाले महाराणा प्रताप के कूटनीतिक, प्रशासनिक, एव सैनिक गुण इतिहासकारो की दृष्टि से उपेक्षित रहे हैं। इतिहासकारो ने प्रताप के आदर्श, सघर्ष और त्याग एवं बलिदान की चर्चाए तो गई की है किन्तु प्रताप के व्यक्तित्व के गुणों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और प्राय: यह मान लिया गया है कि प्रताप में एक कुशल शासक के गुणो का अभाव था। अकबर और प्रताप के व्यक्तित्वो की तुलना करते हुए डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव कहते हैं, "यद्यपि प्रताप के राज्य की भूमि, भौतिक साधन और जनशक्ति अकबर से अत्यधिक कम थी, फिर भी वह साहस, वीरता, चरित्र की दृढ़ता, देशभक्ति सैनिक प्रतिभा और वास्तव मे नेतृत्व के सभी गुणो मे अकबर के समकक्ष था, प्रताप में कमी थी तो सिफ रचनात्मक योग्यता, दृष्टि की व्यापकता, राजनैतिक अन्तर्दृष्टि और राजनीतिज्ञता की।" किन्तु प्रताप का दीर्घकालीन अटूट सघर्ष, सफलता तथा परिणाम एवं तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाणो का अध्ययन प्रताप के उन गुणो को प्रकट करते हैं, जिन्हें डा. श्रीवास्तव अपने अध्ययन में एक जगह अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं,2 किन्तु दूसरे स्थान पर उनको अस्वीकार करते हैं। यह सही है कि प्रताप अकबर के मुकाबले एक अत्यन्त ही छोटे राज्य का स्वामी था, उससे उसके शासकीय गुण कम नहीं हो जाते बल्कि उसकी सैनिक एव राजनैतिक सफलताओ के कारण, उसके वे गुण अधिक उजागर होते हैं।

कुशल शासक

१५७२ ई० में प्रताप के राज्यारोहण के समय मेवाड का समस्त मैदानी भाग, माडलगढ एव चित्तौडगढ़ सहित, मुगलो के आधीन था और सिर्फ पर्वतीय भाग ही राणा के अधिकार मे था। मैदानी भाग को वापस हासिल करना एक दु साध्य कार्य था, किन्तु पर्वतीय भाग की मुगल सेनाओ से रक्षा करना भी उतना ही कठिन कार्य था। १५६८ ई० मे चित्तौड-पतन के लगभग चार वर्ष बाद गोगूदा मे महाराणा उदयसिंह की मृत्यु हुई उस समय तक पहाडो मे यत्र-तत्र विचरण के

1 A, L Srivastava Akbar the Great, vol I, P 197
2 Ibid, P 222-224

बाद महाराणा ने गोगूंदा को सामरिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से प्रधान केन्द्र स्थल बनाया था। इसके अतिरिक्त उदयपुर और कुम्भलगढ़ दो अन्य प्रधान स्थान थे जहां मेवाड़ की सैन्य टुकड़ियां एवं प्रशासनिक अधिकारी रहते थे। उदयसिंह के काल में ही उदयपुर को अपेक्षाकृत कम सुरक्षित स्थान होने से मेवाड की राजधानी नहीं रखने का निर्णय कर लिया गया था।

महाराणा प्रताप का राज्यारोहण गोगूंदा में हुआ और जश्न कुम्भलगढ़ मे मनाया गया। उसके दो वर्ष पूर्व १५७० ई० में अकबर के नागोर दरबार तक राजपूताना की लगभग सभी बडी शक्तिया अकबर के अधीन होगई थी। गुजरात विजय के बाद अकबर ने मेवाड के दक्षिणी भाग में स्थित शेष छोटी राजपूत शक्तियों को विजय कर मेवाड के पर्वतीय भाग को घेर लेने का निश्चय किया ताकि यदि प्रताप मुगल अधीनता स्वीकार न करे तो मुगल सेनाएं चारो ओर से मेवाड़ के पर्वतीय भाग में प्रविष्ठ होकर प्रताप को पराजित कर सके। अकबर मेवाड को अकेला कर घेरने में अवश्य सफल हुआ, किन्तु उसकी प्रबल सैन्य शक्ति और कूटनीति प्रताप को पराजित करने और झुकाने मे सफल नहीं हुई।

प्रताप और उसके सहयोगियो ने मेवाड की स्वतन्त्रता की रक्षा का निश्चय तो कर लिया किन्तु दुर्गम एव विकट पर्वतीय प्रदेश में दीर्घकालीन युद्ध के लिये समुचित प्रशासनिक, सामरिक एवं आर्थिक व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था

प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से प्रताप के सन्मुख कई समस्याएं थी—

१. मुगल सैनिको से रक्षा के लिए स्वयं के परिजनों, स्त्री-बच्चों और सामन्तों के परिजनों को ऐसे सुरक्षित स्थलो पर रखना जहां उनकी रक्षा हो सके और उनका भरण-पोषण भी हो सके और सकट के समय उनको तत्काल स्थानांतरित किया जा सके

२. राज्य के कोष, शस्त्रागार, अन्न भण्डार आदि के लिये सुरक्षित स्थलो की व्यवस्था करना।

३. राज्य की अर्थ व्यवस्था, पैदावार, उद्योग धन्धे, व्यापार आदि की पर्वतीय भाग मे इस भाति व्यवस्था करना, जिससे मेवाड़ का समस्त सैन्य सगठन सुचारू रूप से संचालित किया जा सके, जन-जीवन की सामान्य आवश्यकताएं पूरी की जा सके और साथ ही शत्रु को उनका लाभ न मिल सके।

४ प्रशासनिक एव सैन्य व्यवस्था का इस भाति विकेन्द्रीकरण करना कि शत्रु के आक्रमण उसको एक साथ छिन्न-भिन्न न कर सके।

५ सैन्य व्यवस्था को इस भाति सगठित एव संचालित करना, जिससे कि अल्प संख्या में होते हुए भी पर्वतीय भाग में बहुसख्यक मुगल सेना की कार्यवाहियो को बेकार कर सके और उसका अधिकाधिक विनाश कर सके।

६ पर्वतीय भाग में रहने वाले सम्पूर्ण जन-समुदाय के दैनिक जीवन एव कार्यकलाप को इस

भांति सचालित करना कि वे अपना व्यवसाय कर सकें, स्वयं की सुरक्षा कर सके और शत्रु को हानि पहुंचा सके।

७. एक ऐसी तीव्रगामी संदेशवाहक व्यवस्था तथा गुप्तचर व्यवस्था का गठन करना जो शत्रु की गतिविधियों के बारे में अटूट रूप से सूचना दे सके।

८. पर्वतीय भागो में सैनिक आवश्यकताओं की दृष्टि से माल, असबाब ढोने की समुचित व्यवस्था करना।

महाराणा प्रताप ने बडी चतुराई, कौशल और दृढ़ता के साथ मेवाड की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को सामरिक आधार [war-footing] पर रखा। निस्सदेह ही अरावली पर्वतमाला में रहने वाली आदिवासी भील जाति ने प्रताप की अनेक समस्याओं को हल करने में बडा सहयोग दिया।

राजपूत परिवार के स्त्री-बच्चों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व इन लोगों ने इतनी खूबी से निभाया कि एक बार भी ऐसा अवसर नहीं आया जबकि कोई स्त्री-बच्चे मुगल सैनिकों के हाथो मे पडे हो।[3]

इसी भांति रसद आदि लाने-लेजाने, संदेश-वाहन और गुप्तचर विभाग के कार्य-संचालन में भील लोगों ने बड़ा सहयोग दिया। ये पहाड़ों के गुप्त और विकट मार्गों से परिचित थे और बिना थके मीलों तक पहाड़ों की चढाइयां पार कर लेते थे। किलकारी मारकर अथवा ढोल बजाकर संकेतो द्वारा वे एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर सदेश पहुँचा देते थे। इसके अतिरिक्त इनका सबसे बडा गुण था, वफादारी। शत्रु कभी भी इनसे गुप्त भेद प्राप्त नहीं कर सका। ये लोग एक साथ पहाड़ो में खेती करते, अवसर आने पर धनुष-बाण आदि लेकर लड़ते और संदेश लाने-लेजाने का कार्य करते रहते।

अरावली पर्वतमाला के घने स्थानो मे जगह जगह पर गुप्त कन्दराएं विद्यमान है, जहां पर प्रताप ने कोष, शस्त्र तथा अन्य साधन जमा रखे। ऐसी कन्दराओं में चावंड के पास की जावरमाला, गोगून्दा के पास की मायरा और मचीन आदि की गुफाएं प्रधान हैं। प्रताप का धन अथवा सैन्य सामान कभी शत्रु के हाथ में पडा हो, ऐसी घटना नहीं मिलती।

अरावली के इस भाग के कई पर्वत बीस-बीस मील लम्बे और छ-छः मील तक चौड़े हैं जिनमें

3. मान्यता है कि राजपूत परिवारो के स्त्री-बच्चो को छप्पन के घने पर्वतीय भूभाग से सटी हुई आवर पर्वतश्रेणी में कमलनाथ पर्वत पर रखा गया था। यह पर्वत इतना विशाल है कि इस पर पानी की बहुतायत है और कृषि हो सकती है। इस पर्वत पर जगह जगह पर खडहर मिलते हैं। संकट के अवसर पर भील लोग उनको शीघ्रता से अन्य स्थान पर पहुचा देते थे। एक बार ऐसे ही संकट के अवसर पर पानरवा का ठाकुर महाराणा प्रताप की वृद्ध मां को पीठ पर लादकर पहाड लांघ गया। उससे पानरवा के ठाकुर को 'राणा' पदवी मिली। [सावलदान आशिया की बही के आधार पर]

पानी और खाद्य सामग्री की बहुतायत रहती है। इसके अलावा इन पर्वतो के मध्य पठारी भाग अत्यन्त उपजाऊ है। इस भाग में वर्षा अच्छी होने से अकाल बहुत कम पडते है। मुगल आक्रमणों के बावजूद प्रताप ने कृषि पैदावार की ऐसी व्यवस्था रखी जिससे उसके हजारों सैनिक कभी भी खाद्य सामग्री के अभाव में नहीं रहे। जब कभी मुगल सेना का अभियान होता घाटियो में बसने वाले लोग बडे पर्वतों के घने भागो मे चले जाते जिनमें घुसना मुगलो के लिए सस्ती मौत को बुलावा देना होता था।

यह प्रताप की प्रशासनिक कुशलता का ही परिणाम था कि बीस वर्ष तक ३०० मील के छोटे पर्वतीय घेरे में मुगल सेनाओ के अनवरत आक्रमण--प्रवाहो एव विध्वस के बीच भी उसका शासन जीवित रहा। उसकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न नहीं हुई और उसके सहयोगियो एव जनता का मनोबल सदा दृढ़ रहा।

योग्य सेनापति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रताप ने अपनी सेना का नवीन ढग से गठन और संचालन किया। प्रताप की सेना के मुख्य रूप से दो भाग ही रहे–पैदल सेना एव घुडसवार सेना। मेवाड की सेना कई टुकडियो में विभाजित की जाकर देश के महत्वपूर्ण सामरिक स्थानो पर तैनात की गई। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद सामान्यत. छापामार (guerrilla) युद्ध-प्रणाली का उपयोग किया गया। इस प्रणाली के अनुसार मुगल सेना का सीधा मुकाबला नहीं किया जाता था। सैनिक टुकडी गुप्त स्थान से निकलकर तेजी के साथ मुगल थानो अथवा हमलावर सेनाओ पर यकायक हमला करती, मुगल सैनिकों को मारकर और रसद, शस्त्र आदि लूटकर तेजी के साथ वापस गायब हो जाती थी।

प्रताप की छापामार युद्ध--प्रणाली से मुगल सेना सदा आतंकित रही। गोगूंदा से जिस दुर्दशा के साथ मानसिंह मेवाड़ से लौटा यह सर्व विदित है। मेवाड में मुगल थाने कभी भी सुरक्षित एव स्थायी नहीं रहे। मुगल सेना का रसद–मार्ग सदैव असुरक्षित रहा। प्रताप ने जमीन फूंको नीति का, जिसे आधुनिक काल में scorched earth policy कहते हैं, अनुसरण किया। जिस भू-भाग पर मुगल सैनिक आधिपत्य जमा लेते वहां के लोग अपना माल असबाब लेकर पर्वतो मे चले जाते, साथ मे कृषि आदि बरबाद करके जाते और कुछ भी उपयोगी सामान शत्रु के लिये नहीं छोडते थे। यही कारण था कि मेवाड में हर मुगल अभियान असफल हुआ और मुगल सैनिक पर्वतो के घने भागो मे प्रविष्ठ होने से सदा कतराये।

प्रताप के सैनिक साधारण वेशभूषा वाले होते थे और तीव्र गति (swift march) और यकायक आक्रमण (sudden attack) मे प्रवीण होते थे। उनका साधारण भोजन प्राय: वे कपडे में लपेट कर कमर पर बांध कर रखते थे, जिससे तेजी से एक स्थान दूसरे स्थान के लिये

४ ऐसे पर्वतो मे जरगा, आवर, मालदेव, जावर, राहुग, कुम्भलमेर, मछावला, भाडेर, नाहेसर आदि प्रधान हैं।

प्रस्थान करने में सरलता रहती थी। प्रताप की सैन्य व्यवस्था सदा इतनी सुसगठित रही कि शत्रु कभी भी चैन से नहीं रहा। इतना ही नहीं समय समय पर मेवाड के सैनिक,मेवाड़ के बाहर,गुजरात, मालवा, आमेर आदि इलाको मे यकायक धावा मार कर मुगल सेना को नुकसान पहुँचाकर और लूटमार करके सुरक्षित लौट आते थे। शस्त्रास्त्रो का निर्माण, अश्वशालाओ की व्यवस्था, सैनिको का प्रशिक्षण, सेनाओं के लिये खाद्य-सामग्री तथा अन्य वस्तुओ की समुचित व्यवस्था, सेनाओ का अनुशासन, विभिन्न सैन्य टुकड़ियो के बीच समन्वय और केन्द्रीय संचालन आदि सभी कार्य बडे सुनियोजित प्रकार से चले, जिसके परिणामस्वरूप प्रताप को सफलता पर सफलता मिली और धन-जन की कम से कम हानि हुई। प्रताप के समय में, चित्तौड़-पतन के बाद, योद्धाओ की एक नवीन पीढी भी खडी हो गई। दिवेर के युद्ध की विजय के यही कारण थे और जब सन १५८६ में अकबर का ध्यान राजपूताना से हटकर उत्तरपश्चिम की ओर गया तो कुछ ही समय मे चित्तौड और मांडलगढ को छोड़ कर प्रताप ने मेवाड़ का लगभग सम्पूर्ण मैदानी भाग भी विजय कर लिया। प्रताप के बाद जब १५९७ ई० में अमरसिंह गद्दीनशीन हुआ तो उसके पास पूर्ण शस्त्रास्त्र से सज्जित यथेष्ट मात्रा मे सेना विद्यमान थी।

प्रताप की रक्षात्मक युद्ध-व्यवस्था में समय समय पर मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने की नीति शामिल थी, जिसका प्रयोजन मुगलो को जन धन की हानि पहूंचाने और मेवाड़ी सेना के लिए रसद, शस्त्रास्त्र आदि प्राप्त करने के अतिरिक्त मेवाड पर आक्रमण करने वाली शत्रु-सेनाओं का ध्यान बटाना और उनके आक्रमण में शिथिलता पैदा करना था। जब मुगल सैनिक कुंभलगढ, गोगूंदा आदि स्थानों में उलझे होते, उस समय प्रताप और उसकी टुकडियां मालवा,गुजरात आदि इलाकों की ओर धावा मारते होते थे। महाराणा प्रताप का चावड को मेवाड़ की राजधानी बनाना उसके उत्तम रणनीतिज्ञ होने का प्रमाण है। चावड की उपजाऊ घाटी चारो ओर घनी,विशाल एवं विस्तृत पर्वतमालाओ से घिरी हुई हैं। इस घाटी में प्रवेश करने के मार्ग अति दुर्गम एवं विकट हैं। इससे यहाँ पर शत्रु सैनिको के आकस्मिक आक्रमण का भय नहीं रहता था और शत्रु के प्रवेश को रोकना आसान होता था। यहा शत्रु के पहुचने पर राजधानी की सम्पूर्ण व्यवस्था को इससे सटे हुए अरावली के अत्यन्त विकट भाग छप्पन प्रदेश के गुप्त भागो मे लेजाना आसान होता था। इस घाटी की उपजाऊ भूमि और पानी की बहुतायत के कारण राज परिवार, सैनिको एव उनके परिजनो के जीवन-यापन की दृष्टि से पूरी सुविधा रहती थी।

चावड को राजधानी बनाने से अकबर की मेवाड़ को घेरकर अकेला करने की नीति भी असफल होगई। यहां रहने से प्रताप के लिये सिरोही ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, गुजरात आदि प्रदेशों मे निकट सम्पर्क बना रहा। इन प्रदेशो के मुगल विरोधी तत्वो का सहयोग प्राप्त करना आसान हो गया, यहा तक कि इन प्रदेशो के मुगलाधीन शासकों से भी समय-समय पर मदद प्राप्त करना सभव

हुआ। इसके अतिरिक्त अपनी दक्ष गुप्तचर व्यवस्था की सहायता से यदा कदा मेवाड़ से बाहर निकल कर गुजरात और मालवा के प्रदेशो पर आकस्मिक आक्रमण करना भी आसान हुआ।

सफल कूटनीतिज्ञ

महाराणा प्रताप की सफलता का कारण उसका कुशल प्रशासन और दक्षतापूर्ण सैन्य व्यवस्था तो थी ही, उसके साथ उसकी दूरदर्शितापूर्ण कूटनीतिज्ञता भी उसकी सफलता में बडी सहायक हुई। प्रताप जानता था कि विशाल मुगल साम्राज्य के साथ सघर्ष में कोरे रक्षात्मक युद्ध करने मात्र से सफलता नहीं मिलेगी। प्रताप समय समय पर अपनी शक्ति और सामर्थ्य तथा चतुराई से ऐसे कूटनीतिक प्रयत्न करता रहा, जिससे अकबर को मेवाड-विजय में बराबर कठिनाइयों का सामना करना पडा। मूल रूप से प्रताप की कूटनीति का उद्देश्य अकबर की राजपूतो सम्बन्धी कूटनीति को निष्फल करना और मेवाड़ के रक्षात्मक युद्ध को सफल बनाना था।

१. प्रताप ने अपने मुगल–विरोधी संघर्ष को विदेशी दासता के विरूद्ध सघर्ष का स्वरूप प्रदान किया। उसने एक हद तक पठान–मुगल शत्रुता का लाभ उठाने का प्रयत्न भी किया। उसने तमाम मुगल विरोधी तत्वो को एकजूट करने का प्रयत्न किया। उसने क्षात्र-धर्म की रक्षा का नारा बुलन्द कर सामान्य राजपूतो एव जनता का समर्थन हासिल किया। महाराणा प्रताप की इस नीति के कारण ही हकीमखां सूर एवं जालोर के ताजखां का सहयोग मिला, राजस्थान के कई भागो से मुगल विरोधी तत्वों ने मेवाड़ में आकर प्रताप को सहयोग दिया तथा सिरोही, ईडर, जोधपुर, डूगरपुर आदि इलाको की विद्रोही शक्तियों से प्रताप की मैत्री स्थापित हुई। यहाँ तक कि मुगल सेवा को स्वीकार करने वाले शासको एव अधिकारियो पर भी प्रताप की नीतियों का प्रभाव पडा।

२ प्रताप के राज्यारोहण के प्रारम्भिक चार वर्ष पर्यन्त मेवाड का पर्वतीय इलाका मुगल आक्रमण से बचा रहा. इसका श्रेय प्रताप के कूटनीतिक प्रयत्नो को है। १५७२ ई० के वर्ष, जबकि प्रताप महाराणा बना, अकबर के लिये बचे खुचे राजस्थान के राज्यो. प्रमुखतः मेवाड को अपने आधीन करना आवश्यक हो गया था और उसके लिये सैनिक अभियान चलाना भी सरल हो गया था। १७५२-७३ में अकबर ने चार दूतमंडल मेवाड़ भेजे, उसमें मानसिंह और भगवन्तदास तो ससैन्य इस इलाके मे भेजे गये, जिन्होने मेवाड से सटे हुए अन्य राज्यो को आधीन किया। उनका ससैन्य मेवाड के स्वतन्त्र इलाके में प्रवेश करना आक्रमण करने के तुल्य ही था। किन्तु प्रताप ने उनको रोक कर उनसे युद्ध मोल नहीं लिया, क्योंकि मेवाड़ को युद्ध की तैयारी की दृष्टि से समय चाहिये था। प्रताप ने सन्धि प्रस्तावो का स्वागत किया, इन मडलों से वार्तालाप किया और उन्हे आदर-सत्कार देकर विदा किया। तीसरे दूतमण्डल के साथ प्रताप ने अपने कुवर अमरसिंह को वार्ता जारी रखने की दृष्टि से मुगल-दरबार भेजा। प्रताप के ये प्रयत्न उसकी दूरदर्शिता, धैर्य और चतुराई के

प्रमाण हैं। इन चार वर्षों में प्रताप ने जो सामरिक एवं कूटनीतिक तैयारियां की, उनके आधार पर ही वह आगामी दस वर्षों तक निरन्तर लड़ता रह सका।

३. मुगल-विरोधी दीर्घकालीन सघर्ष में भीषण संकटो मे पड कर भी प्रताप ने धैर्य आत्म विश्वास और विवेक से मुंह नहीं मोडा। उसने एक ओर सम्मानजनक संधि के लिये अपना द्वार खुला रखा, दूसरी ओर उसने मुगल विरोधी तत्वों से सदैव मेल वनाये रखा। एक बार प्रताप की सेना ने अकबराधीन डूंगरपुर के रावल आसकरण पर चढ़ाई की, उस समय प्रताप का सहयोगी एवं अकवर विरोधी जोधपुर का राव चन्द्रसेन डूंगरपुर में ठहरा हुआ था। रावल पहाड़ों में चला गया, किन्तु राव चन्द्रसेन वहां से नहीं डिगा। प्रताप और चन्द्रसेन मे आरम्भ से ही मेल था। जब प्रताप को पता लगा तो मेवाड़ी फौजें डूंगरपुर से वापस बुलाली गई। सिरोही का राव सुरताण महाराणा द्वारा मनोनीत राव कल्ला को हटा कर सिरोही का शासक बन गया था। किन्तु प्रताप ने सुरताण से शत्रुता मोल न ली क्योंकि वह मुगल विरोधी सघर्ष मे प्रताप का साथ दे रहा था। प्रताप का भाई जगमाल, जो अकवर की सेवा में चला गया था, सिरोही पर मुगल-आक्रमण के समय लड़ता हुआ मारा गया। इस घटना के बावजूद प्रताप ने राव सुरताण से अपने मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उन्हें अधिक दृढ़ करने हेतु उसने अपने पुत्र अमरसिंह की कन्या का विवाह उससे करने की बात चलाई। इस पर प्रताप का भाई सगर नाराज होकर मेवाड़ छोड़ कर चला गया, किन्तु प्रताप ने उसके कारण सिरोही से सम्बन्ध नहीं बिगाडे।

४. जिस भांति अकबर मेवाड तथा अन्य राजपूत राज्यो को छोड़ कर आने वाले राजकुमारों सरदारों, मन्त्रियों आदि को पनाह देकर ऊँचे-ऊँचे पद देकर उनका साम्राज्यी हित के लिए उपयोग करता था, उसी प्रकार प्रताप ने भी विभिन्न राज्यों के विद्रोही तत्वों को अपनी ओर मिला कर उपयोग करने की नीति अपनाई। बूंदी के शासक सुर्जन हाड़ा द्वारा अकवर की आधीनता स्वीकार करने पर उसका पुत्र दूदा मेवाड़ आकर कई वर्षों तक प्रताप का सहयोगी बन कर मुगलों के विरुद्ध लड़ता रहा। इसी भाति डूंगरपुर के रावल आसकरण द्वारा मुगल आधीनता स्वीकार करने पर उसका पुत्र सहसमल मेवाड़ चला आया। प्रताप ने उसको डूंगरपुर की गद्दी पर बिठाने की चेष्टा भी की। जोधपुर का राव चन्द्रसेन कई वर्षों तक मेवाड़ में या उसके आस-पास के इलाको में प्रताप का सहयोगी बन कर लड़ता रहा।

५ प्रताप ने मुगल आधीनता को स्वीकार कर लेने वाले राज्यो, मुख्यत: मेवाड की सीमा से सटे हुए राज्यो के शासकों से अनावश्यक झगडा मोल नहीं लिया। उसके विपरीत उसने उनकी मजबूरियो को ध्यान में रखते हुए उनके साथ निरन्तर सम्पर्क रख कर उनसे यथा-सम्भव गुप्त सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

इस भांति महाराणा प्रताप न केवल एक शूरवीर, साहसी और बलिदानी योद्धा था बल्कि उसमे कुशल शासक, चतुर कूटनीतिज्ञ एवं सुयोग्य रणनीतिज्ञ के सभी गुण विद्यमान थे।

महाराणा प्रताप से संबंधित कतिपय ऐतिहासिक स्थान

—देव कोठारी

मेवाड़ की पवित्र धरती के कण-कण में भारत के सपूत महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व, कृतित्व एव उसके बलिदानी जीवन की अमर कहानी का जयघोष आज भी व्याप्त है। यहां की अरावली पर्वत श्रेणियों में उसके संघर्षमय जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थल प्रताप के अपूर्व शौर्य, अलौकिक साहस, अदम्य स्वाभिमान, अकथनीय त्याग एव अटल आत्मविश्वास के प्रेरणास्पद प्रमाण हैं। इसी देशभक्ति से प्रेरित होकर प्रताप के समकालीन जैन कवि पदमसागर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जगद्गुरु काव्य' मे अकबर के आगे इज्जत वेचने वाले अन्य हिन्दू राजाओं की कड़ी भर्तसना की थी और प्रताप के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।[1]

प्रताप के स्वतंत्रता सग्राम से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलो मे से हल्दीघाटी, कुम्भलगढ़, उदयपुर, आदि के बारे यत्र-तत्र बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस लेख में प्रताप के जीवन से सम्बन्धित कतिपय ज्ञात-अज्ञात ऐतिहासिक स्थानो के बारे मे परिचय दिया जा रहा है जो उनके संघर्षमय जीवन के कार्यस्थल रहे हैं तथा जिनके बारे मे अभी तक पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है।

१. गोगून्दा:—

यह स्थान उदयपुर से २२ माईल दूर उत्तर-पश्चिम में अरावली पहाड़ियों से घिरे हुए मैदान में बसा हुआ है। यहां से हल्दीघाटी ११ माइल दूर पूर्वी पहाड़ों में है तथा कुम्भलगढ़ २० माइल दूर उत्तर-पश्चिम के पहाड़ों मे बसा हुआ है। इस प्रकार यह गांव उदयपुर, कुम्भलगढ़ और हल्दीघाटी से आने वाले मार्गों के मध्य में आ गया है। इस गांव के चारो ओर लगभग दो-दो माइल की दूरी पर अरावली पहाड व उसकी उच्च-श्रेणियां आ गई हैं। यह बीच के मैदानी एवं पठारी भाग पर बसा हुआ है। चारो दिशाओं में से किसी भी दिशा से इस गांव में आने के लिए विस्तृत चढ़ाई पार करके आना पड़ता है। यह सामरिक दृष्टि से बड़ा सुरक्षित स्थल है।

एक जनश्रुति के अनुसार इस गांव को बसाने का श्रेय गोगुनराम महता (ब्राह्मण) को है। महाराणा क्षेत्रसिह (वि०सं० १४२१–३९) से पूर्व इस गाव का उपयोग ईडर (गुजरात) के शासक मेवाड की ओर अपनी अन्तिम चौकी के रूप में करते थे। महाराणा उदयसिह व प्रताप के समय यह गांव खालसे में था।

---

१. केचिद् हिन्दुनृपा बलश्रवणतस्तस्य स्वपुत्रीगण,
गाढाभ्यर्थनया ददत्य विकला राज्य निज रक्षितुम्,
केचित्प्रामतमिन्द्रकान्तरचन मुक्त्वा पुरः पादयो.,
पेतुः केचिद्विवानुगा. परमिमे सर्वेऽपि तत्सेविन.
[वि०सं० १६४६ में पद्मसागर कृत 'जगद्गुरु काव्य' ८८]

गांव के दक्षिण में वर्तमान राजराणा[2] के पुराने व नये महल हैं। प्रचलित धारणा के अनुसार इन महलो का उत्तरी-पूर्वी भाग जो बाद में रनिवास एवं राजराणा के रहने का स्थान रहा वह महाराणा उदयसिंह (वि०सं० १५९४-१६२८) के समय विद्यमान था। इन महलों के दक्षिण में उस समय काफी बड़ा मैदान था जहां अब नये महल हैं। आज भी गोगून्दा में भील लोगो की बाहुल्यता है। पुराने महलों के उत्तर-पूर्व में बडा मैदान आ गया है। कहा जाता है कि हल्दीघाटी से प्रताप का पीछा करता हुआ मानसिंह जब गोगून्दा आया था, उस समय उसके सैनिकों का पड़ाव इसी मैदान में डाला गया था। महाराणा उदयसिंह ने वि०सं० १६२८ का दशहरा गोगून्दा में मनाया था और यहीं पुराने महलो में उनका स्वर्गवास हुआ था। मानसिंह, अकबर और शाहबाजखां जब-जब दलबल सहित गोगून्दा आये[3] तो इन्हीं महलो में अपना मुकाम बनाया था।

(क) उदयसिंह का दाह-संस्कार स्थल:—

गोगून्दा के नये महलों के ठीक दक्षिण में दो फर्लाङ्ग दूर तालाब के किनारे पठारी भाग पर बहुत सी छतरियां बनी हुई हैं जहां एक बड़ी किन्तु जीर्ज-शीर्ण छतरी स्थित है। यह छतरी महाराणा उदयसिंह के दाह-सस्कार की जगह है। उसी स्थान पर मेवाड के सरदारों द्वारा प्रताप को गद्दी पर बिठाने का निश्चय किया गया था।[4]

(ख) प्रताप के राजतिलक का स्थान :—

पुराने महलों के उत्तर में लगभग एक फर्लाङ्ग दूर महादेव का मन्दिर, महादेव का कुआ (बावड़ी) व इन दोनों के मध्य एक चबूतरा तथा चबूतरे के पश्चिमी भाग पर जुडी हुई चार खभों की एक छतरी अवस्थित है। यही स्थान प्रताप के राजतिलक का है। कहा जाता है कि राजवंश के इष्टदेव भगवान महादेव की साक्षी में छतरी वाले स्थान पर प्रताप को आसीन कर उनका राजतिलक किया गया था। उसके बाद प्रताप महलों में प्रविष्ठ होकर गद्दी पर बैठे। इस स्थान पर प्रति वर्ष प्रताप-जयन्ती का मेला लगता है।

२. मायरा की गुफा:—

हल्दीघाटी का रास्ता गोगून्दा के पूर्वी पहाडों में से है। इन पूर्वी पहाडो को 'लाम' कहते हैं। 'लाम' के सकडे रास्ते को लांघकर भूताला गाव का घाटा पार करते हुए हल्दीघाटी की ओर जाया जाता है। 'लाम' को लांघने के बाद ही पूर्व में लगभग डेड माइल लम्बी छोटी-मोटी घाटियो को पार करने के बाद चारों ओर पहाडो से घिरी हुई एक नाले के पास एक पोली पहाड़ी के अन्दर गुफा है जिसको मायरा की गुफा कहते हे। इस गुफा की ओर से यहा से ६ मील दूर हल्दीघाटी जाया जा सकता है। इस

---

२. यहां के राजराणा झालावंश के हैं तथा बडीसादडी एवं देलवाडा के राजराणा की वंश-परंपरा से सम्बन्धित है।

३ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ, १५३, १५६, १५७।

४. वही, द्वितीय भाग, पृष्ठ १४५।

गुफा के लिये प्रसिद्ध है कि हल्दीघाटी के युद्ध के समय यहां की गुफा को शस्त्रागार बनाया था और बहुत से सैनिकों को यहां रखा था। इसके ऊंचे पहाडो के शिखर से १०-१२ माईल दूर से आते हुए व्यक्ति नजर आ जाते हैं किन्तु विशेषता यह है कि इस गुफा के पन्द्रह-बीस कदम दूर खडा हुआ या आता हुआ व्यक्ति इस गुफा को नहीं देख सकता है।

अन्दर से यह गुफा अंधेरी है और इतनी बडी है कि अन्दर २०० के लगभग व्यक्ति बैठ सकते है। गुफा में देवी का स्थान है, जिसे महाराणा की कुलदेवी कहा जाता है। गुफा के बाहर ही एक छोटा पानी का नाला है जो वर्ष भर बहता रहता है।

३. धोलियाजी के महल व राणागांव–

गोगून्दा से दक्षिण में महाराणा उदयसिंह के दाह-संस्कार स्थल से कोई आधा माईल दूर 'राणा' गाव पठारी भाग मे बसा हुआ है। इस गांव के दक्षिण में एक माईल दूर धोलिया पहाड की तलहटी मे कुछ खण्डहर है जिन्हे राणा महल एवं राणी कोट कहा जाता है। इन खण्डहरो के उत्तर में माल' नामक विशाल मैदान है जहां अब घास ऊगती है। धोलिया का जंगल बहुत घना है, जगली जानवरो का यहा बाहुल्य है।

गोगून्दा और 'राणा' गाव के लोगो के अनुसार यहा के महलों मे महाराणा प्रताप और उनका परिवार रहता था। लोगो ने बताया कि ये राणा महल व राणी कोट वही स्थान है जहा प्रताप को घास की रोटी भी नहीं मिली थी तथा उनके किसी पुत्र के हाथ से बनबिलाव घास की रोटी छीन कर भाग गया था। राणा गांव का नाम राणा कीका (प्रताप) के निवास करने से ही पडा माना जाता है। राणा महल मे राणा और राणी कोट मे रानियां और सामन्तों की स्त्रियां रहते थे। राणा गांव के दक्षिण में 'उमर' फल के पेड़ हैं। यहां एक बड़ा पुराना पेड़ है जिसके लिये प्रसिद्ध है कि सकटकाल मे उसके नीचे प्रताप बैठ कर उमरे खाकर दिन निकालते थे।

मचीन :—

हल्दीघाटी से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग १३ माईल दूर, गोगून्दा से उत्तर की ओर लगभग १२ माईल दूर तथा कुम्भलगढ से लगभग १५ माईल पूर्व की ओर कटार स्थान के निकट यह एक गांव है। इस गाव से दो फर्लाङ्ग दूर एक बडी पहाडी है जो पास के अन्य पहाडियो से जुडी हुई है। इस पहाडी पर कुछ खण्डहर और एक बडी गुफा है। गुफा के पास ही अन्न आश्रम भी है, पास मे पानी का कुण्ड है। यहा के खण्डहरो को मचीन गॉव के लोग महाराणा प्रताप के महल बतलाते हैं। इन खण्डहरों से व पहाडी की चोटी से कुम्भलगढ़, गोगुन्दा, हल्दीघाटी आदि का लगभग १०–१५ माईल दूर तक का क्षेत्र नजर आता है। मचीन गांव के लोगो ने बताया कि यहां के महलो में रहते हुए अमरसिंह के पुत्र हुआ था जिसका 'जरमा' यहीं एक चट्टान पर पूजा गया था। इस चट्टान पर कुछ लाल-पिले दाग नजर आते हैं। जिनको यहा के लोग उसी काल के बताते हैं। गुफा के अन्दर अंधेरा व दुर्गन्ध बहुत है।

बताया जाता हैं कि इस गुफा में घुसने के बाद ४-५ माईल दूर पश्चिम की ओर निकला जाता है। लोगों ने बताया कि जब कभी भी बादशाह की फौज इधर आती तो प्रताप व उनके साथ के लोग ऊपर के महलों से आकर इस गुफा में घुस जाते और गुफा को पार कर आगे निकल जाते। इस गुफा के लिये यह भी कहा जाता हैं कि यहां नाथ सम्प्रदाय के मत्स्येन्द्रनाथ ने आकर घोर तपस्या की थी। मचीन गांव का नाम मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से पड़ा माना जाता है।

रोहिड़ा :— जरगा पहाड़ से दक्षिण-पूर्व में लगभग ७ माईल दूर यह गांव बसा हुआ है। यह स्थान मचीन से ४ माईल दूर, गोगून्दा ८ माईल दक्षिण-पूर्व में तथा कुंभलगढ़ १० माईल उत्तर-पश्चिम में है। यह गांव भी पहाड की तलहटी से बसा हुआ है। पहाड़ी पर जो खण्डहर हैं यहां के लोगों के अनुसार वे महाराणा प्रताप के महल है। यहां प्रताप और उनके साथी कष्ट के समय आकर रहे थे। गांव के पास ही पानी का एक छोटा सा नाला है।

उबेश्वर :-गोगून्दा से २० माईल दक्षिण-पूर्व मे उदयपुर से १६ माईल पश्चिम मे तथा कमलनाथ से २० माईल उत्तर-पूर्व में एक ऊंची पहाडी पर स्थित एक छोटा तीर्थ स्थान है। यहां का जगल भयानक व डरावना है। उदयपुर से इस स्थान पर पहुँचने के लिये सज्जनगढ के पास से एक सडक धार नामक गांव तक जाती है। धार से आगे तीन मील की विकट चढ़ाई है। चढ़ाई पार कर लेने के बाद शिवजी का एक मन्दिर आता है, पास ही पानी का कुन्ड भी है। इस मन्दिर से ढलान की ओर खण्डहर है। इन खण्डहरों के लिये भी कहा जाता है कि महाराणा प्रताप के महल है। प्रताप सकट के समय यहां आकर रहे थे। खण्डहरो की हालत मचीन, रोहिड़ा व घोलिया के खण्डहरो के समान है।

कमलनाथ-आवरगढ़:- प्रताप के जीवन से सम्बन्धित यह एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह उदयपुर से सड़क के रास्ते से ४३ माईल पश्चिम में अरावली के सघन पहाड़ो में उच्च शिखर पर स्थित हैं। यहाँ से गोगून्दा उत्तर की ओर ४० माईल दूर सड़क के रास्ते से व ३२ माईल दूर पहाडी रास्ते से हैं, यहाँ से चावण्ड लगभग ४२-४३ माईल दूर दक्षिण-पूर्व मे पहाड़ी रास्ते से हैं। गुजरात की सीमा १५-२० माईल पश्चिम में है।

कमलनाथ की तलहटी में देभाणा गांव हैं। पहाड़ पर चढ़ने के लिए वहां से देवटा का घाटा पार करना पड़ता हैं। लगभग आधा माईल चढने के बाद कुंभजर नामक पौराणिक स्थान आता है। यहीं आवरगढ का प्रथम दरवाजा था ऐसा मघवास गांव के लोगों ने बताया। यहां से आगे बढने पर रावण-टुंक-वानर टुक नामक दो पहाडियां एक दूसरे की ओर झुकी हुई नजर आती है यहां आवरगढ़ का दूसरा दरवाजा था ऐसी मान्यता है। यहा से आधा मील और चढ़ाई चढ़ने के बाद कमलनाथ महादेव का मुख्य मन्दिर, सराय व वर्ष भर बहने वाला पानी का झरना आता है। यहा से मुख्य

आवरगढ की प्रथम चढाई आरम्भ होती है जो लगभग एक माईल है। चढ़ाई समाप्त होते ही खण्डहर आते है। इन खण्डहरों में चार-पांच कमरे और बाहर बड़ी चौपाल हैं। ये खण्डहर महाराणा प्रताप के महल बताये जाते हैं। पास ही पानी का बडा तालाब है इस तरह के कुल बारह तालाब ऊपर बताये जाते हैं।

प्रथम तालाब से कुछ आगे बढ़ने के बाद मुख्य आवरगढ की दूसरी चढ़ाई आरम्भ होती है। इस चढ़ाई में स्थान स्थान पर अनेक खण्डहर है। ये खण्डहर प्रताप के सैनिको के रहने के स्थान रहे होंगे। लोग इन्हे प्रताप के महलो के नाम से ही पुकारते हैं। जब चढाई समाप्त होने को होती है दो बडे-बडे बड़ के पेड़ आते हैं, दोनों बड़ के पेडों के मध्य ५०-६० गज की दूर है। इन बड़ के पेडो के लिये प्रसिद्ध हैं कि इनके ऊपर प्रताप के बाल-बच्चों के झूलने लगे हुए रहते थे। यहां से और ऊपर चढ़ने के बाद चढ़ाई समाप्त हो जाती है यहां के खण्डहर अधिक महत्वपूर्ण है। एक ऊंचे स्थान पर बडा गोल चबूतरा बना हुआ है। प्रचलित मान्यता के अनुसार चबूतरा महाराणा प्रताप का मुख्य निवास स्थान था। इसकी स्थिति को देखने से लगता है कि यह सभा स्थल रहा होगा। यहां से १५-२० माईल दूर तक के चारो ओर का नीचा भाग और पहाड़ नजर आते है। यहा से पूरा आवरगढ़ उसका परकोटा, नीचे के सारे खण्डहर, तालाब आदि नजर आते हैं। इस गोल चबूतरे के आस-पास मे और भी खण्डहर है जिनके लिये प्रसिद्ध है कि ये प्रताप के घोडो व हाथियों को बांधने के स्थान हैं। यहीं एक बुर्जनुमा खण्डहर हैं जिसे होली बुर्ज कहते हैं। कहा जाता है कि प्रताप के समय यहां होली जलाई जाती थी। अब भी इसी स्थान पर होली कमलनाथ मन्दिर के पुजारी द्वारा जलाई जाती हैं। यहां होली जलने के बाद ही आस-पास के गांवों में होली जलती है।

आवरगढ १२ माईल के घेरे में बसा हुआ है जिसके चारों ओर परकोटा हैं। अधिकांश स्थानों पर परकोटा अब गिर चुका है। आवरगढ़ कभी अच्छी बस्ती रही होगी। यह स्थान अरावली के सर्वाधिक सुरक्षित स्थानों में से हैं। यहां शत्रु का पहुँचना दुर्लभ हैं। पहाडियां इस तरह चारों ओर आ गई है कि शत्रु उन्हीं में बराबर चक्कर काटता रहता है किन्तु आवरगढ़ में प्रवेश नहीं कर पाता। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप अपने घायल सैनिको को लेकर इसी स्थान पर आये थे और यहीं उनका इलाज कराया था। कोल्यारी गांव यहां से दक्षिण मे ३ माईल दूर बसा हुआ है।

सम्पूर्ण पहाड जंगल से भरा हैं। पानी की बहुतायत हैं और आंवला अटेडी, आम, कारया कणजी आदि पेड़ों की यहां बहुतायत हैं।

हरिहर मन्दिर, बदराना:- कमलनाथ-आवरगढ़ से उत्तर-पूर्व मे लगभग १० माईल दूर बदराना गांव के मध्य में हरिहर का मन्दिर हैं। मान्यता है कि इस मन्दिर का निर्माण महाराणा प्रताप ने जब वे कमलनाथ-आवरगढ मे रहते थे कराया। इस मन्दिर का निर्माण वि. सं १६३५

में हुआ (यह निर्माण सम्वत् वर्तमान पुजारी ने गोगून्दा के किसी भाट की वही में लिखा हुआ देखा है)। यह मन्दिर बहुत वडा है तथा महाराणा राजसिंह के समय में इसका पुन: जिर्णोद्वार हुआ है। हरि [विष्णु] और हर महादेव) की यह एक ही मूर्ति काले संगमरमर की और वड़ी कलात्मक है।

जावरमाला:— उदयपुर से ऋषभदेव जाने की सड़क पर उदयपुर के दक्षिण-पूर्व में टीडी नामक गांव हैं। यहां से उत्तर-पूर्व में चार माईल दूर जावर गांव बसा हुआ है जो महाराणा कुंभा के समय बहुत अधिक आवाद था। जावर गाव के दक्षिण में एक छोटी नदी है और नदी के दूसरी ओर पहाड़ पर जावर की छोटी वस्ती बिखरे हुए घरों के रूप में हैं। इस बस्ती से दक्षिण की ओर ऊंची पहाड़िया हैं, इन पहाडियो की ओर एक पगडंडी जाती हैं, इसी पगडडी पर आगे बढ़ने के वाद एक गुफा आती है जिसका मुंह पूर्व की ओर हैं तथा आस पास मे छोटे-मोटे पौधे उगे हुए हैं। इस गुफा के लिये प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रताप इसमे रहे थे।

गुफा के अन्दर जाने के लिये सीढ़ियो नुमा जगह से नीचे उतरना पडता है। सीढ़ियों नुमा यह रास्ता समाप्त होते ही एक चौड़ी जगह हैं जहां १५०-२०० व्यक्ति बैठ सकते हैं। यहां अंधेरा हैं। गुफा की छत व उसके आजू-वाजू में कुछ इस प्रकार के छेद हैं जिनसे हल्की रोशनी व हवा अन्दर आ सकती है। जावरमाला की इन पहाड़ियों मे प्रताप और अकवर की सेना के मध्य कई मुठभेडे हुई थी।[5]

चावण्ड – उदयपुर से ऋषभदेव जाने वाली सड़क पर ही टीडी से आगे परसाद गांव आता है। इस गांव से लगभग ६ माईल दूर पूर्व की सघन अरावली पहाडियों के पठारी भाग में चावण्ड गांव बसा हुआ हैं। चावण्ड और जावरमाला की दूरी लगभग ८-६ माईल है और एक ही अरावली पर्वत शृंखला से जुड़े हुए हैं। कमलनाथ यहां से ४२-४३ माईल दूर उत्तर-पश्चिम की पहाडियो मे है।

चावण्ड जिस पहाडी इलाके में बसा हुआ है वह 'छप्पन' का इलाका कहलाता है। पहले यह छप्पनियें राठौडो का वतन था। छप्पनियें राठौड राठौड सोनिंग के वंशधर थे।[6] इसी वंश परम्परा में प्रताप के समय यहा लूणा चावडिया राज्य करता था जब उसने वहां आतंक फैलाना शुरु किया तो प्रताप ने आक्रमण कर उसे वहां से भगा दिया[7] और चावण्ड को अपना निवास स्थान बना लिया।

---

5. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ३६
6. मुहणोत नैणसी की ख्यात, अनुवादक-राम नारायण दूगड, प्रथम भाग, पृष्ठ ३
7. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ १५८

चावण्ड गांव से लगभग आधा माईल दूर पहाडी पर प्रताप के महल बने हुए है। जो अब खण्डहरों के रूप में उसके साक्षी हैं। यहां के खण्डहरो मे कमरे, चौपाल, घुड़साल, चबूतरे, सामन्तो व सैनिकों के रहने की वस्ती आदि हैं। खण्डहरों को देखने से पता चलता है कि इनमें से सब या अधिकांश मकान कच्चे रहे होगे। महलों की अब केवल दिवालें ही बची हुई हैं जो पाच-छ फीट से अधिक ऊंची नहीं है। इन खण्डहरो के निचले भाग मे चामुण्डामाता का मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर महाराणा प्रताप ने ही बनवाया था। इसको देखने से लगता है कि इसकी बाद में समय-समय पर मरम्मत हुई है।

प्रताप का दाह-सस्कार स्थल.- महाराणा प्रताप की मृत्यु चावण्ड मे हुई थी।[9] चावण्ड के लोगो ने बताया कि एक बार प्रताप जब जावरमाला के जगलो मे शिकार को गये थे तब वहां धनुष की प्रत्यचा खींचते समय पेट की आंत चढ़ गई थी जो उनकी मृत्यु का कारण बन गई।

चावण्ड गांव से लगभग १॥ माईल दूर बण्डोली गांव है उसके पास जो नाला बहता है, उसी नाले के किनारे प्रताप का दाह-संस्कार किया गया। इस स्थल पर स्मारक स्वरूप एक छतरी बनी हुई है। यह छतरी आठ खभो की व श्वेत पाषाण की बनी हुई थी। किन्तु यह जीर्ण-शीर्ण होने से अब इसकी मरम्मत करवादी गई है।

उपसहार-महाराणा प्रताप के ये कर्मस्थल अरावली पर्वतमाला के ३०० मील के वृत्ताकार घने भाग मे अवस्थित है। इस भाग में दसियों ऐसे छोटे-मोटे खडहर, गुफाए आदि है जिनका सम्बन्ध स्थानीय जनश्रुतियां महाराणा प्रताप से स्थापित करती है।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित इन स्थानों मे से कुछ तो ऐसे हैं जो तीस-चालीस मील पर्वतीय पट्टी से घिरी हुई उपजाऊ समतल घाटियों में स्थित है, उदाहरणार्थ चावड, गोगूंदा, उदयपुर की घाटियां। ये घाटियां भी प्रायः तीस-चालीस मील के वृत्ताकार मे फैली हुई है। इन घाटियो में पानी की बहुतायत है और कृषि-भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। इनमें पहुचने के मार्ग संकडे, दुर्गम और विकट हैं। ऐसे मार्गों की (जिन्हें देशज भाषा में 'नाल' कहते हैं) सैनिक टुकडियों द्वारा नाकेबन्दी की जाती थी।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित अन्य स्थान ऐसे हैं जो घनी पर्वतीय पट्टियों के भीतरी वनीय भागो में हैं, जहां शत्रु द्वारा दुर्गम मार्गों को पार कर घाटियो मे प्रवेश करने के बाद भी पहुचना कठिन होता था। ऐसे स्थान लगभग सभी अरावली के विशाल पर्वतो मे है, जहां पानी का बाहुल्य है और उनमें कृषि योग्य छोटी-छोटी समतल भूमि की पट्टियां आ गई हैं।

विशेष बात यह है कि स्थल-स्थल पर पाये जाने वाले इन खंडहरो मे सर्वत्र शिव अथवा शक्ति से सम्बन्धित ध्वस्त अन्य मदिर मिलते हैं, जिनमें से अधिकाश परित्यक्त है, किन्तु ऐसे कई धार्मिक खडहरों पर पुनर्निर्माण कार्य भी किया गया है।

---

8. वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ, १५६

9 वही पृष्ठ, १६४

प्रताप के वीरत्व, साहस, तप, त्याग और बलिदान से युक्त कार्य भारतीय इतिहास के ज्वलंत अध्याय है। स्वतत्रता तथा संस्कृति की सुरक्षा के लिये किये गये महाराणा प्रताप के कार्यों से भारतीय सदैव प्रेरणा ग्रहण करते रहेंगे।

—महाराणा भगवतसिंह, उदयपुर

अवसरवाद से कभी समझौता न करना प्रताप के जीवन और उसकी भूमि का आदर्श रहा है। स्वतन्त्र भारत मे भी हमे इस आदर्श का अनुसरण करना है।

प्रताप के साथ ही जिन भीलों ने अपना सर्वस्व होम कर दिया और जिनके प्रताप से प्रताप बना, हमारे इतिहास ने उन्हे ही भुला दिया है। अब हमें मान और भविष्य के इतिहास का निर्माण करते वक्त इस भूल को नही दुहराना है, और उन्हें भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो, इसके लिये अपना कर्तव्य पूरा करना है।

—माणिक्यलाल वर्मा

महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य

महाराणा प्रताप के जीवन को आधार बनाकर भारतीय व विदेशी भाषाओं में काव्य, नाटक, उपन्यास जीवन-चरित्र, आदि विविध रूपात्मक साहित्य का सर्जन हुआ है। यहा उपलब्ध कृतियो की सूची लेखक के नाम सहित दी जा रही है।

इन कृतियो मे हिन्दी-राजस्थानी भाषा की कृतियों की सूची श्री अगरचन्द नाहटा, मराठी भाषा की प्रो मु. श्री. क नडे, गुजराती भाषा की डॉ. भ्रमरलाल जोशी, बगाली भाषा की प्रो. सुखमय मुखोपाध्याय, उडिया भाषा की प्रो. गोपालचन्द्र मिश्रा, कन्नड भाषा की श्री नगेश हत्वार और तेलुगु भाषा की प्रो. के. वी आर. नरसिंहम् से साभार प्राप्त हुई है।

—सम्पादक

हिन्दी

काव्य

	नाम कृति	लेखक	प्रकाशक
१.	प्रताप	ठा. रणवीरसिंह शक्तावत	सामन्त साहित्य सदन, ठि. पीपलाज, केकडी (राज०)
२	हल्दीघाटी	श्यामनारायण पाण्डेय	इण्डिया प्रेस, इलाहाबाद
३.	महाराणा का महत्त्व	जयशकरप्रसाद	भारती भण्डार, इलाहाबाद
४.	प्रणवीर प्रताप	गोकुलचन्द्र शर्मा	भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स, चन्दौसी
५.	भारत सूर्य	दिनेश मिश्र	साहित्य मण्डल, गोदिया

नाटक

	नाम कृति	लेखक	प्रकाशक
६	प्रताप प्रतिज्ञा	जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द	हिन्दी भवन, इलाहाबाद
७.	महाराणा प्रतापसिंह	राधाकृष्णदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
८.	महाराणा प्रताप	नरोत्तम व्यास	हरिदास वैद्य, कलकत्ता

जीवन-चरित्र

	नाम कृति	लेखक	प्रकाशक
९.	महाराणा प्रताप	प्रो. लक्ष्मीचन्द्र, एम. ए	भारतीय भवन, लाहौर
१०.	महाराणा प्रताप	श्रीराम शर्मा, एम. ए	मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर

११. प्रताप चरित्र	बाबूराम नारायण	—
उपन्यास		
१२. महाराणा प्रताप	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	व पोपुलर ट्रेडिंग कं० कलकत्ता
विविध		
१३. वीर प्रताप	लाला भगवानदीन	ग्रन्थगार, काशी
१४. वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप	गौ. ही. ओझा	अजमेर
१५. हल्दीघाटी की लड़ाई	हरिदास माणिक	माणिक का. काशी
१६. हल्दीघाटी की एक रात	शिशुपालसिंह	मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, हैदराबाद
१७ महाराणा प्रताप	राजेन्द्र शंकर भट्ट	जयपुर
१८. महाराणा प्रतापसिंह	मुंशी देवीप्रसाद	जैन प्रेस, लखनऊ
१९. राणा प्रतापसिंह	चन्द्रशेखर पाठक	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
२० महाराणा प्रतापसिंह	नन्दकुमार देव शर्मा	श्री० प्रेस, लखनऊ
२१. प्रणवीर प्रताप	विनोद	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
२२. प्रतापसिंह	सतीशचन्द्र मित्र	—
२३. प्रतापी प्रताप	हरिशंकर शर्मा	गौतम ब्रदर्स कानपुर
२४. महाराणा प्रताप	कामता प्रसाद	सा. साधना प्रकाशन, पटना
२५. महाराणा प्रताप	गुप्त राकेश	देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली
२६. महाराणा प्रताप	न्यादरसिंह	देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली
२७ महाराणा प्रताप	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
२८. मानव प्रताप	देवराज 'दिनेश'	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
२९ महाराणा प्रताप	विश्वनाथ	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
३०. हल्दीघाटी	मनहर चौहान	–

डिंगल पिंगल (राजस्थानी)

काव्य		
३१. प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप	डॉ देवीलाल पालीवाल	अरुणिमा प्रकाशन, उदयपुर
३२. प्रताप चरित्र	केसरीसिंह बारहठ, सोन्याणा	ओसवाल प्रेस, कलकत्ता
३३. प्रताप यश चन्द्रोदय	कविराव मोहनसिंह	भट्टयानी चौहटा, उदयपुर

५५. हल्दीघाट चे युद्ध	स. दि वझे
बालोपयोगी	
५६. वीर प्रताप	श्री मो श्रोटी

गुजराती

काव्य

५७. पुरोहित नी राजभक्ति	अदेशर फरामजी खबरदार
५८ हल्दाघाटी नु युद्ध	अदेशर फरामजी खबरदार

नाटक

५९. प्रताप नाटक	गणपतराम राजाराम भट्ट
६०. प्रतापसिंह	मणिभाई मूलाभाई पटेल
६१. महाराणा प्रताप	दौलतराम कृपाराम
६२. मेवाड ना सिंह अने बीजी वार्तो	जयंतीलाल मेहता
६३, अश्रुमती	डाह्याभाई घोलशाजी झवेरी
६४ राणो प्रताप	झवेरचन्द मेघाणी

उपन्यास

६५ शौर्य तर्पण	रमणलाल वसन्तलाल देसाई
६६. मेवाड़ नी संध्या	वसन्तभाई
६७. हल्दी घाटी नुं युद्ध	ना वि ठक्कर
६८- प्रतापी प्रताप	छगनलाल अमथाराम
६९. मेवाड केसरी	गोपालजी वीरमजी
७०. उदयपुर ना वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप	डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता

बंगाली

नाटक

७१. राणा प्रताप	गिरीशचन्द्र घोष
७२. प्रतापसिंह	द्विजेन्द्रलाल राय
७३. अश्रुमती	ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर

उपन्यास

७४. प्रतापसिंह	दामोदर मुखर्जी

अन्य

७५. नवभारत हल्दीघाटी	जतीन मुखर्जी
७६ मान्तरेर साधना-राणा प्रताप	हरन चन्द्र रक्षित

उड़िया

७७ राणा प्रतापसिंह (जीवन चरित्र)	गोडवरीश महापना
७८. राणा प्रताप	दयानिधि मिश्रा

कन्नड

७९. अमर प्रताप	जी मल्लइय्या, एम. ए
८०. आर्यकीर्ति (चरित्र)	वासुदेवय्या
८१. राणा प्रतापसिंह	प. लि. वे गलगनाथ
८२ राणा (नाटक)	सा. शि मल्ल या

तेलुगु

८३. राणा प्रतापसिंह (नाटक)	वेंदुला सत्यनारायणम
८४. राणा प्रतापसिंह (नाटक)	आई. यज्ञनारायणम
८५ राणा प्रतापसिंह चरित्रम् (काव्य)	वेंकटसेशा शास्त्री

संस्कृत

८६. प्रतापविजयम् (नाटक)	मूलशंकर माणिक्यलाल

ENGLISH

87. Rana Pratap (Drama)	E L. Turnbull
88. Delhi and Huldighati (Drama)	N. G Mukherjee
89. Pratap the Great (Poems)	H S. Mordia
90. Maharana Pratap	SriRam Sharma
91. Rana Pratap. The lion of Rajasthan	G. V. Subba Rao

O

Where the mind is without fear
And the head is held high,
Where knowledge is free;
Where the world has not broken up
Into fragments by narrow domestic walls,
Where words come out from the depth of truth,
Where tireless striving stretches into arms
Towards perfection;
Where the clear stream of reason
Has not lost its way
Into the dreary desert sand of dead habit;
Where the mind is led forward by thee
Into ever widening thought and action,
Into that heaven of freedom my Father,
Let my country awake.

—*Rabindranath Tagore*
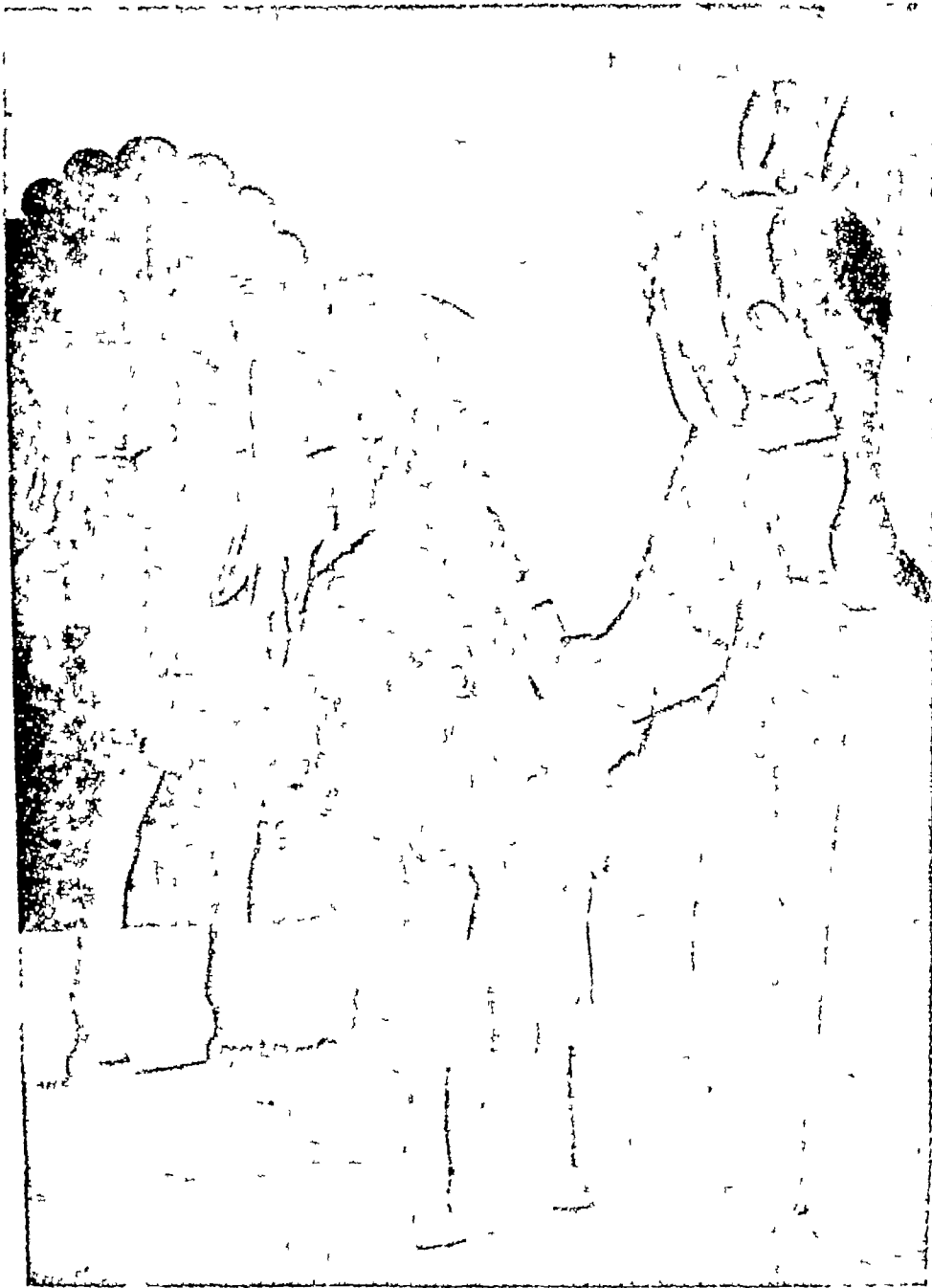
महाराणा प्रताप के प्रिय चेटक के लवाजमे से सुसज्जित अश्व
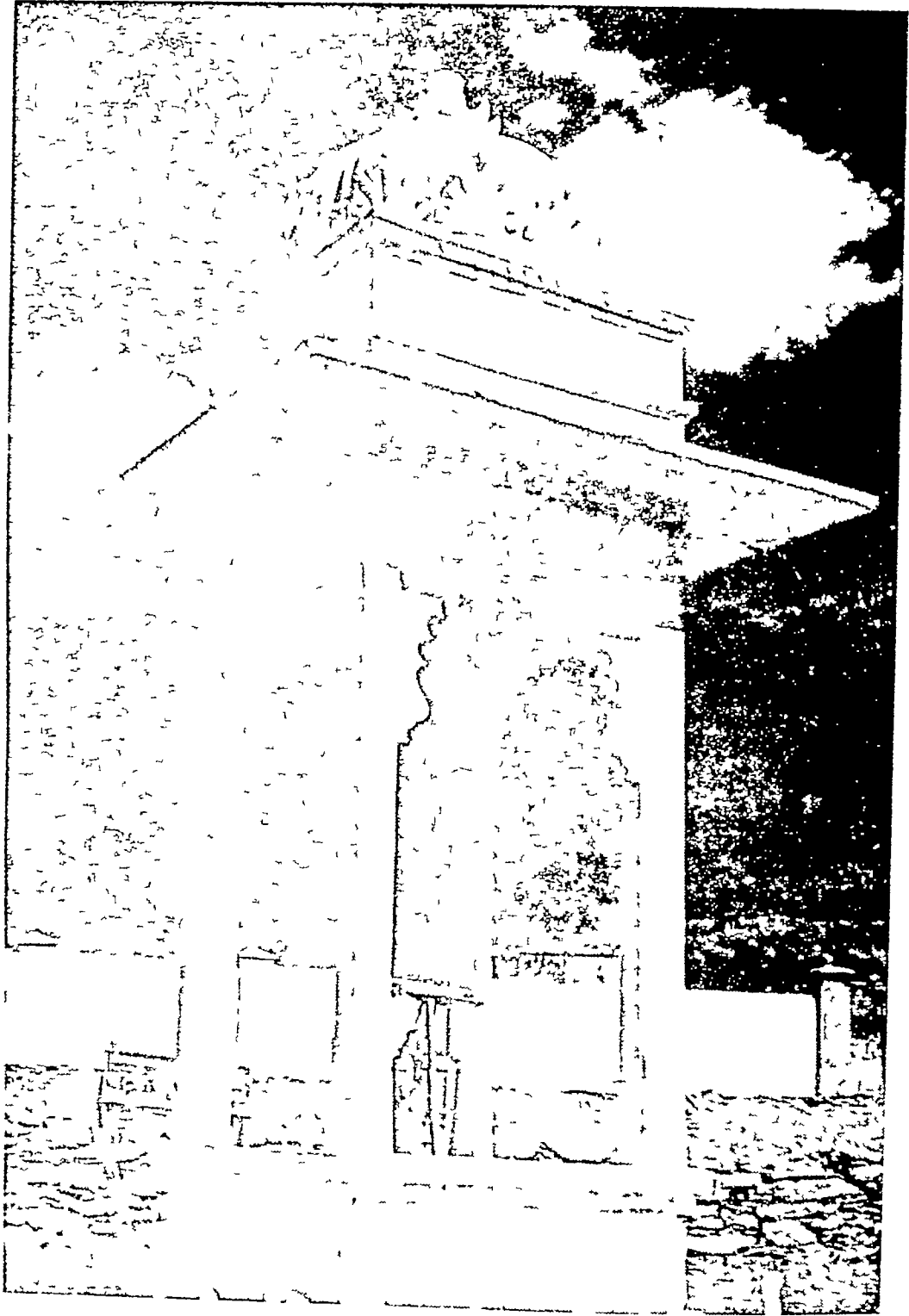
चेटक का चबूतरा, हल्दीघाटी
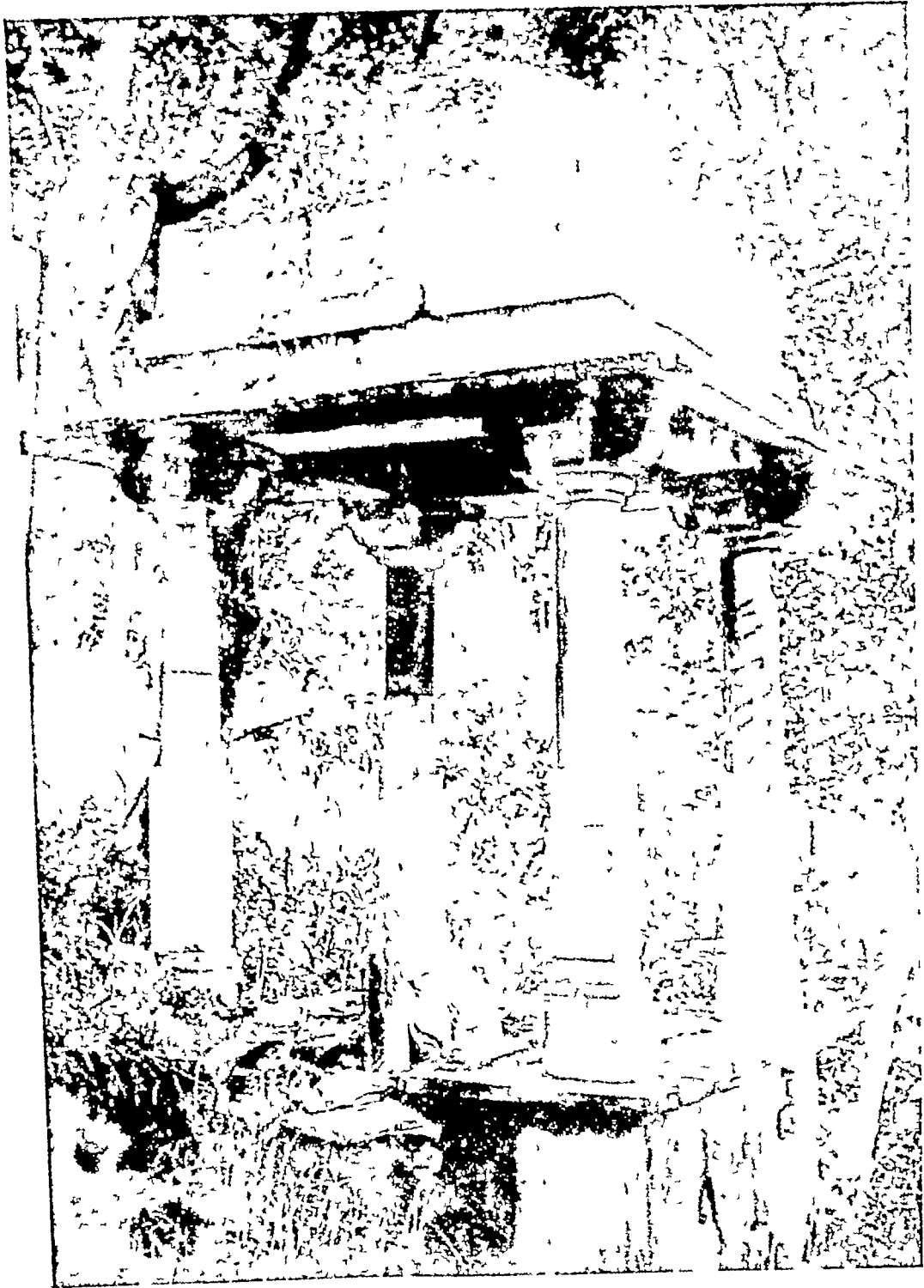
बीदा झाला की छतरी

हल्दीघाटी का युद्धक्षेत्र जो वर्तमान मे रक्त तलाई क्षेत्र के नाम मे प्रसिद्ध है
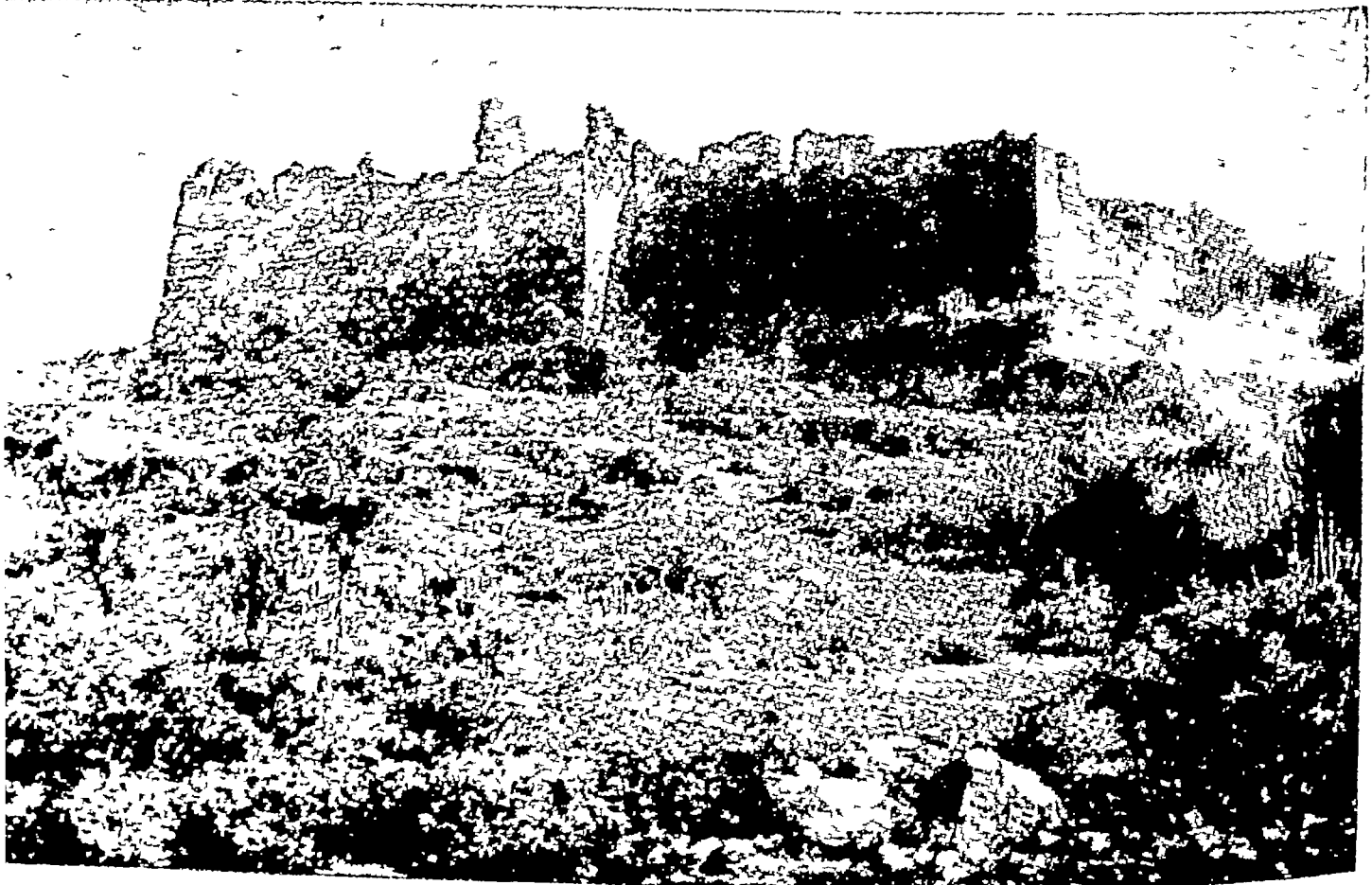
चावण्ड स्थित प्रताप के महल जो अब खण्डहरावस्था मे है
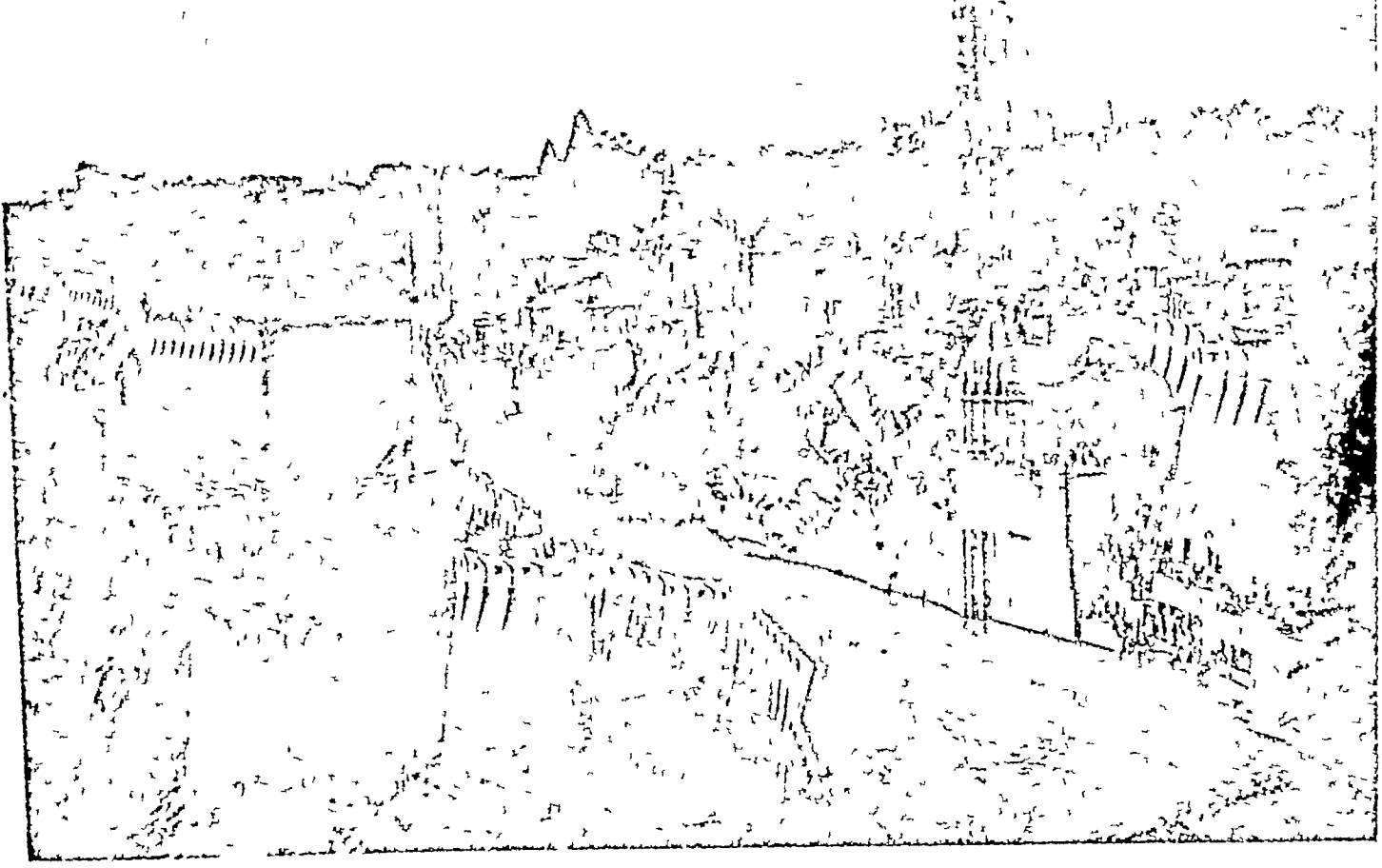
वीर भूमि चित्तौडगढ · किले का एक विहगम दृश्य
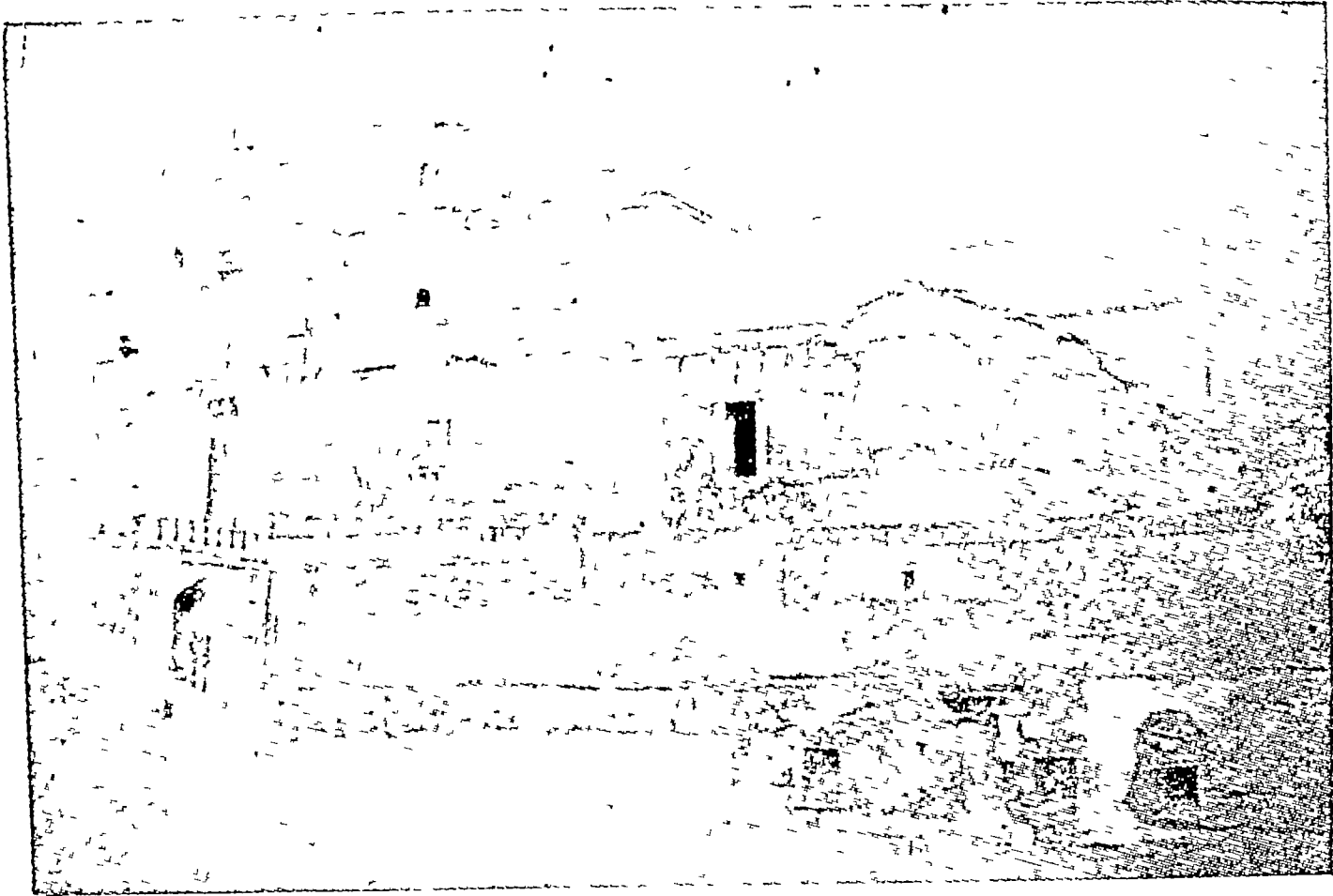
गोगून्दा स्थित महाराणा उदयसिह व प्रताप के महल (वर्तमान
मे गोगून्दा राज राणा का निवास स्थान है)

जावर के पहाड़ो मे स्थित गुफा, प्रताप के परिवार का आश्रय स्थल
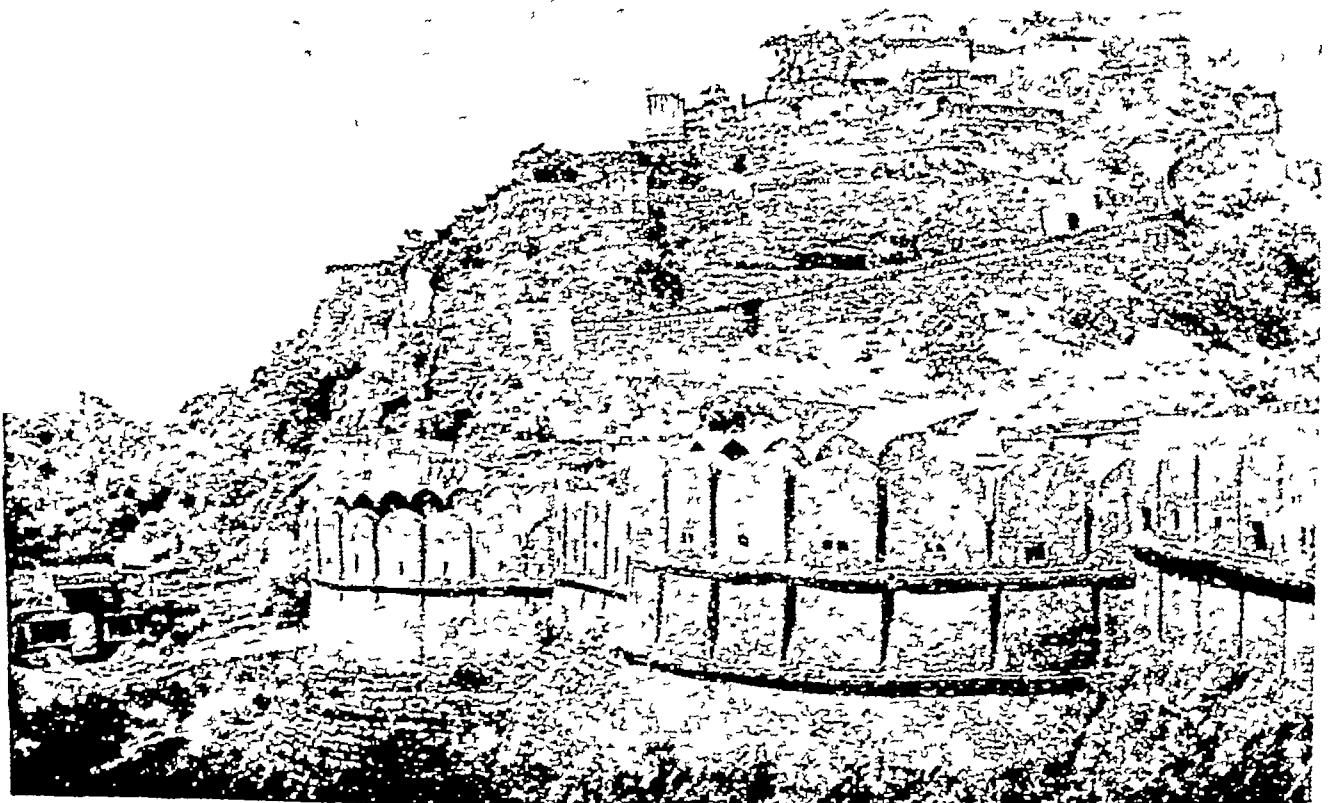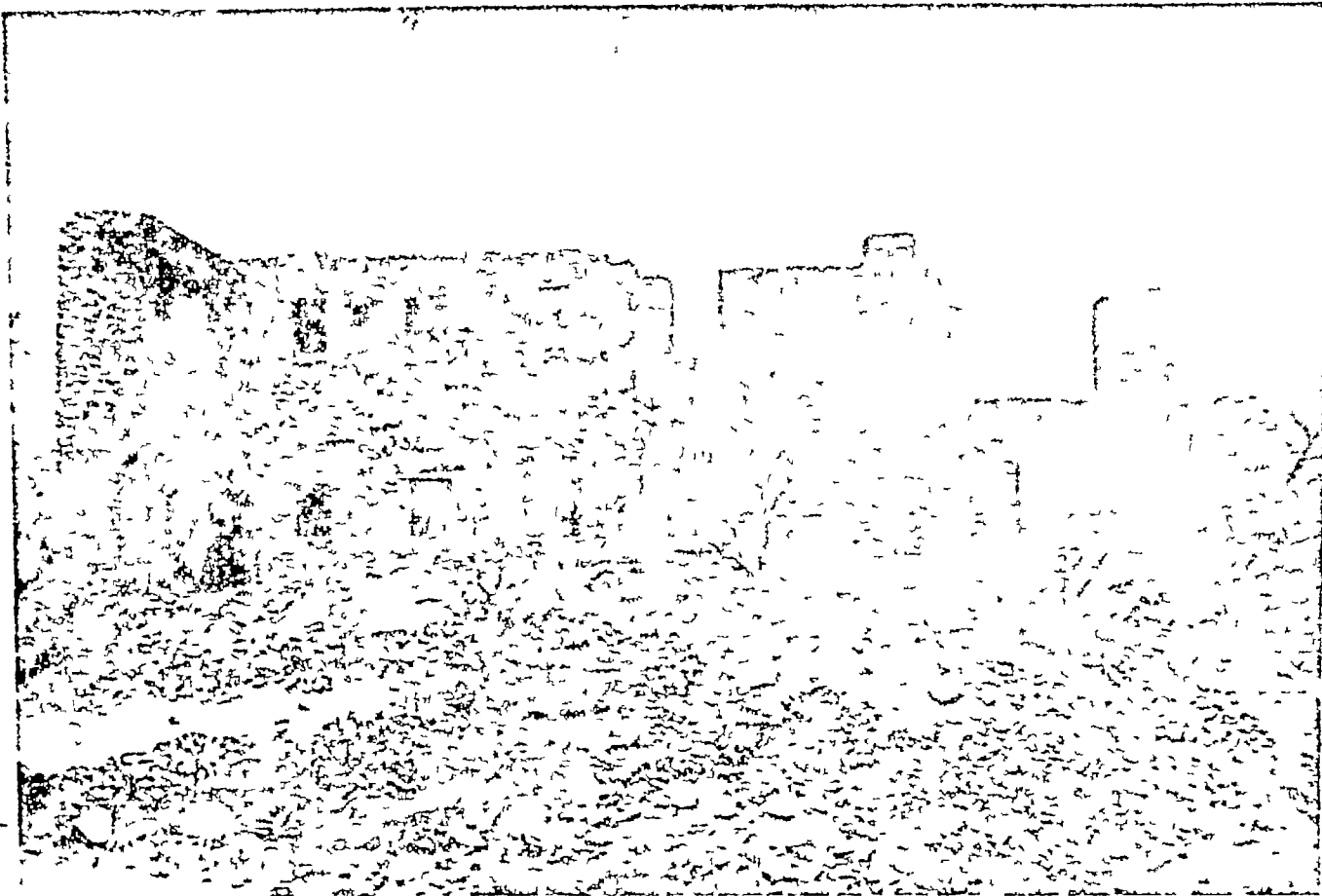
उदयपुर स्थित मोतीमगरी पर महाराणा प्रताप के महल जो अब खण्डहरावस्था मे है
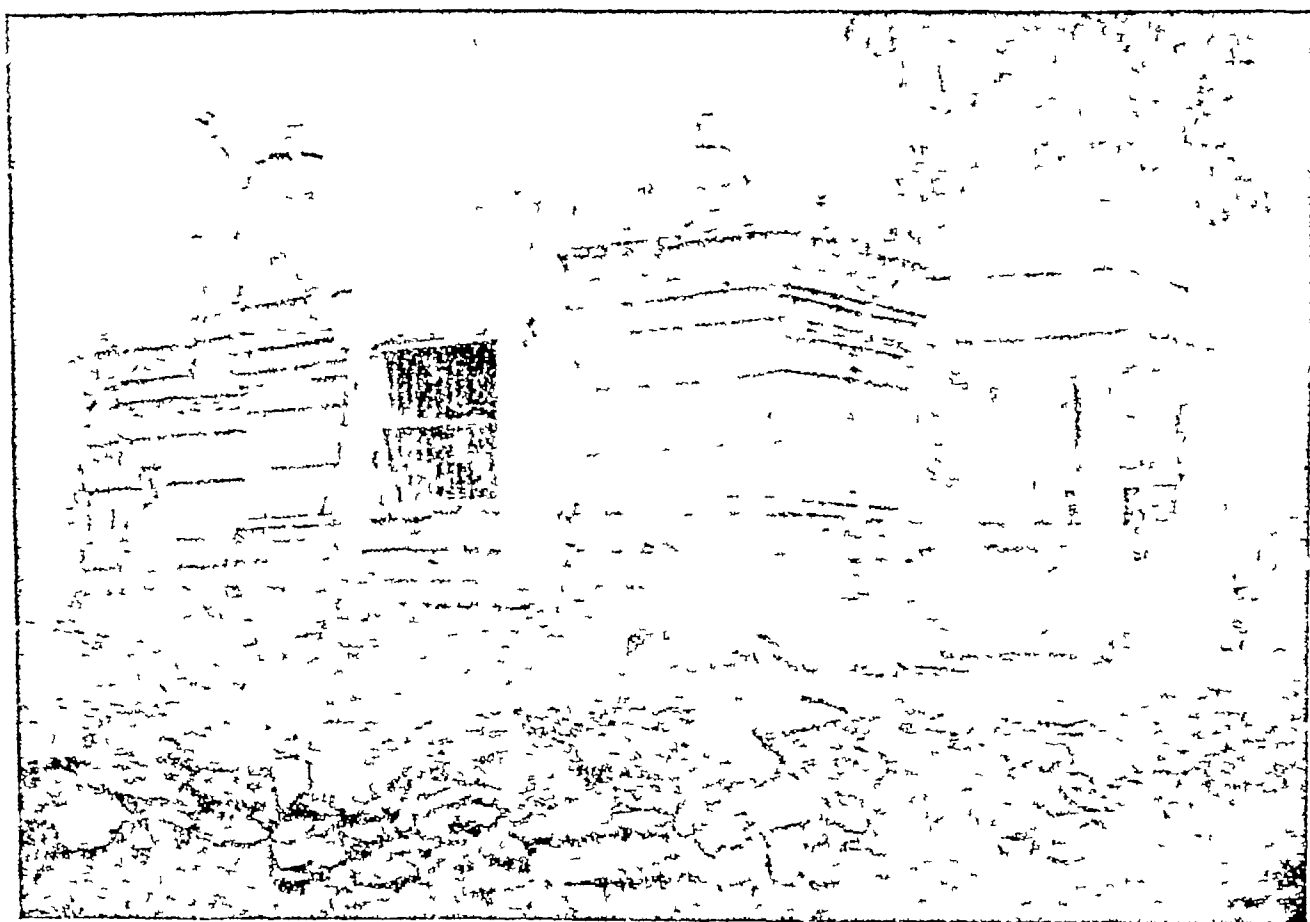
चावण्ड मे प्रतापकालीन चामुण्डा माता का मन्दिर
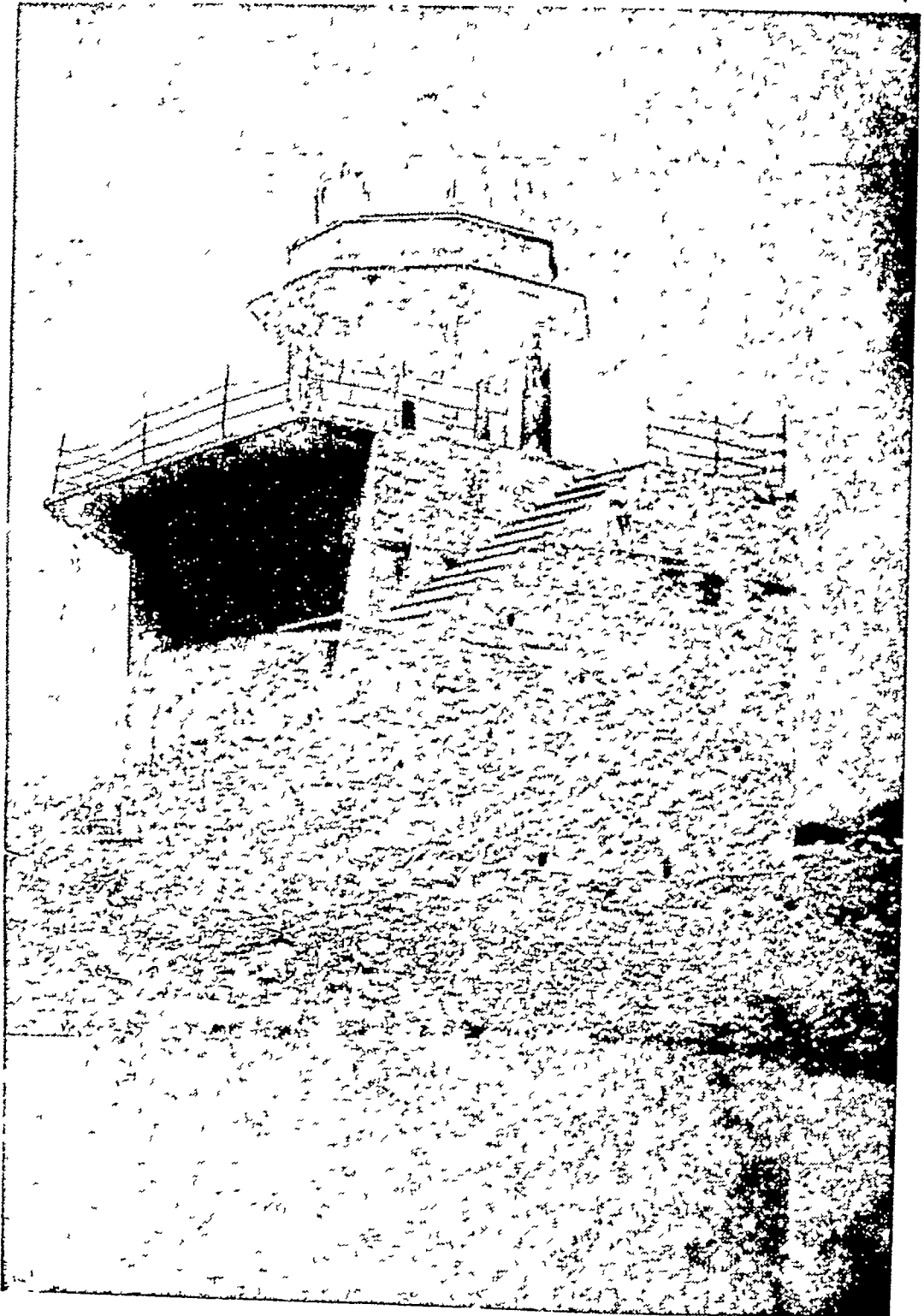
चावण्ड स्थित महाराणा प्रताप का दाह संस्कार स्थल

हल्दीघाटी युद्ध के समय अपने प्रिय साथी चेतक की मृत्यु पर महाराणा प्रताप का अरण्य रुदन
और अपने अनुज शक्तिसिंह का पुनर्मिलन

- संस्कृत काव्य
- डिंगल व पिंगल काव्य
- फुटकर काव्य
- ख्यात, बात, वंशावली
- पट्टे, परवाने व शिलालेख

मौलिक स्रोत

द्वितीय — खण्ड

संस्कृत काव्य

पं० जीवंधर

अमरसार

परिचय

पं० जीवंधर की एक रचना उपलब्ध हुई है—अमरसारः। इसके रचना—संवत् (सं० १६८५) के आधार पर इनका जीवन–काल महाराणा जगतसिंह, प्रथम, का शासन–समय (वि० सं० १६८४–१७०९) ठहरता है।

जीवंधर की यह कृति उन्हें उच्चकोटि का कवि सिद्ध करती है। उक्तिवैचित्र्य, छदो की सुयोजना एवं भाषा की प्राञ्जलता उनकी इस रचना की विशेषताएँ हैं।

अमरसारः संस्कृत भाषा का एक प्रौढ़ काव्य है। इसमें महाराणा प्रताप के आंशिक वर्णन के बाद महाराणा अमरसिंह, प्रथम (वि० स० १६५३–१६७६) की जीवन–चर्या के बारे मे सविस्तार जानकारी दी गई है। अन्त मे महाराणा कर्णसिंह (वि० स० १६७६–१६८४) और जगतसिंह, प्रथम (वि० सं० १६८४–१७०९) का सक्षिप्त उल्लेख हुआ है। डूंगरसिंह महाराणा अमरसिंह (प्रथम) का अमात्य था, जो नीति–निपुण, विद्वान, उदार एवं विद्वानों का आदर करने वाला व्यक्ति था। अमरसार में इसके सबध में भी यत्र तत्र अच्छी सामग्री का समावेश हुआ है।

यहाँ प्रताप सम्बन्धी अंश प्रस्तुत किया जा रहा है।

भ्रमरसार

तस्मिन्ननेकवरराजमहाधिराज-
पट्टावलावनुपमानगुणैकभूमौ।
ये निर्जितारिनिचयोदयसिंहराणः
जातो हसन्सुरपमात्मविभूति शक्त्या ॥५५॥

नित्य- नतामरनरोरगनायकेन
यः शंभुनावनिरमारमणकृतोसौ ।
सौंदर्यधैर्य्यपरमार्य्यगुणौघभूमिः
स्वज्ञानकौशलमिह प्रकटं विधातुं ॥५६॥

तत्पट्टसिंधुविधुरुज्ज्वलकीर्तिराय्यं
दासीकृताखिलमदोद्धतवैरिभूपः ।
सद्युक्तिरुत्तममतिर्वरविक्रमाढ्यो
जातः प्रतापवरसिंहसुनामराणः ॥५७॥

यत्प्रतापवरदीपशिखायां
म्लेच्छभूपतिपतगगणोयं ।
सर्व्वदिक्ज्वलदधूमरमाया
नाग्निरो न भणितुं भुवि शक्यः ॥५८॥

दीपाद्दीप इव द्रुमा [द्]द्रुम इव प्रायोनुरुपो महान्
शूरोदारगभीरधीरसुगुणैरापूर्णगात्र शुचि ।
देवैः स्वेश इति नृपैरधिप इत्युद्यत्फणीद्रोरगैः
दृष्ट्वा श्रीपत एव भूमिवलये जातः प्रतापांगजः ॥५९॥

इति वंशवर्णन संपूर्णम् समाप्तम् । अथ प्रतापवर्णनं लिख्यते ॥

हस्त्यश्वमत्स्येंदुसुशखचक्र-
प्रवालमुक्तामणिमुख्यचिह्नै. ।
स्वेशत्वमालोक्य तनौर्यदीये
ऐश्वर्यमुख्यैः श्रियते गुणौघैः ॥६०॥

विशालमुद्यद्वरभालमस्य
प्रतापलक्ष्म्यैकनिवासभूमि ।
निरीक्ष्य मिथ्याभिमतोद्धतत्व
त्यजति चान्ये भुवि पार्थिवौघाः ॥६१॥

कारुण्य पूर्णेक्षणसन्निपाते
समागतो य. सुजनस्समंतात् ।
सदु खतापैरखिलैर्व्विमुक्तो
ग्रीष्मस्थलान्मत्स्य इवाब्धिनीरे ॥६२॥

वचांसि यस्यामृततोधिकानि
निपीय कर्णाजलिभिर्मनुष्याः ।
न दुर्जनव्याधिजवेदनौघैः
दु खंति भूमौ च कदापि काले ॥६३॥

सारांश

शत्रुओं पर विजय पाने वाला महाराणा उदयसिंह प्रताप का पिता था। उसके वैभव के आगे इन्द्र का वैभव भी तुच्छ था।

महाराणा प्रताप बुद्धि मे श्रेष्ठ, पराक्रमी और सधीर था। वह अपने वंश-सिंधु का चन्द्रमा था। उसकी कीर्ति उज्ज्वल थी। मदोद्धत सभी शत्रु-राजाओं को उसने अपने अधीन कर लिया था।

प्रताप एक उज्ज्वल दीप है। उसकी लौ में जो म्लेच्छ-भूपति रूप पतंग जल मरे हैं, उनकी गिनती कौन कर सकता है?

उस प्रताप के पुत्र हुआ अमरसिंह। वह अपने पिता की तरह उदार, पराक्रमी, दयावान् और धैर्यशाली था। उसकी वाणी अमृत तुल्य थी, जिसे पीकर प्रजा-जन दुर्जन लोगों से उत्पन्न व्याधियों से सदा के लिए बचे रहते थे।

सस्कृत काव्य

पं० सदाशिव

राज रत्नाकर

परिचय

पं० सदाशिव महाराणा राजसिंह, प्रथम, (शासन काल सं० १७०६–३७), के समकालीन संस्कृत कवि थे। ये नागर जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम कृष्णजित् था। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इनका पूर्व-वंश-क्रम इस प्रकार मिलता है:—

विद्याधर
|
गोपाल
|
मंडन
|
कृष्णजित्

उक्त चारो व्यक्ति संस्कृत के विभिन्न विषयो के अच्छे विद्वान् थे। अपनी वंश-परंपरा के अनुरूप सदाशिव नागर ने भी संस्कृत का अच्छा पांडित्य अर्जित किया। इन्होने वाराणसी मे रह कर व्याकरण, गणित, छंद शास्त्र आदि विषय पढे थे। इनके गुरु भानुजित् थे।

पं० सदाशिव संस्कृत भाषा के श्रेष्ठ कवि थे। इनका लिखा एक ग्रन्थ मिला है—राजरत्नाकर। यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से तो श्रेष्ठ है साथ ही मेवाड के इतिहास की दृष्टि से भी इसका अत्यधिक महत्व है। इसमे मेवाड के आदिकाल से लेकर महाराणा राजसिंह, प्रथम (वि० सं० १७०६–३७) तक का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त मिलता है।

यहा प्रताप सम्बन्धी अंश प्रस्तुत किया जा रहा है।

राज रत्नाकर महाकाव्यम्

तत्पुत्र पृथिवीपतिः पृथुयशा पुण्य पवित्राशयो
लोकालोकमहीधरातरमहीव्याप्तप्रतापातप ।
सध्यङ् सत्कविना बुधेन विलसत्पद्माकहस्ताबुज
श्रीपूपेव विराजमानमुकुटो राणा प्रतापोऽभवत् ॥२२॥

इति श्रीराजरत्नाकरे महाकाव्ये मदाशिवकृतौ महाराणाचरित्रे षष्ठ सर्ग ॥६॥

य चान्नसत्रमकरोन्निजभुक्तिकाले
सायं प्रभातसमये च नृप प्रतापः ।
आचद्रतारक मिलातप यस्तदाद्या—
स्तं निर्वहंति किल राणकुलावतसा ॥१॥

निर्जित्य बाहुबलतः किल पौरुहूता
कुंभोद्भवाश्रितदिश तरसा जिगीषु ।
श्री भारमल्लसुतजो नृपमानसिह—
स्तस्यालये महति मार्गवशादुपेत ॥२॥

आमन्त्रित स समयान्नरदेवगेहे
भोक्तु नृपः सपृतन किल मानसिंहः ।
श्रीचित्रकूटपतिना सह भोक्तुकामो
मार्गं व्यलोकत च तस्य सुधर्ममूर्त्ते ॥३॥

अत्यादृतोपि न समेति यदा स भोक्तु
श्रीमेदपाटविषयेश्वरवशदीपः ।
कूर्मस्तदा किमिति नेत इति स्वकीया—
नागतुक. स्म परिपृच्छति वृद्धपुंसः ॥४॥

अत्रांतरे श्रवसि कोपि जनोऽस्यराज्ञ
स्वास्ये निधाय वसनाचलमित्यगादीत् ।

सक्षत्रिया महति राजकुले प्रजाता
नो भुंजते यवनसगवता सहैते ॥५॥

इत्थं निशम्य कटुवाचमदीनसत्वो
राजोदतिष्ठदरुणायितनेत्रकोणः ।
स्मश्रू प्रमृज्य करजेन सवाहनीकः
शीघ्रं जगाम च चकत्तनेशगेह ॥६॥

तस्मिन्गते नरपतौ नरदेवमुख्यः
प्रक्षाल्य वेश्म किल विष्णुपदीपयोभिः ।
मृद्गोमयेन परिलिप्य च भाडजात
निष्काश्य तद्विनिदधे च पुनर्नवीनं ॥७॥

तद्गूढचारिपुरुषस्य मुखान्निशम्य
प्रज्वालितोऽग्निरिव कूर्मपतिर्बभूव ।
दिल्लीश्वर प्रणिहिता पृतनामुपेत्य
प्रत्यागमच्च रणकर्मविशेषदक्षः ॥८॥

यां क्षत्रितां हि शुचिकर्मतय[ा]विधत्से
तां दर्शयेह रणभूमिगतोऽस्त्रपातैः ।
एपोऽहमेमि रणमीक्षुरिति प्रलेख
सप्रेष्य वीरवरवेश्मनि सज्ज आसीत् ॥९॥

एतद्विबोध्य नृपलेखनमाप्त गर्व·
कोपादभूदुदयसिंहसुतो हरिश्रीः ।
इत्थ विलेख्य यवनेशचमूपमुख्यं
स्वानाजुहाव च हयेभनरोष्ट्रपालान् ॥१०॥

अतःपुरेषु पुरत· पुरुषीभवतः
श्मश्रुणि पाणिजतलै· कति नोल्लिखति ।
संग्रामकृत्रकरिशोणितशोणतीरे
वीरव्रतं चरति भूमितले स वीर· ॥११॥

म्लेच्छेश्वरो हि पुशरुस्तव भागिनेयो
राठोडकस्य यवनेश्वरषोरमाख्यः ।
इत्थं महायवनसगवतो महीपान्
सत्क्षत्रियाव्यवहृतौ कथमाद्रियते ॥१२॥

तात्कालिकं समधिगम्य ततो मुहूर्त्तं
वादित्रघोषबधिरीकृतदिग्विभागः ।
योद्धुं स कूर्मपतिसैन्यकसन्मुखाध्वा
वेगाद्ययावुदयसिंहसुतो हरिश्रीः ॥१३॥

शयक्त्यायुधाः शतसहस्रकमश्ववारा
ऋक्ष्य [क्ष] त्रयं किल पदातिजनाः किराताः ।
दताबलाश्चशतपचकमाजिधीरा
एतद्बल समभवत्किल राणपक्षे ॥१४॥

नीलाजनाचलनिभैर्यवनैरयोऽश्म—
प्रक्षेपणज्वलनयत्रधरैः प्रचडैः ।
स्थूलाननैरपयगोभिरिवाकितं यत्
कौर्मं हि तव्दलमभूत्त्रिगुण ततोपि ॥१५॥

नीरोपकठमधिगम्य महाद्यमा ये
कूर्मस्य राणनृपतेर्वरराजपुत्राः ।
युद्धश्रम श्रमयितु धृतखाद्यवस्त्रा—
स्ते तेनरे पटकुटीरधिवासयोग्या ॥१६॥

प्रातः पुनर्ध्वनति चाहवतूर्यघोषे
हस्तिध्वजे प्रचलति ध्वजिनीमुखेच ।
गोला निपेतुरयसोज्वलनप्रयुक्ताः
कालास्यसृक्वणिकणा इव कोपमुक्ताः ॥१७॥

मुंचति यावदयसोऽयुतमश्ववारा
गोलानुखवुंधनियोजिततीव्रवेगान् ।
तावत्ततोप्यधिकशौर्यधराः स्वयत्रो
की र्खे (?) [च] चूर्णमपरे बिभराबभूवुः ॥१८॥

प्रक्षेपणीयकमयोगुटिकास्त्रमाशु
क्षिप्त्वा निर्वर्तितहया रुधिराढ्यदेहाः ।
चक्रुः पलायनमलोकितपृष्ठभागाः
खट्वासु मुत्कण [मत्कुण]गणा इव पारसीकाः ॥१६॥

कौचिज्जनौ ज्वलनयत्रकमर्मरध्रे
वन्हि विधाय युधि सन्मुखमाव्रजंतौ ।
तद्गोलकेन युगपत् क्षतभालदेशौ
अश्वा निपेनतुरधोश्रुकणाविवाक्ष्णः ॥२०॥

कालांजनावलनिभा अथ सन्नियुक्ताः
सप्तायुत समिति राणपुरदरेण ।
भिल्ला महाबुदघटारवतीव्रवेगा
भल्लान् ववर्षु ररिसैन्यमहीतलेषु ॥२१॥

केचिद्वनद्रुमगणातरितात्मदेहा
ग्रावोच्चसानुपरिलघनसह्यपादाः ।
आकर्णकृष्टधनुषो नतपूर्वकायाः
शत्रोरधिध्वज निचिक्षिपुराशुगौघान् ॥२२॥

हूणार्वताशमिति सन्मुखवेगभाजा
नासापुटे प्रविविशुर्विशिखाः सपुंखाः ।
व्योमाध्वगेश्वर भया धृततीव्रवेगाः
प्रक्षाश्रया गिरिबिलेष्विव काद्रवेयाः ॥२३॥

बाणैर्हतस्त्रिभिरिभो युधि कुंभभागे
दानासृगा वहनरंजितपूर्वकाय. ।
यच्छृंखलाहतगतिः समुवाह धीरः
शृंगत्रयोल्लसि[त]गैरिकशैललीलां ॥२४॥

दंतावला विगतवाह्यरदा महेभा
हूणोद्भवा हयगणा रवणा नराश्च ।
आकर्णकृष्टसुधनुर्भिरहा किरातैः
के के रणे रणमुखानकृताः शरव्याः ॥२५॥

भग्नेषु तेषु रणतो निजसैनिकेषु
छिन्नायुधेषु पतितेषु रणांगणेषु ।
अश्वायुताष्टकवृतो युधि मानसिंहो
योद्धुं पुनः स्वयमयात्किरिपृष्ट संस्थः ॥२६॥

क्षुण्णं रजो हयपदै रणभूमिजात
सच्चूर्णितं हि रथचक्रपरिभ्रमेण ।
संवर्द्धितो द्विरदकर्णविवृद्धवातै—
र्न्यरोधयत्तपनवाजिविलोचनानि ॥२७॥

ते क्षत्रिया युयुधिरे शरशक्तिपातैः
कौक्षेयकैर्वहुतरैर्यमदंष्ट्रकाभिः ।
अन्योन्यनामवलभर्त्सनजातकोपै—
र्दष्टाधरा विकृतभालभयकराश्च ॥२८॥

श्रीचित्रकूटपतिरप्यविसह्यतेजा
अप्यावृतः परिमिते न पुरःसरेण ।
हर्यक्षवत् स परिहायभटान् समस्ता
नवावतीपरिवृढद्विपसमुखोऽभूत् ॥२९॥

धावद्गजं हयविहेषणलोहगोल—
प्रक्षेपणीज्वलनयन्त्रकघोरघोषं ।
उधु (द्ध)मधूलिवदनीकमहो तदासी—
रसध्यामिलत्प्रलयसिंधुरयोपमानं ॥३०॥

तत्सांपरायिकमभूत्तुमलं कृपाण—
प्रक्षेपणोपलगदाशुगकुंतपातैः ।

उद्यत्पतत्करभवाजिमहेभवीरं
मत्तांतकभ्रमणकूद्दंनमां मिषाढ्यं ।।३१।।

छित्वा शिरासि बहुश प्रतिपक्षभाजां
कौक्षेयकेन चपलाप्रतिमेव राणः ।
छत्र ध्वज च दशभिर्निशितै क्षुरप्रै-
श्चिच्छेद कूर्मनृपते नृपतिः सरोष ।।३२।।

कूर्माधिपोपि दशभिस्तुरग तदीय-
बाणैर्जघान पुरुषार्थकहृप्तचेताः ।
राणेश्वरस्तमपहाय हय द्वितीय—
मुच्चैःश्रवःसमजव [द्रु ?]तमारुरोह ।।३३।।

श्रीचित्रकूटपतिना प्रहितप्रष(स)क्तो
हस्तं निकृत्य बत हस्तिपकस्य तस्य ।
आस्थालय तमरिवारणकुंभदेशे
मज्जंन् गिरिस्थशलभश्रियमाप सद्य ।।३४।।

वामेन यावदहितप्रहितं प्रष(स)क्तं
हस्तेन हस्तिक उच्छ्रितमुद्धरेत् ।
राणेश्वरस्तमिषुभिर्दशभिर्धनुर्ज्या—
माकृषष्यतावदलुनादपर कर सः ।।३५।।

भ्रष्टांकुशं शरविलूनकर निषण (ण्ण)
क्षीण गलद्रुधिरधारमनुष्णिषं च ।
यंतारमस्य करिणो नृपतिर्गजस्य
स्कधान्यपीपतदयोमुखपचकेन ।।३६।।

तस्मान्मतगजनियतरि पातिते स
ज्याका निकृष्य विशिखैं शिखिपिच्छपुंखै ।
कूर्माधिपोप्युदयसिंहसुत सरोष—
माच्छादयद्धन इवाबुकणैरगेंद्रं ।।३७।।

चापं विलूय यवनेशचमूपहस्त—
व्यासक्तकांडमिषुभिस्त्रिभिरुग्रतेजाः ।
राणेश्वरोपि वरमौक्तिकमालशोभी
कोपाज्जघान तदुरः सरपंचकेन ॥३८॥

भ्रष्टायुधे द्विरदपृष्ठनिषण (ण्ण) देहे
कूर्माधिपे बत चिचेनतां (?) प्रयाते ।
स्वाश्व निक्षिप्य करिमूर्द्धनि राणराजः
शक्त्यावधीदुदयसिंहसुतो हरिश्रीः ॥३६॥

शक्त्याहतो घृतिमता तदसह्यपीड—
श्चीत्कारदर्शितरदद्वयमूलदेशः ।
उद्धूतकर्णविवरश्रव उष्णरक्तत—
स्तस्मात्पलायत गजो घृतमानसिंहः ॥४०॥

तस्मिन्पलायितवति द्विरदे नरेंद्रे
भ्रष्टायुधे च पतिते गतचेतनाके ।
सर्वं कुटिस्थमपहाय धनं विहस्ता—
स्त्रस्तांसमस्तनसुभटा रणतः प्रणेशुः ॥४१॥

अरिपटभवनादगृहीतवित्तः
पुनरवलोकितसंपरायभूमिः ।
स समरविजयी ययौ
महोराडुदयपुराभिमुखः प्रतापसिंहः ॥४२॥

इति श्री राजरत्नाकरे महाकाव्ये सदाशिवकृतौ महाराणाचरित्रे प्रतापसिंहचरितं नाम सप्तमः सर्गः ।७॥

सारांश

महाराणा प्रताप उदयसिंह का पुत्र था। वह यशस्वी और सूर्य के समान तेजस्वी था। उसके प्रताप का ताप सर्वत्र व्याप्त था। प्रात. और साय उसने जो अन्न-सत्र किया, उसे महाराणा अब तक निभा रहे हैं।

एक बार दक्षिण-पूर्व दिशा को जीत कर राजा मानसिंह, जो भारमल का पौत्र था, प्रताप के घर पहुचा। प्रताप ने उसे सेना सहित भोजन के लिये आमन्त्रित किया।

मानसिंह जब भोजन करने के लिये बैठा, तब वहा महाराणा उपस्थित नही था। उसने प्रताप की प्रतीक्षा की और बार-बार बुलावा भी भेजा। आखिर जब प्रताप नही आये तो उसने लोगो से पूछा कि बात क्या है? तब धीमे से किसी ने यह बताया कि चू कि प्रताप उच्चकुल के क्षत्रिय हैं और आपका सपर्क यवनो से है, आपके साथ बैठकर भोजन न करने का यही कारण है।

यह सुनकर मानसिंह नाराज हो गया। वह वहा से उठ गया और ससैन्य रवाना होकर बादशाह अकबर के पास पहुचा।

मानसिंह के चले जाने पर प्रताप ने घर को गगाजल से धुलवाया, गोमय-मिट्टी से लिपवाया और मटके आदि सब फिकवा दिये। मान ने जब अपने गुप्त-चरो द्वारा यह बात जानी, तब वह आग बबूला हो गया और शाही सेना लेकर प्रताप से युद्ध करने के लिए आया।

मानसिंह ने महाराणा को पत्र द्वारा कहलाया कि आपने पवित्रता से जिस क्षत्रियत्व को कायम रखा है,उसे रणभूमि मे उतर कर और खून बहाकर दिखावें। मैं देखने के लिए उत्सुक हूँ।

यह सुनकर महाराणा की क्रोधाग्नि भडक उठी। उसने अपने सैन्यबल को तैयार किया। उसकी सेना मे एक लाख अश्वारोही, तीन लाख पैदल भील और पाच सौ हाथी थे। मानसिंह की सेना इससे तिगुनी थी।

दोनों के बीच घोर सग्राम छिड़ गया। तोपें आग बरसाने लगी। महाराणा ने दुश्मन पर भाले बरसाने वाले सात हजार भीलों को जोड रखा था। शाही सैनिक भाग खड़े हुए।

यह स्थिति देख कर मानसिंह हाथी पर बैठा और आठ हजार घुडसवारों को लेकर रणभूमि में उतरा।

युद्ध ने फिर भीषण रूप लिया। प्रताप ने शस्त्र-प्रहारों से कई शत्रुओं के मस्तक काट दिये। मान का छत्र और ध्वज भी उसने नष्ट कर दिया।

प्रताप के युद्ध-कौशल को देख कर मानसिंह के क्रोध की सीमा न रही। उसने महाराणा के घोड़े को बाणों से मार डाला। महाराणा तब दूसरे घोडे पर बैठ कर लड़ने लगा और उसने मानसिंह के हाथी के महावत के दोनों हाथ काट दिये।

लड़ाई भयंकर रुप से चलती रही। अन्त में प्रताप ने अपने अश्व को मान के हाथी के मस्तक पर चढ़ा दिया। मान का हाथी तब चीत्कार करता हुआ वहा से भागने लगा। मानसिंह निहत्था हो गया। उसके होश उड़ गये। यह देखकर शाही सेना रणभूमि से भाग खड़ी हुई।

प्रताप विजयी होकर उदयपुर की ओर रवाना हुआ।

रणछोड़ भट्ट

राजप्रशस्ति, अमरकाव्य

परिचय

'राजप्रशस्ति' और 'अमर-काव्य' दोनों का रचयिता रणछोड भट्ट है। यह कठोडी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम मधसूदन और माता का वेणी था। अपने पिता मधुसूदन के समान ही वह संस्कृत का अच्छा विद्वान था। महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०९–३७], महाराणा जयसिंह [वि० स० १७३७-५५] तथा महाराणा अमरसिंह द्वितीय [वि० सं० १७५५-६७] के दरबार मे उसका अच्छा सम्मान था। उसने 'राजप्रशस्ति' व 'अमर काव्य' के अलावा दो अन्य प्रशस्तियाँ भी लिखी थी, जिनमे से एक देबारी की त्रिमुखी बावडी पर लगाने के लिये और दूसरी एकलिंगजी के इन्द्र सरोवर पर लगाने के लिये थी।

राजप्रशस्तिः– महाराणा राजसिंह ने उदयपुर से ४० मील उत्तर मे राजसमुद्र नामका एक सुन्दर सरोवर बनवाया था। इसी राजसमुद्र के नोचोकी नामक घाट पर काले पत्थर की २५ बडी-बडी शिलाओ पर यह राजप्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है। इसके निर्माण का आदेश महाराणा राजसिंह ने दिया था किन्तु महाराणा जयसिंह ने वि० स० १७४४ मे इसे शिलाओ पर उत्कीर्ण कराया था। इस महाकाव्य का रचनाकाल वि० स० १७१८–३८ के मध्य है। ग्रन्थ मे कुल २४ सर्ग तथा ११०६ श्लोक हैं। इसका मुख्य विषय महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०९–३७] का जीवन चरित्र एव राजसमुद्र का निर्माण है। प्रथम पाच सर्गों मे मेवाड के प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है। महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रस्तुत अ श चतुर्थ सर्ग मे श्लोक सख्या २१ से श्लोक सख्या ५० तक आया है।

अमरकाव्यः– यह रणछोड भट्ट का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियां प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित है। कवि ने इसका निर्माण महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०९–३७] के पौत्र महाराणा अमरसिंह द्वितीय [विं० स० १७५५–६७] के शासनकाल मे किया था, किन्तु यह पूर्ण नही हो पाया। सम्भवत. बीच मे ही कवि का देहान्त हो गया। इसमे मेवाड के आदिकाल से लेकर महाराणा राजसिंह [वि० स० १७०९–३७] तक के राजाओ का सक्षिप्त वर्णन है। यह ग्रन्थ 'राजप्रशस्ति' से छोटा है। कुल श्लोक सख्या लगभग २५० है। इसमे सर्ग तथा श्लोक-क्रम अव्यवस्थित हैं किन्तु 'राजप्रशस्ति' से इसकी भाषा प्रौढ तथा विषय सामग्री अधिक व्यापक है। यहाँ प्रताप सम्बन्धी अ श प्रस्तुत किया जारहा है। सुविधा के लिये श्लोक संख्या का क्रम एक से ही रखा गया है।

राजप्रशस्ति

प्रतापसिंहोप नृपः कच्छवाहेन मानिना ।
मानसिंहेन तस्यासीद् गनस्यं भुजेविधौ ॥२१॥

अकबर प्रभोः पार्श्वे मानसिंहस्ततो गतः ।
गृहीत्वा तद्दलं ग्रामे खंभनौरे समागत. ॥२२॥

तयोर्युद्धमभूद्घोर लोहकोष्ठगतस्य स ।
मानसिंहस्य कुंभीद्रकुंभेनु मपराक्रम· ॥२३॥

ज्येष्ठ प्रतापसिंहस्य अमरेशाभिध· सुत ।
कुंत शकुनवेगोय मुमुनारुणलोचन· ॥२४॥

राणाप्रतापसिंहोथ मानसिंहस्य हस्तिन· ।
कुंभे कुंत मुमोचाशु पश्चाद्दती पलायित. ॥२५॥

समयेत्र प्रतापेश शक्तसिंहोस्य सोदर ।
मानसिंहस्य सगस्थो दृष्टवैव स्नेहतोवदत् ॥२६॥

नीलाश्वस्याश्ववारत्व पश्चात्पश्य प्रभो तत ।
प्रतापसिंहो ददृशेश्वमेकमथनिर्ययौ ॥२७॥

ततो द्वौ मुगलौ वीरौ मानसिंहेन वेगत. ।
प्रेपितौ शक्तिसिंहोपि गृहीत्वाज्ञा महाबल· ॥२८॥

मानसिंहस्य मुगलौ प्रतापेंद्रेण सगर ।
चक्रतु श्रीप्रतापेन शक्तसिंहेन तौ तत· ॥२९॥

निहतौ हितकारीति शक्तसिंह· सहोदर ।
राणेनोक्त शक्तसिंहवंशस्तद्राणवल्लभः ॥३०॥

अकब्बर इहायातस्ततश्चक्रे स सगर ।
प्रतापसिंह बलिन मत्वा शेखूसुनामक ॥३१॥

सस्थाप्यात्र सुत ज्येष्ठमागरा प्रतिनिर्ययौ ।
अमरेश खानखानादाराणा हरण व्यधात् ॥३२॥

सुवासिनीवत्सातोष्य प्रेषयामास ता पुन ।
खानखानस्याद्भुतं तज्जात शेखूमनस्यपि ।।३३।।

ततः शेखू जहांगीरनामा दिल्लीश्वरोभवत्
पुनरत्रागतो युद्धं कृत्वा खुर्रमनामकं ।।३४।।

सस्थाप्यात्र सुत स्वीयरूद्धं कृत्वा प्रतापिनं ।
प्रतापसिंहं चतुर शीतिसैन्यैवृतंगतः ।।३५।।

दिल्ली प्रति प्रतापेशो घट्टे देवरनामके ।
सुलतानं सेरिमाख्यं चकंताख्यं गजस्थितं ।।३६।।

दिल्लीशस्य पितृव्य त वीक्ष्याभूत्संमुखस्ततः ।
सोलकिभृत्यश्चिच्छेद गजाह्रि पडिहारकः ।।३७।।

प्रता[प]सिंहो राणेंद्रो रणे रावणविक्रमः ।
शकुंतवेगः कुतेन कंभिकुंभ वभंज सः ।।३८।।

पपात कुंभी तुरगमारूरोहाथ सेरिमः ।
अमरेशः स्वकुंतेन न्यहनत्सेरिमाभिधं ।।३९।।

सकुतः सशिरस्त्राणवर्माश्वं तमखडयत् ।
अमरेश कराकृष्टः स कुतो न विनि सृत ।।४०।।

ततः प्रतापेंद्राज्ञातो दत्वा लत्ता पदेन सः ।
कुत चकर्षामर्षेण कुंताप्त्या हर्षमादवे ।।४१।।

दर्शनीयः स येनाह निहितः सेरिमोवदत् ।
प्रतापसिंहस्तच्छ्रुत्वा प्रैषयत्कचिदुद्भट ।।४२।।

भटं तं वीक्ष्य तेनोक्त नायप्रेष्यः सएव तु ।
राणेंद्रः प्रेषयामास अमरेशं रणोत्कटं ।।४३।।

तं दृष्ट्वा सेरिमोवाच सोयमस्ति मयेक्षितः ।
युद्धकाले नभोभूमिव्यापिशीर्षशरीरवान् ।।४४।।

देवानेनहतोहं हि यास्ये स्थानं शुभं तत ।
कोसीथलाद्येषु चतुरशीतिप्रमितागत्ता ।।४५।।

स्थानपालाः प्रतापेंद्रो महोदयपुरेवसत् ।
दानं ददौ कोपि भाटः प्राप्योष्णीषादिकं धनं ॥४६॥

प्रतापसिंहाद्दिल्लीशं द्रष्टुं यातस्तदंतिके ।
यदा प्राप्तस्तदाबद्धं तदुष्णीष करेदधत् ॥४७॥

गत्वा सलामं कृतवान्दिल्लीशेन तदेरितं ।
किमिदं सोवदद्राणाप्रतापोष्णीषमित्यतः ॥४८॥

न धृत मूर्ध्न्दि दिल्लीशस्तुतोष ज्ञापिताशयः ।
तदा समस्ते जगति सर्वोहिंदूतुरुष्कर्कैः ॥४६॥

अनम्रः श्रीप्रतापेंद्रो वीर इत्युक्तमौचिती ।
इतिराणाप्रतापस्य प्रतापः कथितो मया ॥५०॥

इति श्रीराजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्ये वीरांके चतुर्थः सर्गः ।

सारांश

प्रतापसिंह राजा हुआ। भोजन के प्रसंग को लेकर प्रताप और मानसिंह के बीच वैमनस्य हो गया। तब असन्तुष्ट मानसिंह बादशाह अकबर के पास गया और वहां से शाही सेना लेकर प्रताप से युद्ध करने खमनार नामक गांव मे पहुचा।

प्रताप और मानसिंह के बीच भीषण संग्राम छिडा। मानसिंह हाथी पर लोहे के बने हौदे मे बैठा था। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने मानसिंह के हाथी पर भाले से वार किया, बाद मे प्रताप ने भी वार किया। हाथी भाग खडा हुआ।

उस समय की बात है, सहोदर ने शक्तसिंह जो ने मानसिंह के साथ था, प्रतापसिंह से कहा कि हे नीले घोड़े के सवार ! पीछे तो देखो। प्रताप ने अपने पीछे एक अश्व देखा। प्रताप वहां से निकल गया। तदनन्तर मानसिंह ने उसके पीछे तत्काल दो मुगल सैनिको को भेजा। शक्तसिंह भी मान की आज्ञा लेकर उनके पीछे हो लिया। वे मुगल वीर प्रताप से लड़ रहे थे। तभी शक्तसिंह वहा जा पहुँचा प्रताप और शक्तसिंह दोनो ने उन मुगलो को मार डाला।

बाद मे अकबर आया। उसने युद्ध किया। लेकिन प्रताप बलशाली था। इसलिए वहा अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखू को छोड़ कर वह आगरा की ओर चला गया।

अमरसिंह ने खानखाना की स्त्रियो का हरण किया। परन्तु इन्हें बहिन–बेटियो की तरह सन्तोष देकर वापस भेज दिया। इस बात पर खानखाना और शेखू को आश्चर्य हुआ।

शेखू 'जहाँगीर' नाम से दिल्ली-पति बना। वह फिर आया और उसने प्रताप से युद्ध किया। वह अपने पुत्र खुर्रम को वहाँ नियुक्त कर तथा प्रताप को चौरासी थाणो से घेरकर दिल्ली की ओर चला गया।

तदनन्तर प्रताप ने देवेर नामक घाटे मे बादशाह के काका सेरिमा सुलतान चकता को देखा। वह हाथी पर था। प्रताप ने उसका सामना किया। सोलकीभृत्य पडिहार ने सेरिमा के हाथी के पैर काट डाले और प्रताप ने कुम्भस्थल को भाले से फोड दिया। हाथी धराशायी हो गया। सेरिमा घोडे पर चढा। किन्तु अमरसिंह ने भाले से प्रहार कर उसके, उसके घोडे के तथा उसके टोप-बख्तर के एक साथ टुकडे-टुकडे कर दिये।

सेरिमा के भाला ऐसा लगा कि वह खीचने पर भी नही निकला। तब प्रताप की आज्ञा पाकर अमरसिंहने ठोकर देकर उस भाले को खीच निकाला। सेरिमा दम तोड़ रहा था। उसने चाहा कि

अन्तिम समय में वह अमरसिंह को एकबार फिर देखे। अमरसिंह को भेजकर प्रताप ने उसकी यह इच्छा पूरी करवाई। अमरसिंह को देखकर मेरिया ने कहा कि अब मुझे निश्चित स्वर्ग प्राप्त होगा।

मेरिया के मृत्युपरान्त उपरांत चौरासी थाणे, जो कोसीथल आदि स्थानों पर बैठाए गये थे, उठ गये।

तत्पश्चात् प्रताप उदयपुर रहने लगा। एकदिन उसने किसी भाट को, पगड़ी आदि प्रदान किये। तदनन्तर वह भाट बादशाह से मिलने दिल्ली पहुँचा। जब वह बादशाह के सामने उपस्थित हुआ, तब उसने महाराणा की दी हुई अपनी पगड़ी सिर से उतार कर हाथ में रख ली, फिर सलाम किया। बादशाह ने पूछा कि ऐसा क्यों? भाट ने उत्तर दिया कि यह पगड़ी महाराणा द्वारा प्राप्त हुई है, इसलिये सलाम करते समय इसे मैंने मस्तक पर नहीं रहने दिया। आशय समझकर बादशाह प्रसन्न हुआ। सबने यही कहा कि प्रताप वास्तव वीर है।

रणछोडभट्ट कृत

अमरकाव्य

गते शते षोडश एकहीन—
त्रिंशद्गतेऽब्दे शुभफाल्गुनेऽभूत् |
प्रतापसिंहस्सबलस्सपक्षो
वसन्स गोगूदपुरे नरेन्द्र

प्रतापसिंहः प्रबभौ यशस्य—
वृतः क्षितित्राणकृतेतिशस्यः |
प्रतापसतापितशत्रुभूप.
स्वकांतकांत्याजितकामरूपः || २ ||

प्रतापपूर्णो भु [वि] सिंहतेजा
भूयादय चेतसि तद्विचार्य |
विशेषणादिस्थपदप्रयुक्त
तन्नाम धाता विदधे यथार्थं || ३ ||

प्रतापसिंहः प्रथमं कुमारपदशोभित. |
राणाभिधानविसदधर सावलदास एकं || ४ ||

तद्भ्रातरं करमसी चोहानं हतवान् रणे |
बभज वागड़भुवं निजाधीनामिमां व्यधात् || ५ ||

सलूंवरिस्थराठोडाञ्जित्वा छप्पनमग्रहीत् |
गोरवंवराद्रवीली [ञ्जि]त्वा तद्गोढवाडहृत् || ६ ||

दिल्लीश्वरेण प्रवरेण सृष्टे
तिष्ठन्महाविद्धर एव धीरः |
तत्सैन्यरुद्धः कृत [बु] द्धिरुद्धः
अनअनाम्मी पदवी दधानः || ७ ||

म्लेच्छेन साकं मिलनं न कुर्या—
मिति प्रतिज्ञां स्वपितुः सुरक्षन् ।
चक्रे न वाय मिलनं च सेहे
अनेककालावधिविद्धरं तत् ॥ ८ ॥

श्रीराणोदयसिंहाख्यश्चित्रकूटस्थित ।
सौभाग्यशोभाभट्यानीनाम्नी राज्ञी गुणान्विता ॥ ॥९॥

सगरादिसुताना तु माता यन्तद्वशवदा ।
ज्येष्ठप्रतापसिंहाख्यपुत्रस्य जननी नवा ॥१०॥

ज्ञात्वेत्युदयसिंहेन्द्रश्चित्रकूटतटीस्थिते ।
कस्मिश्चिन्निकटे ग्रामे वासयामास त सुत ॥११॥

भटियानीकराद्भु जन्स्वयमत पुरःस्थित. ।
प्रतापसिंहाय सदा शुन्न[?]परिपूरित ॥१२॥

पुटक प्रेषयन् दिव्यतोष तस्य पर व्यधात् ।
प्रतापसिंहापुटकाद्द्रोणान्कृत्वा ददर्श स. ॥१३॥

दशभ्यो राजपुत्रेभ्यो बुभुजे तत्स्वय ततः ।
कारयित्वा रसवती नित्य निजगृहे तथा ॥१४॥

प्रतापसिंहस्तै साक राजपुत्रैस्तथेतरै ।
कृत्वा पंक्ति मुदा चक्रे भोजन पंक्तिपावन. ॥१५॥

तदुत्तर लब्धराज्य कृत्वा रसवती सदा ।
द्विवार राजपुत्रेभ्यो द्रोणान्दत्त्वाथ पूर्ववत् ॥१६॥

प्रतापसिंहो बुभुजे एकपंक्तिस्थितैः सह ।
राजपुत्रैः पवित्रैश्च रीतिरेखाभवत्तत ॥१७॥

प्रातस्तथा सायमपि द्विजानां
सद्भोजन चातरभक्तिवर्ज्यं ।
वदेग्निहोत्रेण समानमुक्त
प्रतापसिंहे विचार्य चित्ते ॥१८॥

वारद्वय पालयितुं च लोकान्
ममालये तिष्ठतु मानुषाणां |
संमर्द्दशोभापि सदेति रात्रौ
दिने रसवत्यकारि ||१९||

नैतादृशी सर्ववसु धरायां
नानेकदेशीयनृपालयेषु |
न राणवशेपि च भूमिभर्त्रा
अपूर्वभूता रसवत्यकारि ||२०||

कुलीनपावित्र्यमयैश्च तत्र
राजन्यवंशैरखिलैः समेतः |
कृताद्रिको वा कृतवैश्व[दे]वो
भुंजन्नृपो भाति युधिष्ठिरा था ||२१||

स।यमनेकवस्तुस्तोमान्नयुग्द्रोणकदानधन्य।
प्रतापसिंहो गोगुन्दापुरे राज्यं व्यधात् व्रजन् |
प्रेम्णोदयपुरे पूर्णोदयसागर उत्सुक. ||२२||

शते षोडशके त्रिंशन्मितेब्दे गुर्जरस्थिते |
मानसिंहो मेदपाटे आयात. पुनरुद्भटः ||२३||

अथैकदा प्रोद्धतमानसिंह
प्राघूर्णकीभूतमभूतपूर्वं |
निमत्रयामास सुग्रमत्र
प्रतापसिंह प्रचुरप्रतापः ||२४||

उदयसागरनामजलाशय—
प्रविलसत्तट उत्कटमानसः |
रसवतीकरणाय तदादिशत्
द्विज[ज]नानवनीशरिरोमणि ||२५||

तदा नरैस्तत्र तु पाकशाला
कृता प्रयुक्ता सकलैवशाला |

मिष्टैः शुभान्नैघृ तपक्वयुक्तै—
ह्यादिपेयादिकभोज्यस ... ॥२६॥

आकारितस्तत्र तु मानसिंहः
समागतो भाग्यमिहेति जानन् ।
सुभोजनं राणमहीश्वरेण
सहैकपक्तौ मम भावि तस्मात् ॥२७॥

गते शते षोडश एकहीन त्रिंशद्गतेऽब्दे शुभफाल्गुनेऽभूत् ।

मुदोपविष्टः सुविशिष्टशिष्टः
कुलीनराजन्यपवित्रपक्तौ ।
महासने वीरगणैः समेतः
स मानसिंहो विरराज सिंह ॥ २८ ॥

प्रतापसिंहो बहुवस्तुसिद्धयै
उच्चैः समुत्सार्य विशालचाल ।
बाह्यो समाज्ञायति स्वकीय—
समस्तलोकेभ्य उदारवीरः ॥ २६ ॥

स्वर्णादिपात्रेषु समस्तवस्तुनि
सूदैः परिवेषितानि ।
अपूर्व रूपानि च तानि दृष्ट्वा
सुविस्मय प्राप स मानसिंहः ॥ ३० ॥

स मानसिंहो निजगाद वाक्यं
प्रतापसिंह प्रति देव शीघ्रं ।
आयाहि पंक्तौ शुभभोजनार्थ—
मुच्चासने चोपविशत्वितीश ॥ ३१ ॥

प्रतापसिंहस्तु तदीयवाक्यं
चक्रे श्रुत वाश्रुतवत्तदैव ।
पुनर्जगादाथ स मानसिंहः
स्तदेव वाक्यं महता स्वरेण ॥ ३२ ॥

राणेश्वरो मे जठरे स्मिष्टभार
इत्यब्रवीत्कूर्मनरेशपुत्र ।
कुमारस्त्वायास्त्वदत्तदेति
प्रतापसिंहस्तु पुनर्वभाषे ॥ ३३ ॥

सवस्तुसिद्धि विदधाति धन्यां
श्रुत्वाखिल निर्मलमानसः सः।
ज्ञात्वा तथैवेति च मानसिंह—
श्चकार सद्भोजनमादरेण ॥ ३४ ॥

वीरैः प्रवृद्धैस्तु तदा तदीय
प्रतापसिंहाशयशौर्यविद्भिः ।
कृतो विचारो मनसा दृशा च
मिथो न युक्तात्र भुजिक्रियेति ॥३५॥

कूर्मेशपुत्रस्य वृते प्रवीरै
रेव विचारेथ विचक्षणैस्तु ।
राणेन्द्रवीरैरपितद्विचारं
ज्ञात्वा दृशा तान्प्रति सूचित च ॥ ३६ ॥

एतादृशेस्मिन्समये त्वभोजने
भाव्येष युष्माकमनर्थ उत्कटः ।
एव विचार्योचितमत्र यद्भवे—
त्कार्यं भवद्भिस्तु तदेव दक्षिणैः ॥३७॥

ज्ञात्वेति राणेश्वरवीरतत्त्वं
कूर्मेशपुत्रस्य महाप्रवीरै ।
विचारितं चेति विचारदक्षै—
र्वेलादकृत्वा खलु भोजनानि ॥ ३८ ॥

उत्थानमस्माभिरिह कृतं चे—
दुपद्रवस्तत्र महांस्तदास्यात् ।
भुजिक्रिया तत्र कृतेति सर्व—
र्लज्जाविनम्रीकृतनेत्रशीर्षैः ॥ ३९ ॥

ततस्तु शुद्धाचमनं समस्तै
स्तन्मानसिंहेन सहैव सर्वे ।
यथोचितस्थानकृतोपवेशाः
राणासभायां नितरां विरेजु ॥४०॥

जिष्णोः सभायां त्रिदशा यथैव
तत सभामडपमध्यशोभी ।
प्रतापसिंहोतिपवित्रवीरः
.... ॥ ४१ ॥

दत्त्वाथ कपूरविराजितानि
तांबूलवृन्दानि स तानि तेभ्यः ।
संप्रेषयामास च मानसिंहं
प्रति प्रेमपरिप्लुतोय ॥ ४२ ॥

प्रतापसिंहोथ तदा जवेन
स्वाचारिभिःकारयतिस्म सूदैः ।
उल्लेखनं वा रसवत्यवन्या
भांडादिनिःसारणमेव विश्वक् ॥ ४३ ॥

प्रक्षालनं भूरिविलेपनं च
पवित्रमृत्स्ना शुचिगोमयैश्च ।
अत्राथ गंगाजलसेकमुच्चैः
पाकं ततः कारयति स्म तत्र ॥ ४४ ॥

कृत्वा ततः पुण्यदवैश्वदेव
कुलीनवीरैः सहितोतिकाले ।
मुदाकरोत् भोजनमत्र राणा—
प्रतापसिंहः प्रचुरप्रतापः ॥ ४५ ॥

श्रुत्वेति वार्ता परिपूर्णकोप-
स्तदा स्वकीयान्परिपृच्छतिस्म ।
कूर्मेशपुत्रः किमिदं तदोक्तं
तेष्वेव केनापि वयोधिकेन ॥ ४६ ॥

हेतुं श्रृणुष्व क्षितिपाल पुत्र
कोपो विधेयो न मयि, त्वया तु ।
म्लेच्छेशमानीय गृहेथ तस्मै
कन्यां प्रयच्छति कलत्रदोला ॥ ४७ ॥

अथार्पयंत्येव सुखेन लब्ध्यै
जवराति तृप्त्यै ।
ये कच्छवाहादिनृपा अनच्छा—
स्तान्मानयंत्यत्र पवित्रवीराः ॥ ४८ ॥

न राणवंश्या. किमु भोजनानि
कुर्वन्ति तैः साकमिमे कथंचित् ।
श्रुत्वा वचस्तत्किल मानसिंहः
कोपाकुलस्मश्रुमुहुःस्पृशश्च ॥ ४९ ॥

जगाम दिल्लीश्वरपार्श्वमेव
वार्तामिमां तत्र जगाद सर्वां ।
प्रतापसिंहस्य महोन्नतत्व
श्रुत्वैव कोपारुणवक्रनेत्रः ॥ ५० ॥

अकब्बर. कोपवरस्तदास्मै
-ददौ-स्वकीय ध्वजि ...*
——— ——— ———
——— ——— ——— ॥ ५१ ॥

*इसके बाद हस्तप्रति का एक पन्ना उपलब्ध नहीं है ।

——— ——— ———
——— ———ल तूर्णमेव ।
हस्तिस्थित. साश्रितलोहकोष्ठः
सेनायुतः सगरंरगमाप ॥ ५३ ॥

तत पर ते मिलिते ध्वजिन्यौ
हिन्दूपतिम्लेच्छपभृत्ययोश्च ।
ततो महादु दुभिधारनादै—
र्ब्रह्माण्डभाडं किमुदीर्णमेव ॥ ५४ ॥

ततो महाचारणबंदिभाटा—
श्चक्रू रणोत्साहदपद्यपाठं ।
वितेनिरे सैंधववाद्यनाद
वादित्रनाद समरोत्सवेत्र ॥ ५५ ॥

ततो महोत्साहमया पदातयो
युद्ध महत्तो प्रथमं वितेनिरे ।
सवह्निशस्त्राश्च ततो महाभटा—
स्ततोश्ववारा करसक्तशयः ॥ ५६ ॥

ततो महानालिकया प्रयुक्ता
गोलावली ज्वालयतिस्मलोकान् ।
कुंतैर्मिथो जघ्नुरमंदवीरा
राणेन्द्रकूर्मेश्वर पुत्रयोस्ते ॥ ५७ ॥

खड्गैश्च कुन्तैर्बहुवह्निशस्त्रै-
प्रतापसिंहस्य महाभटास्ते ।
द्राङ्मानसिंहस्य च वीरवर्याः
सेनामिथो जघ्नुरमंदरोषाः ॥ ५८ ॥

राठोडराजद्रुतकच्छवाह-
मनेकवशोदितहिन्दुहृद्यं ।
महाखुरासानि च छत्रकर्त्ता
पलायनोद्यन्मुगलालिगोल ।५९।।

पठानपुष्टं विलसद्रुहेल
तन्मानसिंहस्य हि धन्यसैन्य ।
प्रतापसिंहस्य महाभटास्ते
निजघ्नुरुग्रा गतविघ्नमेव ।।६०।।

झ्याला विशालं भृतचाहुवाण
सीसोदिया य परमारजुष्ट ।
राठोड़नानान्वयवीरवर्यं
प्रतापसिंहस्य बल बलोग्रं ।।६१।।

ते मानसिंहस्य महाप्रवीरा
जघ्नुर्नितांत घनरोषभाजः ।
एव तदा तत्र बलद्वयस्य
चक्रु महोग्रं समरं प्रवीरा ।।६२।।

एवं निकृत्वं प्रतनाद्वयं त-
दसख्यसंख्यं खमनोरमध्ये ।

तौ पार्श्वकर्णौ भवतो यथैव
रणे यथा भीमसुयोधनौ च ।
यथैव तौ राघवरावणौ च
राणेशकूर्मेशसुतौ तथा सा: ।।७०।।

द्विषच्चमूमण्डलमेव कुण्डं
द्रध्यान्हृतद्वेषणबाहुवारान् ।
स्थाली च प्रात्राणि हता हितानां
महाकरालाश्च कपालमाला: ।।७१।।

वह्निप्रतापं किल रानवस्य
दर्वी च कट्टारकमुत्कट च ।
स्तवं कराल करवालमेव
कृत्वैव वृन्दारकवृन्दतुष्ट्यै ।।७२।।

प्रतापसिंहो रचयाचकार
गलं निषेध नरमेधमेव ।
अथाश्वमेधं निहताश्ववार—
मनेकवार रिपुवारणे छ ।।७३।।

प्रतापसिंहस्य पुर सरस्स
उद्‌डसांडावत एव वोर ।
स डोडियाजातिभवश्च भीमो
भीमप्रभाव: समरेषु भीम: ।।७४।।

सेनावृत्त वीक्ष्य स मानसिंह
गजस्थित संश्रितलोहकोष्ठं ।
सिंह प्रकोष्ठ किल लोहकोष्ठे
पूर्वोक्तवाक्यं विवदत्सु इत्यय ।।७५।।

विशिष्टकट्टारकमुत्कटाक्ष:
चिक्षेप पादे क्षतकारितस्य ।

एवं विधायैव जुहारशब्द
स्वस्याजगादेति जगत्प्रसिद्धम् ॥७६॥

अकब्बरस्य पार्श्वेगादमरेशः कुमारकः ।
यदातदा मानसिंहो डोडियाभीममुष्पकं ॥७७॥

अमरेशस्य वीरे.— [1]सह वार्ता कृतौल्ल्कु ।
काँश्चिद्वार्त्तामकथयत्तदा[2] भीमोवदत्क्रूधा ॥७८॥

भवाँस्तत्र समायातु मया घोररणे तदा ।
जुहारस्तत्र कर्तव्यः पूर्वोक्त वाक्यमित्यहो ॥७९॥

प्रतापसिंहोथ परप्रतापः
परपराप्रापित पूर्णताप.[3] ।
तन्मानसिंहस्य करीन्द्रकु भे
विक्षेप कुन्तं च शिवेव शुम्भे ॥८०॥

पलायनेच्छ प्रबभूव कुम्भी
सस्थापितो वीरवरै. कथचित् ।
तथापि कोष्ठाच्च न नि.सृतोभूत् ।
स मानसिंहो विगताभिमान ॥८१॥

प्रतापसिंह स्त्वथ संस्वस्थं
तन्मानसिंहस्य महोग्रवीरान् ।
एकाकिनं वीक्ष्य विखण्डयन्त्ता
तन्मानसिंहोत्तमपत्स संस्थ· ॥८२॥

प्रतापसिंहस्य सहोदरोदय [4]
सशक्तसिंहो वदतिस्म हाधूर्त ।

---

१. वीरै·
२. काश्चिद्वार्त्तामकथयत्तदा
३. परम्पराप्रापितपूर्णतापः
४. सहोदरोदय्यं

नीलाश्ववारैस्यथ पश्य पश्चा—

स्प्रतापसिंहश्च ततव्दचञ्च ॥८३॥

पश्चाज्जगामाथ स मानसिंहः

प्रोवाच वीरान् प्रति याति शत्रु ।

गजः निहत्यापि भटा कोपि हत्वा[5]

ने[6] शक्तोप्यनुगन्तुमेनं ॥८४॥

श्रुत्वा तौ मुगलौ महान्तौ

स शक्तिसिंहोप्यनुयात एक ।

प्रतापसिंहः स च शक्तिसिंहो

मार्गे रणे मार्गणमोक्षदक्षौ ॥८५॥

निहत्य वीरौ मुगलौ स्वसैन्ये

मुदा प्रविष्टौ बहुमोदजुष्टौ ।

ततः प्रभृत्येव स शक्तसिंह

प्रतापसिंहस्य महान्प्रियोभूत् ॥८६॥

रणभुवि समुपेत धन्यसेनासमेता

वशगतयवनेश भूपतिर्मानसिंह ।

यवनबलनिदान-म्लेच्छनाथैकतान

दलितसमरमानः शौर्यशाणततान ॥८७॥

आरभ्य सूर्योदयत प्रभूते

सूर्यास्तकालावधिवन्ययुद्धे ।

राणेशकूर्मैर्नृपती स्वसैन्ये

दृष्ट्वा श्रमाढ्यौ शिविरे प्रविष्टौ ॥८८॥

---

५. भटश्चकोपि हन्तुं

६ न

उत्तालवेतालगणः प्रभूत—
भूतव्रजोऽबालशृगालजालं ।
उद्दण्डवाग्दण्डधरः प्रचण्ड—
स्तृप्तोभवत्तृप्तियुता धरास्त्रैः ॥८९॥

भूर्भारहीनाभवदेव भव्या
शेषो भरक्लेशविहीन आसीत् ।
स्वर्गेतिवाहाः सुरकन्यकाना
वीरौघसंमर्द्दमयश्चनाकः ॥९०॥

मांससृजां वृन्दमहो समृद्धं
शौर्यं भटनामतुलं प्रवृद्धं ।
तद्युद्धमासीज्जगति प्रसिद्ध
प्रतापसिंहस्य यश प्रसिद्धम् ॥९१॥

तदैकवर्षावधि सवितेने
स मानसिंहो रणमानपूर्णः ।
प्रतापसिंहस्य गिरिस्थितस्य
पश्चाद्व्रजन्सगररंगमुग्र [९२]

ततः कुमार त्वमरेशसज्ञं
सागे गृहीत्वैव महादरेण ।
गतो यदा माण्डिलमण्डलान्ते
स मानसिंहो बहुमानपूर्णः ॥९३॥

त्वमानयैवात्र [म] हाकुमार
मुक्त्वेत्यहं तत्र समागमिष्ये ।
सम्प्रेष्य दूत निजमानसिंहो
निवारितो नूनमकब्बरेण ॥९४॥

श्रुत्वा विलक्ष किल मानसिंह
स प्रेषयामास गृहे कुमार ।

कृत्वादरं श्री अमरेशसज्ञं
स्वयं तु दिल्ली प्रति संजगाम ।।९५।।

ततो गृहीत्वा खलु एष वीरः
खड्गान्तकास्योर्वरितां कथचित् ।
स्वकीयसेनां खलु खडितागीं
समानसिंहोऽकबरस्य पार्श्वे ।।९६।।

पराक्रमं स्वं निजगाद गत्वा
श्रुत्वा विहस्याथ तुरुष्कनाथ ।
तदावदत्वं किल लोहकोष्ठे
स्थितोसि तेनोर्वरितः कथचित् ।।९७।।

अकब्बरोयात्र समानगा
महारणं सोपि चिर चकार ।
प्रतापसिंह बलिनं हि मत्वा
तत. प्रविष्टोभवदागरायां ।।९८।।

शेखूसुनाम्नाऽकबरस्य पुत्रो
ज्येष्ठ सुसैन्यो रणसच्चरित्र ।
समाययौ चात्र रण वितेने
प्रतापसिंह बलिनं स मेने ।।९९।।

दिल्लीपतेर्म्लेच्छगणैश्च हिन्दू—
वृन्दैरमन्दै. प्रबलैश्च सैन्यैः ।
संस्थानसैन्य प्रतिदिक्षु रुद्धो
बाणालये रुद्ध इवानिरुद्धः ।।१००।।

एतादृशे स्मिन्समये प्रताप—
सिंहोऽमदावादभुवं बभंज ।
गोगूरक सांभरिकां धंधेरा
येक रणस्तभ मखंडयत्सः ।।१०१।।

जित्वा तरवराधीश तन्नीशानानि वाग्रहीत् ।
लालसोटि चाटसूं च बभंज रिपुभजन: ॥१०२॥

प्रतापसिंहे यवनावनीश—
सैन्यैर्निरुद्धेप्यनिरुद्धशौर्ये ।
जगाद गर्वेण हि खानखाना—
नामा स दिल्लीश्वरसेवकस्तु ॥१०३॥

हिंदूपतीद्रो भवता स्वकीयो
रक्षार कटुम्बो बहुयत्नपूर्व ।
म्लेच्छेशसैन्यै [स्तु] भवान्निरुद्ध—
स्तथैव रुद्धो भवदीय—॥१०४॥

प्रतापसिंहस्त्विति तस्य वार्ता
श्रुत्वैव दूत प्रति सजगाद ।
प्रोक्त हित मे खलु खानखाना—
वीरेण वाच्य वद तत्र गत्वा ॥१०५॥

तत कदाचिब्दहुधैर्यशौर्य
प्रतापसिंहाशयवि[ज्ञवर्य] ।
ज्येष्ठ कुमारस्त्वमरेशनामा
म्लेच्छातिमानक्षयकारिधामा ॥१०६॥

जग्राह वैसेरपुराज्जवेन
स खानखानस्य कलत्रमाला ।
आनीयतास्तत्र सुवासिनीवत्
(वस्त्रैरनर्घ्यै) रपि भूषणौघै ॥१०७॥

समानयामास च भव्यभोज्यै—
र्गते कियत्यथ तत्र काले ।
ता: खानखाना शिबिराय तोषा—
त्स प्रेषयामास विशेषशौर्य: ॥१०८॥

स खानखानस्य चकार चित्तं
महाविचित्रं कृतमानभंग ।
दिल्लीश्वरस्याप्यमरेशनामा
विशेषतो भूरिमय प्रसंग ॥१०६॥

शेखू सुरताणकुमारवीर—
स्तदागराया स जगाम वेगात् ।
ततश्च दिल्लीश्वरतां स लब्ध्वा
इहा जगामाथ चकार युद्ध ॥११०॥

प्रतापसिंहेन पुनः प्रताप
प्रतापसिंहस्य परं विदित्वा ।
सैन्यैश्चतुःस्कूर्जदशीतिसख्यै
प्रतापसिंहं स चकार रुद्ध ॥१११॥

विल्पा..... .....जहांगीर
सस्थाप्य तं खुर्रमनामपुत्रं ।
तदागरायामविशत्सशंकः
प्रतापसिंहः प्रबलो विशंकः ॥११२॥

सब्दादशाष्टावधिजायमाने[7]
प्रतापसिंहो दृढविद्धरे हि ।
श्रम दधानो न गताभिमानः
संदर्शयामास महाप्रभागं[8] ॥११३॥

गते शते षोडशके प्रतापो
च सत्रयस्त्रिशदभिख्यवर्षे ।
श्रीकुंभमेरेऽष्टयुगं च पंच—
त्रिशन्मितेब्देत्र च विद्धरोभूत् ॥११४॥

---

७ सद्वादशाष्टाब्दावधिजायमाने

८. महाप्रभावं

डोलाणमध्ये तदुवास सप्त –
त्रिशन्मितेब्देप्य तु वा वद्वसः ।
गते शते षोडश [के] सुचत्वा—
रिंशन्मितेब्देवसदितस्य भूपः ।।११५।।

प्रतापसिंहस्य तु कुंतमूर्द्धि
स्थितेति देवी शकुनी जगाद ।
रान त्वया मासिन[१]एव शत्रु—
र्जानीहि चित्र शकुनि त्वयोक्त ।।११६।।

प्रतापसिंहोवददत्र तेन
प्रोक्त हि सैन्यं नृपतिस्तदोचे ।
कथं स आयाति तदापितेन
प्रोक्तं मयानेय इहाथ भूप ।।११७।।

आनीयतामित्यवदत्तदा द्राक्
स सेरिमाख्यस्य गृहे जगाम ।
तत्रोक्तवानद्य प्रतापसिंह.
अत्यल्पलोकोसि भवान्प्रयाहि ।।११८।।

श्रुत्वेति मात्रा स निवारितोपि
सपूर्वहार्द्दस्य गिरास्य वेगात् ।
स सेरिमा शाकुनिकं निजाग्रे
धृत्वा महासैन्ययुतः प्रतस्थे ॥ ११९ ॥

त सेरिमाख्यं सुलतानमेव—
मानीय वा शाकुनिको जगाद ।
प्र ापसिंहेति प्रतेथ योग्य
यत. कुरुष्वेति धराधवात्. ॥ १२० ॥

ससप्तकैः सप्तहयप्रतापैः
सभीकसंकल्पितशुद्धजीवै ।

---

१. मासिरित

वीरव्रताढ्यै र्दृढराजपुत्रैः
महाकुलीनै. पतिभक्तिमत्तै ॥१२१॥

सवेष्टित सगररगतुष्टः
पुत्रैर्वृ तो वाप्यमरेशमुख्यैः ।
देवेरघट्टे स्थित आगतं द्राक्
तं से (रि) माख्यं सुलतानमुग्र ॥१२२॥

दिल्लीपतेर्मु ख्यपितृव्यमेतं
महाचकत्ताभिधमत्तमत्तं ।
सस्थानपालप्रसरस्य नाथं
सेना समुद्रे ण विराजमानं ॥ १२३ ॥
महागजारूढमरूढभाग्यं
हिंदूतुरुष्कोग्रमहाभटाद्यं ।
दृष्टा ददातु: स्थलमेव तस्य
आगच्छतो मारणतर्कमस्य ॥१२४॥
कुर्वं त खर्वं ति दधत्सुगर्वं
तन्मारणार्थं च समुद्यतान्स्वान् ।
वीरान्निवार्याप्यनिवार्यवीर्य·
प्रतापसिंहः स्थित एव हतुं ॥ १२५ ॥

तदोन्नतं वीक्ष्य गजं तदीयं
सोलंकिभृत्यः पड़िहारवीरः ।
स स्वामिधर्मी करिणोग्रपादौ
चिच्छेद सोभूम्दुवि नीववक्रः ॥१२६॥
हयं कुमारोप्यम •• गजस्य
प्राग्दतयोः स्थापितपादयुग्मम् ।
कृत्वा तु कुन्तेन जघान कुम्भे
तं कु भिनं शु भनिशु भशौर्यः ॥१२७॥

वितिन्नमुत्कु भयुगोपमान
कु भी स्वकु भद्वयमेव जावुन् ।

चीत्कारकारी सभयश्चकपे
स्थानेश मुख्येपि च पूर्ण कप ॥१२८॥

कुमारशौर्य खलु सेरिमाख्य
दृढ कुमारोप्यमरादिसिंहः ।
कांतेन कुतेन शकुतवेगा—
ज्जघान त भूरिभटैः समेतं ॥१२९॥

कुन्त स कृष्टोपि च सेरिमाख्य—
वक्ष स्थितो निःसरतिस्म नात. ।
ऊचे प्रतापोथ निधेहि लत्ता
निःसारयामास तथाऽमरेश ॥१३०॥

ततस्तु दिल्लीपतिसैन्यपाले
कलिन[10] काले कवलीकृतोहि ।
प्रतापसिंहस्त्वमरेशमुख्य—
पुत्रादिराजन्ययुतो विरेजे ॥१३१

स सेरिमाख्यः सुलतानपूर्वो
निपातितः सगररगभूमौ ।
खसेन्नुवावेति स दर्शनीयो
येनेह वीरेण हि पारितोस्मि ॥१३२॥

प्रतापसिंहेन हि कोपि वीरः
सदर्शितस्येन न मानितः सः ।
तदेरितः श्री अमरेशनामा
तेनोक्तमेषोस्ति विशेषमास्मिन् ॥१३३॥

वदामि तस्मिन्समये मयायं
नभ क्षितिव्यापिशिरः शरीरः ।
दृष्टो विशिष्टः सुर एव वाऽयं
शस्त्रेण पूतोस्मि तत कृतार्थः ॥१३४॥

---

१० कालेन

इत्युक्तवानेव ततः सुधीतं
स याचयामास जलं प्रतापः ।
सहेमश्रृंगारगगागनीर
तस्मै ददौ सोथ निपीय मुक्त. ॥१३५॥
॥ कालापकं ॥

श्रुत्वेति तां युद्धविचित्रवार्त्तां
वार्त्ताहरैरार्त्ततरा सुभीताः ।
कोशीस्थलार्थे महास्थलोषे
ये स्थानपाला स्थितवंत उग्राः ॥१३६॥

पलाप्य याताः किल यत्रतत्र
ते सर्व एवापि च खर्वगर्वाः ।
याताश्चुतः स्फूर्जदशीतिसख्याः
द्राक्स्थानपाला क्वचिदत्र चित्रम ॥१३७॥

प्रतापसिंहस्य पराक्रमस्य
प्रसृत्वरस्येवलमीरणरणस्ये ।
वसमीरणस्य हृ णी भवन्म्लेच्छ—
वलं सुवगा ॥ १३८ ॥

दुज्जीय यातं वहु यत्र तत्र
प्रतापसिंहस्य महावल ख ।
देशं त्व शेषं सुवसं निधाय
तदोद यं तु पुरे प्रविष्टः ॥१३९॥

उवास चैवासदतुल्यतेजाः

चतुर्विंशतिवर्षाणि अष्टमासं धुजानि च ।
सार्धाशीतिदिनान्येप राज्य कृत्वा क्षितौ ततः
॥१४०॥
गते शतो पोडशके त्रिपंचाशन्मितेब्दके ।
माये प्रतापसिंहेद्राख्यो राणराजो दिव गतः
॥१४१॥

सारांश

महाराणा प्रताप बलशाली और यशस्वी था। उसका रूप-सौंदर्य कामदेव से भी बढकर था। अपने प्रताप से उसने शत्रुओ को सतापित कर रखा था। पृथ्वी की रक्षा के लिए उसने जो उद्यम किया, वह अतिशय प्रशसनीय रहा। वि० स० १६२८ के फाल्गुन शुक्ल पक्ष मे उसकी गद्दीनशीनी हुई।

जब प्रतापसिंह कवरपदे मे था, तब उसने रणभूमि मे चौहान करमसी को मारा और वागड-धरती को अपने अधीन बनाया। उसने सलूम्बर के राठौडो को जीत कर उनसे छप्पन प्रदेश लिया, गोडवाड़ियो से वाली को जीता तथा उनसे गोडवाड छीना।

युद्ध छेडकर जब बादशाह ने उसे घेर लिया, तब भी प्रताप ने अपना धैर्य नही खोया। उस समय उसे अनम्र पदवी मिली। महाराणा उदयसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं म्लेच्छ से सन्धि नही करूगा। प्रताप ने भी उस प्रतिज्ञा की सुरक्षा की, यद्यपि उसे सुदीर्घ समय तक शत्रु लडना पडा।

प्रताप का पिता [उदयसिंह] चित्तौड मे रह रहा था। उसकी राणी भट्यानी भी थी, जिससे सगर आदि पुत्रो ने जन्म लिया था। उदयसिंह उसके वशीभूत था। उसने यह सोचकर कि वह [भट्यानी] प्रताप की जननी नही है, चितौड की तलहटी मे स्थित निकवर्त्ती गांव मे प्रताप के रहने का प्रबन्ध कर दिया साथ मे दस अन्य राजपूत भी दिये। तथा वह स्वय भट्यानी के साथ अन्त:पुर मे रहने लगा।

उदयसिंह प्रताप के लिए हमेशा एक 'पुटक' [=पेटिया ?] भेज कर सन्तोष कर लेता था। प्रताप उस पुटक के दोने बनाकर सबो को देता और तब स्वय रसोई बनाकर, सबो के साथ एक पक्ति मे बैठकर, भोजन करता। प्रताप ने यह परपरा आगे भी निभाई जिसने भविष्य मे एक रीति का रूप ले लिया। इस परपरा का पालन सुबह-शाम, दोनों समय, किया जाने लगा।

प्रतापसिंह गोगूंदा मे रह कर राज्य कर रहा था। वि० सं० १६३० में, गुजरात से लौटते हुए, मानसिंह मेवाड मे आया।

प्रताप ने मानसिंह को अपना मेहमान बनाया और उसे भोजन के लिए निमंत्रण दिया। उदयसागर के तट पर रसोई तैयार की गई, नाना प्रकार के पकवान बने।

मानसिंह को जब निमंत्रण मिला, तब उसने यह सोचकर कि आज मैं महाराणा के साथ एक पंक्ति मे बैठकर भोजन करूंगा, अपने भाग्य की सराहना की।

वह प्रसन्न होकर पवित्र राजपूतो की पंक्ति मे बैठा। साथ मे उसके अन्य योद्धा भी थे। सोने आदि के पात्रो मे विविध पकवान परोसे गये। देखकर मान को बडा विस्मय हुआ।

तब मान ने प्रताप को कहा कि आइये, उच्चासन ग्रहण कर भोजन कीजिये। लेकिन प्रताप ने उसके इस कथन को सुना-अ सुना कर दिया। मान ने ऊंची आवाज में अपनी बात फिर दोहराई। तब प्रताप ने कहा कि मेरे तो उदर मे व्याधि है, फिर कुमार अमरसिंह आ ही गया है।

मानसिंह ने निष्कपट-भाव से प्रताप का उत्तर सुना और उसे सही समझ कर आदरपूर्वक भोजन करना प्रारंभ किया। किंतु जो बुजुर्ग योद्धा थे, वे अपने स्वामी [प्रताप] के आशय को समझ गये और आपस मे संकेत देने लगे कि मानसिंह के साथ हमें भोजन करना उचित नही है। इस बात को मान के वीर भांप गये। लेकिन उन्होने सोचा कि यदि हम इस समय बिना भोजन किये उठे तो बडा उपद्रव होगा। इस कारण वे सब के सब, लज्जा से अपनी आखें और मस्तक झुकाए, भोजन करते रहे।

भोजनोपरान्त मानसिंह एव उसके योद्धाओ ने आचमन किया। तत्पश्चात् वे महाराणा की सभा में अपनी-अपनी जगह बैठे। महाराणा ने उन्हे कर्पूर मिश्रित ताबूल देकर बडे स्नेह से विदा किया।

मान के चले जाने पर प्रताप ने तुरत अपने अनुचरो द्वारा पाकशाला को गंगाजल आदि से पवित्र करवाया और नई रसोई बनवाई। तब अपने वीरो के साथ प्रसन्नता पूर्वक उसने भोजन किया।

मानसिंह को इस बात का जब पता चला तब वह बहुत नाराज हुआ। उसके पूछने पर कि महाराणा ने ऐसा क्यो किया, उसके लोगो में से किसी बुजुर्ग ने बताया कि हे राजकुमार आप मुझ पर नाराज न हो! कारण मैं बताता हूँ। बात यह है कि कछवाहे आदि जो राजा अपनी पुत्रियो का विवाह बादशाह से करते हैं और उसे 'कलत्र-दोला' भेट करते हैं, उन्हे ये वीर अपवित्र मानते है। तब ये उनके साथ भोजन क्यो करेंगे?

यह सुनकर मान कोपाकुल हो उठा। वह बादशाह के पास पहुचा। उसने उसे सारी बाते कही। प्रताप का महान् उन्नतत्व सुनकर बादशाह की आखो मे भी क्रोध उतर आया।

फिर मानसिंह शाही सेना लेकर प्रताप से युद्ध करने के लिये आया। दोनो के बीच घमासान लड़ाई हुई। दोनो पक्षो के असंख्य सैनिक मारे गये। खमणोर के बीच इतना रक्तपात हुआ कि बनास नदी का पानी लाल हो गया। वि० सं० १६३२, शुक्ला सप्तमी को शाही सेना ने महाराणा को घेर लिया। महाराणा हल्दी घाटी पहुचा। शाही सेना ने पीछा किया। प्रताप ने नव चौहान, झाला आदि राजपूतो को साथ मे देकर तवर रामशाह और उसके पुत्र शालिवाहन को लडने के लिए भेजा। भीषण युद्ध हुआ, जिसमे शत्रुओ को मार कर दोनो पिता-पुत्र मारे गये।

तदनन्तर प्रताप स्वयं रणभूमि मे उतरा। उसके आगे डोडिया जाति का सांडावत भीमसिंह था। उसने मान को हाथी पर, लोहे के बने हौदे मे, बैठे देखा। उसने उसके हाथी के पांव को कटारी से घायल किया और पूर्वोक्त कथन का स्मरण कराते हुए कहा कि यह मेरा 'जुहार' है।

जुहार वाली बात प्रसिद्ध है। हुआ यह था कि जब मानसिंह अकबर के पास गया था, तब उसने डोडिया भीम आदि लोगो मे बात की थी। उस समय उसके मुंह से कोई ऐसी बात निकल गई, जिससे भीमसिंह नाराज हो गया था। भीमसिंह ने तब यह कहा था कि आइयेगा, युद्ध भूमि में जुहार करूंगा।

जब भीमसिंह कटारी से प्रहार कर चुका तब प्रताप ने मान के हाथी के कुंभस्थल पर भाला फेंका। हाथी ने भागना चाहा, पर शाही वीरो ने उसे जैसे-तैसे रोका। मानसिंह हौदे से बाहर नहीं निकला।

शाही सैनिको को मारते हुए प्रताप मानसिंह के नजदीक पहुच गया। उसे अकेला देख कर सहोदर शक्तसिंह ने कहा—"हे, नीले घोड़े के सवार! पीछे तो देखो!" सुनकर प्रताप वहा से निकल गया।

प्रताप को जाते हुए देखकर मान ने अपने योद्धाओ से कहा कि शत्रु और हाथी को मार कर वह जा रहा है, उसे कोई योद्धा मार नही सका। उसका पीछा करो! यह सुनकर दो मुगल योद्धा और शक्तसिंह प्रताप के पीछे दौडे। प्रताप और शक्तसिंह—दोनो—ने मिलकर उन मुगल सैनिको को मार डाला। शक्तसिंह अपनी सेना मे लौट आया। वह तभी से प्रताप का प्रिय बना।

इस प्रकार महाराणा ने, रण-भूमि मे, बादशाह के वशीभूत मानसिंह को, जिसके साथ बड़ी शाही सेना थी, अपने शौर्य का परिचय दिया। वह युद्ध ऐसा हुआ कि संसार में उसकी प्रसिद्धि हो गई तथा प्रताप का यश फैल गया।

तब मानसिंह एक वर्ष पर्यंत, प्रताप का, जो उस समय पहाड़ों मे रह रहा था, पीछा करते हुए, युद्ध करता रहा। तदनन्तर वह कुमार अमरसिंह को बइज्जत साथ मे लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। वह माडिल परगने तक गया ही था कि अकबर का दूत उसके पास आ पहुंचा। उसने कहा-"कुमार को छोड कर आप दिल्ली चलें। बादशाह स्वयं यहां आएंगे।"

अकबर का यह विलक्षण समाचार पा कर मान ने अमरसिंह को आदर पूर्वक घर भेज दिया और स्वय दिल्ली की ओर चल पडा।

बादशाह के पास वह अपनी टूटी फूटी बची सेना लेकर पहुँचा। जब उसने अपने पराक्रम की कथा सुनाई तो बादशाह हंसा। उसने कहा-"तुम तो लोहे के होदे में बैठे रहे, इस कारण जैसे तैसे बच सके हो।"

इसके बाद अकबर आया और लम्बे अरसे तक लड़ता रहा। किन्तु प्रताप को बलशाली समझ कर वह आगरा की ओर लौट गया। फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र शेखू आया। लडकर उसने प्रताप को घेर लिया।

प्रताप ने तब अहमदाबाद, गोगूरक, मामरिका, घघेरा, रणथमोर आदि नष्ट कर दिये। उसने तरवराघीश को जीतकर उसके निशान छीने और लालसोटि तथा चाटसू को ध्वस्त कर दिया।

प्रताप शाही सेना से घिरा हुआ था। यह देखकर बादशाह के सेवक खानखाना ने कहलाया कि ऐसी स्थिति मे आप अपने कुटुंब की रक्षा का पूरा ध्यान रखें। उत्तर मे प्रताप ने खानखाना को कहा कि आपने मेरे हित की बात कही है।

तदनन्तर, किसी समय, आशय को समझने में निपुण अमरसिंह बैसेरपुर से खानखाना की स्त्रियो का हरण कर लाया। उसने उन्हे बहिन-बेटियो की तरह वस्त्राभूषणो एव उत्तम भोजनादि से सन्तुष्ट कर कुछ समय तक अपने यहा रखा। बाद में वे खानखाना के शिविर में पहुंचा दी गई। खानखाना को तब बडा विस्मय हुआ। अमरसिंह ने इस तरह बादशाह के गर्व को नष्ट कर दिया।

तदुपरान्त शेखू आगरा की तरफ रवाना हुआ। वह जब बादशाह बना, तब पुनः यहा आया और प्रताप से लडा। उसने चौरासी थाणे बिठाकर महाराणा को घेरा। पश्चात् वह अपने पुत्र खुर्रम को वहा रखकर आगरा पहुचा।

महाराणा बारह वर्षो तक कठोर युद्ध करते-करते थक गया था, परन्तु उसने स्वाभिमान नही खोया। वि० स० १६३५ में कुंभलमेर में युद्ध हुआ। स० १६३७ में वह ढोलाण में रहा।

तब शकुनी ने बताया कि महाराणा के भाले के सिरे पर देवी अवस्थित है। इस कारण प्रताप ने अब शत्रु को मारा ही समझो। इस कथन पर प्रताप को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"बताओ, शत्रु कैसे आएगा ?" शकुनी ने कहा—"शत्रु को मैं लाऊंगा।" तब प्रताप ने कहा कि आप जल्द ले आवें।

शकुनी सेरिमा के घर पहुँचा। उसने कहा कि आज प्रताप के पास सेना अधिक नही है। आप शीघ्र चलें। यह सुनकर, जो भी उसे उसकी मा ने रोका, सेरिमा साथ में बडी-सी सेना लेकर चल पडा। महाराणा के साथ उसके पुत्र आदि थोडे लोग थे। फिर भी उसने सेरिमा से युद्ध किया।

सेरिमा देवेर नामक घाटे में पहुचा। वह हाथी पर था। उसके साथ भरपूर सेना थी। सोलंकि भृत्य पडिहार ने तब उसके हाथी के अगले दो पाव काट दिये। हाथी धराशायी हो गया। कुमार अमरसिंह ने भी तुरन्त हाथी के दांतों पर अपने पैर जमाकर कुंभस्थल को भाले से विदीर्ण कर दिया। भाले प्रहार कर उसने स-सैन्य सेरिमा को मार डाला।

भाला सेरिमा की छाती में ऐसा लगा कि वह खीचने पर भी नही निकला। प्रताप ने कहा—"लात देकर खींचो!" अमरसिंह ने वैसा ही किया। भाला निकल आया।

मरते-मरते सेरिमा ने अमरसिंह के दर्शन करने चाहे। प्रताप ने उसके पास किसी अन्य योद्धा को भेजा। उसे देख कर सेरिमा बोला— 'यह नहीं है। उसीको भेजो।" तब अमरसिंह उसके पास गया, जिस देख कर सेरिमा ने कहा कि इसी वीर के शस्त्र से मैं पवित्र हुआ हूं। अन्त मे उसने पानी मागा। प्रताप ने गंगाजल से भरा सुवर्ण कलश लेजा कर उसे दिया। पीकर उसने मोक्ष प्राप्त किया।

यह विचित्र घटना सुन कर कोशीथल आदि स्थानो पर नियुक्त थाणे उठ भागे। प्रतापसिंह का यश फैल गया।

तदनन्तर प्रताप उदयपुर मे रहने लगा। उसने चोवीस वर्ष, आठ महीने और ८०½ दिन (?) राज्य किया। वि० स० १६५३ मे उसकी मृत्यु हुई।

...Had Mewar Possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the Peleponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse, than the deeds of this brilliant reign amid the many vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude, that which "keeps honour bright," perseverance,— with fidelity such as no nation can boast; were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents. unlimited means, and the fervour of religious zeal; all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind.

—*James Tod*

....Had Mewar Possessed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the Peleponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse, than the deeds of this brilliant reign amid the many vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude, that which "keeps honour bright," perseverance,— with fidelity such as no nation can boast; were the materials opposed to a soaring ambition, commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal; all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind.

—*James Tod*

राजस्थानी-काव्य

साद्रमाला

झूलणा महाराणा प्रतापसिंघजी रा

परिचय

सादू माला महाराणा प्रताप के समकालीन चारण कवि थे। बीकानेर के छठे शासक महाराजा रायसिंह (वि० सं० १६३०-६८) की इन पर विशेष कृपा थी। इनकी कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर रायसिंहजी ने इन्हे दो बार पुरस्कृत भी किया था। इनका रचनाकाल वि० स० १६३० से १६७० तक माना जाता है। अब तक इनकी तीन रचनाएं (१) झूलणा महाराज रायसिंघजी रा (२) झूलणा महाराणा श्री प्रतापसिंघजी रा (३) झूलणा अकबर पातसाहजी रा, तथा लगभग ६० फुटकर गीत व छप्पय मिलते हैं। इनमें से अधिकाश की हस्तलिखित प्रतिया रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता मे संग्रहीत है।

'झूलणा महाराणा श्री प्रतापसिंघजी रा' लगभग ३०० पक्तियो का काव्य है। इसमें मेवाड के रावल बप्पा (वि० सं० ७९१) से महाराणा प्रताप तक के शासको का पहले उल्लेख करके हल्दीघाटी के युद्ध का कवि ने ओजस्विनी भाषा मे विशद वर्णन किया है। भाषा डिंगल है।

प्रस्तुत झूलणा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की प्रतिलिपि के आधार पर यहा दिया जा रहा है। डा० देवीलाल पालीवाल के पास उपलब्ध दूसरी प्रति से पाद टिप्पणियो के रूप मे यथा स्थान पाठान्तर भी लगा दिये गये हैं।

झूलणा महाराणा प्रतापसिंघजी रा

बापै रावल एकलिंग की पूज बखाणा ।
गगानीर पखालिया सूं लख्या पांणां ।।
कुसुम मदार कलार के सिर मुगट धरांणां ।
नद सुरियन्द प्रसन थये मोटा दिवाणा ॥ १ ॥

रावल टेवन मेटिया दे रावण राणा ।
भोमी चक्रवत्य भालिया डाहा वोखांणा ।।
नव ते मद्रविसधरा दीवो खुमाणा ।
हथिमारां वाणारसी हींदू हिंदवाणा ॥ २ ॥

थापिया[1] गव पिराग वड राणा गुरराणां ।
मदवां गग प्रवीत नरं वर घर[2] लापाणा ।।
मोकल कूभा[3] वाहिगा[3] वाग[4] आपाणां ।
सेनल वार[5] प्रसिध[6] थीय वरता[7] वेआणा[8] ॥३॥

रायां मालस अठमा[9] साता[10] महराणा ।
वैठा पाट सग्रामसिघ[11] धर छत्र छत्राणा[12] ।।
हींदू मोडण हींदवां तोडण तुरकाणो ।
गूजर वै मिर गोरीयां दे पमर पयाणां ॥ ४ ॥

गलीया चम्पानेर गढ माहे मैहलाणा ।
कोध व्हसकर पाछिला गा नीर निवाणां ।।
मागण मायर मालगिर[13] उपर उधाणां[14] ।
पिल्चो दल पपरीया साहे सुरतांणां ॥ ५ ॥

---

1 थापियां 2 घर 3 कूंभा वाहिगा 4. वाग 5 वारू
6 प्रसध 7 वरता 8 वेआंणां 9 अठुमा 10 सत्ता
11 सग्रामसी 12 धरांणां 13 मागरे 14. ऊधांणां ।

चीतौड़ाँ वावर विनै[15] मेदाँन मंडाँणाँ ।।
लाँवी वाँह गुसाँइयाँ कुण वास समाँणाँ[16] ।।
ग्रवसे[17] चितै आदमी हर ग्रत्र कराँगाँ
धूम विछूटा तेण दिन लप वदीयाँ ाँ ॥ ६ ॥

मोटाँ[18] सूल सग्रामसी सुरथाँन[19] सिधाँणाँ ।
जिन्हाँ[20] तप ग्रलषसे[21] तपराज कराँणाँ ।।
विकमाईत[22] रतनसिंघ[23] वारा वौलाणाँ ।
उदैसीघ नरसीव नर सिर चमर ढुलाँणाँ ॥ ७ ॥

ग्रमर ग्रपूढ मयद मै नह माण मलाँणाँ ।
विजै पजर सरणाईयाँ हीदू हीदवाँणाँ ।।
पाहाडाँ मेवाड काँ रषवाला राणाँ ।।
भपे लच वगसीयै जामल केकाँणाँ ॥ ८ ॥

च्यारे कूट उग्राहीयै पगाँ ऊत्राणाँ ।
उदोयासिंघ समचरै चीत्रोडाँ राँणाँ ।
गई पहदी दहुँ वराँ दिल्ली पुमाणाँ ॥ ९ ॥ १ ॥

कन्हड़दे हमीरदे माता पषिराणी ।
वदी छोड सयामसिंघ पूठी दादाँणी ।।
जेणतिला जिम पीलीश पूदालम घाँणी ।
नर जाया परतापसी चुणवा चत्रपाणी ॥ १ ॥

सूरज किरण प्रगटीया फिर रैण विहाँणी ।
ग्रन राँणे भेली कीयी पातल विलसाँणी ।।
माँणद जुग जाणीया जाणदै माँणी ।
ग्रकवर साह समचरै श्रासत आपाँणी ॥ २ ॥

---

15 विनेह 16. ऊची ताणां 17 ग्रस्छ 18. मोटो
19. सुरयांण 20 जिणह 21 यलपसै 22 विकताईत
23 रतनसी ।

कुण रापै पांणी अणी के भांत विहांणी ।
पगे पेत प्रतापसी तो नूं तुरकांणी ।।
हू पातल हूं वाहरू हरमन हिंदवांणी ।।
रांणो चाड़े हीदवां ऊनरीया पांणी ॥ ३ ॥

नरि छोडी अनि ठाकुरे जे दीह जूवांणी ।
रांण भलो सुरतांण सू तोरण लगतांणी ।।
वाघो राउ प्रतापसिंघ कीधा मन भांणी ।
पाहाड़ा मेवाड़रां फोजां पुरसांणी ॥ ४ ॥

रांण विरता रांग सिर एहीवीरगांणी ।
वीजा दाड़म वीज ज्यूं रग लीधा तांणी ।।
राणे पांणी रपीया जिम हीरा वांणी ॥ ५ ॥ २ ॥

दोना हाथ जरादीयां सांगाह घसाडै ।
पुरसांणा स्मागरां पग धार घराडै ।।
पनो रा जूभो पापरां वरहास वणाउं ।
वगतर पास उजेलीयै कजरा हर वाडै ॥ १ ॥

पर पंदवेस परतापसी पंडवेस पछाडै ।
पारो आपा पापता महमाल अपाडै ।।
विच पैसे सीसौदीयो व।घारे वाडै ।
सीह जिमो परतापसी ज्यां अवर उजाडै ॥ २ ॥

मेवाडी घर मारवा कुण घायो वाडै ।।
पाषर पंचालो पतो वैठो वां वाडै ।
चहुवाणां जड ऊवडै पहलै परवाडै ।।
तै रिण रीधल राण सू कुण निग्रह नाडै ।।३।।

विण पालीयो प्रतापसी मेवाड उजाडै ।
गिरीस वादन जांणही[24] नालेर न फाडै[25] ।।

---

24 पूजण हीदू देवरी 25 फोडै

षैर पवेड़ा वाहीया किम अम्बा भाड़ै ।
ठाहर ठाहर वाहराँ[26] पँचाहर पाड़ै ।।४।।

राणो थाँणाँ आगली ऊभौ आषाडै[27] ।
भड़ै षेत वुहारीयै[28] षडै ऊधाडै ।।
दिली देस नरेश सूं मँडो मेवाडे ।।५।।३।।

राँण[29] वसीठ[30] परीठवे[31] सुरताँण सुमेले ।
तुलिवा मासू[32] दूसिरा कुण चढिया चेलै ।।
वात करदा वारीया जा किण ही केलै ।
राणम भूल र[33] आवता मुष साह उत्रेले ॥ १ ॥

मे अर[34] देस उथाँमीया षड आप[35] अचेलै ।
अकबर अवराँ ठाकुराँतिण[36] हेलत हेलौ[37] ।।
हीदूपत भाला हथा भुज भारथ भेलै ।
मूहडै राणो मारका मारहथाँ[38] मेलै ॥ २ ॥

धर वैठो भारी घडी[39] अकवर ऊत्रेलै ।
रांणो माण न छुडही असपत आगे लै ।।
साह आलम सीसोदियो षरहड षरेलै ।
फौजां आंमो सांमही ले जगम जेलै[40] ।।३।।

मेवाडो मेले नही ये वात[41] उषेलै ।।४।।

साह प्रधाना पूछीया जाय फिरो चिचालां ।
केहा वोल कवोल[42] की[43] राणा खतालां ।।
राणांज अपर[44] भाषीया वदलै विसटाला ।

---

26 ठाहराँ 27 रखाड़ै 28 जुहारियौ 29 राँणै
30 वसीठ 31 परठुवे 32 मोमौ 33 भूल से
34 अरि 35 आय 36 त्यण 37 हेल त्यहेलै
38 हथ्थां 39 घडे 40 झेलै 41 दात 42 कवूल
43 कियै 44 अख्खर

तिरे[45] न जवै प दकार लग ग्यांही कालां ॥१॥

तव[46] प्रदालग पोजीया[47] सगनेर गभालां ।
दन दुरना[48] पीपीया[49] ज्यू कत[50] कमाला ॥
काहण लागा प्रदकार मुप भाल विराला[51] ।
रांण कहा ऊभा रहै मभ परवत माला ॥२॥

हैं पुह दूजै मेदनी ऊपल आफालां ।
हुई दरगह[52] दाणवां दल चाल विचाला[53] ॥
भेर दमामा काहुला वजे ह्रहाला ।
देस विदेसी क सममीर लग गोड वगालां ॥ ३ ॥

पल कावल दल वदक स्याम चढीया चुगलालां ।
भार निवाहर वेहड़ा कसि विहर कठाला ॥
घाट पाट चिर्य मेदपाट (पछो, दताला ।
जीण पडे श्रोराकिया तग करे कड़ाला ॥ ४ ॥

तडे तरग नागरा जय गिडे वगाला ।
भरी दरगह दांणवा मीरा विकराला ॥
ग्रनि ग्रनि[54] जाति वहादरा वौह भाति वगाला
हीलो हूल भेला हुवा किर नवसे नाला ॥५॥

सागण की वावर सरम[55] तोसू किम टालां
अकवर पातल ऊपरै आरभ अचाला ॥
भाषि[56] असक चढायता नह सव्या पालां ।
कावलिया श्रराकीया[57] पांना पुग्ताला ॥६॥

मेवाडी वर नपीया सिर परवत माला ।

---

45 त्यैंके 46 तद 47 खोजिया 48 दूरतां 49 ज्यूपीया 50 कतक 51 उवराला 52 दरगै 53 मीरां विकराला 54 श्रन श्रन 55 स्यरवर 56 लख 57 श्रराकिया

कैसिर[58] ऊठ प्रतापसी लसकर देठाला ॥
तेज ग्रहे भिड धूणीया तै चली टाला[59] ॥७॥ ॥५॥

तू[60] सांगो तू[61] रायमल आपाणै वारै ।
अरिजण उठ प्रतापसीह पालत्रु[62] पुकारै ॥
तो विण[63] कमण अजान बाह विचत्रां दलवारै ।
रांण पणी सुरताण सूं कुण पधर[64] पचारै ॥ १ ॥

दल दहुं वेढन[65] जांणही कुण जीपे हारै ।
ऊडा पाव प्रतापसी कुले[66] लाज संभारै ॥
मीठा जेण सवादीया मुह ढोया षारै ।
घणे न थोडा ठेलीया करतार विचारै ॥ २ ॥

वीले कष अलष सोई जल पथर[67] तारै ।
वागड वग उपाडीया मैं षग करारै ॥
मो वस[68] माडव मालवो घर भूंजे म्हारै[69] ।
राण उजाडै वनसपति सुरतांण सवारै ॥ ३ ॥

जल जामल परतापसी षल मुगलां ठारै[70] ।
दल सुरताणा सांफले तूं वेढ विचारै ॥
तै दूभर सिर मडीया सीतावर सारै ।
मेवासी परतापसी ल्हसकर[71] तो लारै ॥ ४ ॥

तूझ तणे सिर पाघड़ो मुष मूछ तुहारै ॥ ६ ॥

राण प्रधांन परीछणी[72] जुध घातम पाघर ।
देहन पूरा वैरीया वल छाडे नींसर ॥
फोजा जोर न पूजही कर भारथ भाषर ।

---

58 केहर 59 चाली डाला 60 तो 61 तो 62 पाल तूजि 63 तोन्यण
64 पावर 65 दोय विढैने 66 कुल 67 पाथर 68 वसि 69 घर भुच
महारै 70 मंगल ढारै 71 लसकर 72 परीवणी

दल[73] मरजाद न वध हो दल फट[74] सागर ॥
पर देखे दल हारीया जो किणही कायर ॥ १ ॥

राण कहै आणीजसी सिर हुंतो अमर ।
आ [र] रीयो[75] आहूव[76] में ऊजलो [अमसर] ॥
सेन सुग्र हुआ भटीया ज्यूं वाल्ं केसर[77] ।
मोलू मीढ सपेखीयो सुरताण समहर ॥ २ ॥

हूं पट जाऊ चासउं बंगाल बराबर ।
है चड जाऊं नाम री गढ लहै न गिरवर ॥
भीतरला आलोज वथ सभलांणा बाहिर ।
सादलो[78] परतापसो ऊभो जुध, आदर ॥ ३ ॥

सामो[79] उदीयासींघ को है गे गुड पाथर[80] ।
नाग्यद्रहो लागण न दे[81] रज मेवाडयर ॥
मृडो सूर प्रतापसी रव जोयो अमर ।
वयो प्रवाडो सांमुहो न गयो गिर कदर ॥ ४ ॥

वाको राण प्रतापसो पाधरे विसभर ॥ ७ ॥

बैठा पाट प्रतापसी सिनांन करेवा ।
सिर फुलेल विलेपिया नगा समलेवा ॥
गगाजल ताजो कीयो संपाटो देवा ।
वार कपूर विलासीया सिर कुंभ ढुलेवा ॥ १ ॥

राण अगुछे उठीया चरणोदक लेवा ।
चालि दवारै पधारीया नारायण सेवा ॥
नयणे गुरडासण तणो दरसण देपेवा ।
परसे नाथ सुनाथ थीय[82] दिस[83] वले विढेवा ॥ २ ॥

हर अपर फुरमावीया तस काम करेवा ।

---

73 दल 74 फाटै 75 आदरियो 76 आहूव 77 केहर 78 सादूलो
79 सामहो 80 कौह गेगूडी पाथर 81 नक्यूं 82 सनाथ थये 83 देस

सिंघासण आसण कीयौ जूसण पहरेवा ॥
असिसै देखे निजर उणिहारी एवा ।
झल हल कमल प्रतापसी षल विमल वहेवा ॥ ३ ॥

पाघ सरोवर[84] जमघजा[85] वांघी वांघेवा ।
जल यक ताई अरगजै भडल भीजेवा ॥
अलोयल भमर भणकीया तौ परमल पेवा ।
राण कथूरी[86] कुमकुमै धांधण ऊषेवा ॥ ४ ॥

पहरे होर पजार भूषल[87] पड[88] कलह करेवा ।
पहरे राग पनाग पेट मौजू मेलेवा ॥
वगतर हाथल कठ टोप वप जड़ जुडेवा ।
केलपुरो उठोयौ कलह जमदाढ़ जड़ेवा ॥ ५ ॥

अगलूंणा उग्राहसी किलवासूं केवा ।
वाधी कमर हमीर हर ऊजलौ करेवा ॥
पडीयालग परतापसी कसीयो कलहेवा ।
दाणव[89] अवर डोलीया भुजडड डहेवा ॥ ६ ॥

राण छत्रीसैडावीयौ वाली विलसेवा[90] ।
आयौ उदीयासीघ की पर दल परणेवा ॥ ॥ ८ ॥
चढीया राण प्रतापसी पाषर पट होडै ।
नाल पड़ै रे ताल सूं वृज पाए फोडै ॥
नरद विलेपे नापोयो केका करोडे ।
घोड़ै चढोयौ पचमुप कुण राणौ रोडै ॥ १ ॥

से जीपे ओलै[91] गिरा घर पाये गौड़े ।
राण न जावै भापरे अणदीधे रोडे ॥
वेधौ सागा वावरा कुल मारग दोडै ।

---

84 सरोवर 85 जसघजा 86 किसतूरी 87 अजार स खल 88 कलह
89 दायण 90 बतीसे डाविया वाडी विलसेवा 91 सेजाये वोले

वरिवामे सिर मरोया नरवरी मोड ॥ २ ॥

गोरी जिण दिन चीतगढ तुरका गढ तोडे ।
तिण दिन कीया जैमलो ज्यू हणमत पोडे ॥
साम सुकल[92] सीसोदिया आगां गाढोडे ।
अगपत सूं माघो अवर तो जिम कुण तोडे ॥ ३ ॥

उर घरके पिसुणा तणा तो सकीये घोडे ।
फौज कवारी कध[93] नू गज दंत मरोडे ॥
बीजो[94] वगाल्हा तणा कुण मूहडा मोडे ।
राणा निवाहर पैडीयां घर वाहर घोडे ॥ ४ ॥

[तुर] का ऊपर वाजीया[95] चचल[96] चीतोडे ।
राण मुलका सें घणो घर हुंदे गोडे ॥
राणा र वदा मांमुहा पड आयो चोडे ॥ ॥८॥

हल्दीघाटी ऊपरै दल वाज[97] अवाई ।
सू डाहल डडाहलां दमाम घुराई ॥
सामा राण दिवारिया नीसांण त्रघाई ।
दोय दल देठालै हुवा सोजता[98] पाई ।
फौज वरवर[99] निजर भर अर पाघर[100] आई ॥ १ ॥

गज पय सावण घटा दामण दरसाई ।
काली मेवट[101] कूंजरा ऊपडी अछाई ॥
राण वपर अस पपरै हैजफ हलाई ।
चामड डक सवाहोया हक नारद वाई ॥ २ ॥

जोगण पफर मडीया पल रत[102] अवाई ।
नाला[103] गोला परीया[104] की सोर सभाई ॥

---

93 कदल 94 वाजां 95 ताजियां 96 चचाल 97 वाजि 98 सोभंतों
99 वरावरि 100 अरि पाछरि 101 मी घट 102 रत्त 103 न्यालू गोला
104 पूरिया

सोर पलीता गड़डोया[105] हथ नाल हत्राई ।
घर पडसादे परवताँ किर गैण गजाई ॥ ३ ॥

विच सिलहाँ फूटै पतंग छूटे चिलवाई ।
उ [-ाँ] डी पल ष—डाँकीया धाइ देष पराई[106] ॥
वामन[107] चूकै वाहताँ जाय साच सराई ।
काढे सेल सिलाहराँ पिड पवग[108] पुलाई ॥ ४ ॥

चाके हाके चाढीया भण[109] भाई भाई ।
उर वारे मेलीया[110] अणी दल ऊपर दाई ॥
पैठा जाँण प्रलव दल जल लका खाई ।
ऊपर दूभर वोरिया कथ राँण रहाई ॥ ५ ॥

साच मना सीसोदिया श्रीनाथ सहाई ।
आवध उदीयासीघ ऊत दल विचित्र वधाई ॥
अनडे घाटे औघट कल कीध नकाई[111] ।
पातल पंडवेसाँ पडी मैदान लडाई ॥ ६ ॥ ६ ॥

सागण वावर वडाधर आखियात उवारी ।
विण[112] आचार वसधरा पतसाह पियारी ॥
अकवर साह प्रतापसी दिल हुई पारी ।
धरती कारण झूवीया आपाँणी वारी ॥ १ ॥

रीठ पडे पंभणोर सिर फौजाँ हलकारी ।
लाग[113] पडण पंचाहरण कल थई करारी ॥
रेण भडाँ घड[114] लोटीया आरोण[115] अकारी ।
डाल विछूटे डाडगं तूहे[116] तरवारी ॥ २ ॥

आवध टूक उडाडीया सिर चोट दडारी ।

---

105 गडियई 106 ऊचंडिया उपडाँखिया धाय देख पराई
107 वाण न 108 पमग 109 भणि 110 मिलिया 111 न्यकाई
112 तिण 113 लागा 114 घड़ 115 आरेण 116 त्रूट

हूवे करंगल बरघना हूलघार सवारी ।।
कुण आपे बीजो ग्रहे घर ऊपर म्हारो ।
माल कलोधर माझीया धायो हलकारी ।। ३ ।।

राणे रीसाणे धकै कुण पट पनारो ।
राण भला बोलाबीया[117] सुरताण उधारी ।।
मेल फलां हूल सावलां गलबांह कटारी ।
सेलांरा[118] सीसोदिया पीयो भारथ भारी ।। ४ ।।१०।।

राण भला बोलाविया सुरताण पयांणे ।
बांहला वगान दल तो ऊपर माणे ।।
तू[119] जुटि जांणे जवन दल तूहीज तुटि ताणे ।
धारो वार प्रतापसी ससार सजाणे ।। १ ।।

तें मेवास पछाडिया वाणास ऊवांणे ।
तें वेवें दल आरिया[120] धाराल[121] धांणे ।।
तो दल नाथ वजाडीया पल हाथ प्रमाणे ।
थारो कीयो[122] राण साह जुग सगलो जांणे ।। २ ।।
साते दिस[123] सभलावसी ए वात विहांणे ।। ११ ।।

वाहां वल बीजो कीयो रामायण राणे ।
राण सहाय छतीस वस आया यलगारां[124] ।।
आडा कमधज ओढीया[125] परहंडा धारां ।
मुगलां पेलो मोहरो तू चर तिण वारां[126] ।। १ ।।

भर माथे भाला तणो झाला जूझारां ।
काम तणो किणीआगरां माथे परमारां[127] ।।

---

117 बोलाविया 118 सीलारां 119 तां 120 ओरिया
121 धाराला 122 कीधो 123 दस ही दिसा 124 यिलगारां
125 ओढ़िया 126 तों वरत्यण वारां । 127 पर मारां

अगी चहुवाणाँ ओरीया[128] चचल चौधाराँ ।
दूभर माथै डोडीया ऊडीया अपाराँ[129] ॥ 2 ॥

सिघ ढोया सोलो कीया अति वाँण[130]अगाराँ ।
नरनायक नी जोडीया पायक पड़िहाराँ[131] ॥
साची[132] सूरातन तणी परतीत पमारा ।
गौडा गैहलौता तणै सूर तन सभाराँ ॥
वालीसा वगाल दल हैजप[133] हथीयाराँ ॥ ३ ॥

पाव मुहे पडोया लगाँ तूटै तोपाराँ[134] ।
राणी विचै रिहाँ मणो[135] वणीयो तिणवाराँ ॥
हीक[136] कीयां हलकारतै आपणा अयाराँ ॥ ४ ॥

सिर चढीवौ[137] सीसोदीयो सोहीयौ सेलाराँ ।
आलूझै अत्रावली वणोयौ तिणवाराँ[138] ॥
रिडै रगत्र सगत्र[139] पत्र भरोया कर भाराँ ।
पाल वहै रूहिराल का पडनाल पयारा ॥ ५ ॥

लट छूटा तूटा कमळ धर[140] फूटा धारां ।
जाणक मट उपटीया[141] विच हट रगारा ॥ १२ ॥

राण विछूटे वादले मुष कमल निराले ।
झल हलियो फौजा विचौ जे ही किरणालै ॥
वूडी भार विचार सार छड डडै कालै ।
पीलै सोनै धार झल कूभाथल भालै ॥ १ ॥

पाट हमत परतापसी आही[142] आझालै ।
फाडे गज भाखर समेत पाघर प्रोचालै[143] ॥

---

128 वोरिया 129 वोडिया अयारा 130 अगवांण 131 परमारां 132 माराँ 133 हैजम 134 तोखारां 135 रहवणी 136 हेक 137 चढते 138 सूरां सिरदारां 139 रेडे रगत सगत 140 घट 141 उपट्टिया 142 आयो 143 पूंचालै

जड़ीयौ रांण अचायरज अणीयाळ ताळ ।
पायौ राणो[144] पोलवांन वरछी वांहाळ ॥ २ ॥

अणी टणके घट सूं कंठ सोभावाळ[145] ।
अवर काढी माछटे हर सोला[146] भाळ ॥
वारण निर आरांण मुह मगल ऊझाळ[147] ।
काढी रेढां मेनती नूअतै चलू आळ[148] ॥
मेननिसाणी कटीया[149] पाळे रुहिराळ ।
उतरियो सारग की नारग प्रजाळ ॥
गिर जटा घर घर हरे जन्ह गगा नाळ ॥ १३ ॥

आघ[150] पडे लसकर उभै ममहर मवाटो ।
केकाणा केवाण मुंह थीयौ नेट निवडो ॥
पडवेसा लागो पतो अममर औभाडो ।
हुल हाथल है वै[151] दला पड भोक भराडो ॥
[भां]जे कंघ अगघीया अर[152] घड़ा विनाडो ।
परगह[153] पापतीयां पडे थीयो[174] आप उघाडो ॥
लागो लापण हर घणी वह सद वावाडो[155] ।
औलपीयो असपत दले असवार औनाडो ॥ २ ॥

भार निवाहर दुहुँ भुजे मडीयो मेवाडो ।
नीचो बोल न आणीयो जे ऊचीताडो ॥
प्राभौ पातल पर दला असपत भीभाडो ।
दीह अवाडो की करै श्री नाथ सवाडो ॥ ३ ॥

थीयो नागद्रहे निसहरे कुरपेत अपाडो[156] ॥ १४ ॥

---

144 खाई राणे 145 भाळ 146 सवलां 147 ऊकाळ
148 काढी सेलां ढाम ढलति चुवतै चुगलाळ । 149 सिलयो
रांणे कढ्डिया 150 थाक 151 वहै 52 अरि 153 परिगह
154 थय 155 ववाडो 156 कराड़ो

कवत ॥

तूं उतर भड घड किवाड, आटो पुरसाणा ।
सुरताणा केवाण मुंह, तैं मलीया माणा ॥
असपत घडा पभणोर, सिर धग्गी वर बंधह ।
चकता तणा चटावीया, सोह केवा कमधह ॥
तुडताण डाण चढताहरे, पुरसाणो फोजा पिसो ।
मूभने[157] हाथ मडाडीया[158], हवै पाव परतापसी ॥ १ ॥

इति प्रतापसिंघजी रा कूनगा सम्पूर्ण ॥

लिखित बारहट किशोरदानन जोधपुर मध्ये विक्रम संवत १९७२ प्रथम वैसाख सुद्ध ३ ईस्वी सन् १९१५ तारीख १७ अपरेल —

हस्तलिखित पुस्तक प्रगने पाली रा गाम वसी रा आसीया चारण नुमेरदान री से नकल कीदी । विक्रम सवत १८६३ रा दुनिक सावण वद ६ ने गाम भदोरा रा सांदू चारण हूंणूदान जी गाम भदोरै लिखी तिण पोथी री आ नकल छै ।

---

157 मूडने 158 मडाविया

सारांश

वापा रावल ने एकलिंग भगवान की पूजा अर्चना की। उससे देवाधीदेव प्रसन्न हुवे व उन्हें यह भूमि (मेवाड) प्रदान की। राजवंशो में श्रेष्ठ इन राणाओं के वंश मे मोकल, कुम्भा व सेतल अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। इस वंश मे आठवां शासक रायमल हुआ जिसका उत्तराधिकारी संग्रामसिंह था। संग्रामसिंह ने वावर से युद्ध किया। धर्म का परित्याग करने की अपेक्षा (युद्ध में कट कर) मर जाना ही श्रेयस्कर है। अत (यही समझ कर) संग्रामसिंह वावर से युद्ध करके सुरलोक सिधार गए। महाराणा संग्रामसिंह के उपरान्त क्रमशः रतनसिंह, विक्रमादित्य एवं उदयसिंह मेवाड के अधिपति हुए। महाराणा उदयसिंह के उत्तराधिकारी सूर्य की किरणो के सदृश्य महाराणा प्रताप हुए जिनने अन्धकार को नष्ट किया। दिल्ली के नरेश के साथ इसका युद्ध हुआ। प्रताप ने सन्देश वाहक को अकबर के पास भेजा।

वादशाह ने सोचा कि राणा सम्भवतः भूल से (मेरा विरोधी बन कर) आ गया है। (क्योंकि) मैंने तो अनेकों शत्रुओं के देशो को नष्ट किया है। अकबर प्रताप को भी अन्य ठाकुरों की भांति ही समझता था। विशाल साम्राज्य वाले अकबर ने सोचा कि राणा अपनी आन को नही छोडेगा। अकबर राणा को आधीन करने के उद्देश्य से फौज लेकर पहुचा। अकबर ने अपने प्रधानो से कहा राणा से जाकर सन्धि की शर्तें तय करलो। लेकिन राणा ने उलटे विष-युक्त वचन कहे अर्थात सन्धि हेतु तत्पर नही हुआ। अत: अकबर को अपनी तलवार सम्भालनी पडी। राणा ने भी भयकर रूप धारण कर लिया, व पर्वतो के मध्य जाकर खडे हो गए, इससे पृथ्वी थर्राने लग गई। इस युद्ध में अनेक जाति के योद्धा एकत्रित हो गए थे। सब ने मिल कर सोचा कि यह तो वावर व सागा के बीच जैसी स्थिति बनी थी वैसी ही बन गई है। अकबर असंख्य सैन्य दल लेकर प्रताप पर चढ आया था। मेवाड भूमि पर कावुली, ईराकी, खान, खुरासानी आदि कई (जाति के) लोग आ गए। केशरीसिंह के सदृष्य राणा प्रताप ने उठकर सेना को देखा। अपने घरो को छोडकर जूझने हेतु अनेक योद्धा आ पहुँचे। राणा ने भयकर युद्ध किया।

राणा प्रताप स्नान करने के लिए पाट पर विराजे। स्नान के उपरान्त नारायण के दर्शन व पूजा करने मन्दिर के द्वार पर गए। राणा प्रताप अपने दरवार मे बैठे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। राणा ने युद्ध परिवेश धारण किया। अपने दल को लेकर मुगलो का दर्प दमन करने हेतु आ पहुँचा।

हल्दीघाटी के मैदान में प्रताप अपने अश्वारोही दल सहित पहुँचा । दोनों दल आमने सामने आ पहुचे । युद्ध आरम्भ हुआ । भयकर मारकाट होने लगी । योद्धाओं ने ऐसा युद्ध कभी नही देखा जैसा राणा प्रताप ने देखा है । खमणोर के मैदान में भयकर घात-प्रतिघात होने लगी । वैसे तो मुगल दल बहुत सेखी बघार रहा था लेकिन राणा के साथ युद्ध छिड़ जाने पर उनकी दशा अत्यन्त बुरी हो गई । क्षत्रियो के छत्तीसो कुल राणा की सहायता के लिए आ पहुचे हैं । कमधज (राठौड) होडिया, चौहान, सोलंकी, परमार आदि जातियों के योद्धा प्रताप की सहायता के लिए आए है । जब सिसोदिया प्रताप भाला लेकर आगे बढ़ता है तो कई सर-दारो की उसमें आते उलझ जाती है । रक्त से (योगनियों के) पात्र भर जाते है । रक्त की नदिया बहने लगती है । सिर कट कट कर गिरते हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई घड़ा फूट गया है व उसमें से जल की धारा बह निकली हो । प्रताप भयकर रूप में पर्वताकार हाथियो को हौदो सहित रोदता हुआ प्रसन्न मुद्रा म आगे बढ़ रहा है । राणा आगे बढ़ा व उसके हाथ का भाला महावत के लगा । उनका भाला योद्धाओ को धराशायी कर रहा है । हाथियो के सिर पर जब वे प्रहार करते हैं तो हाथी चिंघाड़ते है । राणा प्रताप की धाक से शत्रु सेना थर्रा रही है व घोडे मुह के बल पछाड खा खा कर गिर रहे हैं । कई शरीरो को राणा की तलवार ने काट डाला व भयकर रूप में बढ़ रही है । कई शत्रुओ के कधे काट डाले गए इससे वे तडफते हुए गिर पडे । इनका शौर्य देख शत्रु पहचान गए कि यह अश्वारोही विकट है । इसने मेवाड को अपनी दो भुजाओं पर थाम लिया है और उसे ऊपर उठाया है अर्थात् उसका गौरव बढाया है । नागद्रहा कुरुक्षेत्र के समान हो गया है ।

हे प्रताप ! तूने (अकबर को) अपने मुंह से सुलतान नही कहा । खमणोर के भयकर युद्ध में मुगल सेनाओ को पीछे खदेड़ दिया ।

राजस्थानी-काव्य

दुरसा आढा

विरूद-छिहत्तरी

परिचय

दुरसा आढा का जन्म गाव धूंदला (जोधपुर) मे विक्रम सं० १५९२ मे हुआ। ये आढा गोत्र के चारण थे। इनके पिता का नाम मेहाजी था। दुरसाजी के बाल्यकाल मे ही मेहाजी की मृत्यु हो जाने के कारण बगडी गाव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका लालन-पालन किया। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर एव अकबर के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। कहा जाता है कि इनकी कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर अकबर ने इन्हे लाख व करोड पसाव दिये थे। लोकप्रिय तथा यशस्वी कवि के साथ-साथ ये वीर योद्धा भी थे। इनके दो पत्नियाँ व चार पुत्र (भारमल, जगमल, सादूल व किसना) थे। ये प्राय. सबसे छोटे पुत्र किसना के साथ गाव पाँचेटिया (जोधपुर) मे रहा करते थे। वही विक्रम स० १७१२ मे इनकी मृत्यु हुई। इनके निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते है :—

(१) विरूद छिहत्तरी (२) किरतार बावनी (३) राजा मानसिंघ जी रा झूलणा (४) श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर गोरी नी गजगत (५) चाल फनेस माताजी रो छन्द (६) विविध फुटक गीत व छन्द।

प्रस्तुत 'विरुद छिहत्तरी' प्रताप की वीरता, प्रशसा एवं अकबर की तुलना में प्रताप की महत्ता को स्पष्ट करने वाला छिहत्तर सोरठो का काव्य है। भाषा सुबोध एवं शुद्ध डिंगल है।

दुरसा आढा कृत

विरूद छिहत्तरी

अलप पुरूस आदेस, देस बचाय दयानिधे ।
वरणन करू विसेस, सुहृद नरेस प्रतापसी ॥ १ ॥

गढ ऊंचो गिरनार, नीचो आबू ही नही ।
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥२॥

कलजुग चलै न कार, अकबर मन अंजस युही ।
सतजुग सम ससार, परगट राण प्रतापसी ॥ ३ ॥

अकबर गरब न आण, हिन्दु सह चाकर हुआ ।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहड़ै ॥ ४ ॥

सुणता अकबर साह, दाह हिये लागी दुसह ।
बिसमल्ला बदराह, एक राह कर दू अवस ॥ ५ ॥

मन अकबर मजबूत, फूट हींदवा बे फिकर ।
काफर कोम कपूत, पकड़ू राण प्रतापसी ॥६॥

अकबर कीना याद, हिन्दू नृप हाजर हुवा ।
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी ॥ ७ ॥

मेछाँ आगल माथ, नमै नही नरनाथ रो ।
सो करतब समराथ, पावै राण प्रतापसी ॥८॥

बुहा बडेरा वाट, वाट तिकण वहणो तिकण ।
षाग त्याग षत्रवाट, पूरो राण प्रतापसी ॥ ९ ॥

चितवै चित चीतौड़, चिता जलाई सो चतुर ।
मेवाड़ो जग मोड, पावन पुरूष प्रतापसी ॥१०॥

कदै न नामै कध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सूरज बंस संबन्ध, पाळै राण प्रतापसी ॥ ११ ॥

अकबर कुटिल अनीत, और विटल गिर आदरे ।
रघुकुल उत्तम रीत, पालै राण प्रतापसी ॥ १२ ॥

लोपै हिन्दू लाज, सगपण रोपै तुरकसूं ।
आरज कुल री आज, पूंजी राण प्रतापसी ॥ १३ ॥

अकबर पथर अनेक, के भूपत भेला किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥ १४ ॥

सागो धरम सहाय, बाबर सूं भिड़ियो बेहद ।
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥ १५ ॥

आपै अकबर आण, थाप उथापै ओ थिरा ।
बापै रावल बाण, तापै राण प्रतापसी ॥ १६ ॥

सुष हित स्याल समाज, हिंदू अकबर वस हुआ ।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥ १७ ॥

अकबर कूट अजाण, हिया फूट छोडै न हठ ।
पगा न लागण पाण, पणधर राण प्रतापसी ॥१८॥

है अकबर घर हाण, डाण ग्रहे नीची दिसट ।
तजै न ऊंची ताण, पोरस राण प्रतापसी ॥ १९ ॥

जाणै अकबर जोर, तो पिण ताणै तोर तिड ।
आ बलाय है और, पिसणां पोर प्रतापसी ॥२०॥

अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै ।
रजवट वट समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥२१॥

अकबर मारग आठ, जवन रोक राषी जगत ।
परम धरम जस पाठ, पढियो राण प्रतापसी ॥२२॥

अकबर समंद अथाह, तिहं डूबा हिन्दू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥२३॥

अकबरिये इकबार, दागल की सारा दुनी ।
अण दागल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥२४॥

अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर ।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥२५॥

जग जाड़ा जूझार, अकबर पग चांपै अधिप ।
गो रायण गुंजार, पिड मे राण प्रतापसी ॥२६॥

अकबर फनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपति ।
अनमी रहियो एक, पुहमी राण प्रतापसी ॥२७॥

करै कुसामद कूर, करै कुसामद कूकरा ।
दुरस कुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ॥ २८ ॥

अकबर जग उफाण, तंग करण भेजे तुरक ।
राणावत रिढ राण, पाण न तजै प्रतापसी ॥ २९ ॥

हलदीघाट हरोल, घमंड उतारण अरि घडा ।
धारण करण अडोल, पहुँच्यो राण प्रतापसी ॥३०॥

थिर नृप हिंदूथान, लातरगा मग लोभ लग ।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥ ३१ ॥

सेला अणी सिनान, धारा तीरथ में धसे ।
देण धरम रण दान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥३२॥

ढिग अकबर दल ढाण, अग अग झगडै आथडै ।
मग मग पाडै माण, पग पग रांण प्रतापसी ॥ ३३ ॥

दिल्ली हूंत दुरूह, अकबर चढियो एक दम ।
राण रसिक रणरूह, पलटै केम प्रतापसी ॥३४॥

चीत मरण चाय, अकबर आधीनी बिना ।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥ ३५ ॥

तुरक हिंदवां ताण, अकबर नायो एकठा ।
मेछा आगल माण, पाण रुपाण प्रतापसी ॥ ३६ ॥

गोहिल कुछ धन गाढ, लेवण अकबर लालचो ।
कोटी दे नह काढ, पखधर राण प्रतापसी ॥ ३७ ॥

अकबर मच्छ अयाण, पूछ उछालण बल प्रबल ।
गोहिल-वन गह राण, पायोनिधी प्रतापसी ॥३८॥

नित गुघलावण नोर, कुंभी नम अकबर क्रमै ।
गोहिल राण गभीर, पण गुखल न प्रतापसी ॥३६॥

उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लागा पिसण ।
देहीगार वकार पैठो उदियाचल पतो ॥ ४० ॥

अकबर दल अप्रमाण उदैनपर घेरं अनय ।
षागा बल पूमाण, साहा दलण प्रतापसी ॥ ४१ ॥

देवारी सुर द्वार, अड़ियो अकवरियो असुर ।
लडियो भड़ ललकार, पोला खोल प्रतापसी ॥४२॥

रोके अकबर राह, लै हिन्दू कूकर लपां ।
बीभरतो बाराह, पाडै घणा प्रतापसी ॥ ४३ ॥

देखै अकबर दूर, घेरो दै दुसमण घड़ा ।
सागा हर रण सूर पैर न पिसै प्रतापसी ॥४४॥

अकबर तडफ आप, फतेकरण च्यारू तरफ ।
पण राखो परताप, हाथ न चढै हमीरहर ॥४५॥

अकबर किला अनेक, फतै किया निज फौज सू ।
अकल चलै नह एक, पाधर लडै प्रतापसी ॥ ४६ ॥

दुविधा अकबर देख, किण विध सू घायल करै ।
पमंगा उपर पेख, पाखर राण प्रतापसी ॥ ४७ ॥

हिरदै ऊणा होत, सिर घूणा अकबर सदा ।
दिन दूणा दमोत, पूणा ह्वै न प्रतापसी ॥४८॥

कलपै अकबर काय, गुण पूंगीधर गोड़िया ।
मिणधर छाबड़ माय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥४९॥

महि दाबण मेवाड, राड़ चाड अकबर रचै ।
विणै विपायत वाड, प्रथुल पहाड प्रतापसी ॥५०॥

वधियो अकबर डेर, रसत गेर रोकी रिपू ।
कद मूल फल कैर, पावै राण प्रतापसी ॥५१॥

भागै सागै भाम, अमरत लागै ऊमरा ।
अकबर तल आराम, पेखै जहर प्रतापसी ॥५२॥

अकबर जिसा अनेक, आहव अडै अनेक अरि ।
असली तजै न एक, पकडी टेक प्रतापसी ॥५३॥

लघण कर लंकाल, सादूलो भूखो सुवै ।
कुल वट छोड़ कृपाल, पैंड न देत प्रतापसी ॥५४॥

अकबर मैंगल अच्छ, माझल दल घूमै मसत ।
पचानन पल भच्छ पटकै छड़ा प्रतापसी ॥५५॥

दती दल सू दूर, अकबर आवै एकलो ।
चौडे पल चक चूर, पल मे करै प्रतापसी ॥५६॥

चित मे गढ चित्तौड, राणा रै खटकै रयण ।
अकबर पुन रो ओड, पेलो दौड पतापसी ॥५७॥

अकवर करै अफड, मद प्रचड मारग लगै ।
आरज भाँण अखण्ड, प्रभुता राण प्रतापसी ॥५८॥

वट सू ओघट घाट, घसियो अकबरियो घणो ।
डल चनण उप्रवाट, परमल उठी प्रतापसी ॥६०॥

बडी विपत सह वीर, बड़ी कीत षाटी बसू ।
धरम धुरधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥६१॥

वसुधा किय विख्यात, समरथ कुल सिसोदियां ।
राणा जस री रात, प्रगट्यो भला प्रतापसी ॥६२॥

जिण रो जस जग माँहि, जिण जग थिन जीवणो ।
लेणो अपजस नाँहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥६३॥

अजरामर धन एह, जस रह जासी जगत मे ।
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रतापसी ॥६४॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा ।
पुन-रासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥६५॥

सफल जनम सुदतार, सफल जनम जग सूरमा ।
सफल जोग जगसार, पुर त्रय प्रभा प्रतापसी ॥६६॥

सारी वात सुजाण, गुण सागर गाहक गुणां ।
आयोडो अवसाण, पातरियो न प्रतापसी ॥६७॥

छत्र धारी छत्रछाँह, धरम धाय सोयो धरा ।
वाह गह्यारी वाँह, परत न तजै प्रतापसा ॥६८॥

अंतिम येह उपाय, विसंभर न विसारिये ।
साथे धर्म सहाय, पल पल राण प्रतापसी ॥६९॥

मनरी मनरै माहि, अकबर रै रहसी अकस ।
नर वर करिये नाहि, पूरी राण प्रतापसी ॥७०॥

अकबरियो हत आस, अब पास भाखे अधम ।
नाखै हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥७१॥

मन मे अकबर मोद, कलमाची धारै नकुट ।
सुपना मे सोसोद, पलो न राण प्रतापसी ॥७२॥

ऐ जो अकबर काह, सैधव कुंजर सांवठा ।
बांसै तो बह ताह, पजर थया प्रतापसी ॥७३॥

चारण बरण चितार, कारण लख महमां करी ।
धारण कीजै धार, परम उदार प्रतापसी ॥७४॥

आभा जगत उदार, भारत वरस भवान भुज ।
आतम सम आधार, प्रथवी राण प्रतापसी ॥७५॥

कवि प्रारथना कीन, पडित हूँ न प्रवीण पद ।
दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव सरण प्रतापसो ॥७६॥

[सु ग्राह्य भाषा, मुक्तक रचना एव किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना-क्रम के नही होने से इसका सारांश यहां देना आवश्यक नही समझा गया है ।]

... ..There is not a pass in the alpine Aravulli that is not sanctified by some deed of Pertap,—some brilliant victory or oftener, more glorious defeat. Huldighat is the Thermopylae of Mewar; the field of Deweir her Marathon.

—*James Tod*

राजस्थानी-काव्य

विद्दुर वायक्क

मामा-बावनी

परिचय

'भामा–बावनी' का रचयिता विदुर वाचक था, इसका उल्लेख छन्द संख्या ५३,५४ एवं ५५ में मिलता है यथा – 'विदुर वाचक वखाणी (५३)' 'भाषीस विदुर इम उच्चरइ (५४)' 'आसीस विदुर इम उच्चरइ (५५)।' इससे अधिक जानकारी रचनाकार के बारे में नही मिलती ।

'भामा–बावनी' सर्व प्रथम श्री अगरचन्द जी नाहटा ने बाबू श्री पूर्णचन्द्र जी नाहर (कलकत्ता) के सग्रह (गुटका सं० ६६) से प्राप्त कर 'शोध-पत्रिका' (वर्ष १४, अंक २ पृष्ट १३५ से १४७ तक) में प्रकाशित कराई । इसकी पुष्पिका के अनुसार श्रावण शुक्ला ११ संवत् १७३१ के दिन जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के शासनकाल मे मेड़ता नगर मे इसकी प्रतिलिपि की गई । छन्द सख्या ५३ के अनुसार इसका रचनाकाल वि स० १६४६, आश्विन शुक्ला पूर्णिमा है । श्री नाहटाजी के पास इसकी एक अन्य प्रति भी है जिसके अनुसार इसका रचनाकाल वि० सं० १६४८ है ।

इसमें कुल ५६ छन्द है । प्रथम छन्द में ॐकार–स्तुति है । दूसरे व तीसरे छन्द में भामाशाह के वश, गुरु, धर्म, जाति आदि का परिचय दिया गया है । छन्द संख्या ४ से ५२ तक में भामाशाह को सम्बोन्धित कर नीति परक बातें कही गई है । अन्तिम चार छन्दो में इसका रचनाकाल, कविका नाम आदि दिया गया है । भाषा डिंगल–पिंगल मिश्रित राजस्थानी है ।

नीति–परक रचना होने के कारण इसे यहा पूरी नही दी जा रही है, केवल छन्द संख्या २ व ३ ही जो भामाशाह का परिचय प्रदान करते हैं, प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

विदूर वायवक कृत

भामा-बावनी

नृमन गच्छ नागोरि ज्ञानि देपाल जिस गुर ।
दया ध्रम्म दाखिये, देव चडवीस तिथकर ।।
पिरियावटि पृथिराज, सांड भारमल्ल सुणिज्जे ।
जमवत बावव जोड, करण कलीयाण कहिज्जइ।।

ताराचन्द लखमण राम जिम, थित थो भण जोडी थ यो ।
कुल तिलक अभग कावेडिया, भामो उजवालण भयो ।। २ ।।

मूल पेड़ भारमल्ल, साख कावेड़िया सोहइ ।
पुत्र पौत्र परिवार, मउरि मभण दति मोहइ ।।
लखमी नित लखगुणी, फालव्या सुइज फूल फल ।
विस्तरियो जसवास, कोर कवि करइ कतूहल ।।

विस्तारघणउ चिहुँ खड विचइ, जुगि आलंवणि एहजण ।
कलिकाल इन्द्र पीथल कुलइ, भामउ कलपत्तरू भवण ।।३।।

सारांश

भामाशाह श्वेताम्बर जैन की तूमल गच्छ शाखा के मानने वाले थे। दया, धर्म, धर्म रखने वाले और चौबीस तीर्थंकरों को मानने वाले देपाल इनके ज्ञानी गुरु थे। पृथ्वीराज के कुल में भारमल्ल हुआ। भारमल से कावड़िया शाखा निकली। भारमल के जसवंत, करण, कलियाण, ताराचन्द भामाशाह नामक पुत्र थे। पुत्र-पौत्र समेत लम्बा चौड़ा परिवार था। भारमल की पत्नी अनेक गुणों वाली थी जिससे उसका वंश फला-फूला और सर्वत्र कीर्ति व्याप्त हुई। इस कलिकाल में पृथ्वीराज के कुल में भामाशाह कल्पवृक्ष के समान हुआ।

राजस्थानी-काव्य

दयालदास कृत

राणा रासो

परिचय

'राणा रासो' के रचयिता दयालदास भूतपूर्व मेवाड़ राज्य के राशमी जिले के गळूंड परगने के निवासी थे। फूलेरया मालियो के यहा पर इनकी यजमानी थी। ये राव जाति के भाट थे। इनके जन्म, मृत्यु या जीवन काल के बारे मे इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

यह 'राणा रासो' कब लिखा गया ? इसका उल्लेख प्राप्त ग्रन्थ मे कही नहीं मिलता। इसकी एक प्रति साहित्य-सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के सग्रहालय में उपलब्ध है। ग्रन्थ के अन्त मे इसका लिपिकाल वि० स० १६७५ बताया गया है। प्रारंभ के छन्दों में महाराणा जयसिंह [वि० स० १७३७–१७५५] तक के मेवाड़ शासको का नामोल्लेख हुआ है, किन्तु कवि ने महाराणा कर्णसिंह [वि० स० १६७६–१६८४] तक के काल की घटनाओं का वर्णन करके ग्रन्थ समाप्त कर दिया है। इसके बाद महाराणा जगतसिंह [वि० सं० १६८४–१७०९] राजसिंह [वि० स० १७०९–१७३७] तथा जयसिंह [वि० सं० १७३७–१७५५] का वर्णन नही किया गया है। इस दृष्टि से इसका लेखन काल अभी भी संदिग्ध है। साहित्य-सस्थान का शोध विभाग इस सम्बन्ध मे खोज कर रहा है। अगर इसका लिपिकाल वास्तव में वि० सं० १६७५ ही सिद्ध होता है तो इसका रचनाकाल भी प्रताप की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद का ही होना चाहिये।

यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमे मेवाड़ का आदिकाल से लेकर महाराणा कर्णसिंह के राज्याभिषेक तक का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसकी भाषा पिंगल और डिंगल मिश्रित है। ग्रन्थ मे कुल छन्द ६११ है।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ के छन्द संख्या २३६ से ४६४ तक अर्थात् पद्य सख्या ३२ से ६६ तक मे आया है। प्रस्तुत अंश में से ऐसे अंश हटा दिये गये हैं जो ऐतिहासिक घटना क्रमों पर किसी प्रकार से प्रभाव नही डालते व कवि ने जिन्हे साहित्यिक रूप देकर विस्तृत किया है। मूल ग्रन्थ मे २४९ तथा ३१८ सख्या वाले छन्द दो-दो हैं। अनुसन्धित्सुओं के हित को ध्यान में रख कर यहा प्रस्तुत अंश में भी छन्द क्रम में कोई परिवर्तन नही किया गया है।

राणा रासो

दोहा

उदयासिंघ नरिंद हर, उपज्यो पुत्तु प्रतापु ।
जा जसु सुर नर नाग मुख, ज्यो जनमुख हरि जापु ।।२३६।।

सोंनगिरी जननी जन्यो, गन्यो अवनि महि एकु ।
दांन दयन रन अरि मलन, चलन विनान विवेकु ।।२३७।।

सत्ति वचन रूचि सचरै, हुज दारिदयर दाउ ।
जनरजन जग अवतर्‌यो, मनहु जुजिष्ठलु राउ ।। २३८ ।।

भागनेयु भाटीनिको, सकतसिंह लघु बंधु ।
सुर आसुर संका करै, धरै धीर धर पंधु ।। २३९ ।।

सुतन पच राठ्योरिके, सगर, अगर, जगमालु ।
साहि पचाइनु जाहि वलु, निजु कीरति कहुँ कालु ।।२४०।।

सिसुताई ते सगर को, दुष्ट दिष्टि अनुसारू ।
सवगुन गनि कवि को कहै जिर योधन अवतारु ।।२४१।।

कवित्त

सबै कुमार कुंमार रमैं, चोगान चोज चढि ।
वारी वार विनोद मोद, क्रीडंत सैल कढि ।।
सकल कला परवीन, दीन दारिद दुख भंजन ।
सरस सपरधा मद्धि, विरस लाखनि धनु खजन ।।
ऊदा नरिंद आनद मन, पिक्खि पिक्खि सुत सिंघ सम ।
जेठो प्रतापु परताप करू, अजरू अमरू रजपट्ट रम ।।२४२।।

सुत सपूत सब जानि, रान जोगंत व्रतु मड्यो ।
ऊरध पवनु चढाइ, प्रान मूरध मग छंड्यो ।।

वेद वचन परवांनि, सकलु हित सुक्रतु कीनो ।
पाट ठाटि परतापु, छत्र छत्रीपति दीनो ॥

फिरि आन कान ससार, सुखु दुखु मलेच्छ छत्ती छयो ।
वज्जै निसान हिंदवान हद, मद गयद महु सुक्कयो ॥ २४३ ॥

पद्धरि

सुक्कहि गयद नीसान घुंक। घुक्कहि क लद क र फेर फुंक ॥
चुक्कहि मयद चिक्कार फाल। दुक्कहि दमित तजि मित बाल ॥
रूक्कहि श्रवन ससार सोर। डुक्कहि फनिंद करनाइ घोर ॥
मुक्कहि अजाद महि सिंधु मेर। ढुक्कहि विवांन चढिके कुबेर ॥
भुक्कहि विरचि कर खिचि भक्र। लुक्कहि तिलच्छि आतंक कंक ॥
सव सभा जोरि परतापु साहि। नहिं हिंदु जोन सम होंन ताहि ॥
सिर आतपत्रु आसन मयद। चल चालु चारु चांमर ठयद ॥
तम तुच्छ तीनिगुन सुच्छ अग। उर मुत्तिहार जन धार गग ॥
गहि गदा हत्थ मनमत्थ गात। कसि के क्रिपान अरिथान गात ॥
जमडाढ वधि जमडाढ रूप। भुज दच्छि वाम अन्नेक भूप ॥ २४४ ॥

दोहा

भूपनि भूप अनूंप गति, पड बस विश्रांमु ।
गोपाचल पति अचल रन, दच्छिन भुज प्रभु रामु ॥२४५॥

सुतु सपूत ढिग साखां, तोवर तिहुं पुर कित्ति ।
दिल्ली सुर कुरू जावलो, दस दिसि गुन अनमित्ति ॥२४६॥

गीतामालती

अनमित्ति कित्ति पवित्त अ तर, रामु दच्छिनई भुजा ।
महराजु राजुतु पंडवसी, रान रूख मुख रव रुजा ॥
उत सभरेस नरेसुर, सग्राम राउ रजप्पती ।
चिरु चंद्रपाट पगार रच्छकु, गांन कित्ति गजप्पती ॥
दलपत्ति नंदु गयद गजनु, भार भंजन साहिनो ।
चहुवांन रांन धुरा धुरधरू, इक्कु भरु खित्ति खडनो ॥

पतिसाहि सालु विसालु द्वे कुल, चालु पारु परद्दलं ।
प्रतिपालु स्वामिघरमु घावनु, घारु वीरु वलीवल ॥२४७॥

भुजंगीप्रियात

वलवीरु झाला विराजतु वीदा ।
सुने नाउ जा सूर के पूर सीदा ॥
महीथभु माना मड्यो मेरू मानो ।
पुहमीति डूगा पवारं वरवानो ॥
तिही मड मांडन कूंपा सुतनं ।
उरं सुद्ध स्वामी तु सोई उतनं ॥
वरवीरु वीरमनंद प्रताप ।
कमघुज्ज के धाम स्वामी न जापं ॥
मुत जैमल रामदासं रठ्योर ।
पर भुंमि जाकित्ति पाठ पठ्योरं ॥
वली वागरी वीरु चोंहानु नाथा ।
दुलीचा दुवीचा लरे वोथि वाथा ॥
रूखं रान रावत्तु मीसोदु नेता ।
चमूं साहिकी वाहि जांने प्रचेता ॥
पवार पहार मुमा रखव सूव ।
सभा रान की जान धीरज्ज धूवं ॥
भर भीउ साडा सुत डोडियां को ।
हित स्वामि तजावर वीरू नाको ॥
मह मूदु पठ्ठानु तठ्ठान वेठ्यो ।
सुनें साहिकी वात को गात श्रेठ्यो ॥
तहा सेरखा खान को चाहुवान ।
लखे लोइन देत श्रा रानु मान ॥२४८॥

दोहा

रांनु मानु छिन छिन करे, खेत जेत खग वारु ।
तारा चहुँ सूरजु तहा, खडन तने पँवारु ॥२४९॥

पद्धरि

परसिद्ध बीरु बोरे पवारु । खल खग्ग मग्ग खंडन गवारु ॥
चहुवाँनु रानु भरु बिजयराजु । अरिजन विहग कहुँ अंग वाजु ॥
पुरबिया बस आलमु रठ्योरु । पर अनी पिक्खि भरु भिक्ख भोरु॥
परिहारु पच्छि सेदूस कज्जु । सुनि नाउ ठाउ अरि सजे सज्जु ॥
अचला गुपालु कल्यानु मानु । परचड वस चोडा गुमाँनु ॥
भरु भाँनु मांनु सोनिगरे सु । समानु रानु अप्फै असेसु ॥
निसि द्योस अंग संग जग जापु । मरजाद मेरु मामा प्रतापु ॥
अति अंगमान आजान बाहु । अमरा कुमारु अरि देस दाहु ॥
परताप इद्र सुर सभा भूप । अधिकै अधिक्क तन तेज रूप ॥२४९॥

मुरिल्ल

गजि भुजा गुजरात अकब्बर ।
बधि लए कर बीर सकब्बर ॥
फेरि चल्यो करि फोज नियद्धर ।
सूकि सरित्त भरित्त घटे सर ॥२५३॥

चौपाई

तिहि समअं मति महा विसालू । मत्री खत्री टोडरमालू ॥
पेखन सो आयो परताप । रान खुमान मानु दिय आप ॥२५४॥

दोहा

पाट पटवर पावडे, डारि वारि वितवाँन ।
भोजन घन सनमान भति, अति हितु राख्यो रान ॥२५५॥

कवित्त

रान नरिंद करिंदु, इक्कु राख्यो मुख अग्गह ।
लयो न टोडरमाल, चाल द्वापर वर जग्गह ॥
पच कोम पहुचाड, ताहि पातुल घर आयो ॥
चलि खत्री दर कूच कूच अकब्बर पद धायो ॥

सिरुवार सत्त घरि चरन सम, रम ठट्ठोरहि नाइ सिरु ।
दिल्ली सु पॅम पूछतु तव रान खुमांन चरित्त चिरु ।।२५६।।

चौपाई

संमत सम सोरह परतोस । चयो साहि सहु खत्री ईस ।
राजा कहे सुनहु सुरितान । मैं सव सुने कुरान पुरांन ।।
ऐसो भयो न व्है है आनु । जैसो जग पर पातलु रानु ।।२५७।।

कवित्त

धरमराज सम सत्ति मत्ति दध्धीच दत्त गत्ति ।
पुरिखारथ जस रत्थ भरथ भर पंथ भीम भति ।।
अहकार दस माथ पेज रघुनाथ कहै कवि ।
विक्कमु भोज करन्नु थान हिंदवान जानि रवि ।।
राजाधिराज राजानि मनि उदेसिंघु खुमान सुव ।
नन कक साक आतकु मन मेदपाट आघाट भुव ।।२५८।।

भुवपत्ती छत्री सु वसी तोवरु त्रीनेतु तह ।
गोपाचल थल नाथु माथु कुरु पंड मंड मह ।।
रामसाहि राजाधिराज सिरताजु खंड नव ।
ता गुन गुनन समत्थु सेसु कै व्यासु व्यास भव ।।
तिहि संग पुत्तु अदभुत्तु इकु सूरु साहिवांहनु सुवर ।
मानतु रानु प्रभु थान करि देत मानु दूल्हौ न कर ।।२५९।।

चौपाई

सुनि पुनि अलपु जलपु कहै साहि । दिली महि दुखु न दिखावे ताहि ।।
आंन वहुत आखै सुविहानु । इक्कु राउ आडो चहुवानु ।।
वोल्यो तो न हिमाऊ वापु । गहि गजो न जोन परतापु ।।२६०।।

कवित्त

गजो रानु खुमानु, कहै मुख साहि अकव्वरु ।
सकल भूप वस भए, नही वस रानु सकव्वरु ।।

भुमियाँ के परधानु, थान दै या दिन राखै ।
मूंछिनि पर धरि हाथ, नाथु दिल्ली को भाखै ॥
जीवन्तु जिम्मि मझह गड़ों, ज्यों न दलौ परताप दलु ।
सग्राम राउ सग्राम कों, इक्कु खित्ति खटकतु खलु ॥ २६१ ॥

दोहा

खलक सुनत आई खबरि, करी पुकार पुकारि ।
रांना प्रबल प्रताप ने, दीन्हे देस प्रजारि ॥ २६२ ॥

कवित्त

जारि बारि जालोर, ओर आभा करि डारिय ।
कोट ओट डिढ ढाहि, भीति भीतिनि सहु पारिय ॥
खहरि खभ खन ढहरि, घहरि धर धूंम धूमि मचि ।
फौज सिरोज फिराइ, फूकि पूर फोरि तोरि तचि ॥
परताप रान परताप करि, भरि परताप प्रचड पहु ।
उडि खेह खित्ति खहलोकु, मुदि खंख भाख महनत तहु ॥ २६३ ॥

कहइ साहि महमदु, जलालु जरि ज्वाल अकब्बरु ।
पकरि लेऊ परतापु, आपु गहि चापु सकब्बरु ॥
तोवर पर गज घट्ट ठट्ट फेरों फल अपफों ।
चकचूरो चहुवांन. चित्तचिता न तरप्फो ॥
गढ मढ गिराइ करि धूरि, धर धाँम धाँम घन कढ्ढिहो ।
साग्राम राउ साग्राम कहु, गाहि ताहि तन गढ्ढिहो ॥२६४॥

साटक

सोरट्ठं मरहट्ठ मट्ठ करिय, पैठानं ठट्ठाठिक ।
कै कट्ठंय कठेरियां ठट ढिल, रट्ठग रिट्ठाथिक ॥
का भोजं करनाट कच्छ कदला किंकिंधि बिंध्याचलं ।
गजि मे गुजरात गौर गरुग्ग धधूनि सिंधु बलं ॥
रुमी भुमिय झुंमि झारि झगरं झझोरि झार खड ।
रोह कोह विद्रोह पीयत्तियय लोहत्त लोहं डडं ॥२६५॥

पुव्वेयं परदेस पच्छिम मही पंचाल चंचालयं ।
अगे वंग कल्यंग अग्गि दग्गियं तिलिंग मंतालयं ।।
मारूव मुलितान मालवलयं खंडेय मंडोवरं ।
उड्डीस गुड्डवांन मान मालियं मल्लार छडोवरं ।।
भज्जि भक्खर गक्खरे खग मगं गंजे अगंजे भर ।
सोहं साहि जलालु सालु सकल कित्ती कराल धरं ।।२६६।।

दोहा

ज्यूं हाटे पर की पुंजी, मींडतु, हत्थ जुंवारु ।
हरियो कर मीडतु फिरै, कलमलि कंजक वारू ।।२६८।।

दोहा

खल भल हल दल सजतकी, सब जन तन मन काज ।
रखत वखत उदमान निजु, सकल रहे सजि साज ।।२७२।।

भुजंगीप्रियात

मतंग उतग सजे साहि गाजो ।
लखैं लोइन जाति अैराव लाजी ।।
किधौ पाइ पंख कुल अट्ठ खाए ।
किधौ सद्दल वद्दलं स्याम आए ।।
किधौ पावस मावसं पूत जाए ।
किधौ अजन मंजन मजि लाए ।।
किधौ दिग्गज नेक रूप दिखाए ।
किधौ काल के बाल ह्वै क्रोध धाए ।।
तम ताभ सतेज अोतार पाए ।
किधौ कज्जल कूट के जोट ठाए ।।
किधौ सिण्टि की स्यामता के बनाए ।
किधौ कुंड चडी परीयो सुनाए ।।
भई ईस को रीसता के उपाए ।
बडे कोट सजोट तातें लुपाए ।।

किधौं कालिका सुंभ नीसुभ छेह।
तहा रोस दोस धरी जांनि देह ॥
जिन्हे धावत ठावत पाइ पब्बै।
नही चारु चिन्ह भए भूकु सब्बै ॥
धरा धध्धरै न धरे धीरधारी।
धुरा लाजके साजकी दूरि डारी॥
लसे दत की कति रत्ती न हीनी।
कुहूनै किधो चडिका चोरि लीनी॥
किधो घोर अधेर की भीत्ति बड्डी।
ससी कौमुदी की खुटी तठु गड्डी॥
चुवै पाट चोहूँ बसी बोह बाटं।
चरख्खी दुरुख्खी निरख्खी अघाट॥
सदा साघ बधंति अदू बिराजे।
मद गंद अंध छपे छांह छाजे॥
गहै खित्ति उख्खारि डार न कज्जे।
परै छार हत्थ उछारे तिखज्जे॥
सनेन वने अखि ढंकी उछारी।
लसी लेस मीरेस मीरासि नारी॥
घन घूघर घोर घटा ठनक्क।
कपी मड मैरि ति नैरी कनक्क॥
झलक्कति झूलं दुकूल कसब्बी।
लखे कोतिकं मीर तज्जी तसब्बो॥
लसे लाल ढाल मुरा तब्ब-माही।
झंडा झाड डड सु सोमा सराही॥
मनो तार खज्जूरि सम्मेत सैलं।
चलै गैल मानो दलै ओनि अेलं॥
सितासित्त पीत रत्त कीर पखी।
वनी वैरखं वीजु आ भा असाखी॥
सुनै गाज लाज समुद्द जलद्दं।

भनै उप्पमा को नही मासु भद्दं ॥
लरै लोपि तो काल कु'चालु पारें ।
मही मदरं मेर को फेरि डारै॥
सदा पूर सिंदूर भाल विसाल ।
मनों स्याम गाती मढी मेघमालं ॥
किधौ भानवी भारती भोसु मेलं ।
किधौं दामिनी दाम जीमूंत भेलं ॥
इसे बीस हज्जार गे इक्क अग्गं ।
लगें माम मे कोस द्वै नीठि मग्गं॥
कर कांन पोनं परै टुटि पव्वै ।
उडै तूल फूल समदेव सव्वै ॥२७३॥

कवित्त

उड़त देव दिग्गज अछेव अहमेव टेव गत ।
बुडत कूट चपि चारि खूंट छूटत अछूट सत ॥
जुडत जिच्छि नन सकत गच्छि कह रच्छि रच्छि हर।
खुड़त सेखु धरिआनु भेखु कलपत लेखु थर ॥
धर धरि धरन्नि धीरज्जु तजि डर हरि टुटि पततु नभु ।
भर भरि विरचि यो उच्चरैं थभि थभि कूरंभ प्रभु ॥२७४॥

त्रोटक

कवि कोनु अकब्बर सेनु गने | सव सोभ कहत कहे न बने ॥
सवते पहिले सक सँद सजे | नग नाग डरान निसांन बजे ॥
कसि राग अदाग वखत्तरय | नहिं आवत मान चखत्तरय ॥
दसतांन वितांन वनाइ वन | पहुँची पहुँचेनि सुठोक ठन ॥
जरि जूसन मूसन हूर हिय | अन भग अगा अग सग किय ॥
जिरहे तिरहे जिय व्हे जतन | जनु कढ्ढण फेरि चले रतन ॥
मन मनिय इक्क हजार मुखी | सजि टठ्ठर टोपनि ओप सुखी ॥
सजि नेत सचेत ति चामरय | गज गाह अथाह ति डामरयं ॥
टइया वनि भिड भँडा अटर | कर कुंत कमान कसे कटरं ॥

तरवारि तरक्कस तीर तह । जमुवा जम डाढ जमूर जह ॥
तुपक दुपकपनि सपिनि सी । नव नारि लई नभ कंपनि सी ॥
सजि खान उजीर तिमीरखडे। लखिये चख अग सजोव गडे ॥
सजि कूरँभु मानु अमानु कय। जिहिँ पाइय पुब्ब अपुब्ब जय ॥
गजराज विराजत अग्ग गजे। भहराइ भ भीखनु भूपु भजे ॥
चढिके परचंड चले चकता । कुल दानव देव लखैं थकता ॥
उजवक्क अतग्गति खग्ग खरे। सरवानिय पनिय अग्ग सरे ॥
अन नढ्ठ पठान कठांन अग। किररानिय ककर नेम नग ॥
चढि गख्खर गुंगति डुंगर से। गहि खग्ग खँधारिय धीर धसे ॥
खुरसानिय जे मुलितानिय के। रिपु राह रुहिल्लरू रूमिय के ॥
नहिँ मात मयान मयाँननि मे। फिरगी फुनि सार सयाँननि मे ॥
हवसी अवसी सुनि हल्ल हक। तन पावस मावस रेनि तक ॥
जटि तेष चले सक सेख जदे। लहु दीरघ लादिय लोह लदे॥२७८॥

दोहा

लोह लदे जवनी जदे, पारसि बदे प्रवीन ।
कजलवास कस काबिली, कवो स्वाँमित लीन ॥ २७६ ॥

रावन राम मडी मनू देव दनो कुर-पंड ।
रान पता पर पख्खरे, अकबर भर बलिबंड ॥ ३०१ ॥

वचनिका

जुरन जग अकबरु अनभंग। दिग डेरा अजमेरि दुरगं ॥
अद्ध निसा ऊरध आनंदे। ख्वाजु खिदिग्गि अकबर भर वदे ॥
करि अरदासि पास ही सोयो। सपने ख्वाजु मोनदी जोयो ॥
भई अवाज ख्वाज दरिगाह। ले ले जिमी जिती चित चाह ॥
पुनि सुनि जब पूछै तब एक। हमो कह्याँ सो सुकुनु विवेकं ॥
करो जाग घट्ट कुम्भु कुम्भारी। तवन अवन बम रानु तुम्हारी ॥
सुनि धुनि पुनि जग्यो सुरितान। अदर तलब नही कछु आन ॥
गडो गोर जीवत सुनि माई। के गहि देहु रानु मो ताई ॥

पीरू कहै सुनि साहि दिवानैं । ना तुम गडो न गजहु रानै ।।
सब मदार साई के मत्थे । आदि न अब आदम के हत्थे ।।
जाग्यो भरकि साहि भुनसार । चित्त व्यापी चिंता वेपारं ।।३०६।।

सोरठा

चौबीसा चीतौर, उदैसिंघु अकवरू अरे ।
चौतीसा कलि ओर, चढि प्रताप जल्लाल दो ।।३०७।।

पायाउल

सुन्यो साहि अजमेरु अकव्वरु । दल बल प्रवल दुरिद अड्डरु ढरु ॥
इत भर रान थान थिरु साध्यो । मोगरू घाटु ठाटु वर गध्यो ॥
जीन साल सजि जामिनि जग्गे । निहस निसान वीर रस वग्गे ॥
सिलह सहित भख भोजन पावत । सिलह सहित निसि नैन लगावत ॥
कहै सारिवाहनु तोवरू तव । गरव न होहु सरवु गाफिल अव ॥
खीची रामु सरिमु तिहि भाखी । एकलिंग अव लहु रम राखीं ॥
अकवरु सवरु सदनु चढि आयो । करहु सु करहु वेगि अभि भायो ॥
आपु दिवान कान गुदरावहु । फुनि सुनि ज्वावु वेगि फिरि आवहु ॥
रामा कहै भार तुम पितु भुज । आपुनु चलो कलो करिवे सुज ॥
तिहि छिन तुरी तीनि पल नाए । द्वै असवार द्वार नृप आए ॥
सब अरदासि दासि सहु जपी । तिह प्रभु पातल सरिसु पयंपी ॥
ज्यो मृगु मृगी जूथ महि गढ्ढो । त्यो रनिवासु पास नृप ठढ्ढो ॥
ज्यो अछरी वीचं आखडलु । त्यो पति भासु पासु त्रिय मंडलु ॥ ३०८ ॥

दोहा

त्रिय तन नैननि सेन दै, दीनी सब बहुराइ ।
करि सनमान कुंवार को, भीतर लये बुलाइ ॥ ३०९ ॥

पानदान आगे धर्यो, अरू घनसार बदाम ।
कहै रानु कहो कुँवर जू किहि तुम आये काम ॥ ३१० ॥

चौपाई

रान खुमान बैन सुनि कान। बोल्यो तव सारिवा सुज्यांन ॥
वब्बर कुल रवि अकबरु साहि। चढि आयो चित चिंतन काहि ॥
सकतसिंह तिन संग सहाइ। कूरँ भु मांनु अमानु कहाइ ॥
ज्यो जोखै अहि पति सिर भारु। पावे सो अकबर दल पारु ॥३११॥

कवित्त

सुनि आगमु सुरितानु रानु परतापु आपु हँसि।
कह्यो कितो जवनेसु कहा करि है सुदेस धसि ॥
सकतसिँघु संग खान मान सजि कोटिनि लावे।
सपत दीप नवखड मंड सत्थइ धरि धावे ॥
पद्धरे खेत तो खग्गु गहि नेत वंध खल खंडि हों।
राजाधिराज रन राम वर जुद्ध सनंमुख मंडि हों॥ ३१२ ॥

वार्ता

यह कही श्री दीवान नगारै दीवे को हुकम दीनो। सिलहदारु हजुर ही बुलाइ लीनो। असवारी के घोरे मंगाए। सब ठाकुरनि के बिलहने पठाए। आपुन सनधवध भए। तब कर जोरि कुवारु तोंवरु सारिवाहनु कहत भए। यो श्री दीवानु कहा लरिका को डरपाऊँ। आपने इतवारी मन्त्री बुलाऊँ। दीवानु विचारि हैं सुकरि हैं। पुनि विचार की कामु विचारि ही सुधरि हैं। यह सुनि धुनि सुनि पुनि दीवानु महाराजा राम साहि के पधारे। राजा जु सनमुख आइ पांवडे डारे। मन्दिर अन्दर ले सिधारे ॥३१३॥

दोहा

वैठि तहां विनती करी, हौं किनि लयो बुलाइ।
आइसु देइ दिवान जू, सो सिर लेइ चढाइ ॥३१४॥

दोरि नकीव जहां तहां, खवरि दई लै नाम।
सुनि धाए आए सकल, नृपति राम के धाम ॥३१५॥

पद्धरि

सग्राम राउ संग्राम मेरु। अवनीकि आइ बैठ्यो कुवेरु ॥
वरु बीदु मानु झाला वईठ। पतिसाहि सोर लज्याय ईठ ॥३१६॥

भुजंगी

तहां डोडिया भीउ हूगा पवार। परत्ताप भांने जु भो कोदवार ॥
गुभ्यो संभरी सेरखा रान पास। चढ्यो चित्त चोंडावतं भाग भास॥
पता पूतु कल्यानु सग्यानु सूरो। दुरग्गू हरद्दासु चोहानु रुरो ॥
खिजे ग्वडनो हान चोहानु नाथा। भर भाखरोत प्रयागं समाया ॥
कमग्घुजु आलंमु जालिम्मु दंद। अरीहारु ओनी परीहारु नंद ॥
करै सुद्ध टेहूहि मेहू कसांन। उठे दूदु आगे महगूदु खान ॥
भुमा मानसिंघ उमा देह मानो। जूरे कूपु जैमालु खैमालु जानो ॥
न हे वार पार कहे मडि नामा। भुवं भारु कंधा परख्खानु भामा ॥ ३१७ ॥

दोहा

भामासाह समेति सव, सुभ्भट निकट नरेस।
सुर आये जनु असुर वध, पुछन मंत्रु महेस ॥ ३१८ ॥

चोपाई

राम नरिंदहि पूछत रानु। करजुग जोरि कोरि सनमानु ॥
परमराज तुम वसी पंडं। एक छत्र भुगतै अथखंडं ॥
राजा जू जोई उच्चरें। सोइ हम हुंस्यार कै करें ॥ ३१८ ॥

मुरिल

रान खुमान कहे ए वायक। उत्तरु दीनों राम सु भाइक ॥
मैं छिति छडी छोभ इही छल। आजु मुगल्ल इला अप्पर वल॥३१९॥

दोहा

कांठो दे गिरवर गहो, माठो और विचारु।
फेरि घेरि चहु ओरते, मीरनि दे हे मारु ॥ ३२० ॥

चोपाई

जितीक बुद्धि मेरे मन रही। तितो दिवान सरिसु हम कही।
अवजु विचारु विचारहु परे। सोइ खुमानु अेही रिवन करें।।३२१।।

दोहा

सुनि धुनि दुल्लहराम की, ताम हँस्यो सबु साथु।
दुरिद राम संकन लगे, पकरि हाथ सों हाथु ॥ ३२२ ॥

विरध बहुतु जीयों चहें, ज्‍यांन अजांन अयांन।
विनु मुगलनि निरवीर धर, आजु सुनी हम कान ॥ ३२३ ॥

रार बिचारि सबै रहे, क्यों न विचारी राम।
राजा पीठि रहाइ कै, निज जुरिये सग्राम ॥ ३२४ ॥

चोपाई

यह सुनि पुनि राजाउर भख्खै। वहुतु जिये सोई बहु लख्खै ॥
वहुरि वंदी हों मते अबूझू। प्रात दिवान पारियें जूझू ॥ ३२५ ॥

दोहा

यह थपि अरु अरचै सबै, जपि जुहारु दिय पान।
करि हजूर गजु वाजि बिम, दरस मदे दीवान ॥ ३२६ ॥

सुनी दोत के होत ही, जग रान सुरितान।
सूरनि के मुख नूर चढि, कातर नर कुम्हिलान ॥ ३२७ ॥

कवित्त

जिहि रन राम नरिंद दद हिंमाऊ भज्यो।
वरु हाडिया नसीर खांनु गहि खग्गह गज्यो।
सेरू साहिदलु दाहि ठोर खुटहार छुड़ाई।
नरवर करिवर वधि सेन अरि सीत जुड़ाई।
समसेर खान सममेर हनि रिवनि पव्वाउ पछारि पर।
सोपर उपाटि अरि काटि कर डाटि मीर घालेति घर ॥ ३२८ ॥

दोहा

तिहि रन राम नरिंद मन, यह धारी निरधार।
सीस समपो रान थर, ईसु लहैं उर हार ॥ ३२९ ॥

वावू वीरू भदोरिया, फुंनि फट्टुलु चत्रभुज्जु।
खांडे राइ बुलाइ लिय, बुद्धसेनि रवरुज्जु ॥ ३३० ॥

वाधा

सकसिघा राठ्यौरु समत्थं। कृष्णदासु वागरिया तत्थं ॥
डुंगरु पित्थु तिरथु तिन सांई। कीरति सिंघु सिंघ सम धांई ॥
चोलति खानु मानु दै लोने। नृप कुल करनु चरनु आधीने ॥
ईसरु अरु पृहुकर पुनि आये। सुभट हेम कट्ठु मुकट तहँ ठाये ॥
तह तोवरु भगवान भुजाल। चिडवरु वाच तु राचित चालं ॥
अरु राघो तोंवर तह वोले। जिनके वचन रचन अन डोले ॥
अभैचद अभिदंद उछाह। विलहनिया तिन विरतु पुछाहं ॥
हठ्ठु तने छीतर चहुवानं। देवीचंदु संभरी सानं ॥
अरु तोवरु तिरनेतु दुरग। सुमिरतु वासु विचारु सुरंगं ॥
मिश्रु कल्यानु ज्ञान गुन मेर। तिनि सुं कहे रामु तिहि वेर ॥
सवु सनमधु सुद्ध जोधाऊ। पाइनि परि सारिवा रहाऊ ॥
ईसुरु तुंगु मिश्र कल्यान। पहुँचे जहँ सारिवा सुजानं ॥
अति सादरु आदरु कर कीय। वैठत दूत वरावरि लीयं ॥
कुंवरु कहे किरपा क्यों कीनी। दाखहुं सिख सुराम नृप दीनी ॥३३१॥

दोहा

जपत दूत सपूत सुनि, सुनो पुरानी सारिव।
राजमड भुजडड तो, पड वसु वर राखि ॥३३२॥

गाथा

जग्गै रानु खुमान। भग्गै चोर रोर भय मान ॥
वग्गै नद्द निसान। डग्गै मग्ग कातर चित्तं ॥३५९॥

भुजंगीप्रियात

डिगे कातर चित्त मित्त उदोतं । जगो रानु खुम्मानु प्रभात होतं ॥
हुकंमं भुकमं निसानं वजानं । महाघोर सोरं समुद्द लजानं ॥
सजे आपु सनाह रनाह काजं । मिली मुच्छ भोहं अरोहं तवाजं ॥
वटै त्रारगोर जटे साज सोह । ठटे वख्खरं पख्खरं मुख्ख लोह ॥
पटे पाट दञ्चोट अञ्चोट बंधे । चढे जत्थ तत्थं कढे उद्ध कंधे ॥
जिन्हें धावत धाप व्हे की धरनी । लजी चंचला चचलाई चरनी ॥
हठे होड धावे हरावे हरनं । नठे जान पावैं न पखी सरनं ॥
हनूं फाल उच्छाल पु छाल थोरे । पवन गवन मन मान मोरे ॥
पनंगारि द्वै चारि जो देह धारे । परे होड पूरी वहो नोठि पारे ॥
सज्यो राउ संग्रामु संग्राम सूरं । मनो उप्पटे अवु अबोधि पूर ॥
दयो दुंदुभी घाउ ढोलं ढनंकं । सहनाइ सुनांइ सिंधू सनंकं ॥
भहनाइ भेरी नफीरी निसानं । चढे बीदुं मांना सु भ ला रिसानं ॥
सुनी राम राजा चढ्यो रानु साई । हुवं सोरू हीसान नीसांन घाई ॥
डडा फूंक हत्थ जिते घान वाजे । तिते वज्जनं बज्जिय रामु साजे ॥
र वद्द स वद्द तिनद्द अवाजे । किधो एक ही बार तीलोक गाजे ॥
चढ्यो राम राजा वढ्यो तेजु गात । घनो कोनु जपै मनो भानु प्रात॥३६०॥

दोहा

प्रात पतग समान मुख, रातु चढ्यो मुख राम ।
सुत समेत आवन कहै, रान स्वामि के काम ॥ ३६१ ॥

फोज चली मुख फोज के, इलि पुहमी परि पावु ।
डग मग नग जग मे मडी, ज्यूं जल ठाली नाउ ॥ २६३ ॥

कवित्त

डगमगातु ब्रहमडु मड भोडर प्रदीप सम ।
डगमगात हय सात जात आवंत ठट्टुकि ठम ॥
खगमगातु खन मुख्ख जुद्ध उर सुद्ध विलोकन ।
सगमगातु सरकतु सेसु धुकत्त जनु धोकन ॥
परताप काज परताप कहुँ, राम साहि तोंवर चढत ।
झमकत वाज चमकत मुनि, जुग्गिनि गन जय पढत ॥ २६४ ॥

दोहा

रान जुहार्यो रान नृप, सुत अरु सुभर समेत।
जिन आयो राजा द्रुपदु पडव परि करि हेत ॥ ३६६ ॥

कवित्त

सज्यो रानु संगामु नामु जो जोह अकव्वर।
पंच सत्तु असवार सार की धार सकव्वर ॥
सव वर वखतर वध वंव सव वध इक्क मन।
ज्यो चढि आवै कालु चालु तो परिदे ईरन ॥

अरि दलन राइ दलपत्ति सुव ध्रुव समान चहुवान चित।
संभरि नरेस भुज सेसवर सारु भारु स्वामित्त हित ॥ ३६७ ॥

दोहा

पडव सतु असवार सो, झाला वीदा मानु।
पचु सतु सग्राम नृप, पचसत्तु प्रभु रानु ॥ ३६८ ॥

तिहु पुर कपि दयाल कहि, ज्योतर चल दल पानु।
हरदी की घाटी धस्यो, जिहिँ दिन पातलु रानु ॥ ३७२ ॥

कुंडलिया

वाहुरि कहै कुँवार सो, सुधि आयो नृप राम।
तुम वहुरो हठु जिनि करो, हों आऊ ह्यां काम ॥
हो आऊ ह्यां काम, सकलु कुलु सुत पुतियारो।
हम झूझत तुम फिरो, अेबु याको न विचारो ॥
अबु न या को पूतु, पूत बालकु हठ आहुरि।
वहुरि जुद्द वहुवार, सुद्ध मन अवके बाहुरि ॥ ३७३ ॥

दोहा

कहै सारिवां तातकत, कातरु बोलो बोलु।
सो प्रभु सुत को राखि है, ज्यो राखे भूगोलु ॥३७४॥

दोहा

यह कहि हंकि तुरी चले हले दलेसुर सेल।
सिंधु थले दिग्गज गले मले हत्थ दनु ऐल ॥३७६॥

कुंडलिया

लघु दलु देखि प्रताप तँह पूछतु राजा रामु।
तुमकि कहि तोंवर तहां मोहि मरन सू कामु ॥
मोहि मरन सूं कामु मतो जाने तिन पूछो।
सुत सुभरनि सम लहो होहुँ गरुवो कँ तूछो ॥
इच्छा होई सु करो न तो सुमिरो हरु बक अघु।
दानो सुन्यो कि देउ हो न जानो दीरघु लघु ॥३७७॥

दोहा

महिला मिलनु दुल्ल भु हुव,रन गहिला मन लाज।
खमसि खेत खम्हनोर के, दुहु दल बहुल अवाज ॥३७९॥

उत अकबर बब्बर तखत,बखत सबर उर रीस।
आइ अनी मुख पर उठो, हय हजार पच्चीस ॥३८०॥

जिनके मुख लाली चढी, चढे सुने सुरितान।
ते अपने मुख राखियो, लाली क सहि दान ॥३८१॥

दस अकब्बर बब्बर दुरस, संग सहस दसमान।
चढि आवै राजा कहे, तस दनु समयो रान ॥३८२।

यह कहि राम नरिंद ने, हिय सुमिरी हर सिद्धि।
जो सुमिरी भारथु मँडे, पारथ भर बहु ब्रिद्धि ॥३८३॥

कोका कहरु अजीजु उत आन मानु कूरंभु।
सैद सहित पैदल सहित कियो जुद्ध आरंभु ॥३८८॥

चक्रव्यूह अकबर चमूं, अभिमनु तुंगु कुँवारु।
भर भादो जलधार जिमि, सिर पर बरस्यो सारु ॥४०३॥

अभिमनु मार्‌यो खट्टु सुभट, चक्रावूह चकचूरि।
सब मिलि मार्‌यो सारिवा, असि सर सावल भूरि ॥४०४॥

वाह वाह अकबर कह्यो, रह्यो सारिवां खेत ।
राम साहि असि वरु गह्यो, कोह छोह सुत हेत ॥४०५॥

असि सावल सों कटि पर्‌यो, धर्‌यो परगन धाइ।
तिनहि न रत्तो सारिवां, हररिव मिल्यो हरि राइ ॥४०६॥

फेरि करी एकत्र फिरि, फोज अकव्वर धाइ।
सकल सिकिलि हिंदू तुरक, आइ परे अर राइ ॥४१२॥

दोरत राम नरिंद पर, नेकु न करी अवार।
खेलत होरी खेल में, ज्यो गढु लेंन गवार ॥४१३॥

गिरि गोवरधनु रामु नृपु, अकबरु इंद्रु अपारु।
तुपक तीर तरवारि तह, सेल सूल जलधारु ॥४१४॥

मोतीदाम

परै जलधार पहार अपार। परै तिहिं ताक सिरप्पर साइ ॥
रूपे रन रांमु नरिंदह पाइ। धपे धरि सैद अरे अर राइ ॥
रुपे चकता सकता गहि सार। कुपे तह कोकु अजीजु अपार ॥
कुपे अभु रख्खन क्रूरमु मांनु। करे असि सेल सकत्तिनि धांनु ॥
लई तुरसें उरसों चिरु चंपि। करै घन धाइ डरै कवि जंपि ॥
हलक्किय मीर किलक्कि हकारि। रलक्किय गोलक गज्जिय नारि ॥
खलक्किय खान निरवंग निवान। गलक्किय पेठि सुपेठ पठान ॥
झलक्किय खग्ग विलग्गल टोप। चलक्किय चंपि करिंदनि कोप ॥
ढलक्किय ढाल वलक्किय वाहु। घलक्किय धाइ अघाइ उछाहु ॥
उठ्यो तव पातलु रानु रिसाइ। गुठ्यो गहि तेग गयद निजाइ ॥
करै भुजडंड निवंड भसुंड। परै कटि सुंडय डुडय मुंड ॥
झरैझर ओझर तुंड निझुंड। विहडतु रानु मचे भकरुंड ॥४१५॥

दोहा

मिरत रान भकरूंड मचि मीर समार्यो सारू।
भुजवर आयो भीर को भाऊ कोपि कुंदारू ॥४१६॥

भुजंगी

भगी भीर भाऊं अगाऊं उकढ्यो। महा मोर मां भीनि के मुख्ख चढ्यो ॥
जिते जुध्ध जोधा जुरे स्वामि कामा। पचारे तिन्हे पेखि चारनु रामां ॥
लरै रावु सग्रामु सग्राम वार। गनै कौनु जौन वहे रत्त खारं ॥
लरै वीदु मानां खुमांना विलोके। करै एक के द्वै गजं ठट्ट रोके ॥
लरै हंकि हम्मीरू गोइंदु धाये। भरै कुंड चडी उभै भीव जाये ॥
लरै मानु सोनिगरा रांनु लख्खे। गयदं हयदं मुखं तेग भखखे ॥
सिरद्दारू सेहू सिरध्धार सोधे। सवै सार अके तिवंके विरोधे ॥
लयो लोहु गोपाल खैकाल काल। गयो साहिलों गाहि ढारतु ढालं ॥
रुप्यो रामु राठ्योरू ठेलै करिंद। वदै मारु मार विदारे नरिंदं ॥
कुप्यो संभरी सूरु सनाह कट्टे। डिगे मीर तूरभु कूरंभ कट्टे ॥
दुरग्गू दुरग्गा दुर्दिदं गिरावे। करै चूर संमूर हूर घिरावे ॥
भिरै भाखरोत प्रयागं प्रचड। नगा नाग खडे वहिंडे भसुंडं ॥
जगी खग्ग ज्वाल जगा जोंन गजे। रनं रांमु चोडा तनों भीर भंजे ॥
मड्यो मेरु मेरा तनो मीर मारै। तहा मांनु सीसोदिया जोन तारै ॥
खल खान को सेरखां खेत खडे। सरं-डंम्हरी सम्हरी रारि मंडे ॥
लर लोह नेता हने नेत बघ। लुटे एक भुंमी उठे को कमध ॥
भिरै भांनु आंमांनु रान निहार्यो। भिरै भीउ सांडा तने झडु फारयो ॥
चमू चूरु चोडा हरो सूरु सांगा। परै वत्थ नाथा करै पंति पांगा ॥४१७॥

दोहा

कीरति सिंघ रठ्योर तव विने करी कर जोरि।
मेरो कौतिगु देखि द्रिग जुरिये जग बहोरि ॥४२६॥

कवित्त

ढग जुर्यो कीरति रढ्योरू उठि वाग लाग वजि।
गजि गंजे गजराज सीस सिरताज कघ तजि ॥

उद्यम करत कमध कध देखै घर धावें ।
भक भक भक भभकत रत्त भैरव रन गावे ॥
भयभीत भूत हरपूत सम झम मयक सुमिरतु मृगु ।
मन नाथ हाथ कपत क्रमी माइ घाइ मुंदेति द्रिग ॥ ४३० ॥

विराजा

द्रिगन देव दिख्खे, भयानक भिख्खे । अभंचदु दद्द, निफदे नरिंद्द । अटे चाहुवांन लटे खानखान । भगू ईस जायो,धरे तेग धायो इते मीर मारे । तिते गंन तारे । रन रांस राघो, अर्‌यो अग आघो, चतुर्भुज्ज चूरे, खिझ्यो खग्ग भूरे । रिस राम दास, नरं नाग नास, दये प्रान दानं, गए भेदि भान, ॥ ४३१ ॥

दोहा

प्रान दये प्रभु रान हित थान लहे हरि थान ।
तिख्खतवर तरवारि कटि दिख्खत पातल रान ॥ ४३२ ॥

रांन निरख्यो आपनो कटकु कट्यो चहुँ ओर ।
वान विखम वरसन लग्यो गहि कमान बरजोर ॥ ४३३ ॥

सादु करत सुर असुर जय, नादु करन मुनि आपु ।
जुग्गनि देति असीस मुख,जुग जीजहु परतापु ॥ ४५६ ॥

कवित्त

जीजहु जुग परतापु तापु ता तनहि न लग्गे ।
जीजहु जुग परतापु पापु ता सुमिरत भग्गे ॥
जीजहु जुग परतापु आपु इकलिंग अगु विय ।
जीजहु जुग परतापु बापु हिंदवान अमल हिय ॥
परताप रान रनसिंधु मथि सुजसु रेंनु लिय कढ्ढि कर ।
दिल्ली सु फेरि दिल्ली गयो वदतु कित्ति अनमित्ति बर ॥ ४६० ॥

सिद्धि श्री कवि दयालदास विरचिते महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंह चरित राना श्री प्रतापसिंह अकबर जुध वरननं नाम ।

कवित्त

यो परतापु खुमानु रांनु अमानु तपे यहु।
सेसु गनेसु महेसु जपै जसु जासु बार वहु ॥
अमरु अमर अवतारु कुँवरु हुव तरूनु अरुनु द्रिग।
आन पुरख दवि जाहि देखि मृगराजु जेमि म्रिग ॥
इं पुरस देह आजानु भुज, दुज दरिद्द दुख दूरि करू।
अग्या सु तात ततपर सदा, मदासीस तेतीस वरू ॥ ४६१ ॥

दोहा

सवरू सपूतु सपूतु लखि उर आंनि परतापु।
अब बम कुंठु बसाइये जिय जपि अजपाजापु ॥ ४६२ ॥

कवित्त

यह विचारि सुरसरी, वारि मजनु तन कीनो।
पदमासन पव वेठि, पदम पाइनि मन दीनो ॥
त्रिकुटी भ्रकुटी वीच अष्ट आवध धरू धायो।
सजल जलद दुति स्याम, स्यांम सुंदरू अभि भायो ॥
आकरखि अजनी कत कहु, परम हरखि मनमोहु तजि।
उडि चल्यो हमु सुमिरतु हरि परमहस जँह जाहि सजि ॥ ४६३ ॥

परमहस गति लही, रांन परताप सस विनु।
पुहप विष्टि वहु भई, व्योम मारग सुछद छिनु ॥
श्रुति सुंम्रति सब सोधि, कियो सनु उत्तर कारजु।
परम पुराननि सारिव, भाखि ज्यो गम आचारजु ॥
उज्जरी कित्ति आभरनसजि, तीनि लोक विस्तरि रही।
धनि धन्नि धन्नि गुनवान मुरव, सुरुख सुख्ख मडित मही ॥ ४६४ ॥

सारांश

राणा उदयसिंह की सोनगिरी (चौहान) रानी के गर्भ से प्रताप, भटियानी के गर्भ से सक्तसिंह व राठौड रानी के गर्भ से पाच पुत्र—सगर, अगर सीहा व पंचायन उत्पन्न हुए। उदयसिंह अपने इन बलवान व योग्य पुत्रों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न रहते।

अपने पुत्रों को योग्य समझ कर राणा उदयसिंह ने योग ले लिया तथा योग विधि से प्राण-त्याग दिए। प्रताप उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रताप के दरबार मे निम्न सामन्त थे—पाडव-वंशी ग्वालियर नरेश रामसाह, उसका पुत्र शालिवाहन, संभरी नरेश सग्रामसिंह, (सादडी का जागीरदार) बीदा झाला, मानसिंह झाला, डूगरसी, वीर कूपा का पुत्र, वीरम-देव राठौड का पुत्र प्रतापसिंह, (बदनोर के) जयमाल का पुत्र रामदास राठौड, बागड प्रदेश का वीर चौहान नाथा, सिसोदिया रावत नेतसिंह, मुमारख का पुत्र पहाडसिंह पवार, सांडा का पुत्र भीमसिंह डोडिया, मुहम्मद पठान, शेरखान चौहान, खडा पवार के पुत्र ताराचन्द व सूरज, विजयराज चौहान, पूरबिया राठौड आलमसी, परिहार (प्रतिहार) सेढू, अचलदास, गोपालदास,कल्याणदास,मानसिंह,मानसिंह सोनगिरा(प्रताप का मामा),व युवराज अमरसिंह।

गुजरात विजय के बाद जब अकबर वापस लौटा, उस समय उसका बुद्धिमान मन्त्री खत्री टोडरमल प्रताप से मिलने मेवाड आया। खुमान प्रताप ने उसका सम्मान किया। भोजन करवाया। प्रताप ने उसे एक हाथी भेंट करना चाहा, लेकिन उसने नहीं लिया। जब वह लौटने लगा तो प्रताप उसे पांच कोस पहुँचा कर चला आया। अकबर के पास पहुँचने पर खत्री ने प्रताप की प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रताप जैसा राजा न तो हुआ और न होगा। वह अत्यन्त प्रतापी है। इस पर अकबर ने कहा कि यदि प्रताप को पराजित न कर दूँ तो मैं हुमायूँ का पुत्र नहीं। सारे राजा मेरे आधीन हैं सिर्फ प्रताप ही नहीं है। यह घटना सवत् १६३० मे हुई।

अकबर ने सुना कि प्रताप ने शाही इलाके जला दिए हैं व जालोर को जला कर उसकी दशा दयनीय करदी है। इसी प्रकार सिरोज को भी घेर कर जला दिया। इस पर क्रुद्ध हो अकबर ने कहा, कि मैं चौहानों को कुचल दूँगा व रामसाह तवर को गज सेना भेज कर नष्ट करवा दूँगा। प्रताप के गले मे धनुष प्रत्यंचा डाल कर पकड़ लूँगा। मैंने रूमी भू-भाग, झाड खण्ड (उडीसा) पूर्वी एव पश्चिमी प्रदेश, पंजाब, अंग, बंग, कलिंग, तेलंग, मथर, मारवाड़, मुलतान, मालवा, मडोवर, उड़ीसा, गोडवाना, मालाबार, गक्खर, सौराष्ट्र,

महाराष्ट्र, पैठण, कम्बोज, करनाटक, कच्छ, कदली (नेपाल की तराई का प्रदेश), विंध्य, गुजरात व गौड आदि प्रदेशों को जीता है।

अकवर ने अपनी सेना को तैयार किया। इससे सर्वत्र खलबली मच गई। अकवर की सेना मे कवारी, खुरासानी, मुलतानी, रूहिल्ले, रूमी, फिरगस्थानी, हब्सी आदि अनेक जातियो के योद्धा थे। अकबर ने अजमेर मे आकर डेरे दिये। वहां उसने ख्वाजा मोइनुदीन की दरगाह मे वदना की।

अकवर ने सम्वत् १६२४ में उदयसिंह से युद्ध किया था। उसके बाद संवत् १६३४ मे उसने प्रताप पर चढाई की। राणा प्रताप के सामन्तो को जव अकवर के ससैन्य पहुंचने की सूचना मिली तो शालिवाहन तंवर ने कहा—अव हमें गाफिल नहीं रहना है। जो भी प्रयत्न करने हो शीघ्र कर लेने चाहिए। सव ने मिल कर कहा कि आप राणा प्रताप के पास जाएँ व उन्हे परिस्थिति से अवगत करा कर आदेश प्राप्त कर लौटें। रामसिंह खीची ने कहा—आपके पिता की भुजाओ पर ही युद्ध का सारा भार है। दो सवारों को साथ लेकर शालिवाहन राणा प्रताप के पास पहुंचा। राणा उस समय रनिवास में थे। कुमार [शालिवाहन] के आगमन की सूचना पाकर प्रताप ने रानियो को संकेत कर विदा दी व कुमार को सम्मान सहित भीतर बुलवाया। कुमार ने प्रताप को अकवर के चढाई की सूचना दी। इस पर राणा ने हंस कर कहा—अकवर शक्तिसिंह, मानसिंह सहित करोडो मुगलो को लेकर भी आवें तो भी हम उससे युद्ध करेंगे।

राणा प्रताप रामसाह के निवास स्थान पर पहुचा। रामसाह ने प्रताप का स्वागत किया व कहा—आपने मुझे ही क्यो न बुलवा लिया। आपका जो आदेश होगा, मे उसे सिर पर धारण करूगा।

चोपदारो ने समस्त सामन्तो को सूचित किया। सूचना पाते ही समस्त सामन्त रामसाह के यहा पहुँचे। इस सभा मे राव संग्रामसिंह, वीदाझाला, मानसिंह झाला, भीमसिंह डोडिया, डूगरसी पवार, शेरखान चौहान, पत्ता का पुत्र कल्याणसिंह, दुर्गादास, हरिदास चौहान, नाथा चौहान प्रयागदास भाखरोत, जालम राठौड़, नन्दा प्रतिहार, सेडू, महमूद खां, महाराणा का मामा मानसिंह सोनगिरा, कूंपा का पुत्र जयमल व मन्त्री भामासाह आदि योद्धा उपस्थित हुए। राणा प्रताप ने रामसाह से सलाह पूछी। रामसाह ने कहा हमें पहाडो का आश्रय लेकर यवनों को घेर लेना चाहिए और उन्हे नष्ट कर देना चाहिए। रामसाह की यह राय सुन कर सब हंसे व बोले कि आप हमारे साथी होकर इस प्रकार मुगलो से डरते हैं। इस पर

नवयुवकों ने कहा—यह वृद्ध तो बहुत जीवित रहना चाहता है। हम युवक तो अज्ञानी व अबोध ही हैं, पर हमने यह निश्चय किया है, कि मुगलो से आमने-सामने रह कर ही युद्ध करेंगे। राजा राम यदि न चाहें तो हरावल की बजाय चंदावल मे रह कर युद्ध करें। इस पर राजा रामशाह ने कहा कि मैंने अपने अनुभव के आधार पर ही यह राय दी है। युद्ध का निश्चय करने पर राणा प्रताप ने सामन्तो का जुहार स्वीकार किया और उन्हें ताम्बूल दिये।

प्रातःकाल युद्ध के नगाडे बजने लगे। राणा की फौज चली। अनेकों योद्धा सेना में सम्मिलित हुए। झाला बीदा भी फौज मे आ मिला। राणा का वह भयकर दल खमणोर के मैदान में आ पहुंचा। इस युद्ध मे महाराणा प्रताप की ओर से निम्न योद्धाओ ने भाग लिया—रामसाह, शालिवाहन, जावला, भाऊ, चारण कवि रामा, सग्रामसिंह, झाला बीदा, माना (मानसिंह), भीमसिंह के पुत्र हमीर व गोविन्द, सोनगिरा मानसिंह, सेढू, गोपालदास, रामसिंह राठौड, सूरसिंह चौहान, दुर्गादास राठौड, प्रयागदास भाखरोत, नगा, चूडा का वंशज जगा, मेरा का वंशज, मानसिंह सिशोदिया,शेरखा, नेतसी, भीमसिंह साडा का पुत्र भीमसिंह डोडिया, चूडा का वंशज वीर सांगा, नाथा, कीर्तिसिंह व अभयचन्द। इनमें से रामसाह, शालिवाहन व जावला के युद्ध में काम आने का उल्लेख भी कवि ने किया है।

दोहा

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै सांप॥

धर वांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणा नरिंदां घेरियो, रहै गिरंदां राण॥

—पृथ्वीराज राठौड़

राजस्थानी-काव्य

किसोरदास कृत

राजप्रकास

परिचय

'राज-प्रकास' के रचयिता किसोरदास हैं। ये दसौंधी शाखा के राव थे। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह [वि० सं० १७०६-३७] की इन पर बडी कृपा थी। 'राज-प्रकास' के अतिरिक्त इनके अनेक फुटकर गीत भी मिलते हैं।

'राजप्रकास' का रचनाकाल वि० सं० १७१६ है। इसकी एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय मे सुरक्षित है। ग्रन्थ मे कुल ६१ पत्र तथा १३२ छन्द हैं। प्रथम ५६ छन्दो मे प्रारंभ से लेकर महाराणा जगतसिंह [वि० सं० १६८४-१७०६] तक के मेवाड के महाराणाओ की वंशावली दी गई है, साथ मे संक्षिप्त वर्णन भी है। शेष ७६ छन्दों मे महाराणा राजसिंह के राज्य-प्रबन्ध, वैभव-विलास और शौर्य का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ मे अधिकतर कवि की आखों देखी घटनाओ का उल्लेख है, अतः इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भाषा डिंगल हैं।

प्रस्तुत महाराणा प्रताप संबंधी अंश राजप्रकास के पत्र संख्या १८ से पत्र संख्या २१ अर्थात छन्द सख्या १५ से छन्द संख्या १८ तक आया है।

राजप्रकास

छंद : विद्रंममाल

उदौ उदैपुरि ग्राम : गढपति गढ कीय गांम ।
उदैम सागर ऊद : महि आठमौ मकसूद ।

तं ऊद रै परताप : खगि अगिनि राखै खाप ।
तं तेज बलि तुरकांण : कसिया रहै केकाण ।

हसिया रहै जमडाढ . गसिया रहै अवगाढ ।
हमीया रहै हिन्दवाण काई सगा है तुरकाण ।

घर काजि काई दे धीह जा जनम ध्रिग ध्रिग जीह ।
तिणि समै अकबर तपि : थिर भजिया थिर थप्पि ।

हिन्दवाण अकबर हथि नर एक पातल नथि ।
जाइ आवता गुजरात : बलि मान कूरंम बात ।

थिर उदेपुर निज थान : मिलियास पातल मान ।
रसि राण रै रासोय कजि सकल जीमौं कोय ।

महिराण को के मान ध्रंम अम रो ल्यौ थान ।
मानें कहि भ्रम मंन : तै धान निर्मल तन ।

सिध पाक थई यौ सम : महिमान तेडि कुरम ।
पख दोय लाँबी पाँति : भोजन अठ नौ भाति ।

पडिहार त्यार पऴसि : ताई वाज इद्रंह तूसि ।
पै कहे मान प्रताप : ईक वाज बैठो आप ।

परताप किणिरी पांति : भूपति जीमै भांति ।
राजा स मान दिसाय : उठियौ सरोस अघाय ।

सुणि हसै राणीं सोह : असुरां सबीह अबीह ।
जगि मान की मरजाद : बलि करै मो सम वाद ।

महि बाजि वजि उठि मांन : सुज छूटै बाजां स्वान ।
पै मान अकबर पासि : सुज गयौ भरियौ सासि ।

सुज कहै मान दिलीस : सीसोद अनमी सीस ।
इम कहै अकबर आन : महि राए की सुणि मान ।

महि पाट बणि मेवाड़ि : धर थाट मालव धाड़ि ।
लड़ि नयर सारग लूटि : किलबांस कल बल कूटि ।
दल अनल बल जगि दद्धि : परताप बात प्रसिद्धि ॥१५॥

प्रसिद्ध राण परताप, छाप परताप छछाला ।
प्रसिद्ध खाग परताप, भाग परताप भुवाला ।
इसा हूत आराण माम, नहँ कोजे मछर ।
वदै मान मो बिदा, अवसी करौ साहि अकबर ॥

होय बिदा मान चलीयौ हमस, धर धसमस अहि धड़धड़ ।
दल सबल चले हय गय रथी, पैदल बद्दल ऊपड़े ॥ १६ ॥

ईसौ मान ऊपड़े, मउ जिण भजी मरदां ।
ईसौ मान ऊपड़ै, सच प्राची की सरदा ।
ईसो मान ऊपड़ै, जेणि उसमानह जीतौ ।
ईसौ मान ऊपड़े, वले कतलू दल बीतौ ॥
कूरंम मान चढतै कटक, तर वर गिर होय रलतलौ ।
परताप पूर सायर परै, मान नदी आए मिलौ ॥ १७ ॥

छंद कविता

मिलौ नदी आय मान दान छूटा दताला ।
मिलौ नद्दि आय मान भड़ां लोध भूपाला ।

मिलौ नदी आय मान तुरि लीधा तेजालां ।
मिलौ नदी आय मान कठठ दल वदल काला ।

मिली नदी आय मान पूर परताप विचालै।
मिलौ नदो आय मान होह गरकाव हठालै।

परै पूर परताप जेणि परताप यखाणों ।
भवर कूत दल फेर जोध ग्रर मगर जाणों।

मछ खग ऊछलै कच्छ जिमि ढालह ऊडै।
नाव विया नहँ चलै जोड़ भेला होय बूडै।

गै हर लहर आगरांज नंद वजि सद नोसांणां।
नरा गजा नीछटै राज दल सब्बल राणां।

पड़ै गज घज सहित तुंग गिर तरवर तूटै।
पड़ी हैमर पाखरां जोघ हाथूका बूटै।

कमल कमल तिरि चले भ्रह तिणि भमर विलगा।
मलमल सीसोद सगा थीय सगा ग्रसगा।

कूरमा ऊरम सम थिय दमन चढै।
भरम मान भरमियो करम है पछा कढै।

रण जीतौ परताप तेज आमाप असमर।
मान समर मूकियौ सुणै सोई साह अकबर।

सरवर समर सुघ बिधि बिपरीति वखाणै।
नीर रुहिर पणिहारि दिठ्ठी चवसठ्ठि प्रमाणै।

नर तुरा गजा पाड़े निहस झड़ खग लग्गी ओझड़ां।
परताप तणां छर ऊपड़ै छर लग्गी ढूंढाहड़ा ॥ १८ ॥

सारांश

महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नगर व गढ़ का निर्माण कराया। पृथ्वी पर आठवें सागर के रूप में उदयसागर बंधवाया। इसी उदयसिंह के प्रताप नाम का पुत्र था जो हमेशा मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिये शस्त्र-सज्जित अश्वारोही के रूप मे तैयार रहता था। इस समय प्रताप को छोड़ कर समस्त हिन्दू राजाओ ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

गुजरात से लौटता हुआ मानसिंह उदयपुर में प्रताप से मिला। आठ-नो तरह का भोजन बनाया गया। दो पंक्तियो मे बैठने का आयोजन हुआ। मानसिंह ने प्रताप से कहा कि एक पातल पर (भोजन के लिये) आप आकर विराजिये। किन्तु एक भूपति की भाति भोजन करने के लिये वहा कोई पंक्ति नहीं थी अत: प्रताप ने भोजन नहीं किया। इस पर मानसिंह क्रोधित होकर विना खाये ही उठ गया और अकबर के पास जाकर उसे मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उत्तेजित किया। आज्ञा पाकर मानसिंह हाथी, घोड़ा, पैदल सहित सेना लेकर युद्ध के लिये इस प्रकार चला कि पृथ्वी कपायमान होने लगी। (दोनो सेनाओ के मध्य) भयकर युद्ध हुआ। युद्ध मे प्रताप विजयी रहा तथा अकबर ने भी यह सुना कि मानसिंह युद्ध मे हार गया है।

राजस्थानी-काव्य

गिरधर आसिया

सगतरासो

परिचय

'सगतरासो' के रचयिता मेवाड निवासी आशिया शाखा के चारण गिरधर थे। इनका रचना-काल वि० स० १७२० के लगभग माना जाता है।

इसमें वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का चरित्र-वर्णन है। वर्णन दोहा, भुजगी, कवित्त आदि कुल मिलाकर लगभग ५०० छन्दों में हुआ है। भाषा शुद्ध डिंगल है।

ग्रन्थ मे कुल ८८ पत्र हैं। महाराणा प्रताप संबन्धी प्रस्तुत अंश पत्र संख्या १ से पत्र संख्या ६ तक अर्थात् छन्द सख्या १६ से छन्द संख्या ८६ तक आया है।

सगतरासो

दूहा

तिण घर रांण प्रतापसी, वीरैही वर वीर ।
ऊधरियो हींदू धरम, हठ दूसरे हमीर ॥१६॥

तिण अकबर खीटावियो, सुज जीतो सुरतांण ।
रेह न लागो रायगुर, एहो पाताल रांण ॥१७॥

पातल सकता वीर रुद्र, मदा अगर सग्रसाह ।
जगा नगा कान्ह जेतसी, रायसिंघ रिमराह ॥१८॥

ऊदल राणो एक दिन, सम पूछिया सकोइ ।
अणी सिरे कर आहणैं, हूं सारे हूं सोइ ॥१९॥

मैंगल मैंगल सारिखो, सिंह सारिखो सीह ।
सगतो उदयसिंघ तण.अग पित जिसो अबीह॥२०॥

चख रत्तै मुख रत्तड़ै, वेस जिही कुल वग्ग ।
सकते जमदाढा सिरे, आफालियो करग्ग ॥२१॥

कीय हुकम नहँ कारिण की, एवट एक अवट्ट ।
ऊदल राग कमखियो, पह दी सीख प्रगट्ट ॥२२॥

पिता हुकम लिखियो परम, अग अहंकार अथाह ।
सकतो उदयसिंघ तण, सु वसियो पतिसाह ॥२३॥

सगते उदयसिंघ तण, अंग ग्रहे अहँकार ।
तेण महा गह पूरियो, वसीयो साह दुवार ॥२४॥

साह जलाल सगत्तसी, सनमानियो असंख ।
सिंह वरीयो सु पख्ख रो, पखालो जटपंख ॥२५॥

दीधा हुकम जलालदी, अवर न मडै ओड़ ।
साह कहै सगतेस सूं, तो ले गढ़ चीतोड़ ॥२६॥

सगते साह जलाल सूं, केलपुरे या कथ्थ ।
अवर सूर न ऊगमे, हूं माडू जे हथ्थ ॥ २७ ॥

पालग नहँ पाले प्रिथी, जीह कहे इम जग्ग ।
सगतसिंघ चीतोड़ सिर, बीड़ो ग्रहे करग्ग ॥ २८ ॥

सगती साह जलाल सूं, आप जणावै ईम ।
तेग उभारे नीसरे, नहँ कोधी तसलीम ॥ २९ ॥

सोरठा

पातिसाह पहलोइ, सगतसिंह बुलावीयो ।
हालो मुहरे होइ, देस उदेपुर देखिवा ॥ ३० ॥

सकतो सिरजणहार, एक गिणै सिर ऊपरे ।
अन करड़ा असवार, मेवाड़ो मानै नही ॥ ३१ ॥

दोहरा

खुरसाणा मुलतानखां, मारे रण वे बीर ।
साम उगारे साकड़ै, सगतो पतो सधीर ॥ ३२ ॥

आखी वेधज आंगमे, धारे चित खित्र धोड ।
मूहरि पिता देवा मरण, चलि आयो चीतोड़ ॥ ३३ ॥

मरवा जे लाधै मरम, ठवै न वीजे ठौड़ ।
आयो सकतो आंहची, चढ़वा गढ चीतौड़ ॥३४॥

जैमल पातल यूं जपे, सांईदास सबूझ ।
राण हुकम है रावता, तो चाढा गढ तूझ ॥ ३५ ॥

पिता तणै आयो पगे, हित चित लीधो हेल ।
सिरजणहार न सिरजियो, अनै हुवो दिल मेल ॥३६॥

प॰॰ नहँ रहियो पगे, आतम थयो उदास ।
सगतो साहसमाल सूं, वसे गिरीपुर वास ॥३७॥

वसि गिरपुर कस बांधियो, परिणयो जगत्र प्रमाण ।
सकतो व्याई "कसी, वांसी सींगण रांण ।।३८।।

मिटै न भावो महिमडल, चलै नही कुल चाल ।
सकतै जोतां सहसमल, मारी लियो जगमाल ।।३९।।

मारि जगो चढियो मछर, किरमर हाथ कियेह ।
साभि न सकियो सकतसी, विरतो वागडिएह ।।४०।।

वलियो देतो वीद वग, मछर ग्रहे खग मूठ ।
चित्त सुहामै चालियो, ग्रिसण न चांपै पूठ ।।४१।।

वहै जगो जस वांधियो, सकतसिह असहास ।
महि वापी की माभलो, वैण तणो गढ वास ।।४२।।

सकते वास परठियो, महावैण गढ माहि ।
पह वोजा पाड़ोसियो, मन माहि न समाहि ।।४३।।

ढील सरव्वस ढूकड़ो, भीडर हू खुल भाण ।
अमरो सुख राखै असख, खित्र जोये खुमाण ।।४४।।

घर धूसे धन धूपटै, सोनिगरो छल सार ।
सारा देस दसोर रा, प्रज आविया पुकार ।।४५।।

वूंब सुणै मीया वले, भांजण खला भटक्क ।
सुणतां ही साजत करै, किलवे घरे खटक्क ।।४६।।

अमरो रोदां ऊपरे, चाले कलि चहुवाण ।
दल अविया दसोर रा, भीडर ऊगै भांण ।।४७।।

मारे भीडर माल ले, धर धूपट दे धक्क ।
आथ लेइ अमरा तणी, किलवे खडे कटक्क ।।४८।।

बाघे सापत वाल त्री, रजपूतां दे रैस ।
करे रहचि कणियागरा, दर बलिया दरवैस ।।४९।।

वरदे बूंबारव हुवा, प्रज पीडै न विण पार ।
साहुल सोनिगरा तणी, सुणि सकतां सिरदार ।।५०।।

क्रूक ऊक कणिआगरै, मोहर सकत मेल्हेह ।
राखै तो तेहीज रहाँ, ताणी तां तुरकेह ।।५१।।

पाताल राणो परवते, नह को अवर नरेस ।
ऊदाउत ,तैं ऊगरा, सुण साहुल सकतेस ।।५२।।

सकते साहुल सांभली, वैसंद्र मिलि घ्रत खाई ।
कज ऊपर कणआगरां, सकतो एम सुहाइ ।।५३।।

आडी वाहर ऊपड़े, अंग बांधे ऊँधाण ।
किलँवा दल कँलिपुरा, भीडर ऊगे भाण ।।५४।।

छंद रोमकंध

तो प्रगटते भाण खला दल
प्रगट हाक भड़ा के काण हुवे ।
धमजगर सार पहार धसमर
धूज धरा नीसांण धुवै ।
छणकार खतग दवग विछुट्टे
हेतं हीदू हूंकलिया ।
किलवा इण पूर अडूर कटक्का
सूर सकत्तो साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५५ ॥

सर सोकां झोकां झलझ साबल
सार झड़झड़ सामहिया ।
वहतां धस रूक झवक्कै बीजल
सार पहार नरे सहिया ।
त्रुट कधा वध विछुट्टे तंडल
आवध सूरां आफलिया ।

किलवा इण पूर अड्डूर कटक्का
सूर सकत्तो साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५६ ॥

दहवट पहट विमट्टै दूजण
धाए अघट कटक्क घड़ै ।
रिणवट प्रगट ग्रहे चट रावत
मीर कटै ढिग अग मुड़ै
रिण तट मसट दपट मासचर
भारथ भार भुजे भिलिया ।
किलंवा इण पूर अड्डूर कटक्कां
सूर सकत्तो सांफलिया ॥ जी अ० ॥ ५७ ॥
डर वल कंगल सहिता डोंगल
मीर मुगल्ल अलल्ल मरै ।
पडि जूटा मल्ल उथल्ल पुथल्लां
क्रोध विहल्ल विहल्ल करै ।
हल हल्ल जुडै रिण हे वे हीदू
जाणों पांडव जा मिलिया ।
किलवा इण पूर अड्डूर कटक्का
सूर सकत्ता साफलिया ॥ जी अ० ॥ ५८ ॥

कवित्त

सांफलिया सकतेस, वियो मिरजो बाहादर ।
सार मरि साभिया, धगड़ धड़किया पड़ै धर ।
रिण भड़िया राउत्त, सूर सकता रा संमर ।
वैडो सुतन हमीर, वडो गहिलौत अछर वर ।

देव सी वाघ देदो दुगम, कमधज त्रिण्हे मुकति कर ।
पतिसाह फौज रिण पद्धरे, सकतसिंह जीतै समर ॥ ५९ ॥

दूहा

समहर जीतौ सकतसी, रोदा सरसी राड़ि ।
सार उवारे अमरसी, मोटिम चढ़ि मेवाड़ ॥६०॥

तेण प्रवाडे पूरियौ, भुज ग्रहियै खित्र भार
साह तणे दल साझियै, वसियौ साह दुवार ॥६१॥

सूरातन सगता तणा, आड़ो वलियो अंक ।
ऊसर किसी न ऊगमें, सकता हिये निसंक ॥६२॥

साह सराहे सकतसी, पौरस देखि अपाल ।
सकता वड नह को सुहड़, जपे साह जलाल ॥६३॥

दीधा हुकम जलाल दी, पेखे असख पहाड़ ।
मोहरे कुरभ मान सा, सझेवा मेवाड ॥६४॥

दिल्लीपति दीधा हुकम, कटकां सख्या न कांई ।
कुरभ मान कड़खिया, सकता वले सहाई ॥६५॥

अत न दल अकबर तणा, सहु जाणे ससार ।
पौरस राण प्रताप का, पुहवि न लभे पार ॥६६॥

अै वे वे चढीया अडप, खूंमाणा खुरसांण ।
अकबर रोस न ओहटै, रोस न छडे राण ॥६७॥

पौढे विहूं परखियौ, देख कटक्कां दौर ।
कूरमैं केलपुरै, खेत्र रचे खंमणौर ॥६८॥

छंद जातो सिहाअवलोकन

तो खमणोर खसणि धण मधि रिण खेहण
खहण दुअण धण एम खसी ।
जोमणि सुर जोग्रण सुर जण जण

हण हण हथवाह सूर हँसै ।
ग्रीघण मण ग्रहण ग्रहण मुणखर गुण
जिण रुख ग्ररजुन क्रन जुडिया ।
परताप निवड भड दल पतिसाही
ग्रावि रणंगण ग्राहुड़िया ॥६६॥

सहु वल दल सवल सवल दल सहु वल
सारल वल भल सालुलिया ।
हूँकल होइ कलल कलल होइ हूँकल
ग्रसुर अने सुर आफलिया ।
वलि लोह भलल वल वल भल लोह वल ।
ग्रभग विन्है दल ग्राथड़िया ।
परताप निवड भड़ दल पतिसाही ।
ग्रावि रिणगण ग्राहुडिया ॥७०॥

खल खट होइ विकट विकट होइ खल खट
खाग विकट भट खल खटिया ।
आवट चट अरट ग्ररट चट ग्रावट
ग्रसल थटे वट आवटिया ।
साहट थट सुभट सुभट घट साहट
पट चट वट होइ रण पड़िया ।
परताप निवड भड दल पतिसाही
आवि रणंगण ग्रावड़िया ॥७१॥
धजवड ग्रहि धवड धवड़ ग्रहि धजवड
सार सुजड भड सामहिया ।
लड़थड घड मडड मड़ड़ होइ लडथड़ि
दड़ड़ रुहिर जड वाजविया ।
घाइ घडे ग्रघड़ घड ग्ररि उक्कड़
मरगड़ वीछड़ घड घड मुडिया ।
परताप निवड भड दल पतिसाही
ग्रावि रिणगण ग्रावड़िया ॥७२॥

कवित्त

पतिसाही दल सरिस, राण पातल चढ्ढै रिण।
राजा रांम नरेस, तुअर दस सुहड़ पड़े तण।
रहे मेड़तियो राम, रहे मानो कणिआगर।
रहे भीम डोडियो, साथ दोई लियाँ सहोवर।
रण रहे मेर दूलाहरी, सुकवि राम खग सगतसी।
असुरेस फोज जीतौ अभँग, पाधर राण प्रतापसी ॥ ७३ ॥

दोहरा

पाधर जुडे प्रतापसी, पोरस तणौ प्रमाण।
राण विलूधो वीर रस, खग वाहे खुंमाण ॥ ७४ ॥

सभालियो सकतसी, पातल राण अपल्ल।
पूठ विचारी बिरुद पति, साह बड़ा उरसल्ल ॥७५॥

ते रज भ्रम ते राज धन, सयल धरम तूँ सार।
मानीजे कहियौ अम्हाँ, अस नीले असवार ॥७६॥

राजा माम सकत्तसी, चतुरगणी चढेह।
घोघुंदे घर देखवा, खभणोर हुँ खडेह ॥७७॥

ईखै घर ऊदल तणा, सपेखे असहास।
विसकरमा रचियो वलै, करि बीजो कैलास ॥७८॥

सपेखे घर घर सहर, अति ऊतम आराम।
आखाडी भाडा तणौ, चीतवीयौ चित्राम ॥७९॥

सोई चित्राम सपेखियौ, तवियौ कूरभ तांम
मान कहै सकतेस सूं, चितवी घर चित्राम ॥८०॥

सकते राजा मान सूं, उत्तर दीध अवल्ल।
ऐका चहिरो चित्ररो, एका सांच सहल्ल ॥८१॥

एकारै चित्रामरा, भूंडा दीसै भड़ ।
एकां नाचै सांपरति, वीचारै न वितंड ।।८२।।

अकबर वाली आपरै, आगै लागो अग्ग ।
देखो वलती डुंगरां, प्रथम न देखै पग्ग ।।८३।।

वाचा एह लूषा वचन, हींदू हमति मयाह ।
केवाणे पड़िया करग, कूरंम कावलियाह ।।८४।।

मांनो मेवाड़ां सरिस, आखै वचन उरेब ।
साइ न सुहावै सकतसी, जीवै एह कुजेब ।।८५।।

कावलिया वलिया कटक, जीवै अंतर जाण ।
आया मांन सकत्तसी, आपांणे आथांण ।।८६।।

राजा मांन सकत्तसी, चित्त बहु लगै चटक्क ।
भड़ आयो भाद्रावती क्रमि है वाट कटक्क ।।८७।।

भैसरोड़ दिन भोगवै, सकतो इन्द्र समांन ।
हाड़ां अनिऐ चन्द्रहर, थरहरिया आथांन ।।८८।।

सकतो सुरयानक हुवो, मेवाड़ो महिरांण ।
तैण पाट सकता तणे, भोइण प्रतपै भांण ।।८९।।

सारांश

इसी सूर्य वंश में प्रताप पैदा हुआ, जो वीरो का वीर, हिन्दू धर्म का उद्धारक और हठ मे दूसरा हमीर था। प्रताप, शक्तिसिह, अगर, सगर, जगा, नगा, कान्ह, जैतसी, रामसिह सभी वीर भाई थे। एक दिन दरवार मे उदयसिह ने कहा कि जो शत्रुओं को फतह करके आवेगा, मै उसी को सन्मान दूंगा। इस पर शक्तिसिह ने कटार पर हाथ पटका। उदयसिह ने शक्तिसिह के इस वर्ताव को दरवार की मर्यादा के विपरीत समझा और नाराज होकर शक्तिसिह को सीख देदी। शक्तिसिह अकवर के पास चला गया। अकवर ने उसका वहुत सम्मान किया और चित्तौड़ लेने का हुक्म दिया। शक्तिसिंह ने अकवर की यह बात नहीं मानी। उदयपुर देखने के वहाने अकवर ने शक्तिसिह को साथ लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। किन्तु शक्तिसिह ने खुरसाण खां और मुलतान खा को मार कर पिता की रक्षार्थ चित्तौड़ चला आया। चित्तौड़ पहुंचने पर शक्तिसिह ने गढ़ पर चढना चाहा किन्तु जयमल, पत्ता और साईदास ने कहा कि महाराणा के हुक्म से ही आप गढ में प्रवेश कर सकेंगे। शक्तिसिंह अपने प्रयोजन मे असफल होकर डूंगरपुर के रावल सहसमल के पास चला गया। वहां पर किसी कारण से कलह होजाने पर शक्तिसिह ने सहसमल के देखते-देखते [वहां के एक सरदार] जगमाल को मार दिया। शक्तिसिह वहा से निकल कर भींडर के निकट वैणगढ आकर रहने लगा। भींडर पर मन्दसोर की ओर से आक्रमण होने पर भींडर के सोनगरा मानसिह का लडका अमरसिह, शक्तिसिह से मदद मागने आया। शक्तिसिंह ने मिर्जा वहादुर की फौज को पराजित कर भींडर की रक्षा की।

इस घटना के वाद शक्तिसिह दिल्ली गया। अकवर उसकी वीरता से वहुत प्रसन्न हुआ। उसने कछवाहा मानसिह के सेनापतित्व मे अपनी सेना को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये भेजा। साथ मे शक्तिसिह सहायता के लिये था। खमणोर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। प्रताप की ओर से राजा रामसाह तवर और उसके दस सरदार, रामसिह मेडतिया, मान कणियागर, भीम डोडिया और उसके दो भाई, कवि रामा [सादू चारण[आदि योद्धा काम आये। अकवर की फौज विजयी रही। शक्तिसिह ने प्रताप को समझाया किन्तु वह माना नहीं। खमणोर से मानसिह ने शक्तिसिह को साथ लेकर गोगुन्दा पर चढाई की। गोगुन्दा मे मानसिह भाडो व अखाडो के नृत्य-चित्र देख कर हसा। इससे शक्तिसिह नाराज होगया और भैंसरोडगढ चला आया। वहीं पर वह अपनी राजधानी वना कर रहने लगा। यहीं उसकी मृत्यु हुई और उसका पुत्र भाण उत्तराधिकारी हुआ।

राजस्थानी-काव्य

दौलत विजय

खुमाण-रासो

परिचय

'खुमाण-रासो' के रचयिता श्वेताम्बर जैन तपागच्छीय साधु शान्ति विजय के शिष्य दौलत विजय हैं। दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व इनका नाम दलपत था। इनका रचनाकाल वि०सं० १७६१-१७९० के मध्य माना जाता है।

'खुमाण-रासो' की एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है, जो 'भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें बप्पा रावल (वि०सं० ७६१) से लेकर महाराणा राजसिंह (वि०स० १७०९-३७) तक के मेवाड के महाराणाओ का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड के महाराणाओ की 'खुमाण' उपाधि होने के कारण इसका नाम 'खुमाण-रासो' रखा गया है।

इस ग्रन्थ के छन्द संख्या ३४१८ से छन्द सख्या ३४८६ तक में महाराणा प्रताप सम्बन्धी प्रस्तुत वर्णन आया है। वर्णन दोहा, चौपई, सोरठा कवित्त आदि में हुआ है। भाषा डिंगल है।

खुमाणरासो

दूहा

वरस असी नै बीस दिन, अधिपति ऊदल रांण
पाट प्रतप्या हिंदुपति, पोंहता इंद्र विमाण ॥३४१८॥

चोपई

पाट प्रतप्पें पातल रांण । दुस्सासन जोसे दीवांण ।
हिम्मत खगवाहो रिणवार । रोसीलो रायगुर रिमरार ॥३४१९॥

धजवड़ि धर चिहुंवल धूपटे । अरियां सिर खागां आछटै ।
धाणा असपति रा थरहरै । रात दिवस ने रोला करै ॥ ३४२० ॥

धड़कै दल्ली नै अजमेर । धड़कै ढूंढाड़ह अजमेर ।
अलगारै धूजं आगरो । लोक थरकै लाहोर रो ॥ ३४२१ ॥

धड़के आवू मरुधर देस । गूजर सोरठ कच्छ विसेस ।
वुंदीपति रढ छोडि करी । करै प्रताप तणी चाकरी ॥ ३४२२ ॥

सीधु सवा लख नै सो वीर । त्रसै प्रताप थी गंगा तीर ।
ककण कछई नर पचाल । पत्ता थरहरीया भूपाल ॥ ३४२३ ॥

तोड्या थाणा असपति तणा । सोहा मुह लीधा सांधणा ।
चित्रगढ रा थाणा पाड़िया । जाए आलम सू पुकारिया ॥ ३४२४ ॥

अकबर मूछा वल घालिया । हीदू अजें नही समझिया ।
मन मांहे मा निकालै दिया । मोटी खोड हम खोसे लिया ॥ ३४२५ ॥

अजें नही हीदू नें लाज । अणरस काहीकूं वेकाज ।
घर प्रताप कछवाही थती । रांणी ते अणमानी हती ॥ ३४२६ ॥

तिण दुख देता राण प्रताप । सांम दोह मन आण्यो पाप ।
बधव मान थकी बिनती । तूझ बहिनेवो दुख दे अती ॥३४२७॥

तिण कारण मुझ आवो भीर। वाहर करीजै माहरी वीर।
वहिनेवी नें तुमें मारीइं। अगति सनांन अमे कीजीइं ॥३४२८॥

माने आलम सूं फरियाद। पातल नें तुम कीजे याद।
अकबर साह पकड़ो तरवार। मेदपाट ऊपर असवार ॥३४२९॥

मेदपाट घर आलिम खड़ें। चोज करीने आयो चढ़ें।
खबर हुई तव पातल राण। रोस चड्यो जोधो जमरांण ॥३४३०॥

दूहा

करै कोप नृप कलह कज, कोरम पातल राण।
चढ्यो छोह छछाल छल, जुडण जुद्ध जमरांण ॥३४३१॥

मांणस मगरा मुं किया, सहु जोरावर भट्ट।
आयो अकबर इहा पड़े, देखा रावत वट्ट ॥३४३२॥

कलह हिवें इहां कोपियो, वेरि रिमां सिर घाव।
जो हूं ऊदल जाइयो, द्यूं अकबर सिर दाव ॥३४३३॥

घड़ि पतिसाही वींदणी, मद योवन मयवंत।
पातल ऊदल रांण रो, कहर मिल्यो एकंत ॥३४३४॥

चचल तिय ओरे चढी, जपै तुमीणां जाप।
परणे घड़ि पतिसाह री, पुह भिड़ राण प्रताप ॥३४३५॥

सहणाया सीधू गवै, नद सीधू नोबत्त।
सुभट सहू सलहो सझ्या, पातळ हीदू पत्त ॥३४३६॥

वट भरिया वांनैत वर, रोस भर्या रावत्त।
सूरवीर सावेत सझि, सूहड़ भिड़ सावत्त ॥३४३७॥

अनड माहा भिडण कज्ज, धुकै धकावै धीग।
टोडर व्रद घर टालिमा, त्रिजड हथा तरसीघ ॥३४३८॥

पट्ठा पातल रांण रे, पनर सहस पख रेत।
धीटक चचल पर चढ्यो, खडि आयो रण खेत ॥३४३९॥

सिर कुंदग रो सेहरो, भिड़ विहु भुज गजगाह।
चचल रे चोरासियां, अधीपति रण अथाह ॥३४४०॥

सभ्भें सूर सामत, तरुण तेजै रण रत्ता।
भिड़ पाड़े रण भेल, उरडि रस रुक उमत्ता।
ठेलै वधि रिम थाट, वाह अलवत्त विचारै।
झाडे अरियां झट्ट, विढण गज कुंभ विडार॥
रिण रहचै लख दल रोलवै, एक एक अग्गो अनड़।
परताप पनर हजार रा, तीस तुंग कीधा सुहड ॥३४४१॥

तुग तुग गहि तिजड़, तेख जुध जोय त्रटक्कै।
पकडि साग परताप, कडिक आलिम कटक्कै।
वाहै लोह विहद्द, पिसुण वाढतो पटक्कै।
सुण लीधा महु मुगल, झाड़ चमराल झटक्कै।
निव्वाव खान कीधा निलग, पातल मुगल पछाडिया।
लाज रो थभ ऊदोत लडि, सिघ चाढो सीसोदिया ॥३४४२॥

इम आखै आलम, जुलम कीनो हिंदवाणह।
कीध कलह इह कहर, मट्ठ कीनो मुगलाणह।
साह कीन मन सोच, सुहड़ हिंदू सिर जोरह।
ए पातल अग जीत, इस्यो हीदू नहि ओरह॥
नर वाह वाह नाहर नृपति, लड़ै भडै लाखा दला।
जुझुए तुग भारथ झुड़ै, खगा डला करतो खला ॥३४४३॥

है को इसडा हिंदु, द्रिठु पातल दिखरावै।
दरसावै सो दुरस, ताही म्हे बहुत वधावै।
जग जपी सगतेस, इहा पातल किहां आवै।
आवै सुहड अनेक, सोही पातल पठावै॥
दरसाय केम दुनियाण पति, है हीदू वह वकड़ा।
भारथ आया रिम लज्जसी, धावै पति सांहा घड़ा ॥३४४४॥

दूहा

सीसोदी सगतेस नृप, मन चिंतइ महाराज।
अकल बहादर ऊदवत, चिंती एहवो काज ॥३४४५॥

अड कीनी असुरांण पति, पेखण हींदूपत्त।
दूध दुहूंणी दोय रहै, एवही करूं उगत्ति ॥३४४६॥

दरस उरस देखवसि तो, रहसि नहीं रजवट्ट।
पातल नै पड़ताल नै, मारै माह मरट्ट ॥३४४७॥

अधिपिति पातल ऊपरै, खल भाजूं खुरसांण।
अकल कोई इसड़ी करूं, हद्द रहै हिंदवाण ॥३४४८॥

कवित्त

सुहड आलम सगतेस, मन करी मतो उपायो।
प्रीत करे परछन्न, बंधु संदेस पठायो।
अकबर आखै एम, दरस पातल देखावो।
चढि चंचल चौगान, साह तुम लोह बतावो।
सै हत्थ लोह साबल करो, उरडो असपति ऊपरै।
कीजीइ लोह कुंभा दलां, गजां दंत तोडो तरै ॥३४४९॥

पांण पकर पातल्ल, चढ्यो चचल चेटक्कह।
आठ सहस असवार, उरी असपती कटक्कह।
झाक झाक झटकेह, झड़ी खग झाड झपट्टै।
लोहां अकबर साह, लियो रणवार लपट्टै।
गजदत खेंग खुरियां ठवै, कुंत ध्रीव कुंभांयलै।
घनघोर जांण भाद्रवघटा, वाह सलक्कै वीजलै ॥३४५०॥

उडै आग अजाग, दहकि रिम सीस दडक्कै।
हिंदू असुर लथवत्थ, पड़ै धमकि घड़ पटक्कै।

फालिझ वुक्क कटार, फरडि कहियाल कटक्कै ।
वहै वांण पंखाल, उदल रिण अग थरक्कै ।
गणणाट वाण गोला गड़िक, असुर सुभट रण ऊछलै ।
कुरुखेत केरव पांडव जिहो, पह युध कीयो पातलै ॥३४५१॥

घडकीयो आलंम, लोह लग्गो असपत्ती ।
खुदा खुदा मुख खुरम, पार कीनो चिंअपत्ती ।
वयण वदत असुरेस, हिंदू हम लोह लगाया ।
ऐसा कोन अरांन, अनड-हम लग इहाँ आया ॥
सगतेस कहै असपति सुणहु, नयणां सुहड निरीखइ ।
ऊदोत एह हीदूपति, पातल एह हो परीखइ ॥३४५२॥

आलम दुय उजवक्क, विदा कीना उण वारह ।
पाड़ो जाए पातल, तलपि वाहो तरवारह ।
गूडा ए अग जीम, हिंदू मारो इह ठोरह ।
कट्टीए कफरान, जोर यह है सिर जोरह ॥
कव्वाण गोस पातल गहै, करहु कुदि आगे घरहु ।
गज राज देस घोडा दियूं हम तुम कूं वड्डा करिहु ॥३४५३॥

सगत सीह सामत, राण पातल पधराया ।
जुध कर किलँवा जीप, आप कुसल घर आया ।
जपै इम परताप, आव भाई आपण घर ।
असुर छांडी अलग्ग, वीर इहा रहो वीरवर ।
अणभग विरुद आप्यो सगत, खुरसाणां मुलतांन री ।
सीसोद वंस चाढी सिखा, राखो पत हिंदवाण री ॥३४५८॥

सोरठा

परखै पातल रांण, समप्यो व्रद सगतेस नै ।
खुरसांणां मुलतांण, आगल भिड़ ऊदो तणह ॥३४५६॥

दूहा

भुय चित्रगढ तो सालवी, पुह भिड़ पातल रांण।
सांम ध्रम्म सगतेस नृप, हो तुझ भुज हिंदवाण ॥३४६०॥

ध्रम रख्यो रख्यो ध्रणी, पुहवी भिड़ां पहाड़।
आहाड़ो उदय नरिंद रो, उछँछ सगत ऊनाड़ ॥३४६१॥

भागी सगता तो भुजां, पंचाइण परदेस।
अधिपति उदय नरीद रा, नाहर जेम नरेस ॥३४६२॥

महासुभट मेवाड़ धर, राखी तैं राजांन।
सगता उदया सीघ रा, बस वधारणवान ॥३४६३॥

चौपाई

हिंदू असुर हल्दीघाटियां। जुद्ध कियो तेगां झालियां।
कियो पवाड़ो पातल राण। पड़ियालग बधी परमांण ॥३४६४॥

दूहा

पातल सगत थकी कहै, इहाँ तुम उरहा आव।
ओलग मूंको असुर री, भाई सू करि भाव ॥३४६५॥

प्रभण सगत सनेह सूं. सुणि साहिब परताप।
अध विच ओलग मूंकता, वसै सिर कुछाप ॥३४६६॥

काडक छल वल केलवी, आवेस्यूं इण ठोड़।
मुह साम्हे मेवाड़ सूं, पूठै अभ चीतोड़ ॥३४६७॥

चौपाई

इम कहि सगते मागी सीख। परगट कीनी ए पारीख।
आयो सगत असपति रे पास। कहे कूड दीधो वेसास ॥३४६८॥

पातल आवै केहने हाथ । मार्‌या अजवुझ एकै साथ ।
पातल कुसलै घर पहुँचिया । नवि पाया म्हे इहाँ आविया ।।३४६९।।

दूहा

एक वरस असपति तणी, पूव करी खजमत्त ।
कोइक छल वल केलवी, आया सकत नृपत्त ।।३४७०।।

पातल रांण तणा पगा, सुह प्रमणम्यां सगतेस ।
हीदू पत हिव आदरै, दियां अस्व गज देस ।।३४७१।।

सुवस देस वसियो सहू, दल्ली गयो दुभ्फल्ल ।
अकवर गज सिर ऊपरै, अकुस नृप पातल्ल ।।३४७२।।

अडपायत ऊदल तणो, अधिपति अवलो वाण ।
पूर पवाडै पातलो, दाखै जस दुनियांण ।।३४७३।।

अिहड हत्थ तरसिंघ तस, हेलावान हमीर ।
लुवे लाष वरीसणो, वडो दुवाहो वीर ।।३४७४।।

दलां रूप ठावो दुनी, दाता दिल दरियाव ।
अदतारा अंकुस दिई, सुज पातल्ल सुभाव ।।३४७५।।

सोरठा

अख्वूं दे अंथाह, राजवियो अकबर रहै ।
करणूं मां कथाह, ऊ हीडावै ऊदवत ।।३४७६।।

अकबर समुद अथाग, छायो नवखंड छोलिया ।
खाग लडेत प्रयाग, अंबर लागो ऊदवत ।।३४७७।।

अकबर समुद अथाह, साह उजल उजली सिखर ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण कमल प्रतापसी ।।३४७८।।

पातल पाघ प्रमांण, साची सांगाहर धणी ।
रही सदालग रांण, अकबर सूं ऊभै अणी ॥३४७६॥

अकबर घोर अंधार, आथमिया हीदू अवर ।
जागै जागणहार, पोहरै राण प्रतापसी ॥३४८०॥

दूहा

माई एहा पूत जण, जेहा रांण प्रताप ।
अकबर सूता ओझकै जांण सिराणै सांप ॥३४८१॥

दीधी हार हमीर, पंचाइण न रियो पगे ।
तिण नेपत रा नीर, अचरिज केहो ऊदवत ॥३४८२॥

पोखै खत्री घणाह, खडियातां लागी खतां ।
तोनै ऊद तणाह, अमला मारिग एहडा ॥३४८३॥

राणो नीजां रांम ओहें ले अकबर तणा ।
चोखो चीतोड़ाह, पणे तूझ प्रतापसी ॥३४८४॥

दूहा

धजवड ग्रहि धर धूपटी, पुहवी पातल रांण ।
वरस सतावन वीस दिन, ईला वरती आंण ॥३४८५॥

वार वजाई पातलं, वैंकुठ कीया वास ।
पाट प्रतप्पे अमरसी, अधिक तेज उल्लास ॥*३४८६॥

---

* यह अंश डॉ० कृष्ण चन्द्र श्रोत्रिय के पी० एच० डी० प्रबन्ध से प्राप्त किया गया है ।

सारांश

महाराणा उदयसिंह के स्वर्गवास के बाद प्रतापसिंह सिंहासनारूढ हुए, इससे शत्रुदल में खलबली मच गई। दिल्ली, आगरा, अजमेर, मारवाड, लाहोर, आबू, गुजरात व सौराष्ट्र के शासक भयभीत हुए। बूंदी के शासक ने प्रताप की सेवा में रहना स्वीकार कर लिया। प्रताप का इस तरह प्रभाव बढ़ता हुआ देख कर अकबर चिन्तित हुआ और उसे अपने अधीन करने के लिये कटिबद्ध हुआ।

महाराणा प्रताप की एक रानी जयपुर के कछवाहा वंश की थी, जिसे (कछवाहा वंश की होने के कारण) प्रताप कष्ट देते थे। इस पर कछवाही रानी ने अपने भाई मानसिंह से (अपने पति) प्रताप को मार डालने की विनती की और कहा कि उनकी मृत्यु के बाद मैं उनके साथ ही सती हो जाऊंगी। मानसिंह ने इस कारण अकबर को मेवाड पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। प्रताप भी पन्द्रह हजार सैनिकों को लेकर युद्ध के लिये चल पडे। दोनों (सेनाओं) के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। प्रताप ने अपनी समस्त सेना को तीस टुकड़ियों में विभाजित कर दिया, प्रत्येक टुकडी भयकर रुप से रणकौशल का परिचय दे रही थी राजपूतो के इस शौर्य को देख कर अकबर ने कहा कि हिन्दुओ ने मेरे पर जुल्म कर दिया है। इस हिन्दू (प्रताप) के समान तो कोई हिन्दू शासक नहीं है। अगर कोई ऐसा हिन्दू है जो प्रताप को दृष्टि दिखा (आंख दिखा) सके अर्थात् उसे पराजित कर सके तो मैं उसका बहुत सम्मान करूंगा। शक्ति-सिंह ने कहा कि प्रताप यूं हाथ आने वाला नही है, उसके सामने जो भी वीर जाता है उसे प्रताप मार डालता है।

शक्तिसिंह के मन में प्रताप का शौर्य अकबर को बताने की ईच्छा जाग्रत हुई और इस विषयक एक सन्देश प्रताप के पास भेजा। प्रताप ने आठ हजार सवारों को लेकर भयंकर आक्रमण किया। प्रताप ने ठीक वैसा ही भयंकर युद्ध किया जैसा कि कुरूक्षेत्र के मैदान मे पांडवों एव कौरवो के मध्य हुआ था। युद्ध के दौरान प्रताप ने अकबर पर भी वार किया, यह देख कर अकबर पूछने लगा कि ऐसा कौन हिन्दू है जिसने मेरे पर वार किया है। शक्तिसिंह ने बताया कि यही प्रताप है। अकबर ने दो उजबेको को प्रताप को समाप्त करने के लिये भेजा।

युद्ध की समाप्ति पर शक्तिसिंह ने प्रताप को कहलाया कि आप मुगलो को जीत कर सकुशल घर लौट आये हैं (अतः बधाई है)। प्रताप ने भी प्रत्युत्तर मे कहलाया कि उसे मुगलो का साथ छोड कर यहा आ जाना चाहिये साथ ही उसे विरुद प्रदान कर सम्मानित किया। शक्तिसिंह ने वापस कहलाया कि अभी आना ठीक नही है, समय आने पर आ जाऊंगा।

शक्तिसिंह ने अकबर को बताया कि प्रताप हाथ आने वाला नही है। उसने दोनों उजबेको को भी मार दिया है। कुछ समय बाद समय देख कर शक्तिसिंह मेवाड लौट आया। प्रताप ने उसे हाथी, घोडा और ठिकाना दे दिया। अवशिष्ट सोरठो व दोहो में प्रताप की महिमा का वर्णन है। अन्त में बताया गया है कि प्रताप की मृत्यु के बाद अमरसिंह गद्दी पर बैठा।

भागै सागै भाम, अमृत लागै ऊमरा।
अकबर तल आराम, पेखै जहर प्रतापसी ॥

राजस्थानी-काव्य

अज्ञात

पतायरा

परिचय

'पतायण' ग्रन्थ की पूर्ण प्रति उपलब्ध नही है। इसके दो अंश प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर इसके रचयिता का नाम, स्थान, लिपिकाल, कुल छन्द सख्या आदि का कुछ भी पता नहीं लगता है। यहा प्रकाशित दोनों अंश सूरत के देचन्द लाला भाई पुस्तकोद्धार फन्ड के सग्रह से प्रेस कॉपियों के रजिस्टर से श्री भवरलालजी नाहटा (बीकानेर) को मिले हैं। इनकी नकल भी उन्ही के पास हैं। श्री नाहटाजी का 'शोध-पत्रिका' वर्ष १२ अंक १ मे "महाराणा प्रताप सम्बन्धी एक अज्ञात (पर अपूर्ण) काव्य" शीर्षक लेख छपा है। उनके अनुसार उपरोक्त रजिस्टर में ये अंश गुजराती लिपि में लिखे हुए हैं तथा उन पर 'धताइणि' शीर्षक दिया हुआ है। प्राप्त प्रथम अंश के आरंभ मे 'पतायण' नाम आया है तथा इस नामकरण का कारण भी दिया है। शीर्षक रूप में 'पतायण' नाम ही सही है।

प्रथम अंश छन्द सख्या १ से छन्द संख्या १४ तक है। चौदहवें अंश की एक पंक्ति त्रुटित है, इस कारण इस अंश में कितने छन्द और हैं, यह कहना कठिन है। दूसरे अंश मे छन्द सख्या १ से ५ तथा छन्द संख्या ६ की प्रथम पंक्ति त्रुटित है। इस कारण प्रथम छः छन्दो की विषय सामग्री का पता नही है। यह अंश भी छन्द सख्या १७ तक ही मिलता है, सत्रहवें छन्द की अन्तिम पंक्ति भी त्रुटित है फलस्वरूप इन छन्दों में चल रहा युद्ध प्रसग कितना लम्बा है ? ज्ञात नही होता है।

इन दोनों अंशों के आधार पर इस काव्य की भाषा डिंगल है। वर्णन बड़ा सजीव एवं नवीन उपमाओ से युक्त है। मूछ और सेना के प्रयाण के लिये कवि की उपमाएं आकर्षक है।

पताप्यण

(१)

देवे देवासुर कीउ, रामयण कीउ राम ।
भारथ कीउ कुर पडवे, सरखा वेद सग्राम ॥१॥

देवासुर रामायणह, भारथ परगड भेद ।
विहुँ त्रीजु चुहु पचमु, जिम बंचाइ वेद ॥२॥

कृत युग त्रेता द्वापरे, नवा नवातिहां नाम ।
कलियुग चुथु ए, कहुं रोके रण सग्राम ॥३॥

मांतल सोम हमीरदे, कान्हडदे कूलि एह ।
परिगउ ति प्रतापसिंह, हिन्दू हाथा देउ ॥४॥

त्रीस मास जीणि त्रटि चडी, अग ओडव्यु साप ।
राउल रढि छाडि नही, स्पू पातशाह प्रताप ॥५॥

नित ढोलाख ढग ढगिइ, नित ढो लाख ढोय ।
हवि दल हीदू 'हउ, खोहिणि मत्ता खोह ॥६॥

खोहिणि मिलि कल वह कट्ठा, आवी दल पावइ आवरया ।
हवि राउल ए हीदूयाण समोवडि वाद विहु सुरताण ॥ ७ ॥

कृत युग छासठि कोटि परायण, माहि निवड़ मा को नारायण ।
वैनट दैत्य कीउ विष्णु परायण, तिम करि प्रतापसिंह बताइण ॥८॥

पदम अढार त्रिता युग मेली, वाली सीत लक गढ मेली ।
रच्यु जेम राम रामायणु, तिम करि प्रतापसिंह पाताइण ॥ ६ ॥

द्वापर अनि अढार खोहिणि, आवट्या कुरुक्षेत्र महारणि ।
भारत भीम कीउ भीमायण, तिम करि प्रतापसिंह पाताइण ॥ १० ॥

जव रणथम्भ अलां सिरि लींधु, राउ हमीर जेणि बल कीधु ।
हमीरा सरिस कीउ हमीरायण,तिम करि प्रतापसिंह पताइण ॥ ११ ॥

जव सुरताण ग्रही सोनग्गिर, समप्या भेद चढया असुरां सरि ।
कलही कन्हड़ी कीउ कन्हायण,जिम करि प्रतापसिंह पताइण ॥ १२ ॥

सांतल राउ रहिउ समीयाणे, चहुयावट कीध चहूयाणे ।
ओडी विर कीध आपायण, तिमकरि प्रतापसिंह पतायण ॥ १३ ॥

पह पतसाह मंडोवरि मग्गिइ, अभग सोमहुं गढपति अग्गिइ ।
——————————————————————————॥१४॥

× × × ×

(२)

——————————मज समह को जपिइ ।
सवि दीह सूरु पखे पूरु, पुहुवि पातल परि तपिइ ॥६॥

सूरु संभलेजी (२) वाजित्र घाष मिलेजी (२) ।
मोर महा मिले जी (२), हमथट हूकले जी (२) ।
जे हुकले हय थट सूरसु रूत होइ हव हालो हाउं ।
भाद्रव मासं घण विकासं, मचे कंठलि मेहला ।
चित घटा हरखं सख सरख, हवे हय थठ हुकले ।
कूमाण वंसं राजहंसं सवर पातल संभले ॥७॥

आभूषण सजि जी (२)नल व्रत नी भजिइ जी (२) ।
धार अणी घजि धी (२)भल जोड़ी भजि जी (२) ।
कटि जोडि वधि तेगो कधिइ सपत्र सि हथि ।
फरसी कुहाड़ी विध फाड़ी, कलह हरिरिवग्र कथि ।
मद गहजी सकल सरजी वेष जोडि कती भजिइ ।
काती अ कत्तो डव रत्ती स ताण आभूषण सजिइ ॥८॥
वस महावणी जी (२) श्री काविल तणी जी (२) ।
आइति अति घणी जी (२) भणि जोती घणीजी (२) ।

जे धांण घणी जोतोघार घरीइ भरि जोवणि भूंमली ।
न हसतो हसती कसण कसती अवल निर्मल ऊजली ।
घणी यालि घूरति चरत घरती घणू आयत अति घणी ।
आगरा काबिल हुति आविइ वेस लाडी वहु वणी ॥६॥

चिहूं दिशि चमकती जी (२) ठणहण ठमकती जी (२) ।
झाझर झमकती जो (२) घूघर घमकती जी (२) ।
जे घमकते घूघर झमक नेपुर ठमक नेडर ठमकती ।
थट राग कचू जख कसीइ खडग हाथलि खडगती ।
सणगार सार छत्रीस सजिइ भरे जोरे अण भती ।
राखड़ी हाथी सिरिविराजी तेखि च्यारि दिशि थै चमकती ॥१०॥

लाडी लोडती जो (२) सवली सोझती जी (२) ।
नख दल लुवती जी (२) माती उमती जी (२) ।
जे माती उमत्ती रोस राती, गीत गाती गोरणी ।
रूबर हमाउ विरद बोलि, जगत्र जीप्यु जोरणी ।
सामला साथे मोर माथे महा भत्ती उमती ।
खमणोरह लही मांडि हय बल घडा आवि घूमती ॥११॥

वधाउ वहि जी (२) पातलि नि कहि जी (२) ।
समु आवी समुहि जी (२) रूश (रूडुं) हो रहि जी (२) ।
हो रहे रूडां वड़ा हीदू हठी भल्ले सांगाहरा ।
कहि हीदू आणि सू रग रसाल खरा ।
ति शाह सरसो देग साही सहासु आवी समुहे ।
जलाल अकबर घडा जपि वातइ वधाउ वहे ॥१२॥

वधाउ कहि जी (२) ति मुखि तु तू वहिजी (२) ।
नर कोई न रहिजो (२) साहामी तुज्जण सहिजी (२) ।
कुण सहि साहामी सामि सभलि कद्र घड रुद्रामणी ।
सामली सूरी गात्रि गोरी भेखि भेखि बीहामणी ।
अति चोल मुखी आप रखी साहामी जन को न सहिइ ।

आपणा स्वामी प्रताप आगिइ वात इम वाधाउ कहिइ ॥१३॥

शात्र घड़ सभली जी (२) वो रति वलकली जी (२)।
अणीआं जमली जी (२) मुंछ भ्रुहा मिली (२)।
जे मलि मुंछ भ्रुहां चन्द्र भत्ती बहूय अत्तीए वही।
पावक घृत राय वग पूरो जगत्र जोता जे वही।
वामन बलिरा छलणि वाधे मुंछ एम भ्रुहां मिली।
आदीत द्वादश कमल या सत्रघड़ आवी सभली ॥१४॥

वेगि वणावीइ जी (२) भल चिति भावीइ जी (२)।
सामि सोहावीइ जी (२) अगि ओपावीइ जी (२)।
ओपावीइ सार वर मोजा, वेग जीण वणावीइ।
आणिउ वगतर अम्म उजल, सामि सब सोहावीइ।
हाथ थे हथोटा टोप उपे अरक कोटि उगामीइ।
पतशाह घड़स्यूं वढणि पातल वेगि जीण वणावीइ। ॥१६॥

खत्रि मारगि खड़ि जी (२) द्रुजे वहि घड़ि जी (२)।
भूपति भगे पड़ि जी (२) घड पड घड़ हड़ि जी। (२)
जो घड़ हडे घड़ पड़ भवे धूंधलि सैन अकबर सम वढिइ।
डोलि दहग पग भग डगि डूगर सर दडिइ।
खूदि ते हय खर सक वेसर धूजिइ घड़ पड।
———————————————— ॥१७॥

× × × ×

सारांश

छन्द संख्या १ से छन्द संख्या १३ वाले प्रथम अंश में 'पतायण' के निर्माण का कारण दिया है। बताया गया है कि देवताओं व असुरों के बीच, राम व रावण के बीच तथा कौरव एवं पाण्डव के बीच संग्राम हुए हैं। कृतयुग, त्रेतायुग व द्वापरयुग मे भी सग्राम हुए हैं, तो फिर कलयुग में सग्रामो को कैसे रोका जा सकता है? सातल, सोमदेव, हमीर व कान्हडदेव के समान ही कुल रक्षक प्रतापसिंह भी हुए हैं। जिस प्रकार राम-रावण युद्ध के आधार पर 'रामायण' की, महाभारत काल में भीम-कौरव युद्ध के आधार पर 'भीमायण' का, रणथम्भोर के राव हमीरदेव व अल्लाउद्दीन के बीच हुए युद्ध के आधार पर 'हमीरायण' की स्वर्णगिरी जालोर के कान्हडदे एव बादशाह के बीच हुए युद्ध के आधार पर 'कान्हायण' की रचना की गई है, उसी प्रकार प्रताप अकबर युद्ध के आधार पर 'पतायण' की रचना की गई है। तेरहवें छन्द की प्रथम पंक्ति में गोमगढपति से बादशाह मडोवर मांगताहै, इसके बाद का अंश त्रुटित है।

छन्द संख्या ६ से छन्द संख्या १७ वाले दूसरे अंश में प्रताप व अकबर के मध्य हुए भयंकर युद्ध का वर्णन है। महाराणा प्रताप की सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिये चली। उनकी सेना में हाथी व घोडो का दल इस प्रकार से चल रहा था मानो भाद्रपद मास की घनघोर घटा उमड आई हो। इस सेना रूपी सागर में खुमाण वंशी प्रताप राजहंस के समान सुशोभित था। सैनिको को कमर में तलवारें, कंधो पर भाले, फरसी और कुल्हाडी थी। वे सुन्दर वस्त्र एव आभूषण धारण किये हर्षोल्लास से युद्ध हेतु प्रयाण कर रहे थे। वीरांगनाओ ने गीत गा कर पतियो को विदा किया, रास्ते में अन्य स्त्रियो ने भी 'वधावा' गा कर वीरो का सम्मान किया। सेना घूमती झूमती खमणोर के मैदान में पहुँची। प्रताप के रग-रग में शौर्य भर गया [यहा मूछों का तनना व उसकी उपमाओं का सुन्दर वर्णन है] युद्ध आरम्भ हुआ। प्रताप भी हाथ में 'हथोटा' लेकर सूर्य के समान चमकता सिरस्त्राण धारण कर आगे बढा, ऐसा भयकर युद्ध हुआ कि पर्वत तथा सागर भी थर्राने लगे। घोडे कट-कट कर गिरने लगे——————————।

........It is to his [Pratap's] credit that he perfected the strategy of guerilla warfare exploiting in full the geographical advantage of the hills and ravines. It was from him that later on Shivaji learnt that strategy which foiled all attempts of Aurangzeb to subdue the Deccan.

—*J.M. Shelat*

राजस्थानी-काव्य

सूर्यमल्ल मिश्रण

वंश-भास्कर

परिचय

'वंश-भास्कर' के रचयिता वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण हैं। इनका जन्म कार्तिक वदी १ विक्रम संवत् १८७२ में तथा स्वर्गवास आषाढ वदी ११ विक्रम संवत् १९२५ को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री चंडीदानजी एवं माता का नाम भवानी बाई था। चंडीदानजी स्वयं डिंगल व पिंगल के विद्वान व बूंदी नरेश महाराव रामसिंह के आश्रित कवि थे। सूर्यमल्लजी बचपन से ही बडे प्रतिभा-सम्पन्न थे, इनके गुरु दादूपंथी साधु श्री स्वरूपदासजी महाराज थे। इन्होंने अपने जीवनकाल में छः विवाह किये किन्तु सन्तान एक भी नहीं हुई। अन्त में श्री मुरारीदानजी को गोद लिया। स्वाभिमानी श्री सूर्यमल्लजी को संगीत और शराब से बहुत प्रेम था। अपने पिता के बाद महाराव रामसिंह के दरबारी कवि के रूप में इन्होंने प्रसिद्धि पाई। इनके द्वारा लिखे हुए निम्न ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं:—

वंश-भास्कर, वीर-सतसई, बलवद्विलास, छंदोमयूख, रामरंजाट, सती-रासो, धातु-रूपावली तथा फुटकर कवित्त, सवैये।

महाराव रामसिंहजी महाभारत की कथा से प्रेरणा पाकर चहुवाण चौहान वंश (अपने वंश) का इतिहास लिखाना चाहते थे। महाराव की इच्छा एवं उनकी आज्ञा पाकर सूर्यमल्लजी ने 'वंश-भास्कर' के रूप में उसे विक्रम संवत् १८९७ में लिखना आरंभ किया, किन्तु महाराव से अनबन हो जाने के परिणाम स्वरूप विक्रम संवत् १९१३ में लिखना बन्द कर दिया, बाद में इनके दत्तक पुत्र श्री मुरारिदानजी ने इसे सम्पूर्ण किया। मूल ग्रन्थ प्रायः २५०० पृष्ठों का है। इसमें बूंदी राज्य के वर्णन के साथ-साथ गौण रूप से अनेकानेक विषयों, कथाओं एवं राजपूत राजाओं का भी वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ महाचम्पू प्रकार का है। इसकी भाषा न तो शुद्ध रूप से डिंगल है और न शुद्ध रूप से पिंगल। संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश के साथ-साथ अरबी एवं फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा गूढ और क्लिष्ट है, कहीं कहीं तो इन्होंने अपने निज के बहुत से शब्द गढ लिये हैं।

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित विवरण इस ग्रन्थ में षष्ठराशि, पंचम मयूख में छन्द संख्या ७६ से ८०, षष्ठराशि-सप्तममयूख में छन्द संख्या ५ से ९ तथा षष्ठराशि-चतुर्दश मयूख में छन्द संख्या १ से ५० तक में उपलब्ध होता है।

वंश—भास्कर

कति जयमल्ल प्रताप को, समय विभावो सीस।
छितिपति रान प्रताप छत, अवखहि दुर्ग अधीस ॥७६॥

इम भगवंत रू मान रन, जनक सुतन उत जाइ।
सह भोजन टार्यो समुझि, खल नच्छर अनखाइ ॥७७॥

रान कुलहु निज सम करन, पिसुन भार मन पूरि।
अकबर को चितौर इम, भनि आन्यो फल भूरि ॥७८॥

रान तदपि कुल रक्खिवे, छिति पुर दुगन छोरि।
वनचरयन घरि लिय विपति, जीवन धर्महिं जोरि ॥७९॥

सतति दैवे प्रमुख सब, दिल्ली अभिमत दाहि।
सुख तजि स्वभट कुंटुब सह, उदय गह्यो दुख आहि ॥८०॥

(षष्ठराशि- पचममयूख, सुरजन के चरित्र मे अकबर का
चितौड लेना, छद सख्या ७६ से ८०)

× × × × ×

उदयरान के सुत उदित, बीस प्रमित बरबीर।
जेठो कुमर प्रताप जह, धर्म सहायक धीर ॥५॥

सगतसिंह जगमाल सम, अति धृति मित सुत और।
अट्ठ भये कुलधर अडर, जिनमैं रन घनजोर ॥६॥

सगत जग्ग अगर रु सगर, पचायन गन नाम
कन्ह रु लवनादिक करन, कुलतानक जसकाम ॥७॥

कुल तिनके तिन्ह नाम करि, अग्ग कहावत उत्त।
सगताउत्त प्रमुख्य सब, जानहु इम जसजुत्त ॥८॥

किते उदयनृप के कइत, जेठो सुत जगमाल।
पै कछु हेतु अमोघ परि, भयउ प्रताप भुवाल ॥९॥

(षष्ठराशि– सप्तममयूख, सुरजन के चरित्र में राणा उदय-
सिंह के सतान का वर्णन, छन्द सख्या ५ से ९)

× × × × ×

पतारान इत उदयपुर अप्पन बिधि अनुसार ॥
अज्ज धरम प्रेरिय अखिल, भुज धरि सासक भार ॥१॥

दसपुर मुख पत्तन दुलभ, लिय दिल्लिय धर लुट्ठि ॥
इत उत बहु गजे अडर, करवालन अरि कुट्टि ॥२॥

कहिय पुब्ब तिम कति कहत, यह हुव सब भुवं ईस ॥
बदत किते हुव यह बिदित, अद्धी अवनि अधीस ॥३॥

चितोरहु कति जवन चहि, जसगाहक लिय जित्ति ॥
जिम तिम तपि मेवार जिहि, किय निज बिक्रम कित्ति ॥४॥

चेटक नाटक मुख प्रचुर, रान लये हय राज ॥
न दयो पै भ्रातन निजन, इक हु अस्व बर बाज ॥५॥

इम रुठो ताको अनुज, सप्ति न लहि सगतेस ॥
सेवन अकबर निजन सह, आयो दिल्लिय एश ॥६॥

॥ षट्पात ॥

दिल्ली अकबरद्रग उभयं अकबर निवास इम
कहुं यह कहु यह कहिय तदपि समुझहु सभव तिम
सगत सिंह सीसोद साह भ्रातहि सन मान्यो
पहु इत रान प्रताप प्रबल प्रतिभट पहिचान्यो
सजि वरुथ बहुरिहु अखिल प्रस्थित हुव मेवार पर
सीमा प्रवेश पावत समय कहत चल्यो असि रान कर ॥७॥

अडर रान इक्क लहि अर्व चेटक चढि आयो
व्यवहित रहि कछु वेर साह दल मिलित सुहायो
सरत जबहि निजसीम अंघ्रि द्वव दिय अकवर इम
तह झारिय तरवारि नृपति जमकी रसनानिभ
कछवाह मान गज अग्ग कछु भयद खान बहलोल भट
हो तह प्रताप तस सिर हरयो कटि पक्खर हय जुत प्रकट ।।८।।

बहुत वह बहलोल खग्ग उततेहु चल्यो खर
इक तिहिं चेटक अंघ्रि अवनि कट्टि रु प्रकट्यो अर
सो नृप जानि सक्यो न कढत अति वेग यहै करि
त्रय पय चेटक तुरग धुरग मारयो सु पटी धरि
जिहिं पिट्ठि वहुत लग्गे जवन जह पहुँचत द्रुव जानि कै
कर जोरि अरज सगतेस किय मन अग्रज हित मानिकै ।।९।।

अग्रज जव लिय अस्व याहि तिन मैं दिय इक्कन
तव रिसाइ सगतेस मंगि भूखन मातासन
तसो ही इक तुरग लोल सोदागर तें लहि
इम अकबर पह आइ रक्खि कछु दाय गयो रहि
अब जानि त्रिपय हर अग्रज हिं चहत बचावन इम चविय
जो होइ हुकम मैं पूगि जिहिं जातहि हनि आऊं जविय ।।१०।।

साह कहिय सगतेस जाहु मारहु रानहिं जब
बाजि दपटि यह बीर त्वरित सज्जित पहुँच्यो तब
उभय जवन हे अग्ग तिनही हनि अग्ग बढ्यो तिम
रानहिं अक्खिय रहहु अनुग यह सगत सिंह इम
पूगतहि जवन तिन्ह मारि पथ कछु अप्पहि आयो कहन
हयत्रि पय छोरि चढि जवन हय व्रजहु भ्रात पन निब्बहन।।११।।

असभूत सम वत्त यह, बाढत मन न बिसास
जे अकबर बानैत जिम, पहुंचे इक्क न पास ।।१२।।

द्वै ही पहुँचत जानि दृढ, तिनहि हनै सगतेस
पहुँचे यह याकोहि पुनि, अद्भुत सूचक एस ।।१३।।

बिरचैं जन टुकरहु अबहु, मन कञ्जन महिपाल
तनुके कज्ज बने न तिम, बनैं सु बिरचै बाल ॥१४॥

पिहित साह दल मिलि पता, करिलै पुब्ब कही सु
अनुज ही पहुँचे नहिं इतर २, रीति अचिज्ज रही सु ॥१५॥

पै धुरधर अब के नृपन, तब हुव रान प्रताप
बिपिन धर्म हित जो बस्यो, आपत्ति हु सहि आप ॥१६॥

बीरपनहु याकोहि बलि, उधर्यो सब सिर एक
हठि इम तँहँ सभव-चहन, अद्भुत जसहु अनेक ॥१७॥

षट्पात

इक आकृति कति कहत हुते उभय हि बंधुन हय ॥
पहुचि अनुज इम पास रान हय लिय सुत्रि पय रय ॥
चपल स्व हय अग्रज चढाइ पठयो पन पालन ॥
अविखय साहहिं आइ कट्टि जवनन करवालन ॥
पुनि छेदि इक्क मम हय पयहु दुस्सह भय जय खिन दयो ॥
सो रान प्रबल हजरत सुनहु गजि सबन-बचि इक गयो ॥१८॥

संक्रमि अकबर सुनत पत बल अतुल उदैपुर ॥
चितोर हि कति चवत धरिय बहुबिध जुज्झन धुर ॥
जिहि बहु दिन लरि जिति पुहवि मेवार लई पुनि ॥
रक्खन धर्महि रान वसिय वन बलि चिअन चुनि ॥
पठई कहाइ दिल्लीस पहु सासन मम कछु अनुसरहु ॥
नहि और नृपन सम तुम नृपति रहि दिल्लिय सेवन करहु॥१९॥

दोहा

हमरे रक्खहु दाग हय, नीचे चिन्ह निसान ॥
कहिहै हमरे यट्हि करि, राज्य करहु पहु रान ॥२०॥

नँक न मत्री रान नटि, सुनहु राम प्रभु सौंहु ।।
पठई कहि रहि है स्वपघ, हम नासहि किन होहु ।।२१।।

इत अकबर हठ अकुर्यो, प्रतिभट उतसु प्रताप ।।
मन्यों नन दुव घां मिलन, आप मतहि तजि आप ।।२२।।

सूनु रान कै दस सुनें, पै तिहिं समय प्रवीर ।
प६ कुमर अमरेस पट्ट, भये जनक मत भीर ।।२३।।

षट्पात

उभय पिता सुव अतुल कढ्ढि नारिन सगहि करि ।।
सव भट परिजन सहित धर्म न तजन मन पन धरि ।।
गहन वरुनदिस गिरिन रहिय पिरलो तह रानाँ ।।
भोगे दृढ सव भाति खुल्लि आपति खजानाँ ।।
फटकी तरुन आवृति कलित तिहि अतर तृन पत्र तनि ।।
इम विविध कायमान रु उटज बनवाये नृप वन्य वनि ।।२४।।

तँहँ अ तहपुर तिमहिं रक्खि रानि न कुमरानि न ।।
अप्प कुमर कछु ओटरहे वाहिर छद छानिन ।।
आवृति बाहिर अखिल वीर अरु अनुग बसाये ।।
पिउहर निज पठइ न लार नारिन कति लाये ।।
अवरोधतेहु अक्खियअधिपनिजपुत्रिनसम हित नियत ।।
साहस अमोघ इहिं सकट हु जवन भत्य न बजै जियत।।२५।।

रह्यो इत सु भुव रुंधि सबल छोरें हठ साह न ।।
अधिक अधिक दुख देत रोकि अन्ना गम राहन ।।
दूजे तीजे दिवस स्वजन जुहि अन्न प्रवेसहिं ।।
नटि सबन इक वेर अप्प लै तव्व अवसेसहि ।।
कोद्रव गवेधु न मिलै कबहु साक फलन व्है तब असन ।।
कल्हि को खिलहु बिच डारि कछु रधिलहहिं हेरहि रसन।।२६।।

दोहा

पै जब व्है तब पति परि, बिच जिम्मर्हि नृप बैठि ॥
निज निज स्वामिन खिल अनुग, पावहिं अवसर पैठि, ॥२७॥

रीति सु तँहँ पीढिन रहैं, जँहँ बिपदा बढिजाइ ॥
पै सह भोजन उदैपुर, होत अबहु यह हाइ ॥२८॥

पताराान इम धर्म पर, सधा अबि तथ साहि ॥
रोर दुखहु सहि मुरि रह्यो, निज जन सब निर्बाहि ॥२६॥

षट्पात

जिहि बिपत्ति गर्भ जुत रहत कोउक कुमरानिय ॥
वासर तीजे कबहु अन्न स्वजनन तह आनिय ॥
हुव तस रुट्टी होहि अखिल बट अद्धि अद्धि ॥
गुरुपन कारन द्विगुन लाभ ताकन इक लद्धी ॥
आहार करन आतापिनी गगन झपटि तिहिं लै गई ॥
अमरेस नारि करि आहि वह भय बिहाल क्रंदत भई ॥३०॥

स्वसुर सुनत बट स्वीय अद्ध, पूपिय तिहिं अप्पिय ॥
सोहि स्वबट सरसू हु दइत मग रहि बधूहिं दिय ॥
इम ताके हुव इक्क जोहु न लगी खावन जँहँ ॥
सस्सू तह सह सपथ कठिन भोजी स्वबन्धू कँहँ ॥
दुख को न सेस अन्नहु दुलभ सूर तदपि संगर रसिक ॥
अरि जवन तिमिर भास्यो उदित्त अज्जनृपन रवि रान इक ॥३१॥

सौराष्ट्री दोहा

स्व धरम द्रढ सवादि, दै सीस हु को भू द्रविन
अग्गहु लक्खन आदि, रानहि वहु मुररे रहे ॥३२॥

या ही तै जन अज्ज, अज्जान इन भाखै इनहिं
नृपत धर्म कुल लज्जा, तक्की इन इत न न तिम ॥३३॥

जवन कहत लघु जानि, अप्पन अज्जन हिंदु इम
मति जउ सुहि दृढ मानि, हिंदू हम अज्जहु कहत ॥३४॥

हिंदुस्थान कहंत, अज्जावत्तहिं अज्ज इम
लज्ज न सुनि हु लहत, मिच्छन हिंदुस्तान मित ॥३५॥

भास्यो हिंदुन भानु, जनन इमहि रानन जनन
सो जंहँ ज्वलित कृसानु, हुव प्रताप अरि करन हुव ॥३६॥

भोज मान से भूप, सचिव खानखाना दि सब
रहे स्व स्व अनुरूपं, करन सचि समुझाइकें ॥३७॥

षट्पात

पठई कहि मान प्रति रान यह बंत धर्म रत
दुहिता जवन न दै रू तुमहु सवध उतहि तत
अकबर जामिप अग्ग क्यों न नत हमहिं करावहु
अत्र पै सगपन असन पति पैले भव पावहु
जो पुनि न देहु लिखि देहु जब लवकुल पुत्रिन तब लहहु
हम स्वीय भटन देतहि हरखि रुचत न तो मिरजा रहहु ॥३८॥

दोहा

करों जवन लवकुल कनी, कहिय अग्ग तुम कुप्पि
बिगरायो सुन करि वचन, लज्ज धरम कुल लुप्पि ॥३९॥

कनि दूर अवनी करन, कछ्छ वाहहु लै कोहु
तनया लव कुलजा ततो, हमकों तुम अघ होहु ॥४०॥

षट्पात

जब प्रताप असु जाइ कुम्म ब्याहहु तब मो कुल
तनया ब्याहहि न तनु तनय ब्याहहु अतीत तुल

कहा रूद्वि तुम कियउ सिंह इत आनि फेरु सम ।
हत्थी समुझै हमहिं तुल्य समुझै न अध तिम ॥
कदरालिय सु बहु मिलि किनहु तिम जो सद्धैं हुकम तस ।
तो हमहिं धर्म तुम लों तजै बदहु सिंह कित सिंह बस ॥४१॥

मुख जो रक्खहु मुच्छ साह श्रुति गहि समझावहु ।
दग्ग सु हय न दिवाइ चिन्ह ध्वज निजहि चलावहु ॥
उत उत्तर यह अप्पि भूप भोज हिं इम अक्खिय ।
थिर सुर्जन रन थंभ कोल हम सुनिय सत किय ॥
उत्तमैं न दैन दुहिता यहहु जो बलि दै सोहु जवन ।
दूदा रू तुम हु तनया दई कहहु धर्म रक्खहिं कवन ॥ ४२ ॥

दोहा

मन्नहु अप्पहु अबहि किम, रक्खत ए छरुराह ॥
कछवाहन कै जिन करहु, बिनु लिपि पुत्र न ब्याह ॥ ४३ ॥

अतर मिच्छन बधु इम, ए ठग उप्पर ओर ॥
अप्पज कवन विज्जौं इनहिं, चोरैं दीसत चोर ॥ ४४ ॥

षट्पात

इम कहाइ रान इत बस्यो गिरिदुर्ग दुर्ग बन ॥
जँहँ सके न अरि जाइ जाइ दिन निठ्ठि निजहि जन ॥
साक पलास१ पलास२ पलासन के उटजन पहु ॥
रहैं जलन तँहँ रच विसै भर जदपि लगैं बहु ॥
वरखा अनेह तँहँ कछु विघन अमर उटज प्रच्युत उदक ॥
कुमरानि सहित अनुताप किय जगिनिस कुमर न पाइ जग॥४५॥

पिहित सुनत सब पास रजनी विचरैं उठि रानहु ॥
कुमर उटजढिग कहत कथन परिगो वह कानहु ॥
अमर दुखित उच्चरिय अहो हम सम न अभागे ॥
वन मह सहत विपति जलहिं टारन निस जागे ॥

सब अधिप धन्य हमरे सगे महलन वितवत यह समय
प्रबलहिं बुलाइ पद करि प्रहत न क्यों गहत नृप संधि नय॥४६॥

छदन निलय निज छन्न आइ सुतो पुनि नृप यह
परिकर बुल्लि रु प्रात सवन प्रति भनिय सूनु सह
तुमहिं संधि जो रूचत करहु तो ह्वै अनुमत किल
इक मो सठ अपराध बसहु क्यों सब कारा बिल
यह सुनत भीत विस्मित अखिल कहत भये यह अज्ज किम
प्रभु संग दुख रु सुख परिजनन जानहु हमहिं स्वछाँहँ जिम ॥४७॥

कहिय रान जल कनन कुमर अनुताप रति किय
छिज्जि मिलहु पीछँहिं जु अब किन गिनहु उचित जिय
करन राज्य नमि कुमर बुरे बलि हमहिं बतावैं
हम छत सादर मिलहु जिम न अरि अरुचि जतावैं
तब हीत मीत अविखय अमर गति दरिद्र आढ्यन गदत
मिलि बोहि मन्नि किम प्रभु कहहु निज पर परदासहु नदत ॥४८॥

दोहा

कुमर लजानो इम कहि रु, रह्यो सदा तिहिं राह
जुग २ न रिपुन नैन जिमहि, पैने तिमहि सिपाह ॥४९॥

षट्पात

अकबर पाउस अंत गयो तँहँ धरि रच्छ कगन
इम प्रताप असु अवधि प्रथित निवस्यो स्वधर्मपन
स्वकुल समप्पन सुजस धर्म अप्पन थप्पन धुर
स्वामि सुनहु जिहिं समय इक्क १ हुव यह हि उदैपुर
विपदाह सहि रु अब्दन बहुन विहित बहि रु थिति चहि विपिन
वितयो स्व आयु तस देस१ वसु२ अमल गयो करि साह इन॥५०॥

[षष्ठराशि–चतुर्दशमयूख, सुरजन के चरित्र मे राणा प्रतापसिंह का वर्णन, छन्द संख्या १ से ५० तक]

सारांश

कितने ही लोग जयमल और पत्ता को महाराणा प्रताप के समय में किले का (चित्तौडगढ का) किलेदार होना कहते हैं।

महाराणा प्रताप ने राजा भगवंतसिंह व उसके पुत्र मानसिंह द्वारा मुगलों का अन्न खाने के कारण उनके साथ बैठ कर भोजन करने से मना कर दिया। इससे मानसिंह व प्रताप के मध्य वैमनस्य स्थापित हो गया। अकबर ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। प्रताप राज्य, नगर व किला छोड कर अपने परिवार व योद्धाओं के साथ वन में रह कर कष्ट सहन करने लगे।

[षष्ठ राशि-पंचम मयूख, छन्द सं० ७६ से ८०]

× × × ×

उदयसिंह के बीस बलवान पुत्र थे। धर्म रक्षक प्रताप उनमें सबसे बड़ा था। शक्तिसिंह व जगमाल सहित आठ पुत्र थे। सगत, जगा, अगर, सगर, पचायन, कान्ह, करन आदि बडे निर्भय थे। इनके नाम के आगे उत्त शब्द लगने के बाद बनने वाला शब्द इनके वंश का परिचायक है।

कुछ लोग जगमाल को ज्येष्ठ पुत्र बतलाते हैं, किन्तु कुछ कारण वश प्रताप ही शासक बना।

[षष्ठ राशि–सप्तम मयूख, छन्द सं० ५ से ९]

× × × ×

महाराणा प्रताप ने राज्यासन प्राप्त होने पर दसपुर (मंदसौर) आदि मुगलों के अधीन प्रदेशों को अपने अधिकार मे लेना आरंभ कर दिया।

[एक बार] प्रताप ने चेटक, नाटक आदि कई घोड़े खरीदे लेकिन अपने भाईयों को एक भी घोडा नही दिया। इस पर उसका छोटा भाई शक्तिसिंह रूष्ट होकर अपने लोगों सहित अकबर की सेवामें दिल्ली चला आया। अकबर ने उनका स्वागत किया और अपनी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ आया। शाही सेना के मेवाड़ की सीमा में प्रवेश करते ही युद्ध आरंभ

हो गया । बहलोल खां मानसिंह के हाथी के आगे था । प्रताप की तलवार से बहलोल मारा गया, बहलोल की तलवार से चेटक का एक पैर कट गया । मुगल सैनिकों ने प्रताप को घेर लिया । शक्तिसिंह के मन मे अपने बडे भाई के प्रति सहानुभूति उमड आई । उसने पूर्व वैमनस्य को भुला कर प्रताप को बचाने का विचार किया ।

प्रताप के भागने की सूचना अकबर देते हुए शक्तिसिंह ने कहा कि अगर आप आज्ञा दें तो मैं प्रताप का पीछा कर उसे समाप्त कर दू । अकबर ने आज्ञा दे दी। उस समय दो यवन प्रताप का पीछा कर रहे थे, उन्हे मार कर शक्तिसिंह प्रताप के पास पहुचा । शक्तिसिंह ने प्रताप को अपना घोडा दे दिया और प्रताप का घोडा (चेटक) लेकर अकबर के पास लौट आया और कहा कि मेरे घोडे का पैर कट जाने से मैं कुछ नही कर सका और प्रताप सब सैनिको को मारते हुए अकेला बच कर भाग गया ।

अकबर ने प्रताप के पास यह सन्देश भेजा कि तुम मेरा कुछ शासन मान लो । तुम्हे अन्य राजाओ की भांति दरबार मे रह कर मेरी सेवा करने की जरूरत न रहेगी । केवल घोडे पर दाग लगाने पडेंगे और शाही चिन्ह व निशान रखने पडेंगे। किन्तु प्रताप ने एक बात नही मानी और जवाब मे कहा कि चाहे हम नष्ट हो जाय लेकिन हम अपना भाग नही छोडेंगे । प्रताप ने अपने परिवार, सम्बन्धियो व योद्धाओ सहित यह दृढ निश्चय कर लिया कि वे किसी भी स्थिति मे धर्म का त्याग नही करेंगे । वे जगल में जाकर रहने लगे ।

अकबर ने मेवाड को घेर कर रसद के मार्ग बन्द कर दिये । प्रताप को दूसरे तीसरे दिन कुछ भोज्य-सामग्री प्राप्त हो जाती, जिसे वे सबको एक बार बाट देते और जो कुछ बाद में बच रहती उसे खाकर संतोष कर लेते । जब कभी कोदो और गेहूँ नही मिलते तो जगली फल फूल खा कर तुष्टि कर लेते और जब ये मिलते तो पक्ति बनती, बीच मे प्रताप बैठते और एक साथ भोजन करते । एक बार भोजन करते समय एक चील झपट कर अमरसिंह की पत्नी के हाथ से भोजन ले कर उड गई । वह भयभीत होकर रोने लगी, उसका क्रन्दन सुन कर प्रताप ने अपने हिस्से की रोटी में से आधी रोटी उसे दे दी ।

प्रताप ने मानसिंह के पास स्वधर्म पर दृढ रहने के आशय का एक संदेश भेजा और समझाया कि वह मुगलो से सम्बन्ध तोड ले, किन्तु मानसिंह नही माना ।

जगल की आपत्तियो से घबरा कर तथा अकबर से अधीन राजाओं के आनन्दपूर्ण जीवन को देख कर अमरसिंह ने कहा कि अकबर से संधि क्यो न करली जाय ? यह सुन कर प्रताप

अपनी झोपड़ी से बाहर निकल आये और अपने समस्त सरदारो की उपस्थिति मे अमरसिंह से कहा कि यदि तुम्हे सन्धि पसन्द है तो कर लो, अपराधी तो मैं हूँ तो फिर तुम मेरे साथ क्यों दु ख भोग रहे हो ? इस पर सरदारो ने भयभीत एवं विस्मित हो कर कहा कि आर्य! आप यह क्या कर रहे हैं? हम तो दु ख और सुख मे निरन्तर आपके ही साथ रहना चाहते हैं। अमरसिंह इस पर बहुत लज्जित हुआ।

इस प्रकार अपने कुल की समृद्धि करने वाला प्रताप वर्षों तक आपत्तियां सहन करता रहा और अन्त में अकबर ने प्रताप की महत्ता स्वीकार करली।

[षष्ठराशि–चतुर्दश मयूख, छन्द सख्या १ से ५०]

विविध समकालीन एवं परवर्ती कवि

फुटकर-काव्य

परिचय

महाराणा प्रताप के जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित विभिन्न संग्रहालयों में अनेक फुटकर गीत, कवित्त, छप्पय, निसाणी, दूहा, सोरठा आदि उपलब्ध हुए हैं। उन सब को यहा दिया जा रहा है। इन विविध छन्दो में प्रताप के शौर्य, साहस, स्वाभिमान, युद्ध-कौशल, कुल-रक्षा, धर्म-रक्षा, अस्त्र-शस्त्र आदि की प्रशसा तथा प्रताप के सहयोगी वीरो के बलिदान आदि का सजीव वर्णन किया गया है। कही-कही घटनाओं का सक्षिप्त उल्लेख भी मिलता है। इस समस्त फुटकर-काव्य के रचयिता प्रताप के समकालीन व परवर्तीकाल के हैं। समकालीन कवियों में पृथ्वीराज राठौड़, दुरसा आढा, रामा सादू, माला सांदू, गोरधन बोगसा, सूरायच्च टापरिया, जाडा मेहडू आदि हैं। रामा सांदू और गोरधन बोगसा तो हल्दीघाटी के युद्ध में प्रताप की सेना में विद्यमान थे। पीरा आसिया, कान्हा चारण, गणेशपुरी, बारहट बालाबक्स, ठाकुरसी बारहठ, मुनि हेम, बाघजीराव आदि परवर्तीकाल के कवि हैं। कुछ छन्दों के रचयिता अज्ञात हैं, प्रयत्न करने के बाद भी उनके नामो का पता नही लग सका, ऐसे समस्त गीत, कवित्त, निसाणी, सोरठे, आदि एक साथ दे दिये गये हैं। जिन छन्दो की भाषा दुरूह हैं, उनका साराश उनके साथ दे दिया गया है। बहु-प्रचलित व सरल भाषा के छन्दो का सारांश देना आवश्यक नहीं समझा गया है।

क्षात्र-धर्म की रक्षा

पृथ्वीराज राठोड़

नर जेथ निमाणा निलजी नारी
अकबर गाहक वट अवट ।
चौहटै तिण जायर चीतोड़ो
वेचै किम रजपूत वट ॥१॥

रोजायतां तणै नवरोजे
जेथ मुसांणो घणो जणो ।
हीदूनाथ दिली चै हाटे
पतो न खरचै खत्रीपणो ॥२॥

परपंच लाज दीठ नहँ व्यापण
खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज वेचवा न आवै राणो
हाटे मीर हमीरहरो ॥३॥

पेसै आप तणा पुरुषोतम
रह अणियाल तणै बल राण ।
खत्र वेचिया अनेक खत्रियां
खत्रवट थिर राख्यो खूमाण ॥४॥

जासी हाट बात रहसी जग
अकबर ठग जासी एकार
रह राखियो खत्रीध्रम राणो
सारा ले वरतै संसार ॥५॥

सारांश

बादशाह अकबर पुरुषो का गौरव, स्त्रियो की लज्जा और क्षत्रियों के क्षत्रियत्व का ग्राहक है । कई क्षत्रिय राजाओं ने क्षत्रियत्व वेच कर अकबर की आधीनता स्वीकार करली, किन्तु हिन्दू पति राणा प्रताप ने क्षात्र-धर्म एव वंश-गौरव की रक्षा की ।

---

१ डा० देवीलाल पालीवाल के अनुसार इस गीत का रचयिता पृथ्वीराज राठौड़ है [प्राचीन डिंगल काव्य मे महाराणा प्रताप, पृष्ठ ५] । श्री व्रजमोहन जावलिया के अनुसार राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय के ग्रन्थ संख्या ७१७-७१६ (हिन्दी) मे इस गीत का रचयिता का नाम दुरसा आढ़ा दिया गया है ।

रक्त-रंजित चन्द्रहास

पृथ्वीराज राठोड़

ऊगां दन समै करै अखाड़ा
चोरंग भुवन हसत अणचूक ।
रोदां तणा रगत सूं राणा
रगियो रहै तुहालो रूक ॥१॥

मोकलहरा महाजुध मचतै
बाजतां सार नत्रीठ बहै ।
पातल तूझ तणो पड़ियालग
रुधर चरचियो सदा रहे ॥२॥

खित कारणे करै नित खलवट
खेटै कटक तणा खुरसाण ।
असणां सोण अहोनस पातल
खग सावरत रहे खूंमाण ॥३॥

ऊगां सूर समो ऊदावत
वढै बसू छल बोल-विरोल ।
चलुअल अरी तणै चीतोड़ा
चन्दरहास रहै नत चोल ॥४॥

सारांश

हे राणा प्रताप ! तू प्रतिदिन सूर्योदय होते ही मातृ-भूमि की रक्षार्थ मुगल सेना से युद्ध करने लग जाता है इससे तेरी तलवार शत्रु के रक्त से सदैव लिप्त ही रहती है ।

रामा सांदू का बलिदान

पृथ्वीराज राठौड़

गयो तूं भलां भलां तूं न गयो
धिन धिन तूं सांदवां धणी ।
जाट अणी मां हेडो जा कल
अणी करण पातला अणी ॥१॥

तै लिय आहव राण जगड़ हथ
लै लांघण मासण न लिया ।
मोहै ससत्र सालिया सात्रव
कठ सोहै न खालिया किया ॥२॥

दल आसरी नशोठी दीनो
धाये लीना ग्रसण घणा ।
आंवाहरा न बीजा ओपम
ताग बाला नसा तणा ॥३॥

चारण जाणै मांय चारणा
अवै समै विच नथ अनथ ।
धरमां तणो न बैठो धरणै
रामो बैठो रभ रथ ॥४॥

सारांश

हे धरमां के पुत्र रामा सांदू ! तूं धन्य है तू भले ही [मारवाड के मोटा राजा उदयसिंह के विरूद्ध] धरणे मे नही बैठा किन्तु तू अपने साथियों सहित मेवाड़ आकर महाराणा प्रताप के लिये लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और इस तरह अप्सराओं के साथ रथ मे बैठ कर बैकुंठ को गया ।

प्रताप के नाम पृथ्वीराज राठौड़ का पत्र

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंतां बयण ।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप राव-उत ॥

पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निज तन करद ।
दीजै लिख दीवांण, इण दो महली बात इक ॥

प्रताप का उत्तर

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूं इकलिंग ।
ऊगै जाही ऊगसी, प्राची बीच पतग ॥

खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछा पाण ।
पछटण है जेतै पतो, कलमां सिर केवांण ॥

सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर-सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भला, बैण तुरक सूं बाद ॥

अकबर का अनुताप

दुरसा आढ़ा

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी ।
गो आडा गवडाय, जिको बहतो धुर वामो ।

नवरोजे नहूँ गयो, न गो आतसां नवल्ली ।
न गो झरोखां हेट, जेठ दुनियांण दहल्ली ॥

गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी ।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी ॥

कुल मर्यादा का निर्वाह

दुरसा आढ़ा

सीसोदां तणी लाज सीसोदे
असपत सूं घरि मछर अग ।
राणै रहे गिरवरे राखी
दारि थकै राखी दुरग ॥१॥

ऊदावत अनिये अचलावत
साका वे राखै सबल ।
नाया तिण नावी नवरोजै
आयो पण नावो अवल ॥२॥

जुड़ै नवरोजै जोगणीपुर
जुगत जूपतो हुआ अजूत ।
रजवट अघट वडे घर राखण
राणो राव बडा रजपूत ॥३॥

वास वाद जुड़ै वसि अंतर वाद
....वीरहांवर ।
हांसा हरो जेम सांगाहर
हुआ सिरे सहां रायहर ॥४॥

सारांश

राणा प्रताप ने सिसोदिया वंश की कुल-मर्यादा का सदैव निर्वाह किया । वह न तो कभी नौरोजे मे, अन्य राजपूतों की भांति सम्मिलित हुआ व न अकबर के सम्मुख झुका । इस प्रकार उसने अपने घराने के वड़प्पन को कायम रखा ।

कुंभलगढ़ का युद्ध : भाण का बलिदान

दुरसा आढ़ा

आखै इण भांण रांण अहाड़ा
कथन किसा कहि अवर कहूं ।
हाथी सहर हालते हालूं
रहते हाथस सहर रहूं ॥१॥

में मांडिया खरा मेवाड़ा
भांण पयपै महा-भड़ ।
आबू साथ कहै आखावत
आगल जोधा ए अनड़ ॥२॥
पातल किसा प्रधान परठवै
सोनिगरो उवचरै समाथ ।
करै साथ गढ गिर केलपुरा
सहि होवै तै मांने साथ ॥३॥

फिरते दल मछरीक न फिरियो
फरिया सोहड़ करै फरफेर ।
माथा सू दीधो मिल-काने
माल कलोधर कुंभलमेर ॥४।

सारांश

सोनिगरा अखेराज के वंशज वीर योद्धा भाण को महाराणा प्रताप कुंभलगढ की रक्षा का भार देता है वह विशाल मुगल दल को देख कर मुडा नहीं बल्कि वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए उसने गढ़ की रक्षार्थ अपने प्राण अर्पित कर दिये ।

हिन्दू धर्म की रक्षा

दुरसा आढा

आयां दल सबल सामही आवै
रंगियो खग खग्रवाट रतो ।
ओ नरनाह नमै नह आवै
पतसाहण दरगाह पतो ॥१॥

दाटक अनड़ दण्ड नह दीधो
दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेल न कियो जाय विच महला
कैलपुरै खग-मेल कियो ॥२॥

कलमा वांग न सुणियै कानां
सुणियै वेद पुराण सुभै ।
अहड़ो सूर मसीत न अरचै
अरचै देवल गाय उभै ॥३॥

असपत इन्द्र अवनि आल्हड़ियां
धारा झड़ियां सही धका ।
धण पड़िया सांकडियां घड़ियां
ना धीहड़ियां पठी नका ॥४॥

आखी अणी रही ऊदावत
साखी आलम कलम सणी ।
राणो अकबर वार राखियो
पातल हिन्दू धरम पणी ॥५॥

सारांश

अकबर के विशाल सैन्य-दल के आक्रमण से भूमि रक्तमय हो गई है किन्तु महाराणा प्रताप अकबर के सन्मुख न तो झुका और न उसको दंड दिया । उसने अकबर से सन्धि करने के बनिस्बत युद्ध करना श्रेयस्कर समझा । भीषण संकट काल में भी उसने अपने धर्म और आन को कायम रखा तथा अपनी पुत्रियां अकबर के पास नही भेजी ।

कलियुग में धर्म की रक्षा

दुरसा आढा

सौहजिलियै पाप धरम संभलियौ
आतम बिलकुलियौं अंतर
दुख टलियौ वलियौ दीहाड़ौ
अणक लियौ मिलियौ अमर ॥१॥

कलजुग ता पतणौ कल करतां
जाप संतापस टलै जूवा
आप प्रताप तणौ मुख ईखै
हनुमाई बाप निपाप हुवा ॥२॥

डरिये देख दालिदची डरिय
सुधरम पांगुरियौ सुतण
भवु समरियौ श्रिया घर भरियौ
रांणो संभरियौ रसण ॥३॥

अनकुण भात गात ई खतां
जी वैई घात न काय जुई
हिंदवा छात्र बात सौह हुई
हुवा पात्र मुख जात हुई (हुत) ॥४॥

सारांश

कलियुग के कारण पापाचार बढ़ गया, इससे धर्म अत्यन्त व्याकुल हुआ, लेकिन महाराणा प्रताप के कारण धर्म पुनः पल्लवित हुआ व पाप का नाश होने लगा।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति सं० २५ पृ० २३-२४ से श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त

सोनिगरा मान का प्राणोत्सर्ग

दुसरा माढ़ा

निजड़ भांजि सात्रव हियै खाग नीजांमियै
खाग भागां पछां अचड़ खेली।
थाट रे रूप गज रूप कुंभाथलां
मान असमान जमदाढ मेली ॥१॥

सेल उर तोड़ि करि रूक सावाहियो
रूक सिर तोड़ि अखियात राखी।
अखावत मैंगलां सीठ आचा गलै
दात पग परठि जमदाढ दाखो। २॥

रहचि अणियाल धाराल जुध रहचिया
रहचि धाराल् प्रभता रहाई।
कोपयै मांन मछरीक हाथी कमल्
वेग संभालि प्रतिमाल् वाई ॥३॥

अभिनमो मालदे आचरिअहुं आवधो
खत्री ओपवी मुओ चाड़ खूंमाण।
सेल ऊवर उचरि तेग खुरसाण सर
सिंधुरां कटारी तणा सहिनाण ॥४॥

सारांश

सोनिगरा अखेराज का वंशज वीर योद्धा मानसिंह भीषण शस्त्र प्रहार करते हुए युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसने तलवार से शत्रुओं के सिर तोड़े कटार से हाथी का संहार किया और भाले से शत्रुओं के वक्ष चीर डाले।

अकबर का गर्व-भंजन

रामा सांदू

किलम लाख केकाण गज खभ छेड़ै कुमख
वावरे पख बल दाख वलियौ।
आभ खूंमाण चौ माग ओहाड़तां
गुरड अकबर तणो गरब गलियौ ॥१॥

फोज बाजू तुरी गयद दामण फिरै
पांण सू पडै परियाण पाकौ।
पात ब्रह्मंड चा पार लाधा पखै
थाग दल विहग सुरताण थाकौ ॥२॥

दल सबल खाग झड़पख बल दाखवै
फिरै पण नीगमै पड़े फीकौ।
ऊरउत गयण पुड तणा थग आणता
सीकरी सुपह धकपख सीकौ ॥३॥

हिये बल दाखवे वाद धीरो हुओ
सरीखौ वड़ो परहस सहियौ।
विहद आकास पुड़ राण पौरस विहद
रौद पंखराव हद मांहि रहियौ ॥४॥

सारांश

लाखों मुगल सैनिकों, अश्वो और हाथियो को लेकर अकबर युद्ध छेड़ता है। प्रताप चारों ओर से लड़ता हुआ अकबर के गर्व का भंजन करता है। अकबर रूपी पक्षी ने प्रताप रूपी आकाश का पार पाने के लिये उडान भरी किन्तु वह पार न पा सका और उसको अपनी हद में ही रहना पड़ा।

प्रताप का युद्ध-कौशल और कवि

रतन बरसड़ा

वधियो वासाव तणो वड़ पातां
राणा अजूवालता रह ।
एक नहँ कलह जितै गुण आखां
करै जितो बीजोय कलह ॥ १ ॥

आखर तणो हांम तिम ऊजम
घर छल वलै हुवै घकचाल ।
रेणव वलै चीतवै रूपग
राणो वलै करै रिणताल ॥ २ ॥

माझियाँ मार मयक कुल मडण
मछर इती दाखवै मंन ।
पुणै जितै कवि एक प्रवाड़ो
ऊभो प्रवाड़ा करै अंनि ॥ ३ ॥

ए वासाव वधै ऊदावत
मटै न निसवासुर तिलमात ।
पार न पातल तणां प्रवाड़ा
पार न गुण कहतां कवि पात ॥ ४ ॥

सारांश

महाराणा प्रताप एक के बाद दूसरा युद्ध इतनी शीघ्रता से छेड़ रहा है कि कविगण एक युद्ध का गुण-गान पूर्ण नहीं कर पाते, तब तक वह दूसरा युद्ध आरम्भ कर देता है। इस प्रकार बापा रावल के वशज प्रताप की युद्ध-गति कवियों के काव्य-सृजन की गति से भी अधिक तीव्र है।

प्रताप के दर्शन से पाप-मुक्ति

माला सांदू

महू लागौ पाप अभनमा मोकल
पिंड अदतार भेटतां पाप।
आज हुआ निकलंक अहाड़ा
पेखै मुख तांहरो प्रताप ॥१॥

चढतां कल जुग जोर चढतौ
घणा असत जाचतौ घणौ।
मिल तां समै राण मेवाड़ा
टलियौ प्राछत देह तणौ ॥२॥

स्रग म्रतलोक मुणै सीसोदा
पाप गया ऊजमै परा।
होतां भेट समै राव हीदू
हुवा पवित्र संग्रामहरा ॥३॥

ईखे तूझ कमल ऊदावत
जनम तणों गो पाप जुवौ।
हेकरण वार ऊजला हीदू
हर सूं जाण जुहार हुवौ ॥४॥

सारांश

हे महाराणा प्रताप ! कलियुग के जोर से मिथ्यावादी एवं अधर्मी राजाओं से याचना करने एव मिलने से मुझ पर पाप चढ गया था, लेकिन तेरे उज्वल मस्तक का एक बार दर्शन करने मात्र से ही ईश्वर के दर्शन करने की तरह मैं उस पाप से मुक्त हो गया हूँ।

मरसिया

[माला सांदू]

सामो आवियो सुर साथ सहेतो
ऊंच वहा ऊदाणा ।
अकबर साह सरस अणमिलियां
राम कहे मिल राणा ॥ १ ॥

प्रमगुर कहे पधारो पातल
आभा करण पवाड़ा ।
हेवै सरस अमिलि या हीदू
मोसूं मिल मेवाड़ा ॥ २ ॥

नागद्रहा जिण सूं नहँ भिड़ियो
रावल राजा रायाँ ।
तिण कज कोड़ लिया तेतीसां,
श्रीरंग मिलिया सायां ॥ ३ ॥

एकां कारज रहियो अलगो
अकबर सरस अनैसो ।
विसन भणै रुद्र ब्रह्म विचाले
बीजा सांगण वैसो ॥ ४ ॥

सारांश

मृत्योपरान्त जब प्रताप स्वर्गलोक में पहुंचा तो परमेश्वर ने अनेक देवताओं के साथ राणा का स्वागत किया और कहा—"हे अकबर से नही मिलने वाले प्रताप तू मुझ से मिलो। विष्णु ने स्वाभिमान एवं दृढ प्रतिज्ञ प्रताप को ब्रह्मा व शिव के बीच में बैठने के लिए कहा।

अकबर के अधीन राजपूत नरेश : प्रताप का दृष्टिकोण

जाड़ा मेहडू

हाथी बंध धणां घणां हैवर बंध
कसूं हजारी गरब करो ।
पातल राण हमैं त्यां पुरसा
भाड़ै महलां पेट भरो ॥१॥

सिंधुर किसा किसा तो साहण
सोना किसा किसा सर सूत ।
महा सबल लै अबल समापै
राणो कहै कसा रजपूत ॥ २ ॥

बाजा कसा कसा त्यां बाजद
मदझर कसा कसा त्या म रा ।
पत गहलोत न गिणं सूपहां
नर ते असुर किया नरमाण ॥३॥

सागाहरा साह अकबर सूं
सीध खडा कसुं रद खग साय ।
पत सीसोद न मानै सुपहां
धी त्रिय ले पग लागै धाय ॥४॥

सारांश

अकबर के अधीन राजाओं का परिहास करते हुए प्रताप कहता है कि हे अकबर के मनसबदार राजाओं ! हाथी, घोड़े, सोना, आदि प्राप्त कर तुम क्यों मिथ्याभिमान कर रहे हो ? तुम अकबर के चाकर मात्र हो, सच्चे राजपूत नहीं। प्रताप अपनी आन और अपनी मान के लिये निरन्तर लोहा लेता रहा है।

तलवार और भाले का आतंक

जाड़ा मेहडू

हठमल्ल माझो हीदुवांणो
ताइयां सो मूछ ताणं ।
जगत सोह जग जेठ जांणं ।
इसो रांणो आप ।
हेकताइ कुल वाट हालै
भिड़ण वाघै नेत भालै ।
साह अकवर हियै साल
तूझ तेग प्रताप ॥ १ ॥
राइहरा अनि रूप राखै
दुजड़ मेछां मार दाखै ।
पुलो जाए खता पाखो
पेखि माण प्रमाण ।
भिड़ै रिणि गज थाट भांनै
विढण चाढ सिंघ वानै ।
मीर साची जोर मानै
खाग तो खूमाण ॥ २ ॥
खग्र घनी खग्रवाट खेलै
थाट जोगणि पुरा ठेलै ।
जूझ भुजां प्राणि झेलै
विढे जूह विडार ।
रांण रिणि जयथभ रोपै
कुंत करिवाहणे कोपै ।
लोह नहैं पतसाह लोपै
सींम सभव सार ॥ ३ ॥

सारांश

महाराणा प्रताप अत्यन्त हठी योद्धा हैं। अपनी तलवार और भाले के बल पर शत्रु सैनिकों एवं गज-समूहो को नष्ट करता है अथवा खदेड़ देता है, युद्ध में अपना विजय-स्तम्भ स्थापित करता है और पृथ्वी एव वंश-गौरव की रक्षा करता है। शत्रु भी प्रताप के खड्ग का लोहा मानते हैं।

प्रताप द्वारा भूमि-रक्षा

जाडा मेहडू

मु हि मु'हि मारकां भडां मेवाड़ां
गजदल हेड़वता सगह ।
धणी स न्याइ कहावै धरती
पता जतो जिम जुड़ै पह ।। १ ।।

अणि अणि अरि सौं आफलतां
पाड़ै हसति भुजै करि पांण ।
रूके मिलै तूझ जिम रांणा
रेण तियां वसि आवे रांण ।।२।।

फरि फरि फोज फोज फुरल तां
बयंड हाकतां वीरत वाइ ।
नल व्रन हणे लई नागद्रहा
निधि सुन पहड़ै तिणी नियाइ ।।३।।

नाग वंगाल असंख नीजामी
ओणि ध्रवी खत्रवाट सहाइ ।
असिमर तणी इला ऊदाउत
आवी अगेस एणि उपाइ ।।४।।

सारांश

प्रताप तू भयंकर योद्धा है। तलवार से हस्तिदल को काटने में कुशल है। वह तलवार के बल पर भूमि का निर्वाह करना जानता है। उसने स्थान-स्थान पर ढूंढ-ढूंढ कर शत्रुओं व हाथियो का भयंकर रूप से संहार कर अपनी मातृभूमि की रक्षा की है।

महाराणा प्रताप सिंघ रा जोधारां रा जूना दूहा[1]

मोजीराम सांदू

सिमरूं हूं सुरसत सदा, अमल गिरा गुण आख ।
वढिया रौदां वीजला, सुज सीसोदां साख ॥१॥

सीसोदां समवड़ किसा, वंस छतीस विलोक ।
जग जाहर इण घर जिसा, कुलवर विरला कोक ॥२॥

कर कर कांकल कटक सू, अकबर आलसि योह ।
जोस पंचाळी चीर ज्यूं, वय रांणे वधि योह ॥३॥

पाण राण विन पातला, मेवाड़ा तो माय ।
घाव वरछयां घालिया, अकबर दले पर जाय ॥४॥

वा थाहर अकबर तणी, तरवत दिल्ली हूंतीह ।
चढ़ियां घोड़ा चापड़ै, चीतौड़ा चूंपीह ॥५॥

चूंडा रा कहिया वचन, रहो नचीता रांण ।
ऊभां पगा न आवसी, मेदपाट मेछाण ॥६॥

कर सिलहो जडिया कड़ा, मेछ घड़ा मद मौड़ ।
आज दिखासी ऊजली, चूंडावत चीतौड़ ॥७॥

धरम वेच राखी धरा, ज्यां जीतव ध्रग जाण ।
चीतौडा भड़ चापड़ै, तपिया मूंछां तांण ॥८॥

आदरियो मरणो अठै, सीसोदो सज सार ।
नह आदरियो नाग द्रह, जवना हूत जुहार ॥९॥

सगतावत पतसाह सूं, खग झडिया रण खेत ।
जुवा जुवा जूझार जुग, हुवा धणी रै हेत ॥१०॥

रातबर हिंदवांण रो, राण कहै दोय राह ।
रग खम्नीवट राखियो, सक मनाई साह ॥११॥

---

१ ये दोहे श्री सौभाग्यसिंह जी शेखावत, चौपासनी के सौजन्य से उनके व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त हुए है ।

सकिया कूरम साह सूं, हाडाई जोड़ै हाथ ।
ऊं अकबर ही आखियो, नमो उदैपुर नाथ ॥१२॥

चमर मोहछल चौसरां, सिर छाहागीर समाज ।
अवज वण दीवाण री, रण झड़ पड़िया राज ॥१३॥

कइ बारा कोठारियै, खगधारो खुरसांण ।
बाढ़ दिखाया बैरियां, चाढ़ धर्क चहुवांण ॥१४॥

दिली दला सिर बंदले, राण छलां मछरीक ।
मुगल हटाया मामले, ताय भडा सिर तीख ॥१५॥

उदियापुर व्रद ऊजला, उदियापुर आचार ।
त्याग खाग सारो जगत, रह्या उदैपुर लार ॥१६॥

दुज तुलछी सु मी दुरस, इल लाभत नह अेक ।
खूंमाणे बल खागरै, कुलवट राखी टेक ॥१७॥

खूंमाणै बल खागरै, महि राखी मेवाड़ ।
सीचो धर अरि श्रोण सू, नोची करो न नाड़ ॥१८॥

रग भडां चितौड़ रा, वगतर कड़ा वरग ।
स्याम काम रुपिया सुथिर, जवनां करबा जग ॥१९॥

पिछम भांण अगे परो, जल उलटे गंग जात ।
मेर भुमे प्रथमाध मग, नमै उदैपुर नाथ ॥२०॥

मेवाड़ी मरदा मरद, माण पाण अणमाप ।
खूमाणी खाधी नही, तुरका आगल ताप ॥२१॥

मेवाड़ा वाडा मरद, कैलपुरा कठोर ।
देसां मालम दीपता, नेसो चादण नोर ॥२२॥

सिरोही खग सातरा, असव्है काठीवाड़ ।
पदमण सिघल दीपरी, मरदां घर मेवाड़ ॥२३॥

चूंडावत रावत चढै, खग दाहण खुरसाण ।
रग दियै जिणवार रा, देख छटा दीवांण ॥२४॥

कविता

गणेश पुरी

वाटी वीर हाक हर डाग भुव चाक चढी,
　　ताक ताक रहो हूर छाक चहुं कोद में।
बोलिकै कुबोल हय तोल बहलोल खाँ पै,
　　बागो भान कत्ता रान पत्ता को विनोद में।
टोप कटि टोपी लाल टोवा कटि पीत पट,
　　सीस कटि अग मिलो उपमा सुमोद में।
राहू गोद मगल को मगल गुरु को गोद,
　　गुरु गोद चन्द को रु चन्द रवि गोद में ।१।।
दारा अरु भावा दुर्गदास को दिखावा जग,
　　रान पास आवा साथ पावा सूर सत्तासो।
जावा अमरेश को बखानै सब देस प न,
　　आवा बन्यो मारि मर्यो मीर रोन रत्ता सो।।
आवा शिवराज को न जावा बन्यो जैसो विधि,
　　यहै म्लेच्छ मुच्छ काट लावा मोद मता सो।
दाव रान पत्ता सो न धावा रान पत्ता सोन।
　　जावा रान पत्ता सो न आवा रान पता सो।।२।।
कोल खान खाना के पतापसिह राना पर,
　　वाना हिंदवाना को सुहाना तो गया रीतै।
दाह के करन पातसाह के उराहने पै,
　　चाह के मरन रनराह के जयारी तै।।
पानि दे कै मुच्छन कृपान पुनि पानि दे कै,
　　पान लौं उड़ावै म्लेच्छ वीरता बयारी तै।
सूरन के हाके होत कूरन के साके होत,
　　हूरन इलाके होत तूरन तयारी तै।।३।।
गेर गेर लाज सब राज रहै पैर परे,
　　जेर भये फेर सुर मेर के सिखर जात।
'एकलिंग' वास में विलास को निवास जानि,
　　राधिका रमन चहैं रमन दिखरि जात।।

आछी आछी मीरनी के आखिरी उजीरनी के,
चीर नीके चीर दृग नीर जी निखरि जात ।
बेर बेर घेर उदैनेर कों असुर अरैं,
हेर हेर परैं पत्ता बेर से बिखरी जात ॥४॥

हेरि हेरि हारि हिय हहरि हरिन नैनी,
हुरम कहत हट तिय नाह नत्ता है ।
दीन सों अदीन व्है कै तेरे नेह पीम व्है के,
मीन जल लीन व्है कै, खीन व्है न खत्ता है ॥
बब्बर को नातिम अकब्बर सु अब्बर सि,
मेल्हे फरमान मेल कीवे मोद मत्ता है ।
माल सो रू ताल सो पसारिन के जाल जेसो,
ज्वाल जैसो काल जैसो पत्ता रन पत्ता है ॥५॥

छप्पय

गणेशपुरी

नच्चन बेर निहारि, पुत्त कहि चारू प्यार चहि ।
उहि छिन उमंगि उडात, कंघ घर हाथ भात कहि ॥
वग्ग उठत रन रूप्पि, बप्प कहि अप्प विरूदवर ।
तात भ्रात सुत सोक, गजब त्रिक परिग अरिग गर ॥
कट्टिग न पैर कट्टिग यक्कत, कट्टिग मान निसान घन ।
हय मरिग नहिं न चेटक अहह, मरिग रान पत्ता सु मन ॥

सोरठा

गणेशपुरी

खल बहलोल खपार, पेले दल लाखां प्रसण ।
अस चेटक उलटार, पहुँतो उदयाचल पतो ॥

छप्पय

कवि गङ्ग

'गुज्जरेस' गभीर नीर, नीझर निरझरियो ।
अति अथाह 'दाऊद' बुंद बुंदन उब्बरियो ॥
घाम घूट 'रघुराय जाम जलधर हरि लिन्हव' ।
हिन्दू-तुरक-तलाब को न कर्दम वस किन्हव ॥
कवि 'गंग' अकब्बर अक्क भन(अन), नृप निपान सब वस करिय ।
राना प्रताप रयनाक मझ, छिन डुब्बत छिन उच्छरिय ॥
दल पंलां ऊथपे, तेज ब्रह्म हिं उत्थपे ।
उत्तर दक्खिण पछिम पूर्व ता पाण पणप्पे ॥
न अनेक भुवपत्त वांग श्रवणां सुण रत्ते ।
नमि प्रणाम आधीन करें सेवा बहु भत्ते ॥
खत्रियाण माण महि उद्धरण, एक छत्रि आलम कहै ।
गायत्रि मंत्र गहलोत गुरु, तिहिं प्रताप शरणै रहै ॥

सोरठा

कवि गंग

हिन्दू हीन्दू-कार, राणा जे राखत नहीं ।
तो अकबर एकार, पहो सहो करत प्रतापसी ॥

हिन्दूपति परताप, पत राखी हिन्दवाणरी ।
सहे विपति संताप सत्य सपथ कर आपणी ॥

कवित्त

बारहठ बालावक्स पालावत

अज्ज धर्म रच्छ इतै रू जवनिष्ट उतै,
घाट हलदी रन अमावै भट भालो को ।
वीर दोर दण्डन उदग्ग मण्डल गान तै,
सब्बुन ज्यों तंति चीरे देत गज ढालों कों ॥
प्रहरन ताप कान्दसीक प्रतिपच्छी बवै,

पदग्रस्त बुल्लत विलोकि रक्त नालों कों।
साक पाने वाले रान पत्ता कों कृपान पिक्खि,
लगत जुलाब सी पुलाब खाने वालों कों॥

म्लेच्छन कों नमिबो अयोग्य लखि खाद्य गने,
समयानुकूल कन्द मूल फल पत्ता कों।
राज्य-द्रंग-दुर्ग-देश-वैभवज सुख होय,
राखी दृढ वश परिपाटी को प्रभत्ता कों॥
खग्ग बल विस्तरि अकब्बर से शत्रु अग्ग,
इकल निबाह्यौ जिहँ वेद धर्म नत्ता कों।
श्री समुद्र अविवासी अज्ज कृत मन्य देत,
धन्यवाद वीर अग्रगण्य रान पत्ता को॥

"मेदपाट देशाधिपति प्रशस्ति वर्णन"

कवि हेम

उदयो उदयसिंघ के पाट। परतापसिंघ प्रगटे पुन्य घाट॥
अकवर चमके खिण-खिण आप। छेड्यो सिंघ जिस्यो परताप॥
सुतो असुर नित ओज के। परताप परताप मुख सू यो बके॥
उदयासर विच पोढ्यो साह। परताप पंहुतो गगन के राह॥
पगड़ी लेकर पग तल धरी। चरणा चोली सिर दोस करी॥
दाढ़ी मुंछ वे काटी सवै। चिठि नाम निज लिखिया तवै॥
प्रह उठी जागे सुलतान। चिठी वाँच कापे तव प्राण॥
है, है अल्ला ने क्या कीया। परतापसिंघ मोही जीवीत दीया॥
असुरां दल सायर सम कह्यो। ता उपर एक मल सम रह्यो॥
असुर भाग दिली दिस गये। राण परताप मन आनंद भये॥
राण परताप महा वलवन। अमर अमर सम राण कहत॥
जस कीरत समदां लग सही। धाक पड़ती असूरां मई॥
असुरां मार कर्यो तेण जेर। दिली विच तिण घोड़ा फेर॥
अनमी अडग जसु कीर्ति विसाल। तुरकांणीरो पुरो साल॥
भरी कचेरी मार पठाण। से लद मोड़े श्री महाराणा॥
चोरासी थाणा तिणकाट। असुरां मार कीया दहवाट॥

["बुद्धि प्रकाश" (गुजराती समाचार पत्र) अप्रेल-मई-जून १९४२ अङ्क २ जो पुस्तक ८९ पृ०]

बहलोलखां का वध

रामा सांदू

गयंद मान रै मुहर ऊभो हुतौ दुरत गत
सिलहपोसां तणा जूथ साथै।
तद वही रूक अणचूक पातल तणी
मुगल बहलोलखां तणै माथै ॥१॥

तणै अमऊद असवार चेटक तणै
घणौं मगरूर बहरार घटकी।
आचरे जोर मिरजा तणौं आछटी
भाचरै चाचरै बीज भटकी ॥२॥

सूरतन रीजता भीझता सैलगुर
पहा अन दीजतां कदम पाछै।
दांत चढतां जवन सीस पछटी दुजड़
तांत सांवण ज्युंही गई आछै ॥३॥

वीर अवसाण केवाण उजवक बहै
राण हथबाह दुय राह रटियौ।
कट झलम सीस बगतर बरंग अग कटै
कटै पाखट सुरग तुरग कटियौ ॥४॥

सारांश

उजबेक योद्धा मिर्जा बहलोलखां सैनिकों के साथ मानसिंह के हाथी के आगे अश्वारूढ खड़ा था। चेटक घोड़े पर सवार प्रताप ने उस पर ऐसा अचूक भीषण खड्ग-प्रहार किया कि उसके सिरस्त्राण, कवच, पाखट और घोड़ा सब एक साथ कट गये।

डा० देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित "प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप" के अनुसार इस गीत के रचयिता गोरधन बोगसा है। श्री अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त इसी गीत का रचयिता अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित ग्रन्थ सं. २६ बस्ता सं. ८ पृ० ५ के अनुसार रामा सांदू है। श्री ब्रजमोहन जावलिया के अनुसार रा. प्रा. वि. प्र. उदयपुर के संग्रहालय ग्रन्थ सं. ७१७-७१८ मे इस गीत का रचयिता कविया फतैनाथ दिया गया है।

युद्ध-वर्णन

अज्ञात

झपट करत पमछ झड़ीआ
पट पोअण नाग पड़ीआ
चीचले ढग चाल चड़ीया
नीपजै नेवाण ।

धगचाल पाणां रुघर धरा वर
सेलगुर माँडीऊ सरोवर
फोज अकबर झड़ वड़ फर
थापिया अकबरे ठांण ॥ १ ॥

प्रतमाल तेग वाहाण प्रहटै
नागध्रहै कोरम न हटै
घाउ पड़ेवा बार घटै
त्रबद बोल रड़ाक ।

रण तूर दादर ढोल रड़ेआ
भवस हीदु भाट भड़ेआ
पातला करहे हसत पड़ेआ
खड़ग संध खड़ाक ॥ २ ॥

कीलाल पाणां चे ओर काजी
मगर मछरंत माझी
झलहल वाणास जाझी
झपट झड़ जाभी ।

गज गहर करतं घरण गाजी
वेल असमर छूल बाजी
सेंघउत तरवार साजी
पर खंडे प्राजी ॥ ३ ॥

चतुरग नहें रण चड़ै चाचर
फरेता गुर तूज वह फर

देवै झड़ ग्रीव डंमर
कड़कड़ केवांण ।
खेतपाल चांमड भरै खापर
चरै पल चर कोलू चाचर
भख लये खेचरां भूचर
रमै रामत राण ॥ ४ ॥

व जंवक ग्रीधण सामलां
वांघला खेलै व्रंमला
आउवे दरावै अगला
प्रायरे प्रघला ।
गल लेयें वेताल ग्रीधण
जोड़ पाणी हरा जोगण
रूंद दल बूडा रंणंगण
तसु कीध तलाव ॥ ५ ॥

सारांश

प्रताप ने समर भूमि में शत्रुओं एवं हाथियों को भयकर रूप से काटा है। उसके द्वारा वध शत्रुओं एवं हाथियों से बहने वाले रूधिर से समर भूमि रक्त-सरोवर के रूप में परिणत हो गई है। बढ़ते हुए मांनसिंह पर उसकी तलवार बज रही है। रणक्षेत्र में सर्वत्र तूने मांस एवं रक्त बिखेर दिया है जिससे क्षेत्रपाल, चामुंडा, मासाहारी पशु-पक्षी तृप्त हो रहे हैं।

खमणोर का युद्ध

अज्ञात

खल लीजियै खुमाण राण खमणोर जैतखंभ
रुद्रायण ताण रढाल रचतौ गरीठ।
तोडियौ उडाणे डाण तुरी जिम राण डाण तेग
खमसाण बीच राण ओरियौ गरीठ ॥१॥

धकाधक हकाहक धरा धोम
धमाधम गोम बोम गाजिया गहीर।
खेलियौ उकत्त कथ लाथोबाथ जथा खेल
हाथोहाथ बाथोबाथ दूसरा हमीर ॥२॥

पटचट हूल झट खल खट प्रतापसीह
तटतट दहवट दली पटतेस ।
रामत ऊपट रट धजवट रमै राण।
निकट वेकट धट चतौड़वे नरेस ॥३॥

चला पला करै जातौ प्रतापसीह
गला डला भजीया कुंभ गयद ।
उरड़ै लेगौ उपाड़ धके चाड़ असंमर
मुरड़े भुरड़े घड़ा तेवड़ो मयंद ॥४॥

सारांश

खमणोर के युद्ध में राणा प्रताप ने विकट से विकट योद्धाओं को काट काट कर गिरा दिया। इस युद्ध के समय धरा कापने लग गई थी व गोलो की आवाज भयंकर रूप से हो रही थी। शत्रुओ का संहार करता हुआ प्रताप दूसरे हमीर के समान [वीर योद्धा] प्रतीत हो रहा था। युद्ध का दृश्य अत्यन्त भयकर था। इसमें राणा प्रताप ने अत्यन्त भयकर रूप से शत्रुओं, हाथियों आदि को काटा।

कुम्भलगढ़ का युद्ध

अज्ञात

गिर माँहे कुंभलमेर वड़ो गढ
हालै किणहिं न विये हर।
एकण राण प्रताप ऊपरा
आठ लाख पड़िया असुर ॥१॥

आठूँ लाख असुर अकपिया
घन 'घोरप मेवाड़ धणी ।
माण स्रजाद रखी मेवाड़ै
भिजड़ै हींदुसथान तणी ॥२॥

अकवर सरस अहाड़ो इधको
उदयासिंघ सुतन अणबीह ।
डड डीकरो न दै जिम दूजां
लोपै लाज न कुलवट लीह ॥३॥

चेटक पमग न दै चीतोड़ो
किनिया न दिये गिरथ किरोड़ ।
चकता नहँ कुंभलगढ चढिया
अकवर सूं परताप अरोड़ ।.४॥

सारांश

पर्वतों में स्थित कुंभलमेर एक बडा गढ़ है। वहाँ पर आठ लाख मुगल सेना ने एकाकी प्रताप पर आक्रमण किया। मेवाड पति प्रताप के आगे सभी मुगल सैनिक भयभीत होगये। निडर प्रताप ने अन्य राजाओं की भाँति अकवर को नजराना एव कन्या नही दी, अपना चेटक घोड़ा नही छोड़ा और मुगलों को कुंभलगढ में नही चढ़ने दिया। प्रताप ने अपने कुल–गौरव एव मर्यादा की रक्षा की।

प्रताप का यश

अज्ञात

ओछो तिल नकूं नकूं तिल अधको
मुणता सुकव करां ले माप।
तूं ताहरा राण टोडरमल
परिया सारीखो परताप ॥१॥

परियां अधक कहां किम पातल
राया तिलक हींदवा राण।
तें सिर नहँ नमियौ सुरताणा
सागे गह मूका सुरताण ॥२॥

ओछो केम कहां ऊदावत
अकबर कहर तणो तप ईष।
अकबर सूं रहियौ अणनमियौ
सुरताणां गहियां सारीष ॥३॥

कुल ऊधोर प्रताप कहता
पोढो घणूं घणा ऋद पाय।
मणां न तो कुल मणा न तोमैं
मणाँ न सुकव बखाणा माय ॥४॥

सारांश

शौर्य में महाराणा प्रताप सागा जैसे अपने पूर्वजो से तिल भर न अधिक हैं न कम। प्रताप का अकबर जैसे शक्तिशाली बादशाह के सन्मुख सिर न झुकाना सांगा के सुल्तान [मालवा का महमूद खिल्जी] को बन्दी बना लेने के बराबर है। न तो प्रताप के यश में कोई कमी है और न कवि के वर्णन मे।

प्रताप का युद्ध-कौशल

[अज्ञात]

कितरा एक घड़ूं साभलो केसव
कथन विधाता एम कहै ।
अकवर दल नहं रहै आवता
राणो नहं मारता रहै ॥१॥

घणा सोहड़ विधाका घडि घडि
फेरै किसन तणां फुरमांण ।
थाट रोद आवता न थाके
रिण रहचतो न थाकै राण ॥२॥

किम हथ चलै कहै ब्रहमा कथ
ए हथ अनत चलावी आप ।
अकवर सेन तैतला आवै
पिंड तेता निर दलै प्रताप ॥३॥

वासुर निस घड़ै थकी विधाता
वलै विधाका किसन विमेक ।
आवै जिता तिता ऊदावत
अणमारिया न मेलै एक ॥४॥

सारांश

ब्रह्मा कहते हैं कि हे विष्णु ! मैं तो मनुष्य घड़ते घड़ते थक गया हूं । अकवर प्रताप से लडने के लिये सैनिक भेजने से नहीं रुकता है और प्रताप उनका संहार करके उनमे से एक को भी जीवित नहीं जाने देता है । राणा युद्ध करते हुए थकता नहीं ।

प्रताप का पराक्रम

[अज्ञात]

गज बध पड़ै गज खाइ गडूथल
मोहियौ कौतिग गयण मिणि ।
घर बाहर नीसांण ध्रीबते
राणै रथ भेलियौ रिणि ॥१॥

मीर गुड़ै कड़ड़ै मोताहल
निरखै भांण कलह निय नेति ।
वसुह तणैं छलि ग्रबक वाए
खूमाणौ मिलियो रणखेति ॥२॥

मुगल मरे मरे गज माणिक
विभ्रमियौ रवि तेणि विचारि ।
ग्रहते रेणसु छलि रण तूरे
सिंघ सुजाउ वाजियौ सारि ॥३॥

सारांश

प्रताप के पराक्रम से युद्ध स्थल में शत्रु के हाथी, सैनिक आदि बुरी तरह से मारे जा रहे हैं। प्रतिदिन आकाश मे सूर्य प्रताप के नित्य नये युद्ध-कौशल को देख कर चकित रह जाता है।

युद्ध-कौशल

[अज्ञात]

ग्रहे न सकै ग्रहे उग्रहे ग्रहियां
दाखै चंद ह दड हुओ ।
सेखड़ा सांम सनाह सरीखो
हेक कन्हे जो भींच हुओ ॥१॥

अघड मिलै किम सुतण आपणा
कहै किरण पत सोम कथ ।
एकाघपत जिसो ऊदावत
हेक हुए जो खड़ग हथ ॥२॥

राहु मिलै किम कहै सोम रवि
मुड़ै असुर ग्रह तेम मुड़ै ।
सुभट रिया रिणमाल सरीखो
जुडणहार ओ इसो जुड़ै ॥४॥

ससिहर कहै संपेखी सूरज
अघड़क रहस ग्रहण अनेक ।
सूर कलह गुर सिखर सरीखो
आया विहूं न मिलियो एक ॥४॥

सारांश

राणा प्रताप ने शत्रुओं को मार कर मस्तक रहित देहों का ढेर लगा दिया है जो राहु की भांति प्रतीत हो रहे हैं। यह देख कर सूर्य व चन्द्र विचार कर रहे हैं कि एक ही राहु हमें इतना सताता है, यदि ये सब राहू मिल गये तो हमें अत्यन्त क्लेश होगा।

प्रताप के खड्ग का पराक्रम

[अज्ञात]

बिजड़ ताप तौ नमां परताप सांगण बिया
जगत या अकथकथ बात जांणी ।
कहर राणां तणी बार मझ एकठा
प्रसण राखै नको हस पांणी ॥ १ ॥

उदयवत्र आज दुनियाण सह ऊपरा
सार रो ताप लागौ सबाही ।
हस राखै जिका नीर अलगौ हुवै
नीर राखै जिकां हंस नाहीं ॥ २ ॥

करां खग झाल दुहुँ राह मातौ कलह
दूठ लागौ खलां येण दावै ।
जीव री आस तौ प्रसण नहँ गहै जल
जल गहै प्रसण तो जीव जावै ॥ ३ ॥

दई ओ दई गत कुंभकन दूसरा
चाह गुर आपरै पंथ चालै ।
राण दइवाण पर हस लागौ रिमां
हंस जल जू जुवं पंथ हालै ॥ ४ ॥

सारांश

हे महाराणा प्रताप ! तेरी तलवार के तेज को नमस्कार है। जब तूं युद्ध करता है, उस समय वह शत्रुओं के प्राणों का हरण करती है और उनके गौरव का भी। जो शत्रु अपने प्राणों की रक्षा चाहता है उसको अपना सम्मान तेरी तेग (तलवार) के सम्मुख समर्पित करना पड़ता है और जो अपना सम्मान रखने का प्रयास करता है उसको प्राण गंवाने पड़ते हैं।

प्रताप का खड्ग : यश एवं धन का उपार्जन

[अज्ञात]

पारभ गुर तूझ सपेखे पातल
वडा सुरिंद मिलि करै विचार
किम खगधार चलावी कीरति
धन श्राविया स किम खग धार ॥१॥

इणि परि तूझ तणो ऊदाउत
रुद्र सुर अचिरज हुवा रहै ।
सुजस सपति दे श्राम्होसाम्हा
वाढ खडग ऊपरी वहै ॥२॥

श्रमसुर हुश्रा अचंभम पातल
घर असपति मेवाड़ घणी ।
श्रति जस केम चालियौ श्रणिये
अथ आयो किम मुहरि अणी ॥२॥

उत्तिम श्रधिम देव रज ऊपरि
के घट राखं रमै कला ।
धार खडग वे मयक कलोघर
कीति श्रनै चलवी कमला ॥४॥

सारांश

परमेश्वर व अन्य देवताओं ने मिल कर इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि राणा प्रताप ने मात्र तलवार के बल बूते पर धन व यश का उपार्जन कैसे कर लिया ।

"प्रताप के पराक्रम का आतंक"

[अज्ञात]

सुता वाज गजराज सोव्रण समपोहो सुपोहो
    ओवरण आप ऊपाव आणो ।
रोद तावूत सुरतांण रेसी रसत
    रूक वल मोकले पात राणो ॥ १ ॥

पवग पटवंदणां पूत पोठी परठ
    पोहोवचा माल अंण पर पठावै ।
पोहव पडवेसची लोथ परतापसी
    अंणगणी खूंद दरबार आवै ॥ २ ॥

तुरग त्री तीय्यार तत लोभ मन तेवड़ै ।
    सुपह अन ज्यार सुरताण सूकै ॥
अभनवो कुंभ नरजीत कर आवड़ै ।
    मेछ भरभेंट खूमाण मूकै ॥ ३ ॥

रव ऊगां समो रोद दल रोलवै ।
    थांण जौ वुध्रवै मांसखानै ॥
धरा तरप तोरथ मीर धोरे धरैं ।
    कूक वेहरो थयो साहा कानै ॥ ४ ॥

सारांश

अन्य राजपूत नरेश भयभीत होकर अकबर के पास हाथी, घोडे स्वर्ण एवं पुत्रियों को भेंट भेजते हैं। लेकिन प्रताप तो तलवार से मुगलों का भीषण संहार कर रहा है। प्रताप के आक्रमण से भयभीत मुगल इतने जोर से चिल्लाए कि चिल्लाहट सुन कर अकबर बहरा हो गया।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर से श्री ब्रजमोहनजी जावलिया, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त ।

प्रताप का युद्ध पराक्रम

[अज्ञात]

इसा वाहारू अंते वली सै घणो ऊदठत
हेक तरवार सके हींदवाण ।
राजवीया मोहर होई भेलिया राजगुर
रोद घड़ उपरा पवंगां राण ॥ १ ॥

हेक-हेकां मीलै थलै जलै ओरीया ।
पहर घट-विकट घट नीर भुखपांण ।
रहेच खुरासांण घरा घणु भागी रहे ।
रेण पूंगी अली पातलै रांण ॥ २ ॥

रांण रजपूतवट कना अं राज वट ।
पाट पत देख गुरसेल गुरपात ॥
आप आगै ई पवंगा अफालिया ।
छात बिच घड़ां बीच हीदवे छात ॥ ३ ॥

मिलै घण घाइ सांगणहर मारिया ।
तर्क दीस आगरा वहै ताबूत ॥
राजवीयाँ जेम प्रताप वाँसे रहै ।
राण भूमाड़िया नई रजपूत ॥ ४ ॥*

सारांश

रविगुरू, राजगुरू एवं सेल गुरू के विरूदों को धारण करने वाले प्रताप ने पहले की तरह घाटे के विकट पथ [हल्दीघाटी] पर इस बार भी मुगलों को इतना मारा कि उनके जनाजे आगरे की ओर बढ़ने लगे ।

* राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर से श्री व्रजमोहन जी जावलिया, उदयपुर के सौजन्य से प्राप्त

प्रताप के योद्धाओं की वीरगति

[अज्ञात]

वड़ज बिच हुवौ एक चारण वडो
सम्रत लाभ जोतां स ठामां ।
आविया काम मेवाड़ पोहो आगलो
राम सामां तिणां रांम रामां ॥१॥

आविया काम अकबर दलां आविया
भिड़ण प्रताप छल दाख जस भाव ।
राव एक तूंवरां राव कणियागरां
राठोड़ एक सांदूवां राव ॥२॥

रांण छल रोंध दल जसो वीकम हरो
जोध अखेराज रो हुओ जिसड़ो ।
जिसोइज महा जुद हुवौ जैमाल रो
तूंग धरमा तणा हुवौ जिसड़ो ॥३॥

मचकतै साथ भाराथ दाखै मछर
मांड पग मुवा सिरदार मुरमेक ।
आभरण कला रणधीर हर आभरण ।
आभरण वीर हर व हर एक ॥४॥

सारांश

मेवाडपति महाराणा प्रताप के लिये अकबर की सेना से वीरतापूर्वक लडते हुए तंवर विक्रम का वंशज राजा रामशाह कणियागर अखेराज का पुत्र मानसिंह राठोड़ जयमल का पुत्र रामदास और सांदू चारण धरमा का पुत्र रामा वीरगति को प्राप्त हुए ।

युद्ध-भूमि में प्रताप का हस्तलाघव

[अज्ञात]

छे खंड सहस दस काल छिलंता
तल भयानक महा सताप ।
राण पासि गणपति दीठा रिणि
ऊमया ईस पयपै आप ॥१॥

अंग विणि गज कमल कमल विणि अग धरि
पात घाइ रण ठारि पड़त ।
सुत पत रण थई तिणि नख सिख
कहियौ गिरधू गिरधू कत ॥२॥

सीस गयद कमंध मत्रां चा
सबल निजोडि जोडि तिणि सारि ।
छिलवां सेन मिथ सुति कोधा
उमयानद तणौ उणहारि ॥३॥

अनि तन धरै जोड़ि तन अनि अनि
रिम मनि करै न तंसौ रीस ।
सोहियौ रिणि ऊभौ सीसोदौ
सकर रभ लियै हस सीस ॥४॥

साराश

महाराणा प्रताप ने हाथियों व शत्रुओं के सिर काटे। हाथियो के कटे हुए सिर शत्रुओं की धड़ से मिल गए इससे शिव और पार्वती को गणेश की भ्रान्ति हो गई।

राठौड़ रामदास की वीरगति

[अज्ञात]

ससि धाइस तप थाइ सूरिज सीतल
तजै महोदधि वारि तरंग ।
मृत भै रामदास रण मेलै
गमण पछम दिसि मंडै गंग ॥१॥

जळ चन्द्र सीलो थाइ जगचख
रैणायर सांसतो रहै ।
जयमल ब्रत जाई छांडै जुध
वेणी जल उपराठ वहै ।२॥

आतम इन्दु अरक ताढिम भग
सायर छडै लहरि सुवाह ।
पह मेड़ता चलै पारोठौ
पमुहै वहै सुरसरी प्रवाह ॥३॥

सीम सूर सामंद प्रता सुध
अघट सुभा दाखवं अग ।
राम किया मृत सामिध्रम रसि
पुनि तोया मिळि पूब प्रसंग ॥४॥

सारांश

मृत्यु के भय से यदि राठोड़ रामदास युद्ध स्थल त्याग दे तो चंद्रमा तापयुक्त हो जाय, सूर्य शीतल हो जाय, समुद्र स्थिर हो जाय व गंगा विपरीत दिशा मे प्रवाहित होने लग जाय। लेकिन वीर रामदास ने तो अपने पूर्वजों की भांति युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त की।

राठौड़ योद्धा हिंगोल द्वारा गो-रक्षा

[अज्ञात]

वडो भोछ राणा तणी धरा आडो वसै
राउ राठोड़ पाखर खद रोल।
फौज अकबर तणी जिती आयै फरै
अहे तेती सरिस खडग हिंगोल ॥१॥

पाघरं देसि राठोड वाको पुरुष
वसै सुरताण राणा विचालं।
विचित्र लोडे वसुह वित घाल घले
विढै ताह वीत हिंगोल वालै ॥२॥

अखाउत वाड वाहर चडै आपड़ै
सामि रै कांम स सनेह समराथ।
छड़ै कूते भड़ां गउत्री छोड़वै
भादहर आभरण करै भाराथ ॥३॥

सारांश

हे अखेराज के पुत्र हिंगोलदास ! तू महाराणा की भूमि की रक्षा करने, गायों की रक्षा करने तथा अकबर के मुगल दल का भयंकर रूप से संहार करने में सदैव अग्रणी रहा।

मेड़तिया राठौड़ों की सेवा

[अज्ञात]

रहियौ जैमाल उदैसिंघ राखै
　　रामै पातल रहियो ।
मुकुन तणे साटे मेवाड़ी
　　अमर वलै अग्रहियो ॥ १ ॥

हेट हेट हेवे पति हूंता
　　पह रछपाल पहाड़ां ।
रचता समर मारूवा रावां
　　ओडण हुआ अहाड़ां ॥ २ ॥

वड जेही जुधवार विढंतां
　　वडा पिसण घाय वहिया ।
मचतां समर सरण मेड़तियां
　　राण सदा लग रहिया ॥ ३ ॥

सांगो ऊदो पतो रखै सुज
　　राखै अमरो राणो ।
जैमल पिता बांधव रामाजिम
　　मुकनो चद मडाणो ॥ ४ ॥

सारांश

मेड़तिया राठौड़ों ने सदा सिसोदिया राणाओं की सेवा और रक्षा की। जयमल ने महाराणा उदयसिंह, रामदास [जयमल का पुत्र] ने महाराणा प्रताप और मुकुन्ददास (जयमल का पुत्र और रामदास का भ्राता) ने महाराणा अमरसिंह के लिये समरांगण में बड़ी वीरता के साथ युद्ध करते हुए प्राण त्यागे।

प्रताप और चन्द्रसेन

[अज्ञात]

अण दगिया तुरी ऊजला असमर
चाकर हुवण न घरिया चीत ।
सारां हिंदुस्थांन तणे सिर
पातल नै चन्द्रसेन प्रवीत ॥ १ ॥

पमंग अदग सजसा पढ़िया लग
खटखंड तणी न लागी खेह ।
राण उदैसिंघ तणो अरेहण
राव मालदे तणे अणरेह ॥ २ ॥

तुरिये वगत खश्रीवट अजड़ै
असपति दल इहिया आगण ।
कलंक विना कुंभेण कलोधर
वाग कलोधर कलंक वण ॥ ३ ॥

असवाला डिडूर घर असमर
दीनो दहूं न हीणो दाव ।
रवि सरिसो मेवाड़ो राणो
रवि सरिसोइ जोधपुर राव ॥ ४ ॥

सारांश

राणा प्रताप और जोधपुर के राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन दोनों भारत के सिर मोर हैं। दोनो ही सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उन्होंने अपने घोडो पर बादशाही चिन्ह नहीं लगने दिया, उनकी तलवार सदा शत्रुओं पर चमकती रही, और वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुए।

प्रताप का मीणा–संहार

[अज्ञात]

उचरतु वाट वाणियो आखै
  कतवारी बाखांण करै ।
माहरो धणी हुओ मारखणो
  ताक रया चोरड़ा तरै ॥१॥

अंग पहरै लो नू आंगरडू
  घोड़लडे पाखरडू घाल ।
पातल राण चढै परबातै
  झटकू बाद भड़ूकू झाल ॥२॥

झाल भड़ूकू जीखू मार
  पीपू मारग बड़कू पाड़ ।
ठाकरड़ं गही ठीगाई
  धीगाई कुण मांडै धाड़ ॥३॥

भी भागो है कांकस भाभत
  सुणो बात सेणां री ।
खूभाणं जागवियूं खांडू
  मरांडू मीणां री ॥४॥

सारांश

बनिया बार बार कहता है कि मेरा स्वामी भयंकर मार काट मचाने वाला हो गया है उससे चोरी करने वाले मीणे भयभीत हो गए हैं। इस से चोरी का भय अब नहीं रहा है।

"प्रताप का पौरूष"

[अज्ञात]

सहर आजलैं तरग चतरंग तुरसाणरी ।
तांण रो पाणसी चांण री तुप ॥
महण तुरतांण री धकै लाती मही ।
राण री खाग वड़वा अगन रुप ॥१॥

घट् हठे जगं तलगं उवरधियागां ।
कलम घड़ दगं जर देत काली ॥
हुवै अग्ग चूक उज वक मह मंदहियै ।
उक जिम रुक संग्रामवाली ॥२॥

मीर वंघ ऐमरदात मरात मंगल ।
पलै नह समर रा जकं पेराक ॥
जवन दल भमर रो महण उरमभुजलै ।
अमर रातणी जल दहण ऐराक ॥३॥

दुवाड़ै भमक महमंद अजव कहियै ।
दुजड़ नर घोम पापक तणे दाह ॥
उपटैं निरधर जाद नह ऊभजै ।
समंद मरजाद लोपै नही साह ॥४॥

सारांश

अकबर की सेना भीषण उदधि के समान उमड़ कर आ रही है, जिसे प्रताप की बड़वाग्नि रूपी तलवार भस्मीभूत कर देती हैं। प्रताप की तलवार मुगलों को भयंकर रूप से काट रहीं है।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति संख्या ३० पृ० १३ से श्री अगरचन्द जी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त।

तलवार से पृथ्वी की सुरक्षा

[अज्ञात]

खल खट सूं खलां सावरत खांडै
खांडा कैद न राखै खांप ।
खांडा बल राखै खूमाणो
प्रथमी खांडा तणो प्रताप ॥ १ ॥

खदा सू रूक अचूक रातड़ै
पल नहँ रूक बछूटै पांण ।
रूके कुंभकलो धर राखै
रेणां रूक तणी जिम रांण ॥ २ ॥

सत्रहर सूं अणपार सुरगे
जूट सार धर राखण जोध ।
सार मार राखै खल सहंसो
सार तणी अवनी सीसोद ॥ ३ ॥

अस धमरोल चौल व्रन आवध
आवध ग्रह आतम अरीयां ।
आवध ध्रम धरती ऊदावत
आवध धारै ऊनरीया ॥ ४ ॥

सारांश

महाराणा प्रताप अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखता, वरन् अनवरत युद्ध-रत रहते हुए शत्रु के शोणित से अपनी तलवार को लिप्त रखता है। इस प्रकार प्रताप अपनी तलवार से शत्रुओं का विनाश करते हुए पृथ्वी एवं धर्म की रक्षा करता है।

"दृढ संकल्पी प्रताप"

[छात]

तोपा भरावै विचारै खाता खब दो रसाला त्यार, किताने डरावै वाता जीमरी कहाड़ ।
डाकी कांको आया नं तुराना होगु चाहै दूना, पजी काको जाया आडो लोहरो पहाड़ ।।१।।

नाणा देणा खताऊ ठिकाणा दानदारी नैन, चापडै भतीजां भायां चाकरी चाह ।
पेखो वोर विथोरतो वमनो न पालै पग्गी, दूजो प्रथो जीव रखै वसरो दुवाह ।।२।।

सामं दाम वे भेदै चाल मिलै सूवा, आठू दिसा चौथो लागै उपाय ।
कोई ओहा घसै हाथ गोन री न तूटै कडी, गोन रे सहाय ऊभो पतो गाठ राव ।।३।।

घालो किला छोटा मोटा वाछै दूदाण रो वाटो, कुरधो जागिया खोटा दूदा माहेकस ।
दांत पाडै जिनारो आगलो निघवालो हठ, विजाई जे मात सोभा चाडै दूदावस ।।४।।

सारांश

अकबर ने अपनी प्रशिक्षित सेना एवं तोपखाने से कई राजाओ को भयभीत किया, लेकिन प्रताप तो उसके मार्ग मे लोह पर्वत की भाति अडिग खडा रहा । अकबर साम, दाम, दण्ड और भेद द्वारा हिन्दू राजाओं को हडपने लगा, लेकिन हिंदुत्व का रक्षक प्रताप उसके मार्ग मे बाधा बन कर खडा रहा ।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति २३ पृ० ३ से श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त ।

साहस और त्याग

[अज्ञात]

गढपति गांज जै महिपती मलोजै
घुर अकबर रै घाड़े ।
उदयासिंघ तणो अतुली बल
चहरै चल्यो न चाड़े ॥ १ ॥

साथर चोकी तणे न सूतो
दीन न हुओ दरबारी ।
मेछाँ री मिजलस मेवाड़ो
हुवो न रांण हजारी ॥ २ ॥

हैवर गैवर हेम हुरम्मां
धरी न आड़ो धीया ।
अकबर साह तणा दल आगल
नजर गुजार न दीया ॥ ३ ॥

मैछां मलण मिलण पौ मेटै
पातल आयो पाणै ।
साहा दाह दियण सांगाहर
राह विलूधा राणै ॥ ४ ॥

सारांश

महाराणा प्रताप निरन्तर अकबर से संघर्ष रत रहा। यह मुगल दरबार में हाजिर होकर 'हजारी' मनसबदार न बना। वह अकबर से हाथी, घोडे, स्वर्ण एवं अप्सराएं प्राप्त करने के लिये नहीं ललचाया और शत्रुओं के विनाश में लगा रहा।

'अनम्र प्रताप'

[अज्ञात]

उरड माच घोडां भडां छुरां निमनाऊणी, थरर घर चग्रालां डका थावै ।
इक भुजा उपटै निहग छिबती छती, इसीविध पती दरवार आवै ॥१॥

साकुरां झपट मोहडां गरट नांमठा किया भालां खिमरण चहूँ कानै ।
अरहरां तोड़ डिगनी गयण अधारं, खाटरां पधारं दरीखानै ॥२॥

धरा चल चल कलल धमल हुव घाटिया, कुत भन भल अकल भडां काटै ।
ऊघरं चाचरं वहै धमती उरम, इसोविध घणारा दरस आटै ॥३॥

हुव छट प्रगड हुडरढ़ उरड़ हजारा, जोम तडकरं भड अनम जेरी ।
रिमा जाड़ा वड़ड़ ऊबरै देस रूव, करं मुजरौ अनम खूंद केरी ॥४॥

अवा दल प्रगट रजवट भुजा ऊफणे, सत पुरस भीम वालो अ ···खीच ।
तो ज्युं हो दीवता दरवार आवै तिकं, भलाई पटा पावै जिके भीच ॥५॥

सारांश

महाराणा प्रताप अकबर के दरबार मे [सम्मुख] अन्य राजाओ की भांति हीनता पूर्वक नहीं आता वरन् मुगल सैनिको एवं अश्वो पर तलवार का वार करते हुए भीषण रूप से [सम्मुख] आता है ।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति सं० २३ पृ० सं० २ से श्री अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त ।

नीसाणी—महाराणा प्रतापसिंहजी री

[अज्ञात]

गिर वंका बिच राजगढ रच मडस हरका ।
कर थह मडीसारे दूल वन राव पघरका ॥
पौहमी समवड़ नह गणत आया जुध परका ।
हाक विड़ाणो सह न थी गाजत धण हरका ॥
अगू आया निज वखां खजगज वह हरका ।
लड गढ ललमरण मुड गया तज तेज समरका ॥
वल वल जंग जडाग लीध नल बरस भपरका ।
भलवल्ल माहल गाड कीध अलवरगढ धरका ॥
जीध अनम्मी जोरदार सेवक निजगुरका ।
मेलै असी हजार रौक महमत मुरधरका ॥
ऐक पतारौ जौम लख आतष कर भरका ।
दिली मतारी डरन्है कढै दल डरका ॥
जण नथै महाराज की प्रली धार करहरका ।
कवि सिधुमल घूघली घह पहण पुरका ॥
काय नरसिंघ गजाडियौ औघस अबरका ।
काय तारख उड़ाडियौ मथी मरण घरका ॥
काय वेता सुर सिर चलै वांणस वजरका ।
वज वीराणी हाक डाक त्रंबागल नरका ॥
चमू लड़ गामा लुलै तुटै तरगिर का ।
गज मत्था धज फरहरै घूघल नभ धरका ॥
कडी वरम्मा वाज धौक पमगां परवर का ।
पानां लागा सीरमी जमी थर हरका ॥
भाला बाढ पलूल सूल अणिया छव भरका ।
जाणक गगा पुरवरस रस मूदन करका ॥
वीत्रां मात गांहली हला जुघ मरका ।
दल चतुरगी ऊमदै नहगा जल धरका ॥
उडै वही रुर जदकं तुरगा पगर का ।

आयुभै कुरंगां विहंग सूकै जल सरका ॥
गज वाजारथ वण वरूथ डम्भर चम्मर का ।
कार विबुंधा हलै विभांण वसुधा अम्बर का ॥
वेला जग उमडडिया वीरू वपछर का ।
मेला निहंगा मडिया खेला अयछर का ॥
वण कौतक जट घर विनौद नारद तूंवर का ।
भुड भेरे ववावन वजत कर भांक डंवरका ॥
जगी डाल कराल कौप वेताल वतरका ।
चवसठ चामडा चलै करपुर पतरका ॥
वट वोभायण वाज सौ क ग्रोधायण परका ।
पढसांदा गाजेंगिरद वाजै ववरका ॥
सुण सद भाजे राव मद जौभ मकरका ।
रावांणी कर जौड कह वाणी उरमर का ॥
काटण वस कवाडिया विप्र वघ घर का ।
उतमग भार उपाडिया श्रोयण अथर का ।
साड सुं मगरांम का करण दुख भर की ॥
मरण मुरलौकां नहो तरण समदर का ॥
अर्पमन मत्ता चल्ला मतरां नसतरका ।
परमुख सामी धरम कदेवांन पतरकां ॥
दौलौ पवना निरंद कौप वेसंदर हरका ।
तदर जढाणी हौमणे लगा दुसतरका ॥
करवी लखाया वदन पड कद भुपत नरका ।
काय केवांणी धारलै पाया सुरपुरका ॥
आपताप छत्र हिन्द का सत्या रूघ वरका ।
ऐ आया परताप भूप जाया मधकर का ॥

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति स० ३०, बस्ता स. ८, पृ. ४३–४५ से श्री अगरचन्दजी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त ।

राजराणा छत्रसाल व कल्याणसिंह

[अज्ञात]

कवित्त

राज छांड राण सूं, गयो छत्रसाल जोधाणे।
कलो रहे चीरवे, प्रभु फिर लेख प्रमाणे।
आय कुंवर अमरेस, आप ले गयो कर आदर।
मिलतां पातल राण, राज ने दियो दुरंग घर।
आवे दल पतसाह, कलै झगड़ा कई कीधा।
सुणे फरियाद नवाब, दूठ आड़ा हय दीधा॥
केवाण झाट बागी कहर, सरब दूर बखरे सुभट।
मान नद तणी देखै तरण, वाह कला रजपूत वट॥

राजस्थानी-गद्य
पुरातात्त्विक सामग्री

अज्ञात

ख्यात एवं बात
वंशावलियाँ
ताम्र पत्र
शिलालेख

परिचय

महाराणा प्रताप से सम्बन्धित मौलिक सामग्री तीन ख्यातो, दो वातो और छः वंशावलियों में मिली है।

ख्यात —

मुहणोत नैणसी री ख्यात (सीसोदियां री ख्यात), 'बांकीदास री ख्यात', और 'उदयपुर री ख्यात' के प्रताप सम्बन्धी अंश यहा दिये जा रहे हैं। मुहणोत नैणसी (वि० सं० १६६७-१७२७) जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह (१६९६-१७३५) का दीवान था। इस ख्यात में विभिन्न राजवशों के इतिहास के साथ साथ 'सिसोदिया री ख्यात' शीर्षक में मेवाड़ के गुहिल-वंशीय शासको का भी इतिहास है। 'सीसोदिया री ख्यात' साहित्य-सस्थान, रा० वि०, उदयपुर के सग्रहालय मे हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में संग्रहीत है। यहां इसी ग्रन्थ के आधार पर प्रताप सम्बन्धी अ श प्रस्तुत किया जा रहा है।

बाकीदास आशिया जोधपुर के महाराजा मानसिंह (वि०सं० १८६१-१८९९) के आश्रित कवि थे। 'बाकीदास री ख्यात' इनकी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है जिनमे अनेको बातो का छोटे छोटे फुटकर नोटों के रूप मे सग्रह है। उन्हे श्री नरोतमदास स्वामी, बीकानेर ने वर्गीकृत कर २७७६ वार्तो मे सम्पादित कर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर से प्रकाशित कराया है। प्रस्तुत अ श इस पुस्तक की 'गहलोता री बाता' शीर्षक से लिया गया है।

'उदयपुर री ख्यात' अनूप सस्कृत पुस्तकालय बीकानेर के सग्रहालय मे सुरक्षित है। इसके लेखक का पता नही लगता है। इसमे कुल ९३ पत्र है, बीच मे से कई पत्र अनुपलब्ध हैं।

वाता: —

प्रताप से सम्बन्धित अब तक दो वातें उपलब्ध हुई है। 'रावल राणा री वात' राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित है। 'राणा प्रताप री वात' मुनि पुण्य विजयजी के सग्रह से श्री भवरलालजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। दोनो ही वातों को यहा प्रस्तुत किया जा रहा है। इनके लेखक अज्ञात हैं।

वंशावलियाँ —

पांच विभिन्न वशावलियों मे से प्रताप सम्बन्धी अंश यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्रथम पांच वंशावलियां राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रहालय मे हैं। राजावली, श्री माखनदान आशिया, उदयपुर के व्यक्तिगत सग्रह मे तथा सीसोद वशावली साहित्य-सस्थान, रा० वि० उदयपुर के संग्रहालय मे विद्यमान है। इन वशावलियो में वशक्रम के साथ२ सक्षिप्त घटनाओं का उल्लेख भी मिलता है। लेखक अज्ञात हैं।

प्रताप उदैसिंघोत

१०२४ राणो प्रताप सोनगरा अखैराज रणधीरोतरो दोहितो ।

१०२५ राणो प्रताप स० १५९६ रा जेठ सुद ३ जनम, राणा प्रताप रै बेटा अमरसिंघ १, सेखो २, सहसो ३, पूरो ४, मानसिंघ ५, कल्याण ६ ।

१०२६ सवत १६३२ सावण वद ७ कछवाहो मान भगवतदासोत अकबर री फौज ले आयो । हलदी घाटै राणै प्रताप वेढ कीवी । पातसाह रा उमराव तीन काम आया । राजारामसाह ग्वालेर रो धणी १, रामसाहरो बेटो सालवाहण २, राजावीठलदास ३ ।

१०२७ हलदीघाटी राणा प्रताप रा चाकर काम आया ज्यारी विगत–कान्ह १, कलो २, दोय भाई प्रताप रा काम आया ।

१०२८ मेढतियो रामदास जैमलोत जणा ९ सूं काम आयो ।

१०२९ सोनगरो मानसिंह अखैराजोत जणा ११ सूं काम आयो ।

१०३० राठोड साईदास पचायणोत जैतमाल जणा १३ सूं काम आयो, सीघलवागो १, नै जैमल २, चहुवाण दुरगो ३, वागडियो ४, मेघो खावडियो ५ ।

१०३१ सं० १६३२ पातसाह अकवर रै उमराव सहवाज खा गढ कुंभलमेर लियो जद सीघल सूजो सीहावत, सीघल कूपो माडावत, सोनगरो माण अखैराजोत, मुहतो नरवद, गढरो सिलैदार, मांगलियो जैतो जैमल काको नै भतीजो इत्यादीक काम आया ।

१०३२ सं० १६१३[1] पातसाह अकवर री फौज कुंभलमेर लियो । सीघल कूपा माडावत, सीघल सूजो सीहावत, सोनगिरो माण अखैराजोत काम आया ।

१०६२ राणा प्रताप रा कवंरा रा मामला विगत–अमरसिंघ १ पूरबिया परमार मयारख खां असोकमलोतरो दोहितो ।

१०७१ सीहोराणा प्रताप रो सोपतसाहोत राणा जगतसिंघ रो मेलियो । पातसाह जीरी हजूर रहतो । वडो दातार वडो गालवरो सिरदार हुवो । उणरै बेटा केसरीसिंघ ।

१०७२ कधरो वेदलै पुरबिया चहुवाण परवतसिंघ रूपसिंघोत रो दोहितो ।

१०७३ सहसो गोपालदास तोडै सोलंकी रामचंद प्रथीराजोतरा दोहितो ।

१०७४ पूरो होयो जोधपुर सोनराज राव माल मालदेवोतरा दोहितो ।

---

1 मुद्रण-दोष प्रतीत होता है । सं० १६३५ होना चाहिये ।

१०७५ पूरणमल राणा प्रताप रो जिण नूं हजूर सूं संवत १६६४ मेडता रो गांव डोमड़े पांचां सूं दीवी सं० १६६६ गाव ढाही मेडता रो गावा पाचा सूं हजूर वगसियो ।

१०७६ कल्याण दास मालपुरै परमार पचायण करमचंदोतरो दोहितो ।

११३७ सहर सूरत में राणो प्रताप गोसरे हियो विरवा में उमरावां कुवरा समेत सूरत-रा सूवैदारनूं मार घोडा चलाया । राणा रा हाथी री बरछी सूं सूवेदार रा अंग रही । कोठारिया रै राव जायनै आणी । ऊ दिन दसरावारो गाहणा समेत सिरपाव राणो जी कोठारियारा धणी नूं दियो । जिण सूं हर दसरावें राणो जी दसरावारो सिरपाव गहणा समेत कोठारियारा रावनूं वगसै ।

[वाकीदास री ख्यात सम्पादक नरोत्तम स्वामी, राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर से उद्धृत]

उदयपुर री ख्यात[1]

महाराणा श्री प्रतापसंह जी राणी मोनगरी जैवंताबाई रा पुत्र। वाम गोघुदै तथा चामड । समत १६२८ राज बैठा। सेना अश्व १५०००, हस्ती १००, पदादित २००००, वार्जत्र १००, राजा १, राव राव ३, रावत ७। कुंवरपणे वागड रा चहूवाणा थी जुध जीता खेत्र नगी स्याम। दलो री पातसाह अजमेर आयो थो। साह अकबर साथै हींदु मुसलमान सहस्त्राजै पीर री जात आयो। जठाथी राजा मानसंघ कछवाहो आयो। जठै राणो जी राजा मान री पगत बैठा नही। सरीर अस्वासरो विपदेस कीधो। राजा तो सरल चित थी जीमे गयो। राजा गया पछै जठै गोठ हुइती, सो जायगा सुध कीधी। एक हाथ प्रथा खोदे नाखी। गगा जल गोमुत्र थी लीपाई, नै सुध गंगा जल थी धुवाई। मृनमय भाडा काढ नाख्या। धातु रा अग्नि सु सुध कीधा। एम सुध करे पछै रसाडै बीराजा। इसी बात सुण राजा मान अतक्रोध पायो। पातसाह नै खीजाय फोज लायो। चत्रकोट थी राणे जी मगरावास कीधो। मनख कुमलमेर गया तथा कैलवाडै पछै धरती में दोरा कीधा। लुटता फिरा। पछै बाणु लख मालवारो दंड लीधो। पातसाही फोज सु राजा मान राणाजी रो सामो लीजो। पछै जुध हुवो। कछवाहै कहो, 'आचार पालो छो तो रजपुत रो आचार दीखाडो।' राणै प्रतापसीह जी कछवाहै मान नै रजपुताचार रो आचार भली भात दीखाल्यो। महाजुध हुवो। अकबर पातसा चढ आयो। वार दूजी हरोल राजा मानसीह हुवो। राणोजी मगरा मे बसी राखी। दीवाण जी दोरा दीवा। राता फर-२ धरती ठाम-ठाम थाणा मलाया। जठा पछै थाणा ५ कुंवर अमरसीहजी एक दिन मे उठाया। इसी तरै थी मेवाड मे थाणा ३६ उठाया। दान सख्या गाम ७, ग्रास १५, गाय १०००, महषी ८००, अश्व १०००, हस्ती २ दीवा। नीत दान हेम मासो १, रूपो तो०५, ब्राह्मण भोजन६ कराता। पचोली गोरो प्रधान। महाराणा जी रै पुत्र स्त्री री वीगत अमरसिह जी पवार राणी अजायवदे रा पुत्र, भगवान जी सोलनखी पुर बाइ रा पुत्र, सहसोजी गोपालजी झालीचम्पाबाइ रा पुत्र, कचरो जी, सावलदास जी, दुरजणसीहजी चहुवाण जसोदाबाई रा पुत्र, कल्याणजी राठोड फुलबाई रा पुत्र, चादोजी, सुखोजी राणी सैनाबाई रा पुत्र, पुरोजी सोचण आसबाई रा पुत्र, हाथी जी, रामो जी आलमदे चहुवाणी रा पुत्र, नाथो जी राठोड अमरबाई रा पुत्र, नाथोजी रायमाण जी राणी राठोड लखा बाई रा पुत्र, राणाजी रै सहलोत राणी तमाम पाव पुत्र।

वर्ष २५ मा० १० दि० २६ राज कीधो।

[बीकानेर अनूप संस्कृत लायब्रेरी राजस्थानी विभाग प्रति. नं० १८२ पत्र सख्या ४२-४३]

---

[1] उदयपुर री ख्यात की प्रति श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

रावल राणा री वात

(उदयसिंह) वरस पांच मै सोलैसै उगणतीसे वैकुंठ पधारया । राणा, जगमाल जी भट्याणी रा हैं राज दे ने देह छोडी थी । पुनी म होली रे दीन सारा हि ठाकुरां दाग गया । जगमाल जी दरीपाने बैठा था । दुजा सारा ही दाग गया था । जठे राजा रामसाहा तुवर पूछ्यो सगर जी सो, 'जो जगमाल जी न आया,' जद सगर जी कही, 'सो आप न जाणे है । जगमाल जी तो न आया ।' जिणी उपर सगला ठाकुरां वीच्यार कीधो । सो ठाकुरा काई करणो । या वात आछी नही । जिणी उपर परलोक करे ने उठ्या, जदे अषैराज जी सोनीगरे रावत कीसना जी सुने सागा जी सु कही, 'सो चोडा जी रा पाट वीराजीया हो, ने मेवाड री थाप उथाप तो राज सु है । सागोजी गरडा है । आप कांई कहो हो ? जदी सनो रावत बोल्या, 'सो ठाकुरा आपरो चित कांई है ?' जदी अषैराज जी कह्यो, 'सो सनी पाल्यो दुध मागे तो कांई देणो ।' कह्यो, 'परताप सरीषो तो रजपूत है, ने सोनीगरा रो भाणेज, अर पाटवी जी थी मे तो परतापसिंघ भेला है ।' जदी सारा ही ठाकुरा षवर कराई । सोदेषा दरीषाने तो जगमाल है बैठा है, ने परतापसिंघ जी रे घोडा जीण हुवा है । ने असी षवर है, सो जगमाल जी है ठाकुर रसोडै पदरावे ने आपे परां नीसरा । जदी ठाकुर सारा ही बदले बदले ने परतापसिंघ जी नपै गया, ने परतापसिंघजी सू रावत किसनो जी राजा साह तुवर आ अरज कीधी । सो दीवाण दरीषाने पधारज्यै । जदी पाच ठाकुरा वाह पकडे ने दरीपानै लै आया । सो आगे देषै तो जगमाल जी दरीषानै गादी करे बैठा है सो उठ्या नही । जदी रावत किसने जी वाह पकडै ने उठाया । ने असी कही, 'सो माहाराजा या बैठक, थारी नही ।' 'थारी तो या बैठक सामी है । जठै विराज जै । राणा प्रतापसिंघ जी हे गादी बैठाया । जद जगमाल जी पलो भाटके ने परा उठ्या, ने नीसरया, ने दीवाण जी है पछे रसोडे पधराया, ने अरज कीधी 'सो होली रो दीन है सो अहेडे पधारज्यै ने नगारो करावज्यै । होलो जसो तेवार मक रो भार्यो नही जासी, ने ओष रहे जासी । नगारो करावै ने असवार होज्यै ।" नगारो करावे ने असवार कीधा । अहैडे मीकार पेल्या । होली री गोठ अरोगे ने होली मगलाइ । ने जगमाल जी परा नीसर्या । सो जाजपुर रो परगणो मुकाते विराज्या । सोगर कुंभलमेर जाए ने पटाभीशेप कीधो । ने उठे ही जाऐ ने राजधान जमायो । धरती माहे सारे ही अमन हुवो । अनरा माहे राजा मानसिंग कछावो दक्षण गयो । सो पाछो आयो । दक्षण री फते करे, मोलापुर थाणो मेले ने पाछा आगरे पातसाह री हजुर जातो थो । पातिसाहा आगरे थो । ने दीवांण कागद दोडाया । सो कागद उजीण जाए पोहोच्या। कागदा माहे लीष्यो, 'सो एक वेला म्हासु मीलता पधारज्यो ने, अठे गोठ री तयारी कीधी है, सो अरोगे ने अठासु पछै आछा पधारज्यो। असी कहीय,ए मोकल्यो। जठे राजा उठा सो पाछो हजुर आयो । दीवांण पण कुंभलमेर थी उदेसागर पधार्या । ने उठा थी राजा आयो । दीवांण जी सामा पधार्या, मिल्या, उदेसागर रा मेला मे गोठ तयारी कीधी । राजाजी हे गोठ अरोगता [illegible] [illegible] ।

ने पात्या कीधा । कुवर जी सु कह्यो थे जावता करो, ने परूसकारी करावो, ने मु पीए अगन्यो करे ने परवारे ने आवु । मु जदी अमरसिंघ जी परूस कारी कराई । सारा साथ मे आवतो करायो । जदी दीवांण जी सु राजा जी अरज कराई सो अरोगवा पधारे जै । अठे तयारी हुई है । कुँवर अमरसिंघ जी थे कहो । जदी कुवर जी दीवांण हजुर अरज कीधी । सो राजाजी बैठे रह्या हैं । वाजा गणके है । अब ढील कु करावै है । जदी दीवाण जी भीमा डोड्यो है मोकले ने असी केवाई, 'सो राजाजी अरोगज्ये मारे अवारू माथै का इक घमकचटी सें, जणी थी माने अबारू पसार हीज होवे ।' या आवे ने राजा जी मु भीम डोड्ये कही । जद राजा जी सांमलेने पूछ्यो, 'सो था कुण हो ?' जदी भीम बोल्यो, 'सो हू तो डोड्यो हू ।' जदी राजाजी असी कही, 'सो थाका ठाकुर है एक वेला जाए ने कहो, 'सो घमको चट्यो गो तो मे जाणा मा पिण माहू मे वाक कांई है ? सो मा भेलां रोटा क्यु नही पावो हो ।' आ वात भीम ने कही । बाही पाछी दीवाण जी सु जाए ने कही । जदी दीवांण पाछो हुकम कीवो । 'सो थे तो पातसाहा रा मगा हो । ने पातिसाहा भेला रोटा पावो हो । सो म्हारी तो आसग नही चालै । आपरे अरोगणो तो अरोगज्ये ।' आ वात भी (म) पाछी जाए राजा सुं कही । जदी राजा असी कही, 'मारा मुडा आगै ठीकरो आप हीज मेल्यो । पिण मो मानसिंघ जी सू करो हो सौ ठीक पडे ही गी ।' जद भीम, बोल्यो, 'सो आप रा पटपण सू, पधार्या हो तो मालपुरे आणे भेलाहा फुफाजी रा पडपण सू, आ आ हो तो म्हारा देस में लोटी मरा हीगा, । 'जरा बोल्या, 'सो वपे घोतो ।' मानसिंघ भीम कही, 'ज्यो रजपूत हां तो हाथी चढ्यो है तो वाहे ने पेजार री दां ज्यो रजपूत हां आप वेगा पधारज्ये ।' आ सामले सो राजा कह्यो, सोभाइ अन था रे वामते वेन वेटी तुरकाने दिया हा, ने ठाम ठाम झोप पीण दीया हा, जिणी सू पाच कणुका वादे ने वेठो हू । औचट नो कहे अवके विपे रहू । बीपेरे देउ तो मानसिंघ । दिवांण हुकम कीधो ज्यो आह ढील मत करो । फुफाजी ने ले गताव सू पधारज्यो मांहरी रजपुती आछी करे देपा वोगा । दिवांण घोडो चढे उभा रह्या । साथ सारो ही ममावै उभा रह्या । जठे राजा उभो थो । अर वेठो थो । जीतरी जाएगा वेलदारा है दुम्बावे पोदावै नपाई । हइया ईनलाव मे रूपा सोना रा ठाम मेणा णाजणी सुधो न पाए दीधा । गंगाजल सो आएगा छटाये, ने फेर सपाटो कीवो गंगाजल री चरवीया माथा उपरे ढुहाई । सारा ही ठाकुरां है हुकम कीधो, ज्यो सपाडा टाल र होमती छोटा मोटा सारा ही ज्यो जहगा उगलया पछे सोपडीज्ये । हे ज्यो साराही सांपडे ने जीमण जीम्या । राजा सु मील्या रो आपीन दान कीधो । पछै जीम्या । आ वात सारी पातसाहा सांमली । राजा हजूर गया । जदी पूछ्यो, 'या मत हुआ ?' जदी हुई सो कही । जदी पातसाह मुहम कीधो । मानसिंघ हरोल सारो पातसाही उमरावो ने थापो । पातसाह जी अजमेर रह्या हलदुघाटी राड हुई । सो राड पाधरी न थाई । ठाकुर घणा काम आया । बावीस हजार असवारां सु चढ्या सो आठ हजार वंच्या, ने उदेपुर आए ने पाटा बंधाया । पछै कुमलमेर पहाड़ा उठे फोज पहूची । राड हुई । गढ टुटतो रही, पण गढ बदल्यो । नीगण मे

जीनाषर पड्या ने देव डोड परवाडे फोज ले चढ्यो । जदी दीवांण जो नीसरघा । माण सोनीगरो काम भायो । दिवांण चावड पधार्‌या । धरती मे थाणा जमाया । गोधुदे मानसिंघ रह्यो । पानोडे अमीसाह रह्यो । उदेपुर मोवत षान रह्यो । चीतोड मोहबत षान हो । ठाँम ठाम थाणा रह्या । षाकर नामे रहे फरीदषाँ मारघो । जठा पाछै फौज मुसलमानो की आधी धरती नही । वरस दस रो वषो हुवो । सोलेसे पैंतालीसे राणो परतापसिंघ जी वैकुंठ पधार्‌या । अमरसिंह जी पाट बैठा ।

[राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ संख्या ८७६, पत्र सं० १०१ (अ) से १०८ (अ) तक]

राणा प्रताप री वात[1]

[क] "राजा राम साहतुग्रर । ग्वालेर रा धणी । राणा प्रताप कने था सो विखै माहे रूपीया ८०० रोज १ रोक पावता । हलदरी घाटी वेढ एक हुवो तठे काम आया । सवत् १६३२ श्रावण वदि ७ राणे प्रताप कछावा मानसिघ सु सोनीगरो नरसीघ अखेराजोत, राठोड रामदास जैमलोत राजा रामसाह ग्वालेर रो धणी, डोडीयो भीव साडावत, पढिहार सेढू, सादु रामो धरमावत ।"

× × × ×

[ख] राणा प्रताप नू विखामाहे पातीसाह री फोजा, जोर दबायो तिको खांवणनू, की हुई पोहोचे नही, तरे राणे कह्यौ हूं अहमदाबाद रे पातिसा कने जाईस । तरे साह भांमे कह्यौ— बारे वरस ताई तो पांच हजार घोडा नू तेल ने सावुताइ सजसी सो हूं दावे जुई करेने पूर देसु । दीवांण ईसरी मत वीचारो पछै फौज रो डेरो गावरोहडीये हुवो । सोदीवाण भाडा माहे सेल करण नू गया । आगे रैन माहे देखे तो जोगेश्वर १ माहासिद्ध पाहाडारी खोहला माहे वैठो थो । राणो जाय पगे लागो । जोगी रो नाम रूपनाथ । तिण राणा नु देखी दलासा कीनी । कह्यौ, 'दलगीर मत हुवो ।' तरे रांणे आपरो दुख कह्यौ । तरे जोगी कह्यो 'अै मगरा छोड ने कुंभलनेर दिसा जावो । अठी नाथ छै ।' पछै राणे प्रतापसिघ ईणे मगरे आयो । नुरनाण घनतोपातिसाहरो भाई थो । गाव देवरे थाणे थो । तिको राणा उपर आयो । तठे वेढ हुई । राणा रा गाय री गोली १ मुलताण सगता रे लागी । वेढ राणे जीती । वीजी तरफ साहवाजखा नु कोपी थो सो पिण भाग गया । धरती राणा रे वली । सवत् १५३६ रा जेठ सुदि ३ राणा प्रताप रो जन्म । सवत् १६५७ रा पोस माहे राणे प्रताप मालपुरो मारीयो । सवत् १६५७ दिन ३ लुंट हुई । संवत १६५७ रा वैशाख पाद साहिजादो सलेमसाह राजा मानसिघ राणा उपर आयो ।"

× × × ×

ऐकरण मात रा आदमी दी सु दीवाण मत मीलो। मेमानी मत करो। पिण राणे वात मानी नही। गोगून्दे मानसिंघ नजीक आयो तठे राणे आदमी भला मेलीया ने उदेसागर मेहमानी कीवी। राणो उदेसागर आयो। तठे मानसिंघ पटरड़ा थी कोस २ उदेसागर छै तठे आया। मीलीया, मेमानी हुई। मानसिंघ आगे थाली मेली। तरे मानसिंग कह्यो, दीवाण पधारो। तरे कहो दीवाण सापडीया नही छै। तरे कह्यो सांपरने वेगा पधारो। वले मांतू दीवाण भेला जीमणो दुलम छै। घणी वीनती कीवी। पीण काई दुवण हार। तिण सु जोर कोइ नही। तरे मानसिंघ कह्यो- माई वेटा ने हुक्म करो ज्यु' मारी पाखती जीमण नू वेसै। तरे राजा कवा २ लेने परो उठीयो। ने राठोड प्रतापसिंघ नु' झाला वीदा नू तेर ने राणा नु कहाडीयो- सो भाण डोडीयो भीव दरगा आयो। तद मानू परणावण रो कहो। तरे दीवाण कह्यो— मे तो कण ही नू द्यो नहीं। मे थानु देवा नही। थे पातीसाहा रा सगा छो। तरे मानसीघ नगारो दे नीसरीयो। पातिसाह कने जाय मेवार उपर आयो। राणा रो डेरो प्राभणोर री वारी हुवो। मानसिंघ रा डेरा कोस १ नदी रो बीच छै। राणा ५ घोडा ७००० छै। मानसिंघ रे घोडा हजार ४०००० छै। संवत् १६३२ श्रावण वदि ७ वेढ हुई। उत्तर दष्षण था वेहु फौज आई। राणा रो साथ काम आयो। पीण राणो नीपट सखरो हुवो। राणा रे लोह ७ लागा। वरछी ३ तीर १ लागो। राणो नीसरीयो। मानसिंघ हाथी चढीयो थो विण ने राठोड़ रामदास जेमलोत डोडीयो भीव री .. वरछी लागी। राजा रामसाह आदमो ३५० तुवर बेटा खंडेराव सुधो काम आयो। झाला वीदा रा रजपूत १६० काम आया। राजा राव संग्रामसिंह नीसरीयो। आदमी १३० राणा रा काम आया। राजा रामसाह तुवर ग्वालेर रो धणी राणा प्रताप कने था सो खिखा माहे रूपीया ८०० रोज १ रोक पावतो सो काम आया। ग्वालेर रो धणी। सोनीगरो मानसीघ अखेराजोत। राठोड़ रामदास जेमलोत डोडीयो भीवा साडावत। पड़ीहार सोढ्ढ सादु रामो धरमावत, लराई सवत् १६३२ रा सावण बद ७ हुई हलदरी घाटी वेढ १ तठै रांणा रो साथ काम आयो। कछवाहा मानसिंघ सु। "संवत् १६३३ वर्षे महा सुद ७ गढ कुमलनेर कवे साहबाज खान लीयो तद राणा रो साथ काम आयो।"

---

1 राणा प्रताप सम्बन्धी यह बात श्री भवरलाल नाहटा, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

[मुनि पुण्यविजयजी के संग्रह से]

वंशावली संख्या १[1]

"महाराजधिराज श्री प्रतापसीघ राणो जी" जैवंता वाई सोनगरा रा वेटा । गोगुन्दे वास्त । चावड वास्त । सवत १६२८, वरष ३२ से राज्य वैठा । वर्ष चोवीस, मास १०, दिन २६ राज्य कीधो । वरष ५७ । १५००० असवार, १०१ हस्ती, २००० पायक, १ राजा, तीन राव, ७ रावत । कुवर पणै थका वागड जुध जीता । चहुवांण मु पेत्र चाम नंदी राणे थके एह पंवाडा कीधा । पातिसाह अकवर ऊमराव, दिली रा हिंदु तुरक, मोहो साथै ल्याया था । राजा मानसीघ कछवाहा सु जुध कीधो, पेत्र पमणोर । मालवदेस, वाणु नप्प टट वनीया मेरपुर मारयो । फरहर पान वीवी आणे, धारवाह देवाडा रे मेल्ही । २०० वाजित्र । दवेर पेत्र जुध जीता । सुरताण मुगल सिरदार, आमेट रो थाणदार, मीलेसर रो थाणदार, चुडामण रो थाणदार, ५ थाणा रा सिरदार, ५ उवराव चढे आया था । सुदेवर पेत्र माज्या । ५ थाण ए १ दिन ऊठाव्या । सुरताण सिरदार मारयो । कुंवर श्री अमरसीघ जी ईसा छतीस ३६ थाणा मेवाड़ माहे दीदा था, सु उठाव्या । जात चीग तो दीली रो अकवर पतिसाह ४ दीस जीत्या ? हिंदु तुरक अनमनया ।।१।। अनम राणो प्रतापसींघ जी रहया ।। पातल पाघ परमाण, साची तो सागाहर धणी ।।

रही सदा लग रांण, अकवर सु ऊभै अणी ।।१।।
पातिल पहे लूणा, अहे लूंणा ऊदवत ।
राणा सहूराणा, सिघ चोहोडे सीसोदीये ।।२।।
हिंदुवा सिर पघडी, सुत से सारो जांण ।
हीदुये रांण प्रतापसींघ, अकवर तुरकाणें ।।३।।

दान मेदया ग्राम ७, डोहली १५, गऊ १००० सहस्त्र, महैपी ८००, अस्त्र १०००, हस्ती २, रूपो सोना ५, हेम मागो १, ब्राम्हण मोजन नीत्य ६, पचोली गोरो । महाराजधीराज श्री प्रतापसिघ जी वेटारी योगत । वाई अजवादे पन्मार वेटा श्री अमरसिघ राणो जी, भगवानदासजी । पुरवाई सोलकणी रा वेटा सहैसोजी, गोपालजी । पापावाइ भाली रा वेटा, कचरोजी, सायलदासजी, दुरजणसिघजी । जसोदावाई चहुवाण कल्याणजी री माता । फतुवाई राठोड रा वेटा चादोजी, सेपोजी । साहमती वाई हाडी रा वेटा पुरोजी । धासीवाई पीचण, हाथीजी री, रामजी री माता । आलमदे चहुवाण वाई रा वेटा जसवतजी । रणारयदी पन्मारवाई रा वेटा मानोजी । अमरावाई राठोट रा वेटा नाथोजी । लपावाई राठोड रा वेटा रायदासजी ।

[राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, के हस्तलिखित ग्रन्थ (हिन्दी) संख्या ८२७ में पत्र-संख्या ५४-५५]

1 इस वंशावली में महाराणा राजसिंह प्रथम (वि०सं० १७०६ से १७३७) तक का वंश वर्णन मिलता है।

वंशावली संख्या २[1]

राणा उदेसिंघ जी ना बेटारी विगत ।१ प्रतापसिंघ राणो जेवंतीबाई सोनगरी रा बेटा १, शक्तिसिंघ संध्याबाई रा बेटा, २। जेतसिंह जेवताबाई मोदडेचोना बेटा। ३ कान्हजी लालबाई परमार ना बेटा ४। रायसिंघ बीरबाई झाली ना बेटा।५ सादूंल जी ६, । रूद्रसिंह ७, लषाबाई राठोड़ ना बेटा ८। सुलतानजी धारबाई भट्याणी ना बेटा। १ जगमाल सगर १ अगर १ शाह १, पंचाण ५ गणेशदे लाडी चहुँआण ना बेटा। ५ कान्हजी१ नेतोजी१ साहबखान कनका बाई महेची ना बेटा। महेशजी१ वीरमदेवजी१ गोपालदेव १ भाउजी खीचण रा बेटा। राणा उदेसिंघ ··· ··· ···· ··· ··················
··

महाराजा राणा श्री परतापसिंघजी जेवताबाई सोनगरी रा बेटा। वास गोगुन्दे तथा चामुंड। संवत १६२८ राज्य बैठा। वर्ष २४ मास १० दिन २६ राज्य कीधूं। अश्व २५०००. हस्ती १००, पदाति २००००, वाजित्र १००, राजा १, राव ३, रावत ७। कुवरपणे बागडिया चहुवाण थी युद्ध जीत्या क्षेत्र शाम नदी तीर। दिल्ली नो पातशाह अकबर शाह उमराव हिंदू मुसलमान सर्व सहित अजमेर आव्यो हतो। त्य हाथी कछवाहो राजा मानसिंघ आव्यो। राणो परतापसिंघ राजा मानसिंघ नी पक्ति बेठो नही। शरीर अस्वस्त नो व्यपदेश कीधो। राजा तो सरल चित थी आरोगी गयो गोठ। राज मानसिंघ गया पाछे, जे स्थानक गोठ थई हती, त्यहाँ राणेजी ये स्थान शुद्ध करावी। एक हाथ पृथ्वी पोदावी, ने गगाजल युक्त गोमये लीपावी, पछे शुद्ध गगाजल की घोवा रावी। मृछुमय भाँड काढी नाख्यां। धातु पात्र अंगारी शुद्ध कर्या। ए शुद्धता करावी न, राणोजी पछे रमोडे आरोग्या। ए वृतान्त हलकारे राजा मानसिंघ ने कछावा ने के ह्यु। ते साँभली ने राजा मानसिंह घणा क्रोध पाम्या। पातसाह पासे जई ने फोज लेई चित्रकूट उपर आव्यो। राणोजी गढ थी टालो दीधी मगरे गया। मनुष्य कु भलमेर केलवाडे मेहल्या। पछे धरती महा दोडी कीधो। पातशाही धरती लूटता फरया। बॉणु लक्ष मालवो ना दड लीधो। पातसाह फोजा लेई ने राजा मानसिंघ राणा जी ने केडे लागो। पछे युद्ध थयु। कछावा हो के हेतो हतो, जे आचार पालो छो, तो रजपूत नो आचार पालो छो, तो रजपूत नो अचार देखाओ। ते राणे जी ये श्री प्रतापसिंह जी ये कछवाहा ठाकुर रने रजपूताचार भली भाते देखाओ। महायुद्ध कीधूं। दिल्ली नो पातसाह अकबर चिकनो मुगल घटी आव्यो। हगोल राजा मानसिंघ कछावो थयो। राणोजी चित्रकूट छोडी ने मगरा में वसी रागो। दिवाण जी दोडा करता फर्या। धरती मे ठॉम ठॉम थाणा मेलाया। थाणा ५ कुवर अमरसिंघजी ये एक दिवस में उठाय दीधा। एम थाणा ३६ उठाड्या। दान नगर ७, ग्राम १५, गाय १००००, महिषी ८०० अश्व १०००,

---

1 इस वंशावली में महाराणा जवानसिंह (वि० सं० १८८५-१८९५) तक का वंश वर्णन मिलता है।

हस्ती २ । नित्य दान हेम तोलो १, रूपो तोला ५, ब्राह्मण भोजन ६, पचोला गोरो प्रधान । राणा प्रताप ने स्त्रीया नी विगत । १ अमरसिंघ जी वाई अजवादे परमार ना वेटा १, भगवानदासजी पूरबाई सोलकीनी ना वेटा १; सहेमोजी, १ गोपाल, चपावाई झाली ना वेटा; कचरोजी १, सामलदास, १ दुर्जनसिंघजी, यणोवाई पुवारना वेटा १; कल्याणजी, शेषोजी, वाई साहमती ना वेटा १ । पूरोजी आशावाई खीचणी ना वेटा १, हाथीजी, रामजी, आलमदे चहुआण ना वेटा १, जमवतवाई रत्नावती ना वेटा १; नाथोजी, १ रायमाणजी लाखांवाई राठोड ना वेटा, महाराजा राणाजी श्री अमरसिंघजी बाई अजबादे परमाना वेटा वास चामड तथा उदेपुर ।

(राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के हस्तलिखित (हिन्दी) ग्रन्थ सख्या ८२८ पत्र सख्या ६५ से ६८ तक)

वंशावली संख्या ३[1]

उदयसीगजी रा बेटा

(१) बडा परतापसीगजी	(२) सगतसीगजी	(३) अगरजी
(४) सगरजी	(५) सीआजी	(६) पचाणजी
(७) जगमालजी	(८) कानजी	(९) नगजी
(१०) ईदरसीगजी	(११) सादुलजी	(१२) वीरमदेजी
(१२) महेमजी	(१४) राअमल	(१५) मुणताणजी
(१६) भोजराजजी	(१७) ————	(१८) ————
(१९) ————	(२०) ————	(२१) ————
(२२) ————	(२३) ————	(२४) ————

२४

२३१ म्हाराणाजी श्री परतावसीग जी गादी बैठा समत १६२९ श्रोर चेत सुद १ समत १६३३ गढ कुंमलमेर टुटो। म्हाराणा परतावसीगजी बडा रोला कीदा। जगडा मे बेटा १२ भाई २४ तो सात जगडा मे चडता। पातसा अकवर अजमेर सुदी सीदकर पाछा आ, अर सगतसीगजी ऊपर वेराजो वे काढ दीदा। सो पातसा तीर रेता। षवासी मे, वेठता। कमलमेर तीर हेलदी गाटी पातसारी फोज में जगडो कर नीकला। ऊठे चेटक घोडा रो पग उडर। सगतसीग जी पातसारा हातीरा मुडा आगे चडा ऊबा हा। सो पातसा अकवर कुरागान मुलतान हेक कही 'परतावसीग कु कुवाण का गोसामे पकड हाजर करो।' सो देवलेर चडा। पाछे सु सगतसीगजी कही 'हजुर भरोसा नाही' जद पातसा कही, 'परतावसीग पकडकर तुम लावो तो मेवाड का राज तरे तो ही दवें।' जद पातसा ने कही, 'हमारा तो दुसमण हे, सो जीता पकड नही आवे तो मार कर लावे'। जद कही, 'जलदी जावो'। या गोडा नाटक ऊपर सगतसीगजी चडा हा, अर वहीर हुआ। सो आगे जाअ देपै, श्री दरवार के पुरासान मुलतान के छेटी थोडी। कुवाण मु लडाई वेती जावे। चला जावे। सो पाछे सु कुरासान मुलतान है सगत मारे। श्री दरवार के आगे जावे अरज करा कही, 'दुसमण हे, मारा हे' श्री हजुर पागडो छाड जे चेटक तीन पगो हे। जद कही, 'पुरासाण मुलतान रा गोडा ने मुगेले वाद आ अर हु सो मु चढ जाऊगा आप नाटक ऊपर चढजे।' नाटक चेटक एक सरीपा हा। श्री दरवार कही, 'थारो अतवार नही आवे तुरक रो मन जन पावें है।' जद नात जोट पडा हुया। श्री दरवार नाटक ऊपर चडा। जद कही, 'मने लाऊ। कही थये नीच पाछो हदे जो मोक नो हुग

---

1 इस वंशावली में महाराणा राजसिंह प्रथम (वि० सं० १७०८ से १७३७) तक का वंश वर्णन मिलता है।

है। काचवेता देपोऊ मागा रजपुत को मुडो कसो वे। जद कही २ कोल पुछाऊ। काहो बोलेह पेण न उतवारो चाकर है। जिस बोल है। जेद सगतसीग जी पाछा फरा, अर हदेरावाद रा नवाब मीलो। कही 'सगतसीग तेरा गोडा काहा है, परतावसीघ काहा है।' जद कही जापना मेरा गोड़ा कुमारा। पेली कुरासाण मुलतान कुमारा। मे दम आगली मुडा मेली दी। कहे के, 'मुजे धरम लेपे छोड़ो।' जद काल पुछा कह केर छोटा। आप पदारो अे थोडी दुर है। जद नवाव रा भाई वेटा ने उतरा। अे गोड़ा पर सगतसीघजी ने चड़ा आ। सो जगाहो पडो जइजा अऊ वारावा कोस दो कोस करे दोड़े र पाछा आ, अर पातसा ने नवाब जगहा रा समाचार कहा के, 'परतावसीग तो कुरासान मुलतान कुमार। सगतसीग का गोडा के कुवाण का तीर लागा। पात्र १ पर तरवार लागी, अर कुवाण का तीर गेले बीणता आ, अर एतो परतावसीगजी रावा कुरामाण मुलतान का जहे। पातसा ने वता, अर पातसा कही 'तरो कला मे चीतोड नही।' जद सगतसीगजी कही, 'हजुर मगरा मे पदारजजो परतावसीग वेगा।' जद मेलजेर अे रघुगा जद आवरे क राजा मान कही, 'राज ने कारण वेटा वापने मारता आ आहे।' जद पातसा ने ससरा केत वावडरो कीदा। छडी फोज सु सगतसीगजी आवेर म्हाराज, जोधपुर म्हाराज, लार वेरे असवार वाम हजार सु मगरा मेय राड। सो सातर मोवटा अेक दोन मे छहा। गाटो मारो, सो पातसा पाछो फरो। सो ही ठाप मेडे रोवे आअर जतरे पातसा रो लाग घरजा रजपुत, मीर, वजीर, पातसा ने पावा ने मीला नही। देस उजड वेग ओ, सो मीला नही। पाणी पी दीन काडा। जद पातसा राजा मान सु कही, 'परतावसीग केसे जीवता वेगा?' जद कही, वपा है, रजपुत का वपा अमाही वेता है। जमीदार है, सो कदमुल पाए दीन तरे करता वेगा।"......... जावर रा म्हेल मे वेकुट पदारा मासता हुई राज वरस २४ कीदा समत १६५२ वेकुट पदारा वेटा १२ हुवा जारा नाम

(१) पाटवी अमरसीगजी	(२) सोसीजी	(३) पुराजीरा पुरावत
(४) सेपांजी रा सेपावत	(५) यतीजी	(६) वलाणजी
(७) कचरोजी	(८) मेगराजजी	(९) नगजी
(१०) चंदोजी	(११)	(१२)

१२

(राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के हस्तलिखित (हिन्दी) ग्रन्थ सं० ८६७ पत्र सं० २५ से २८)

वंशावली संख्या ४ [1]

॥ ..... राणा श्री उदयसिंग जी रे कवर प्रतापसिंगजी सोनगरी जेवताबाई रा पुत्र; २ कवर सगतोजी सोलकणी बाई सु जा रा पुत्र, जयसिंगजी, पुवारबाई जेवता रा पुत्र;। पचाण गणेश दे चहुवाण लाडो रा पुत्र; कानजी, नतोजी सहषहेची कनकबाई रा पुत्र; महेशजी, विरमदेजी, गोपालदेवजी, खींचण बाइरा पुत्र । राण श्री उदयसिंगजी रे दलीरा पातसाह थी युद्ध कीदो । गढ भागो जदी उमराव काम आया चूंडावत पतोजी, राव सांईदास जी, राठोड जयमलजी राठोड ईसरदासजी,......—।

॥ ——राणोजी प्रतापसिंगजी राणी बाइ सोनगराई जेवंता रा पुत्र वास गोगून्दे तथा चावड । सवत् १६२९ राज बेठा । सेना संख्या अश्व १५०००, हस्ती १००, प्यादल २००००, बाजत्र ७००, राजा १, राव ३, रावत ७ । कवरपणो वागड रा चहुआण थी युद्ध जीत्या ॥ चेत्र नदी सीम दर्लो रो पातसाह अजमेर आयो । और साह कवर साथे हिन्दू मुसलमान लेर खाजे पीर जी री जात्रा आया । अठा भी, राजा मानसिंह कछवाहा थी युद्ध जीत्या । लाय करा वे रसोडो करावे आरोग्या । ये समाचार राजा सामल आयो ते क्रोध कीधो । पातसाह तीरे जावेर फोज लेर चित्रकोट उपरे चढे आयो । राणेजी गढ थी टालो लीदो । मगरा मे वासो कीदो । मनख कुंभलमेर गया । पछे धरती मे दोडा कीदा । लूटता फरया । मालवा रो डड लादो । पातसाह री फोज लेर राणा जी रो पीछो कीदो । जठे युद्ध हुवो । महायुद्ध वीयो । कछवायो केतो. “था सो आचार पालो तो रजपूता आचार बतावो ।” सो आढो पमात रजपूताचार दीखावे । पातसाह डोला चढेर आयो । जठे दूजीवार राजा हरोल हुवो । महायुद्ध कीदो । वसती मगरा मे राखी धरती में ठाम ठाम थाणा जरा थाण । एक दिन माही कुंवर अमरसिंग जी उठाया । इमी भांत रार करे थाणा ३६ उठाय दीदा । ने सख्या गाम ७ ग्रास १५, गाय १०००, मेहकी ६००, अस्व १०००, हस्तीर दीधा । नित्यदान हेम तोला १, रुपो तोला ५ ब्राह्मण भोजन २ करता । पूंचोली गोरो प्रधान । राणाजी रे पुत्र ७, अमरसिंगजी राणी पुआर रा । बाई अजबदे रा पुत्र २ भगवानदासजी । बाई सोलकणी पुरबाट रा पुत्र ३ सहेसजी ४ गोपालजी बाई झाली चांदबाइ रा पुत्र । ५ कचरोजी ६, सामलदासजी, दुरजणसिंगजी, ७ राणी चुवाण जसोदबाई रा पुत्र । ६कल्[illegible]गजी राणी राठोड फूलाबाई रा पुत्र। एक पूरोजी राणी [illegible] बाई रा पुत्र । एक ऊदेसिंगजी रामबाई आनलदे चहुआण रा बेटा ५ । जसवत राणी अमरावती रा पुत्र । ७६ मानोजी राठोड बाई अमरबाई रा बेटा । १७ नाथोजी, रायमनजी राठोड लाला बाई रा पुत्र । रावलोक राणी खवासण पात्र पुत्र । वरस २४ मास १० दन २२ राज कीधो ॥ राणो श्री अमरसिंग जी ।

—— .. .. —...... ......

---

1 इस वंशावली में महाराणा अमरसिंह (वि०सं० १६१८-१६३१) तक का ही वर्णन मिलता है ।
(राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ ८७२ पत्र संख्या १३८ से १४६)

वंशावली संख्या ५

राणावली[1]

सं० १६२४ रा चेत वीद ११ रवे चीत्रकोट मागो । सं० १६१६ ऊदेसागर बदायो थो, ने स० १६२४ रा चेत सुद ११ रे दीन ऊदेपुर वसायो । आर बल व्रम ५० स, ३६ मास, २ दीन राज कीदो । स १६२६ रा फागुण सुद १५ देवलोक पदार्या । वेटा २५ पचीस

१ प्रतापसीघजी गादी वीराज्या

२ सगतसीघजी, ज्यांरा सगतावत

३ कानजी, ज्यारा कानावत

४ जेतसीघजी ज्यारा

५ वीरमदेवजी

लागच हमीरगढ भावा घेरावाद
महुवो मणवाड मडयो चोगामडी

६ राणसीघजी, ज्यारा पगरा मालचे

७ जगमालजी, ज्यारा जाजपुर

८ सगरजी, ज्यारा ऊमरी मदोडो गुणेम गड गडोली

९ अगरजी टोडा कीडा वर अगरावत रा राणावत सीमोदा वाजे

१० सीस्याजी ज्यारा छापरेड

११ पचाणजी ज्यारा पचाणपुर, ऊनांरा, पजुरी, हाजीवास

१२ सुजाणजी रे रेडवास

१३ लुणकरणजी गुणेम री वालोर पेडो दीधो

१४ महेमदासजी ज्यारा टाटोन श्री जी दुवारा तीरे

१५ सादुलजी ज्यारा गोडवाड म्हे साडेहा

१६ रूदरसीघजी ज्यारा सीरोई री धरती में पीडवाडो सेणवासे

१७ नगोजी ज्यारा मालवे रोर गाव धावढ्या पादद रो ८ वेटा ८ रो नुत गयो

२५

महाराणा श्री प्रतापसीघ जी जेवताबाई

महाराणा श्री प्रतापसीह जी जेवनाबाई सोनगरी रा वेटा । वास गोगुदे तथा चावंड । सं० १६२८ गाद बैठा । असवार १५,०००, पायदल २००००, हस्ती १००, वाजंत्री २००, राजा ३, राव ३, रावत ५

1 इन वंशावली में महाराणा सरदारसिंह (वि०सं० १८९५-१८९९) तक का वंश वर्णन मिलता है ।

सेवा करता । कुवर पणो जादा भुगत्यो, अरजुद कीदा, अर राड २२ बाईस जात्या । अर राज कीदा जमे बेटा थी, बुगत्र गला म्हे थी काड्यो नही । पातस्हा अकबर ती जुद जीता । दली रा ऊमराव हीदु तुरक था । ज्याहे अपणाऐ लारे लाय्या । बावन लष मालवा थी डंड लीघो । आर बल व्रम २४ मास १० दीन २६ राज कीदो । राणा, षवासण,

बेटा री वीगत—

१ अमरसीघजी पाट बीराज्या
२ माजी ज्यारा भगवानदासजी
३ कचरूजी ज्यारा गोगुदा तीरे जोलावास
४ सेसमलजी ज्यारा षर्यात्रद
५ रामजी ज्यारा ऊदयावास मुन करी
६ चदोजी ज्यारा दरीबा तीरे आजणों
७ हाथी जी ज्यारा बोडावास (दात) डो गेदल्यो
८ सावरदासजी ज्यारा सलुबर तीरे जामुडा
९ जसुतसीघजी ज्यारा कारूडो जलोदो
१० सेषोजी ज्यारा नाणो षेडो बीजापुर गोरवाड में
११ कल्याणवास जी ज्यारा षुलसाद
१२ पूरा जी ज्यारा पुरावत भगरोप गुरला गाडरमालो
मारक्यो मोर दाम पुरावत

[बही में पत्र सख्या नहीं दी गई है ।]

वंशावली संख्या ६

सीसोद वंशावली

२११ म्हाराणाजी श्री प्रतापसीघ जी गादी वैठा समत १६२९ और चेत सुद १ समत १६३३ गढ कु मलमेर टुटो। म्हाराणा प्रतापसीघजी वडा रोला कीदा। झगडा म्हे वेटा १२ भाई २४ तो सात झगडा मे चढना। पातसा अकवर अजमेर सु दीमी पाछा आया। सगतसीगजी ऊपर वेराजी वे काड दीदा। सो पातसा तीरे रेता पवासी म्हे, वे । कुमलमेर तीरे हलदीगाटी पातसा री फोज मे झगडो कर नीकला। उठे चेटक घोडा रो पग झडो। सगतसीग जी पातसा का हाती रा मुडा आगे चडा ऊवा हा। सो पातसा अकवर कुरासन मुलतान से कही 'प्रतापसीग कू कवाण रा गोसा मे पकड हाजर करो।' सो सुवोनेर चटा पाछे। सु सगतसीगजी ने पातसा पूछी, (के) 'प्रतापसीग पकडा आवेगा' जस

पातसा ने कही, 'हमारा तो दुसमण हे सो जीता पकडा (नही) तो मार कर लावे'। जद कही, 'जलदी जावो पछे घोडा '। सुप सगतसीघजी चडा, घर वहीर हुवा। सो आगे जाए देखे, तो श्री द्रवार के पुरासाण मुलतान रे छेटी थोडी। सुवाण सु लडाई वेती जावे। चला जावे से। पाछे सु कुरासान मुलतान है सगतसीघजी मारे। श्री द्रवार के आगे जावे आडा फरा। कही, 'दुसमण हे, मारा हे' श्री हजुर पागडो छाड भे चेटक तीन पगो हे। जद कही, 'पुरासाण मुलतान रा घोडा ने सुगेने वाद आयो हु। सो मु चड जाऊगा। आप नाटक उप्र चडजे। नाटक चेटक एक सरीखा हा। श्री द्रवार कही, 'थारो अतवार नी आवे तुरक रो अन-जल पावे हे।' जद हाथ जोड पडा हुवा। श्री द्रवार नाटक ऊपे चडा। जद कही, 'अवे जाऊ, कई अवे सोच कही हे, दूजो लोग तो दुरी हे। साथ ये तो दीपाऊ, साग रजपुत को मुडो कमो वे। जद कही, 'रे काल पुछाऊ कहो वोले हे।' पण

थारो थाकर हे जिसु योले हे।' जद सगत (सीघ) रा घोडा कुमारा

पर्सी पुरासाण मुलतान कू दस पागली सुटा मे लीदी कही मुजे घम लेवे छोडी, जद काल पुछा कह कर छोडो, आप पधारो ए थोडी दुर हे ज।' इन सावरा माटी पेटा ने ऊनराए घोडा प्र सगतसीघजी ने चडाया। सो उठे घोडो पडो उठे जाए ऊवा रया। कोस दो कोस फेर दोडे र पाछा आया। पातस्या ने सहाय जगरा रा समाचार कया के, 'प्रतापसीग तो कुरसान मुलतान कु मारा। सगतसीघ का घोड़ा के कुराण का तीर लगा, पाव १ प्र तरवार लगो अर कुवाण रा तोर गेले वीणता आया। सो, प्रतापसीघजी मारा कुरासान मुलतान रा जो पातसा ने वताया। पातसा कही, 'तेरा कलाम मे चोतोड नही जद सगतसीघ जो कही हजुर मारा मे पधारो। ज्या प्रतापसीघजी वेगा ज्या' मे ले जाके रपुगा। जद आवैर के राजा

---

१ इस वंशावली मे महाराणा जम्भसिंह(वि० स० १६१८–१६३१) तक का वंश वर्णन मिलता है।

मान कही राज रे कारण बेटो बापने मार (ण) आया — जद पातसा ने मे सरा
जार मगरा म्हे घसा । सो सातर सोवडा एक दीन राणाजी श्री प्रतापसीग जी आवा आवलो
री नाल आगे घाटो मारा सो पातसा पाछो [म] रोसो दीनो । म्हे डेरापे आया, जतरे पातसा री लार
गया । ज्या रजपुत मीर वजीर पातसा ने षावा ने मलो नही । देस उजड वे गया ।
सो मल न्ही । पाणी पी दीन काडा । जद पातसा राजा मान सु कही, 'प्रतापसीघ केमे जीवता
वेगा ।' जद कही 'बषा हे । रजपूत का वषा असा ही वेता हे । जमीदार हे. सो जद कंद मुल षाऐ दीन ते
रकता वेगा ।' पछे पातसा सेसरा का तलाव म्हे मेल कराओ । राते सोवे दोलु जंलरी षाही । सो श्री द्रबार
रात रे स्मे नीसरा । सो रातो रात मेवाड मे आवे, सेमरा म्ह कुमारं के घरा घोडो बादो । भेस मोर दीदो ।
रात पड्वा देन तंलाव री कुण मे गया । सो देषे तो लुगाई १ बैठी हे । जद कही 'थु कुण हे ?' जद वी
कही, 'मु सकोत्री हू ।' अठे कुं आई ?' जद (क)ही, 'पातसा री फोज देषबा आई ।' जद कही, 'पातसा
कठे है?' जद सकोत्री बोली, 'टा में है कही, 'गई
मो आप ऊतरे नही, ने कही के, 'मु आऊ जत्रे राजे मो माए जाए देषे, तो ऊडदा बेगणा और
नाजरा की चौका लाग रही है । ऊपं तो नीदरा पडी पाच चो फिराक म्हे पदारा । सो पातसा अकवर अर
हुरमा ढोला पर पोडा हे । ज्याने देष तरवार काडी, के पातसा ने मार नाकू । असा ओसर फेर नी मीलेगा ।
दुसमण ने तो मारा ही चावे । जद तरवार वावा लागा । सो हात न्ही कई मत । जद पूछा, 'थे कुण हो
कही मे चोईस पोर चौकी देवा हा ।' 'जद कही, 'मारे पण कुण हे ?' जद कही, पाछे नाम देषे तो, श्री
एकलींगजी ऊबाहे । चार मुष सु द्रसण दीदो । कही, 'पातसा री सरकी पागडी मुछ ऊरी ले । सो मोजाहीण
वे परो जावेगा । थारो जग सरहेगा, न्ही तो यो थारो मारो मरे न्ही । तु इरो मारो मरे नही । जद हुकम
प्रमाणे कर पाछा वावडा । सो कुण मे जाऐ उतरा । सकोत्री ने कही मागे जो देऊ । जद उणी कही,'
कण सकोत्री नाले नही । आपरे तो देवना चौकी देवे है, अर कही, 'मु मेडी के पडे
रेऊ हू । आपरे काम पडे जद, मने याद कीजो ।' । पछे सकोत्री ने हीरा को हार दीदो । अर ईडर प्रणाहा,
सो उठे राणीजा हा, सो तीज रे दीन पात्रणा पदारा । पातमा री फोज बाईमी ईडर जाए डेरो दीदो । सो
श्री राणा जी ने ले फोज मु भगडो कर षावड पधारा । प्रभात हुवो । पातसा जागा । देषे तो डाडी मुछ
ऐक बाडी री न्ही । सरकी पाग न्ही । पर हुरमारी चोटी न्ही । अर मीत उप्र अषर माडा के 'हमारा नाम
प्रतापसीघ है, अवे रेवोगा तो मार नाकूगा । लाषा आदमा रो ठाकुर हे । जीनु छोडो हे ।' जद प्रभाते कुच
करा । सो फोज तो वदा करी । आप मगतसीघजी ने बुलाया के, 'थु प्रतापसीघ मे छाने मोम प्राव को ने ।
पातसा रा कुष हुवा । नपलेउ रा नवाब पानापान आप मु मीलवाने आवे हे । सो पचीस पोहा मे मोल
जावेगा । असो कहर मेला । पछे सगतसीग श्री द्रबार नणाया का मगरा म्हे ठाया गोदा । पे हडो जगा
अ मु जी वे के कई करणा ? घो ऐकलींग जी ने समरा । सो सपना
में कई, 'पाग रा तिसरा जामरी पोठी ले'र म्हाजन आवेगा, सो पु दुरो जावे ने आवे । ज्या फौज सम्म

पावे जो काइ लीजे। गुण भडावो मनी। पातसा डीला आवेगा, सो मजमानी आछी कीजे। पछे दोपेरा को पातसा अकबर, नषलेऊ, हेदराबाद दोई राजा जेपुर, जोदपुर, दोई राव ग्रोर मीर, वजीर, सगतसीघ जी लारे आया। पातसा फकीर रो साग कर आया। सारा श्री द्रबार सु मला पातसा ऊबो रयो दूरो। सो प्रतापसीघजी गादी तार कराई। कई, 'बीराजजे नछरावल करी। माणक, मोती, सोना, रूपा रा फुल ऊछाला। गोठरी तीयारी मलोभाव सु करी। सो पातसा वा सारा लारका जीमा। पातसा रे नजर हाती ५, घोडा १०, सोना रूपारी सागतरा तरवार, कुटारी जडाऊ, पोसाग, गेणो, मारो दस्तुर मुजब करा। लारका ने सारा ने सरोपाव, घोडा, गेहणा दीदा। सो पातसा देषता गोया। ग्रर देना गया। पछे पातसा कहो, 'वडा ग्रनमीपद राजा हे' जेपुर जोदपुर का राजा ने कही, 'ए देवता का कीया राज हे मन . . . .

तेग तरवार ग्रनमीपद गाम चावड मेल वणाया। गाम वसायो मगरा म्हे। ठाम ठाम मेल जगा बणाई। रया पछे चावड रा म्हेला म्हे वेकुट पदारा। मासती हुई। राज बरस २४ कीदो। समत १६५२ वैकुट पधारा। बेटा रा नाम— १ पाटवी ग्रम्रसीगजी २ सोसीजी ३ पुराजी रा पुरावत ४ सेषोजी ५ हातीजी ६ कलाणजी ७ कचरोजी ८ मेगराज जी ९ नगजी १० चदोजी ११ . . . . १२ . . .

[साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २९२ पत्र स०२१ से २५ तक]

संथाणा[1] का ताम्र-पत्र

इस ताम्र पत्र का छाया-चित्र [Photograph No 26/133] कमिश्नर कार्यालय उदयपुर मे सुरक्षित है । इसकी प्रतिलिपि डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक Mewar and the Mughal Emperors मे प्रकाशित की है । प्रस्तुत ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रताप के आदेश से भामाशाह द्वारा आचार्य बालाजी बा किसनदास बलभद्र को एक ग्राम संथाणा भाद्रपद शुक्ला ५ रविवार सवत १६३३ को प्रदान किया गया । यह आदेश महाराणा ने कुंभलगढ में रहते हुए दिया था । ताम्र पत्र की अन्तिम पंक्तियो से ज्ञात होता है कि सम्बन्धित व्यक्ति का मूल ताम्रपत्र चोरी चला गया था अतः उसका पुनर्नवीकरण कर यह ताम्रपत्र प्रदान किया गया । ताम्रपत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेशप्रसादात् श्री एकलि [गप्रसादात्]

[भाला]

सही

१. महाराजाधिराज महारांणा श्री प्रताप—
२. स्यंव जी आदेशात् आचार्य वालाजी वा
३. कीस्नदास वलभद्र कस्य गाम १ सथा—
४. णो मया कीधो उदके आघाटे दता [कु]—
५ [भ] लमेर मध्ये संवत १६३३ वर्षे भा —
६. द्रवा शुदी ५ रीवों दुए श्री मुषे प्रतीद्रु—
७ ए दादो रायजी साह भांमा पहुना प—
८ तर वले गयो लुट्यो गया सु नवो करे
९. मया कीधो साम पीपली चरण हे— —
१० —पं— सो सीम पी सु — — मुर्धो दो है

1 उदयपुर से उत्तर-पूर्व में काकरोली स्टेशन से लगभग १२ मील की दूरी पर स्थित गांव ।

मही[1] का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र-पत्र का छायाचित्र श्री जगदीश प्रसाद आचार्य, उदयपुर से प्राप्त हुआ। इस ताम्र-पत्र मे कहा गया है कि महाराजाधिराज महाराणा प्रताप सिंह ने कुंभलमेर मे रहते हुए आचार्य बालाजी वा कीसनदास बलभद्र को मही [मोही] नामक ग्राम में संवत् १६३३ के आश्विन कृष्णा षष्ठि मंगलवार को तीन रहट प्रदान किए। अन्य ताम्र-पत्रो की भाँति इस ताम्र-पत्र मे भी भामाशाह का नामोल्लेख है। अन्तिम पंक्तियो से प्रकट होता है कि पूर्व दत्त ताम्र-पत्र के खो जाने से यह नया ताम्र-पत्र प्रदान किया गया। ताम्र-पत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेस प्रसादातु　　　　श्री एकलिंग प्रसादात्तु

[भाला]

सही

१ महाराजाधिराज महारांणा श्री प्रतापस्यध
२. आदेशात् आचार्य वालाजी वा कीशनदास
३. वलभद्र कस्य गाम महीम् । हेरहट ३ अग
४. री क व्हे नु गया कीधा हुइ उदक आघाट द-
५. ता संवत् १६३३ वर्षे आसोज वदी ६ भुमे
६. कूंभलमेर मध्ये हुए श्री मुखे प्रती हुए
७ साह भामो पुर्वा रीत व्हे सु मया कीधो प
८ ले गुठो नु प्रो तुठे पतर गया था सु नवो
९ करे मया कीधो

पीपली[1] का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्रपत्र का छायाचित्र हमे श्री जगदीशप्रसाद आचार्य उदयपुर से प्राप्त हुआ । ताम्रपत्र मे कहा गया है कि आचार्य बालाजी बा किसनदास बलभद्र को, महाराणा प्रताप ने कुंभलमेर में रहते हुए रविवार, भाद्रपद शुक्ला ११ सवत् १६३३ को, पीपली नामक ग्राम प्रदान किया। मूल ताम्र पत्र खो गया था अतः यह नया ताम्रपत्र प्रदान किया गया। अन्य ताम्रपत्रों की भाति इस ताम्रपत्र मे भी भामाशाह का नामोल्लेख है । ताम्र-पत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है:—

[श्री रामजी]

॥ गणेस प्रसादात् [श्री एकलिंग प्रसादात्]

[भाला]

सही

१. महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप स्यं-
२. घ आदेशात् आचार्य बालाजी वा कील्न दा—
३. स बलभद्र कस्य गाम १ पीपली मया [कीधो]
४. उदके आघाटे दता कूभलमेर मध्ये सं—
५. वत् १६३३ वर्ष भाद्रवासुदि ११ रीवो [दुए]
६. श्री मुष प्रती दुए दादारामजी साह भाभो
७. पहला पतर वले गुठो दुट्यो त गा पा सु
८. नयो करे मया कीधो

1 पीपली ग्राम उदयपुर से उत्तर-पूर्व में कांकरोली स्टेशन से लगभग चार मील की दूरी पर है।

मृगेश्वर[1] का ताम्र-पत्र

महाराणा प्रताप द्वारा प्रदत्त प्रस्तुत ताम्रपत्र मुंशी देवीप्रसाद को प्राप्त हुआ था। जिसको उन्होने सरस्वती, भाग १८ पृष्ठ ९५-९८ पर प्रकाशित करवाया। ताम्रपत्र मे कुल ७ पंक्तियाँ हैं। ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रताप के आदेश से, भामाशाह द्वारा कान्ह नामक चारण को फाल्गुन शुक्ला ५ संवत् १६३९ को मीरघेसर (मृगेश्वर) नाम ग्राम प्रदान किया गया था। कान्हा सादू चारण था व चित्तौड़ के निकट ढूम्प खेडी नामक ग्राम का निवासी था। हल्दीघाटी के युद्ध में यह महाराणा के साथ था।[2] उस युद्ध का ओजस्वी वर्णन इसने अपने एक गीत में किया है।[3] इस ताम्रपत्र का दन्ताल पत्र भी मुंशी देवीप्रसाद जी ने प्राप्त किया था। ताम्रपत्र के मसविदे को कंठस्थ करने हेतु उसे पद्यबद्ध कर लिया जाता था, उसी पद्य को दन्ताल पत्र कहा जाता है। दन्ताल पत्र मे ताम्रपत्र के विषय को समाविष्ट करते हुए उक्त तिथि को गुरूवार भी बताया गया है। लेकिन तिथि पत्रक से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि को गुरूवार नही वरन् शनिवार था। ताम्र पत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है.—

१. महाराजधिराज महरा—
२. णा श्री प्रताप स्यधजी आदे
३. सातु चारण कान्हा है गाम
४. मीरघेसर दत्त मया कीधो
५ आघाट करे दीधो सवत् १६३९ वर्षे
६. फागुण सुदी ५ वुए श्री
७. मुख वीवमान साह भामासाह

---

1. तत्कालीन गोड़वाड़ क्षेत्र एवं वर्तमान पाली जिले में स्थित गाँव।
2. सरस्वती, भाग १८, पृ० ९५
3 प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप— डा० देवीलाल पालीवाल गीत सं० ३६

बांधण का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्रपत्र प० श्री रामकिशनजी जोशी, किशनगढ से प्राप्त हुआ था। इस ताम्रपत्र की प्रतिलिपि आर्य आर० सी० तिवारी ने Journal of the University of Bombay, Vol. 31, part 4 में पृष्ठ ५० पर प्रकाशित करवाया है। ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रतापसिंह के आदेश से आयस आणंदनाथ को सीदरी के ग्राम बांधण मे आश्विन कृष्णा७ संवत् १६४५ को ४हल[हल= लगभग ३ बीघा] भूमि प्रदान की। ताम्रपत्र मे पूर्व ताम्रपत्रो की भाति भामाशाह का नाम दर्ज है। मूल पाठ निम्नानुसार है:—

श्री रामोजयति

श्री गणेस प्रसादात

श्री एकलिंग प्रसादात

भाला

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंघ आदेशतु आयस आणंदनाथ कस्य हल ४ दुरी धरती गांब बांधण सींधरी माहे पली छै समद कीदी स १६४५ बर्षे आसोजब्द ७ दुबे श्री मुख प्रति दबे साह भामो

पडेर[1] का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र पत्र का छाया चित्र भी उदयपुर के कमिश्नर कार्यालय मे उपलब्ध है (Photograph No 368) । इसको डा० गोपीनाथ शर्मा ने Mewar and the Mughal Emperors ग्रन्थ में पृष्ठ २३८ पर प्रकाशित किया है। इसमे महाराणा प्रतापसिंह द्वारा तिवाड़ी (ब्राह्मण) सादुलनाथ, कानागोपाल को ग्राम पडेर मे ११ हल भूमि कार्तिक शुक्ला १५ सवत १६४५ को प्रदान करने का उल्लेख है। पत्र की अन्तिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि यह भूमि सम्भवतः महाराणा उदयसिंह ने ही दान मे प्रदान करदी थी जिसका कि पुनर्नवीकरण महाराणा प्रताप के समय हुआ। ताम्रपत्र का मूल पाठ निम्नानुसार है:-

श्री रामोजयति

श्री गणेष प्रसादातु

श्री एकलिंगजी प्रसादातु

भाला

सही

सिध श्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्री प्रतापसींघ जी आदेशातु तिवाडी सादुलनाथरा भवान काना गोपाल टीला धरती उदक आगे राणाजी श्री जी ताम्रपत्र कराबे दीधो थो प्रगणे जाजपुर रा गाम पडेर महे हल ११ धरती वीगा गारा करे दीधी श्री मुष हुकम हुओ साह भाना संवत् १६४५ काती सुद १५ महाराणा जी श्री उदेसिंघजी रो दत्त

1 मेवाड़ के तत्कालीन जहाजपुर परगने तथा वर्तमान जहाजपुर तहसील का गांव।

डाइलाणा[1] का ताम्र-पत्र

प्रस्तुत ताम्र-पत्र शिवसिंह चौयल ने राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४ पृष्ठ ३५-३६ पर प्रकाशित करवाया है। इस ताम्रपत्र मे चौधरी रोहीतास को महाराणा प्रताप द्वारा डाईलाणा ग्राम मे ४ खेत १ एक रहट आश्विन शुक्ला १५ सवत १६५१ को दिये जाने का उल्लेख हुआ है। खेतो व रहट का विवरण भी दिया गया है। इस भूमि का भोग (भूमिकर) भी 4½ कलसी निश्चित किये जाने का उल्लेख भी मूल पाठ में है। कलसी शब्द नाप के पात्र विशेष के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] ताम्रपत्र का मूल पाठ इस प्रकार है:—

श्री रामो जयति

श्री गुणेस प्रसादात् एकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंघ आदेशातु चोधरी रोहीतास कस्य ग्रास मध कीधो ग्राम डाहीलाणा वडा माहे खेत ४ वरसाली रा उदक आघाट

१ षेत वडपाला १ षेतराजावो १ षेत ५१ पत्सो १ पाज्येजवा[3०] ४ भोगकलसी ४॥ अ (र) हट १ साणवे भोग कलसी ४॥ देसी स १६५१ व्रषे आसोज सु० १५ दव श्री मुष धीदमान सा भामा।

---

1 प्राचीन गोडवाड इलाके तथा वर्तमान पाली जिले में स्थित गाव।

2 गोडवाड के चौहानों के शिलालेखों में भी पायला, पायली (पल्लिका) आदि नापने के पात्रों के नाम 'कलसी' का भी उल्लेख मिलता है। (डी० आर० भण्डारकर का लेख, 'The Charmans of Marwar' Epigraphia Indica, Vol XI)

देलवाड़ा[1] का पट्टा

प्रस्तुत पट्टे की प्रतिलिपि मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती (मार्च १९१४, भाग १५, खण्ड १, पृष्ठ १२४-२५) में प्रकाशित करवाई थी । इस पट्टे से कतिपय ऐतिहासिक सूचनाएँ प्राप्त होती है । हल्दीघाटी के युद्ध मे झाला माना ने आत्माहुति देकर महाराणा प्रताप की रक्षा की थी । उस झाला सरदार के तीन पुत्र— छत्रसाल, कल्याणसिंह व आसकरण थे । इस पट्टे से ज्ञात होता है कि छत्रसाल महाराणा का साथ छोड़कर जोधपुर चला गया था, लेकिन जब बादशाह के साथ राणा प्रताप का आवरा-सावरा की नाल मे युद्ध हुआ उस समय छत्रसाल लौट आया ।[2] इस युद्ध मे छत्रसाल घायल हो गया व कुछ समय बाद मर गया । इस युद्ध में छत्रसाल का काका भोपतसिंह भी काम आया । महाराणा प्रताप द्वारा छत्रसाल के छोटे भाई कल्याणसिंह को देलवाड़ा ग्राम प्रदान किया गया व उसके भतीजे कानसिंह (छत्रसाल का पुत्र) को गोगुंदा ग्राम प्रदान किया गया । प्रताप ने उन्हे एकलिंगजी की नाल में चीरवे के घाटे में अच्छा प्रबन्ध रखने का आदेश दिया । अन्त में पट्टा जारी करने वाले का नाम पचोली गोरो व तिथि आश्विन शुक्ला ९ संवत् १६३९ दिया गया है ।[3] मूल पाठ निम्न प्रकार से है —

श्री एकलिंग जी प्रसादात — श्री रामो जयति

सही — और भाले का चित्र

स्वस्ती श्री विजय कटक रा डेरा सुभ सुथाने
महाराजाधिराज महारानाजी श्री प्रतापसिंहजी आदेसात
देलवाड़ा सुथाने राजरणा कल्याणसिंह सु प्रसाद वचजे ।

---

1 उदयपुर से १७ मील उत्तर में स्थित कस्बा ।

2 छत्रसाल सम्बन्धी इस घटना का वर्णन एक प्राचीन डिंगल कवित्त में भी मिलता है । द्रष्टव्य डा० देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित, 'प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप' पृ० ५६

3 श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार आवरा-सावरा का युद्ध प्रताप के उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में हुआ । वे उनके अनुसार छत्रसाल के मारवाड़ चले जाने पर प्रताप ने देलवाड़े का पट्टा बदनोर के राठोड़ सरदार मनमनदास को दे दिया था । अमरसिंह ने कल्याणसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर मनमनदास की मृत्यु के बाद देलवाड़ा का पट्टा वापस कर दिया और छत्रसाल के लड़के मानसिंह को गोगुन्दे का पट्टा प्रदान किया ।

(उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ८६७-८६८)

अठारा समाचार भला है थाहरा केहवावजो अप्रंच रणा
चत्रसाल छडीनो कर जोधपुर गया आवरा सावरा री
नाल मांहे श्री पातशाहजी री फौज पड़ी जठे झगड़ो
हुवो जिणी झगडा मांहे थारे काका भोपतसिंह काम
आया ओर चत्रसाल रे लोह लागो सो घणा दिन पछे
काल कीधो कल्याणसिंह पकडन में गया जठे बोली
चाली री सुफारिश दिखाणी जी खुशी सूं करने
थाने देलवाडो मया हुवो रेख टका डोड
लाख री है खातरी सू जमीत राख जो थारे
भतीज कानसिंह ने गोघूंदो मया हुवो थांरा दो ही
ठिकाणा माहे नालरी कोडी पेश्कशी लागे सो
बद पेडियां दर पेडिया तक नहीं लागेगा गेरवाजबी
धोस खालसो नहीं आवेगा यो माहरो वचन है
श्री एकलिंग जी री नाल माहे चीरवा रा घाटा माहे
आछो बदोवसत राखज्यो बिगाड़ उजाड़ हुवेगा
सो थांहे पूछियो जावेगा परवानगी पंचोली
गोरो एव संवत् १६३६ रा आसोज सुदि ६— [4]

4 इस पट्टे की भाषा प्रताप के अन्य पट्टों से भिन्न है तथा पट्टे में उल्लिखित घटनाओं का कालक्रम अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से मेल नहीं खाता।

परवाना

प्रस्तुत परवाने की मूल प्रति श्री जगदीशप्रसाद आचार्य, उदयपुर, से प्राप्त हुई। प्रस्तुत पत्र महाराणा प्रताप की ओर से आचार्य बाबा बलभद्र को लिखा गया है। इसमे कहा गया है कि वेणीदास तो यहा युद्ध में मारा गया है, उसकी चिन्ता मत करना। रूगनाथ (वेणीदास का पुत्र) की देख भाल रखी जायगी, एक बार उसे यहा भेज दो। रूगनाथ के पिता श्री हजूर (महाराणा प्रताप) हैं। पत्र भामाशाह द्वारा संवत १६३४ के पौष शुक्ला १० को लिखा गया। पत्र का मूल पाठ निम्न प्रकार से है—

श्री रामोजयती

श्री गुणेस प्रसादातु श्री ऐकलीग प्रसादातु

[भाला]

सही

१. स्वस्ति श्री कटक दल का डेरा सुयाने माहाराजाधीराज म—
२. हाराणा श्री प्रतावसींघ जी आदेसातु आचारज बावा बल—
३. भद्र कस्य। अप्रवे० वेणीदास तो जगडा में काम आ—
४. य्यो ने थे कइी चंता करो मती रूगनाथ री पात्री रेवे—
५. गा ऐक दाण रूगनाथ ने पेतावा भेजजो थे पी जमा पात्री
६. रापजो रूगनाथ रै वाप श्री हजूर हे थे कइी चंता करो मती
७. दुपे श्री मुप माहा भामा संमत १६३४ को पोस सुद १०

खण्डित शिलालेख

प्रस्तुत शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हॉल संग्रहालय मे सुरक्षित है। लेख शिलाखण्ड के १६"× १३" आकार पर १२ पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इनमे से प्रथम चार पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से पढने में आती है। अवशिष्ट भाग अस्पष्ट है जिसमें कि किसी ब्राह्मण को भूमि दान देने का संकेत मिलता है। लेख की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला ५ सोमवार संवत् १६३० दी गई है व महाराणा प्रताप का नाम भी उत्कीर्ण है। भारतीय तिथि पत्रक के अनुसार सोमवार के स्थान पर बुधवार होना चाहिए। (Indian Ephemeries V.S. 1922 P.P. 348) लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार से हैं:—

१. सं० १६३० वष जेष्ठ
२. मासे सुकल पषे महा
३. पवणी पचमी समवा
४. रे राज श्री राणा प्रताप

सूरखण्ड[1] का शिलालेख

प्रस्तुत अभिलेख विक्टोरिया हाल संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है। इस लेख का संकेत डा० गोपीनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक Mewar and the mughal Emperors में किया व इसका सम्पादन श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल ने शोधपत्रिका (भाग अंक पृष्ठ) मे किया हैं। शिलालेख का विषय दो भागो में विभक्त है प्रथम भाग (पंक्ति संख्या १ से ५) में कहा गया है कि संवत् १६४२ में राणा प्रताप ने राठोड राजा को पराजित कर सिसोदियो का राज्य (पुनः) प्राप्त किया। लेकिन इस तथ्य की पुष्टि मारवाड अथवा मेवाड राज्य के अब तक उपलब्ध किसी भी ऐतिहासिक स्रोत से नहीं होती। द्वितीय भाग (पंक्ति संख्या ६ से १६ तक) में कहा गया है कि अकबर के विख्यात सेनापति मानसिंह के साथ राणा प्रताप का युद्ध हुआ। उसमें महाराणा ने विजय पाई और उसकी खुशी में रणछोड जी के मन्दिर के पुजारी कुंवर को ४ हल भूमि ज्येष्ठ शुक्ला ११ को प्रदान की। यह तथ्य भी इतिहास विरूद्ध है। लेख की भाषा भी यह प्रगट करती है कि वह प्रताप का समकालीन न होकर बहुत बाद का है। और अविश्वसनीय है। मूलपाठ इस प्रकार है:—

१. महाराणाधराज प्रता
२. प सींगजी ने राठड़ का रा
३. ज पराजि कर सिसोदीय
४. ण का राजसवत १६४२
५. मं राज प्रताप की—
६. आ सुरखंड नगेर पर
७ राज काद उस समे
८. मुगल अकबर
९. के विषात सेनापती रा
१०. मानसेह को सात जुद
११. या महाराणाजी अस वज
१२. पइ क पुसी में रनसड
१३ जी का मदीरा डोरी थ उ
१४. सका प्रमद कीआ नु
१५. दी हल ४ पुजारी कुव—
१६. र को दा जेठ सुकल ११

---

1 [illegible] से लगभग दो मील दूर दक्षिण में स्थित गांव

रक्तताल[1] का शिलालेख

प्रस्तुत लेख खमनोर ग्राम के निकट रक्तताल नामक युद्ध स्थल में स्थित एक छतरी के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है, शिलालेख में ग्वालियर के राजा रामशाह के पुत्र शालिवाहन के मृत्युस्थल पर महाराणा प्रताप के पौत्र महाराणा कर्णसिंह द्वारा संवत १६८१ में स्मारक बनवाने का उल्लेख है । ग्वालियर के राजा रामशाह ने हल्दीघाटी के युद्ध में अपने पुत्रो सहित महाराणा प्रताप की ओर से भाग लिया था । युद्ध में वह अपने पुत्रों सहित काम आया । लेख के अन्त में स्मारक के निर्माता का नाम सिलावट मदीजत दिया गया है । लेख का मूल पाठ निम्न प्रकार से है:—

समत १६८१ बरषे
रना करणसींघ जी
ने कराई छतरी
गलेरक रज की
रजरमस. बेटो
सलवहण जरी
सीलवट [मदीजत]
[जत बतालीम] ने
कम कीधो

---

1 हल्दीघाटी और खमणोर ग्राम के बीच का वह खुला मैदानी स्थल जहाँ महाराणा प्रताप की सेना और मुगल सेना के बीच युद्ध हुआ था । हल्दीघाटी और खमणोर उदयपुर से क्रमशः लगभग २० और २२ मील की दूरी पर उत्तर में हैं ।

सोरठा

गिर पुर देस गँमाड़,

भमिया पग पग भाखरां ।

मह अँजसै मेवाड़

सह अँजसै सीसोदिया ॥

—मानसिंह [जोधपुर-महाराजा]